आइसोप्रीन

$$
\begin{array}{ccccccc}
 & & H & & & & \\
 & & | & & & & \\
H & & H-C-H & & & & H \\
| & & | & & & & | \\
C & = & C & - & C & = & C \\
| & & & & | & & | \\
H & & & & H & & H
\end{array}
\quad \text{अथवा} \quad
CH_2 = \overset{\displaystyle CH_3}{\overset{|}{C}} - CH = CH_2
$$

प्राकृतिक रवर और आइसोप्रीनमें अन्तर यह है कि प्राकृतिक रवरमें १०००से ४०,००० आइसोप्रीन एकांकोंकी पुनरावृत्ति (repeating units) हुई रहती है। जहाँ-जहाँ कार्वनके निवन्ध (double bond) होते हैं वहाँ उस पर हवामें रहनेवाला आक्सीजन क्रिया करता है; इसीलिए 'रवर' और 'गन्वक'के वीच वल्कनीकरणकी क्रिया हो सकती है।

इन अणुओंके सम्वन्धमें महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यदि इन्हें खुला रखा जाए तो इनकी शृंखला आपसमें उलझ जाती है। मालाओंकी अनेक लड़ियाँ यदि खुली फेंक दी जाएँ तो वे आपसमें कैसी उलझ जाती हैं? साथवाली आकृतिमें एक ऐसा ही उलझाव दिखाया गया है।

रवरका अणु
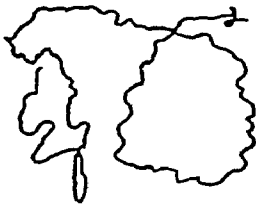
इस उलझावके दोनों सिरोंको यदि खींचा जाय तो अणु लम्वा हो जायगा। रवरमें प्रत्यास्थताके गुणका यही कारण है।

ऐसे विस्तारवाले अणुको प्रयोगशालामें वनाना मुश्किल ही है। लेकिन पिछले तीस-वत्तीस वर्षकी अवधिमें इस प्रकारके कई अणुओंका सृजन मनुष्यके हाथों हुआ है; इसलिए अव हम मानव-निर्मित रवरकी ओर मुड़ते हैं।

१८७९में गुस्ताव वुशार्डट नामक वैज्ञानिकने आइसोप्रीन और हाइड्रोक्लोरिक अम्लकी पारस्परिक क्रियाके द्वारा रवर-जैसा पदार्थ वनाया। तीन वर्ष वाद, १८८२में, इंग्लैण्डमें विलियम टिल्डने टर्पेण्टाइनसे आइसोप्रीन वनाया और फिर उससे रवर-जैसा पदार्थ उत्पादित किया। १९१०में एस० वी० लेवेदेव नामक रूसी रसायनज्ञने व्यूटाडाइनसे रवर वनाया। रवरसे सम्वन्धित सवसे सावारण रासायनिक द्रव्य व्यूटाडाइन है। व्यूटाडाइन अपने ही अणुओंको इकट्ठा कर लम्वी शृंखला वनाता है। इस क्रियाको वहुलीकरण अथवा पोलीमेराइज़ेशन क्रिया कहते हैं। 'पोली' मूलतः ग्रीक भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ 'एकसे अधिक' होता है। दो भिन्न-भिन्न अणुके संयुक्त होने पर उस पदार्थको 'सह वहुलक' अथवा 'को-पोलीमर' कहते हैं।

प्राकृतिक रवर वड़ा ही अनोखा पदार्थ है। परन्तु मानव-निर्मित रवर कई वातोंमें प्राकृतिक रवरसे भी उत्कृष्ट होता है। प्राकृतिक रवर आसानीसे जलता है; लेकिन ऐसा भी मानव-निर्मित रवर वनाया गया है, जो आगमें जरा भी नहीं जलता। प्राकृतिक रवर तेल और स्निग्व (चिकने) पदार्थ लगनेसे फूल जाता है, मानव-निर्मित रवरको ऐसे प्रभावोंसे मुक्त रखा जा सकता है। इतना ही नहीं, मानव-निर्मित रवर विविध रंगों और रंगीन कान्तियोंमें भी वनाया जा सकता है। मानव-निर्मित रवर प्राकृतिक रवरसे एक हजार गुना अधिक टिकाऊ होनेके कारण अभेद्य (impermeable)

(कोयला और चूनामेंसे रवर)

लकड़ीके वुरादेसे रवर
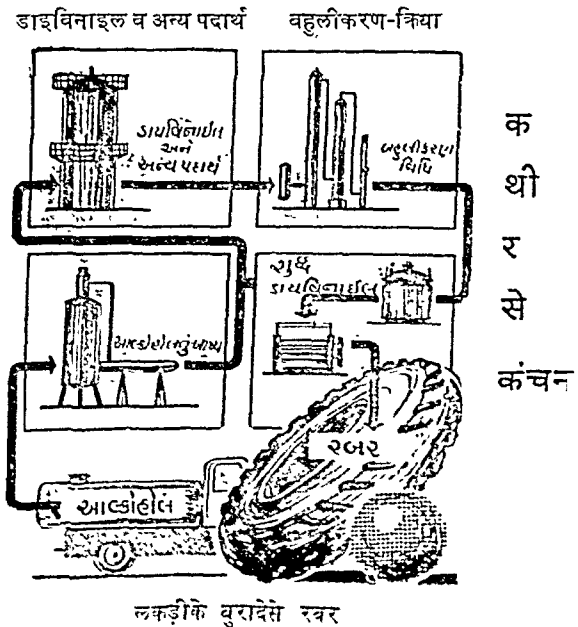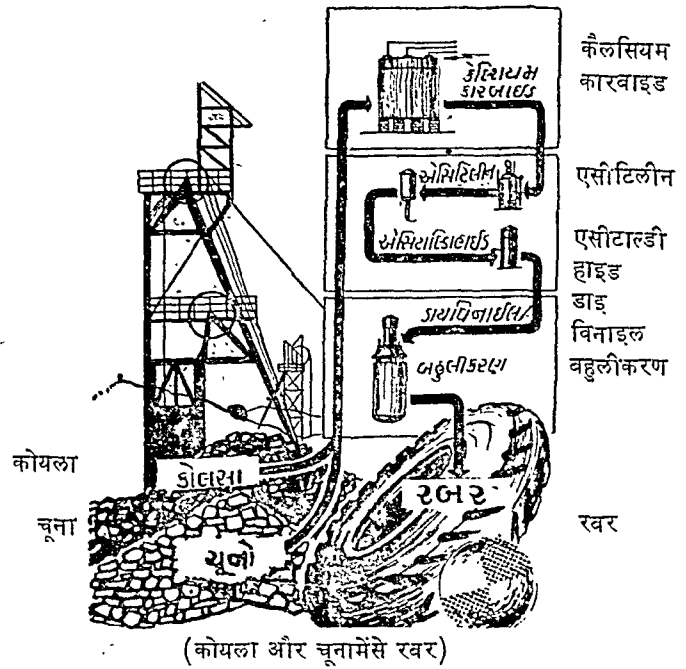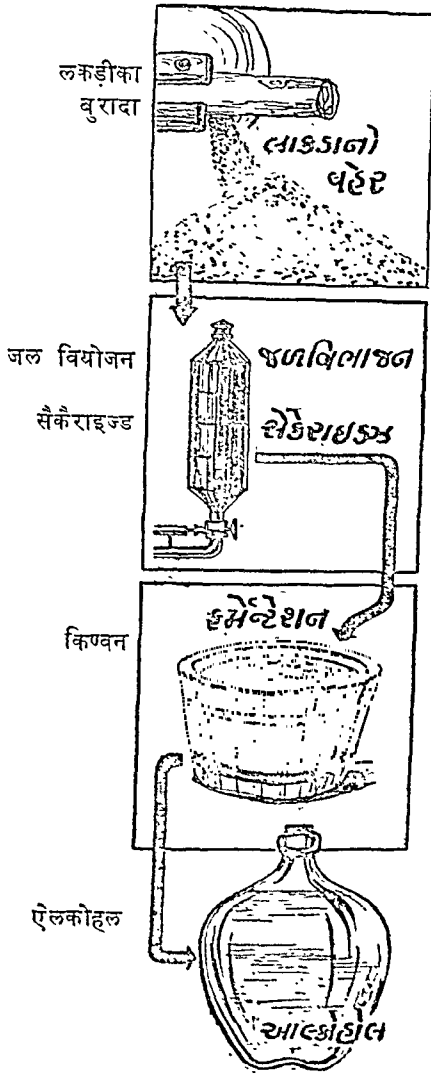
रह सकता है। मनुष्यने ऐसा रवर भी बनाया है जिस पर ओज़ोन गैसका कोई असर नही होता। प्राकृतिक रवरसे आजकल पोलीयुरेथेन किस्मके रवरसे बने टायर अविक मजबूत होते हैं। वह समय दूर नहीं है जव एक लाख मील तक चलनेके बाद भी न घिसनेवाले टायर बनने लगेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि सामान्य कोटिकी मोटरकारकी जिन्दगी तक उसके टायर भी काम देते रहेंगे।

मानव-निर्मित रवर हाइड्रोकार्वन वर्गके रसायनोंसे बनी हुई इमारत है। १९०९से १९१२ तककी अवधिमें जर्मनीमें आइसोप्रीन बनाया गया और उससे जर्मन रसायन-विदोंने इतनी अविक मात्रामें रवर तैयार किया कि वहांके बादशाह कैसरकी मोटर गाड़ीके टायर उस रवरके बनाये गए थे। उसके बाद प्रथम महायुद्धके दौरान जर्मनीको प्राकृतिक रवर मिलना बन्द हो गया तो जर्मनोंने उसके स्थान पर डाइ मिथाइल ब्यूटाडाइन नामक रसायनकसे रवर बनानेकी विधि खोज निकाली। इस पदार्थ-को मिथाइल रवर कहा जाता है। उसकी रासायनिक संरचना यद्यपि आइसोप्रीन-जैसी है, परन्तु उसमें एक मिथाइल समूह (gronp)—(CH_3) अविक होता है। जर्मनोंने युद्धके दौरान २३५० टन मिथाइल रवरका उत्पादन किया और उसके टायर भी बनाए, यद्यपि वे उतने मजबूत सावित न हो सके। परन्तु जर्मन वैज्ञानिकोंका यह प्रयत्न हाइड्रोकार्वन रसायनकोंसे रवर बनानेकी दिशा-में एक नया कदम था। आज तो अविकांश मानव-निर्मित रवर हाइड्रोकार्वन रसायनकसे ही बनाया जाता है।

७ दिसम्बर १९४१के दिन जापानने दूसरे विश्वयुद्धमें प्रवेश किया। उसने हवाई द्वीप समूह-के पर्ल बन्दरगाहमें स्थित अमरीकी प्रशान्त नौसेना दलको नष्ट कर दिया। तीन महीनेके अन्दर अंग्रेज़ोंके अजेय समझे जानेवाले बन्दरगाह सिंगापुर पर भी उसका अविकार हो गया और डच ईस्ट इंडीज़को जापानियोंने जीत लिया। इससे मित्र-राष्ट्रोंकी शक्तिको काफी क्षति पहुँची, क्योंकि सैनिक-वाहनों और युद्धपोतोंके लिए आवश्यक प्राकृतिक रवरका प्राप्ति स्थान उनके हाथसे निकल गया था। रवरका जो थोड़ा-वहुत संग्रह उनके पास था वह कितने दिन चल पाता? रवरके बिना न तो ट्रक, ट्रैंक और वायुयान चलाये जा सकते थे; न विद्युत्-जनित्र बनाये जा सकते थे और न यातायात एवं परिवहन-सेवाओंको चालू रखा जा सकता था। संक्षेपमें यह कि संश्लिष्ट रवरका उत्पादन किये बिना पराजय निश्चित थी। संश्लिष्ट रवर बनानेकी ओर अभी तक उन्होंने ध्यान नहीं दिया था, क्योंकि सुदूर पूर्वके रवर बागानों पर उनका एकछत्र अविकार था। लेकिन अब स्थिति बदल गई थी। धुरी-राष्ट्रों—जर्मनी और जापान—को इस सम्बन्धमें कोई चिन्ता नहीं थी। रवर उत्पादक प्रदेश अब उनके अधिकारमें था; और जर्मनी प्रथम विश्व युद्धमें सबक सीख ही चुका था। १९४२में जर्मनीके कृत्रिम रवरका वार्षिक उत्पादन ९० हजार टन तक पहुँच गया था, जो अगले ही वर्ष १ लाख टन हो गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि एक लाख टन रवर ४ लाख एकड़ जमीनमें उगाए गए वृक्षोंसे प्राप्त रवरके बरावर होता है।

अव मित्र-राष्ट्रोंके लिए विजय विज्ञानके साथ समयकी होड़ थी। सौभाग्यसे कुछ ही समय पहले अमरीका जर्मनीसे ब्यूना (Buna) रवरका एकस्व प्राप्त कर चुका था, इसलिए वहाँ जल्दी ही GR–S (गवर्नमेण्ट रवर-स्टाइरिन)का उत्पादन आरम्भ कर दिया गया। इस रवरका युद्धकालीन नाम 'ब्यूना एस' था। इस कामके लिए अमरीकामें फौरन ५०से भी अधिक रवर बनानेके कारखाने स्थापित किये गए। उनमेंसे आधे कारखानोंमें रवरके लिए आवश्यक कच्चा माल, ब्यूटाडाइन

और स्टाइरिन नामक रसायनक बनाये जाते थे। चार कारखानोंमें नियोप्रीन, ब्यूटेल और थायोकोल किस्मके रवर बनाना आरम्भ किया गया और नौ कारखानोंमें ऐलकोहल और अन्य जरूरी रसायनक बनानेकी व्यवस्था की गई थी। खासे बड़े पैमाने पर किये गए इन प्रयत्नोंका फल भी शीघ्र ही मिला। १९४३में कृत्रिम रवरका उत्पादन अमरीकामें २ लाख टन हुआ, जो जर्मनीके उसी वर्षके उत्पादनका दुगुना था। १९४५में तो अमरीकी उत्पादन ७ लाख टन तक पहुँच गया। इस प्रकार विज्ञानको अपने प्रयत्नमें आशातीत सफलता मिली और मित्र-राष्ट्र युद्धमें विजयी हुए।

कृत्रिम रबरकी मुख्य जातियाँ

प्रकार	एकलक (Monomer)	बहुलक (Polymer) संरचना
GR–S (व्यूना-एस)	व्यूटाडाइन २५% साइटिन	$-\left[(CH_2-CH=CH-CH_2)_x-CH-\underset{C_6H_{5}}{CH}-CH_2\right]_n$
GR–I (व्यूटेल रवर)	आइसो व्यूटेलीन ५%आइसोप्रीन	$\left[-CH_2-\overset{CH_3}{\underset{CH_3}{C}}-)_x CH_2-CH=CH-CH_2-\right]_n$
GR–M (नियोप्रीन)	क्लोरोप्रीन	$\left[-(CH_2-\underset{Cl}{C}=CH-CH_2-\right]_n$
नाइट्राइल रवर (व्यूना-N)	व्यूटाडाइन १८-४२% एक्रिलोनाइट्राइल	$\left[-(CH_2-CH=CH-CH_2)_x-\underset{CN}{CH}-CH_2-\right]_n$
पोली सल्फाइड रवर(थायोकोल)	अनेक प्रकार के	$\left[-CH_2-CH_2-\underset{S}{\overset{}{S}}-\underset{S}{S}-\right]_n$
सिलिकोन प्रकार		$\left[-O-\overset{CH_3}{\underset{CH_3}{Si}}-O-\overset{CH_3}{\underset{CH_3}{Si}}-O-\right]_n$

अब कुछ खास किस्मके रवरोंका उल्लेख कर लिया जाए। इसमें सिलिकोन नामक किस्म असाधारण है। ऊपरका अन्तिम सूत्र यह बतलाता है कि इसकी संरचनामें कार्बनके स्थान पर सिलिकोन और आक्सीजन रहता है और हाइड्रोजन समूह सिलिकोनसे जुड़ा होता है।

सिलिकोन रवर मृदु होता है और साँचेमें रखकर दबानेसे साँचेकी आकृति ग्रहण कर लेता है। अधिक दाबकी भी जरूरत नहीं होती, केवल अँगुलीसे दबाने-भरसे काम चल जाता है। सिलिकोन रवरकी अणु संरचनामें द्विबन्ध न होनेसे गन्धकके साथ इसका वल्कनीकरण नहीं हो सकता। सिलिकोन रवर पर अन्य रसायनोंका असर नहीं होता। इस प्रकारकी इसकी एक किस्म 'सिलेस्टिक' नामसे प्रख्यात है।

पोलीएथेलीन, क्लोरिन और गन्धकके मिश्रणसे जो रवर बनाया जाता है वह 'हायपेलोन' कहलाता है और अत्यधिक कठोर होनेके कारण इंजीनियरिंग कामोंमें प्रयुक्त होता है।

दूसरी एक किस्म कार्बन और फ्लुओरिनका सह-बहुलक है, जो Kel–F के नामसे विख्यात है। इसकी दृढ़ता प्रति वर्ग इंच ३५०० पौण्ड होती है और उष्णता एवं सान्द्र सल्फ्युरिक अम्ल तथा फ्युमिंग नाइट्रिक अम्लका इस पर कोई असर नहीं होता।

पोलीयुरेथेन रबर 'फोम' रबर अथवा फेनिल रबरके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें कार्बन डाइआक्साइड गैस भरी होनेके कारण यह फूला हुआ रहता है।

ऊपर बताये गए रबर संरचनाकी दृष्टिसे प्राकृतिक रबरके समान माने जा सकते हैं, परन्तु प्राकृतिक रबर और उनकी अणु संरचनामें भिन्नता होती है। वास्तविक संश्लिष्ट रबर उसे कहा जाता है जो अणु संरचनामें भी प्राकृतिक रबरका सांगोपांग अनुसरण करे। बी० एफ० गुडरिच, गल्फ आयल कारपोरेशन और फायरस्टोन टायर एण्ड रबर कम्पनियोंने इस प्रकारका वास्तविक संश्लिष्ट रबर बनानेकी घोषणा की है। इस प्रकारके रबर क्रमशः एमरिपोल S–N और कोरल रबरके नामसे प्रसिद्ध हैं। प्राकृतिक रबरको पोली आइसोप्रीन कहा जा सकता है। उसकी अणु संरचनाको (cis–poly–Isoprene–सिस-पोली-आइसोप्रीन) कहा जाता है। यह 'सिस' क्या है? हाइड्रो-कार्बन पदार्थमें कार्बनसे संयुक्त कोई तत्व अथवा समूह यदि एक बन्धवाला हो तो वह उस बन्धके चारों ओर घूम सकता है। द्विबन्धवाले कार्बन युग्मके आसपास 'समूह' इस प्रकार घूम नहीं सकता। द्विबन्धवाले कुछ पदार्थोंमें 'सिस' और 'ट्रान्स' (trans) किस्में होती हैं। 'सिस'का अर्थ है सम-पक्षीय और 'ट्रान्स'का विषम पक्षीय। प्राकृतिक रबर समपक्षीय आकारका होता है और गट्टापार्चा विषम पक्षीय आकारवाला।

$$-\overset{1}{C}H_2-\overset{2}{C}(CH_3)=\overset{3}{C}(H)-\overset{4}{C}H_2-\overset{1}{C}H_2-\overset{2}{C}(CH_3)=\overset{3}{C}(H)-\overset{4}{C}H_2-$$

विषम पक्षीय (trans) संरचना

$$-\overset{1}{C}H_2-\overset{2}{C}(CH_3)=\overset{3}{C}(H)-\overset{4}{C}H_2-\overset{1}{C}H_2-\overset{2}{C}(CH_3)=\overset{3}{C}(H)-\overset{4}{C}H_2-$$
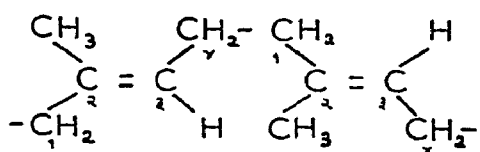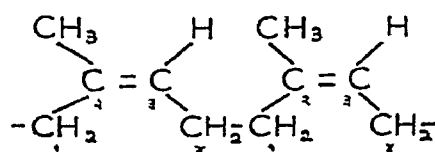
समपक्षीय (सिस) संरचना

यदि ऊपरकी आकृतियोंमें दिखाए हुए १ और ४ स्थानों पर आइसोप्रीनके अणुओंको संयुक्त किया जा सके तो उस पदार्थको प्राकृतिक रबर-जैसा ही बनाया जा सकता है। जर्मन वैज्ञानिक के० ज़िग्लरने उत्प्रेरकका उपयोग करके इसे प्रमाणित कर दिया है।

यातायातके साधनों और परिवहन सेवाओंमें रबरका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वायुयानों, मोटर गाड़ियों, बसों, बाइसिकलों आदिमें रबरका प्रचुरतासे उपयोग किया जाता है। आधुनिक कारके ५०० हिस्से रबरके बने होते हैं। रेलगाड़ियोंकी भी बैठकें स्पंज रबरकी बनाई जाती हैं और खिड़-कियाँ-दरवाजों पर रबरके अस्तर और गुटके लगे होते हैं। रेलगाड़ियोंके उच्च-वर्गके डिब्बोंके फर्श पर रबरकी चटाइयाँ बिछी रहती हैं। रबरके केबल, पट्टे, होज आदि कई वस्तुएँ बनती हैं। लेकिन अधिक मात्रामें रबरका उपयोग टायर बनानेमें किया जाता है।

अन्तरिक्ष यात्रामें व्यवहृत राकेटोंमें रबरका उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जाता है। राकेटोंके ईंधन कक्षोंमें रिंग (छल्ले), सील (बंध), गास्केट आदि पेकिंगों (भरतियों)के लिए ब्यूटिल, सिलि-कोन अथवा नियोप्रीन किस्मोंके रबरोंका उपयोग किया जाता है। इसका कारण यह है कि इस किस्म-

के रबर दाव, उष्णता और विलयनका प्रतिरोध कर सकते है। राकेटको भी धक्का-सह रबरके पाये पर चढ़ाकर रखते है। ठोस ईंधन मिश्रण होता है और उसे मिश्रित रखनेके लिए थायोकोल किस्मके रबरका उपयोग किया जाता है।

अमरीकामे 'जेमिनी' और 'अपोलो' अन्तरिक्ष यानोकी खिड़कियोके विसंवाहन (insulation) के लिए पोलीयुरेथेन किस्मके रबरका उपयोग किया गया था।

इस प्रकार मनुष्यने प्राकृतिक रबरके एकाधिकारको समाप्त कर वैज्ञानिक सफलताकी विजय-पताकाको फहराया है।
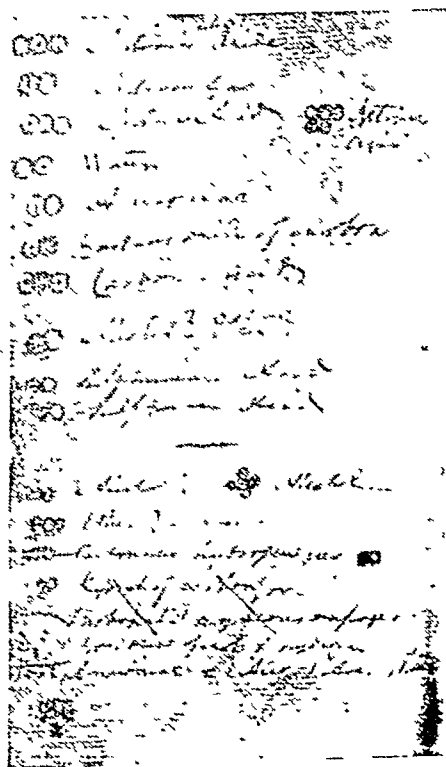
डॉल्टनकी डायरीका एक पृष्ठ

प्लास्टिककी माया

सवेरेके समय यूरिया फॉर्मोल्डिहाइड प्लास्टिकसे सुशोभित एलार्म घड़ीकी घंटीकी टुनटुनाहटसे जागकर, पोलीएमाइड (नायलोन) प्लास्टिकके ब्रशसे दाँत साफकर, विनाइल प्लास्टिकके कप-प्लेटमें प्लास्टिकके चम्मचकी सहायतासे चाय-नाश्ता कर, एसीटेट प्लास्टिककी फ्रेमसे मढ़े काँचके सामने प्लास्टिकके हत्थोंवाले उपकरण लेकर, प्लास्टिकके शेविंग (हजामतके) ब्रश और प्लास्टिकके रेजरसे दाढ़ी बनाकर, पोलीएथेलीन प्लास्टिककी बाल्टी और लोटेका स्नानके लिए उपयोग कर, नायलोन प्लास्टिकके कंघेसे बाल सँवारकर, पोलीइस्टर प्लास्टिक टेरेलिनके कमीज़, कोट, पतलून, टाई और नायलोनके मोज़े धारण कर, संश्लिष्ट चमड़ेके बूट पहन, जेबमें प्लास्टिकका फाउण्टेनपेन, सिगार केस, चश्मा आदि रखकर, प्लास्टिककी हैण्ड बेग हाथमें लेकर, दफ्तर पहुँचकर, टाइपिस्टसे प्लास्टिकके टाइपराइटर पर पत्रादि टाइप करवा कर, बातचीतके लिए प्लास्टिकके टेलीफोनका उपयोग कर, शामको प्लास्टिकके साज-सामानसे सुशोभित मोटरगाड़ी या बसमें प्लास्टिकके कपड़ेसे मढ़ी हुई बैठकपर विराजित हो घर लौटकर, द्वारपर नायलोन प्लास्टिककी साड़ीमें सजी-संवरी और प्रतीक्षा करती हुई श्रीमतीजीके सामने मुस्कराकर, अपने कमरेमें जाकर प्लास्टिकका स्विच दबा प्लास्टिक केबिनेट वाले रेडियोसे संगीत-श्रवणके द्वारा दिन-भरकी थकान उतार कर, प्लास्टिककी फिटिंगोंसे सुशोभित बाथरूममें जाकर, प्लास्टिकके फव्वारेके नीचे स्नान कर, प्लास्टिक (सनमाइका) मढ़ी डाइनिंग टेबल पर प्लास्टिककी प्लेट और कटोरेमें परिवारके साथ शामका भोजन कर, फिर बच्चोंके साथ प्लास्टिकके मुहरोंसे शतरंज या प्लास्टिकके पत्तोंसे ताश खेलकर, अन्तमें पोलीयुरेथेन प्लास्टिकके फ़ेनिल रबरकी शय्या पर निद्राधीन होने तककी दिनचर्यामें आजका नागरिक प्लास्टिककी मायामें किस तरह फँसा हुआ है।

वायुयान और मोटर गाड़ीमें प्लास्टिकके साज-सामान
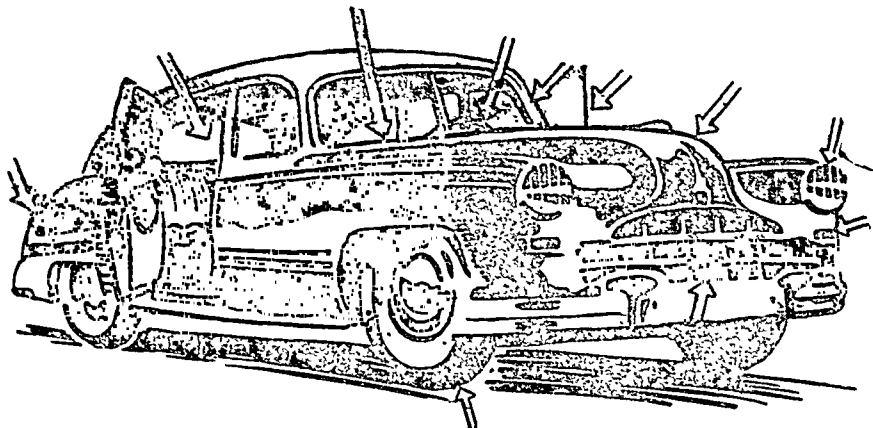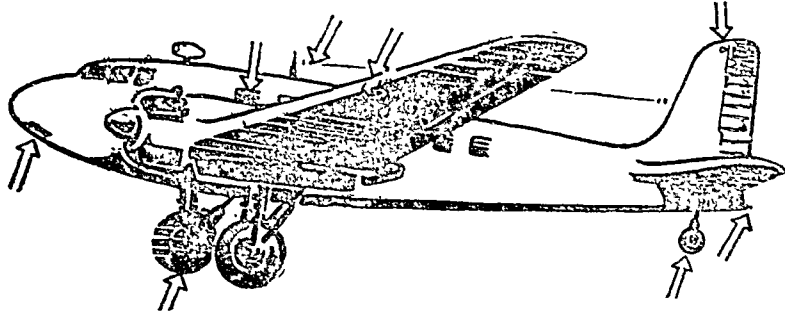
मोटर गाड़ी

'जिधर भी देखता हूँ'
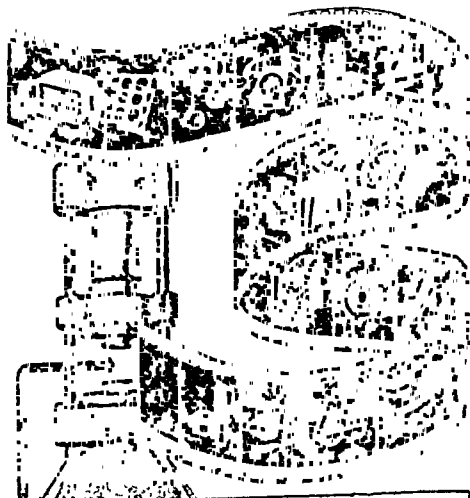
मानव-जीवनके सभी क्षेत्रोंमें प्लास्टिककी दिग्विजय !
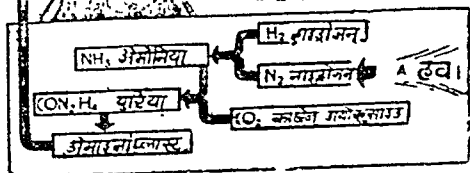
१२ : प्लास्टिक

अर्वाचीन काल प्लास्टिकका युग है। प्लास्टिक सैल्यूलायड अथवा कचकड़ा पहले-पहल १८६८ ई०में बनाया गया था, इसलिए १९६८का वर्ष प्लास्टिकका जन्म-शताब्दी वर्ष माना जाता है। १९५०के बाद, हर पाँचवें साल, प्लास्टिकका उत्पादन दुगुना होता रहा है; १९६७में कुल उत्पादन १५ अरब पौण्डके लगभग कूता गया था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि १९८० तक प्लास्टिकके उत्पादनमें सात सौ प्रतिशत तक वृद्धि हो जाएगी। आज तो फाउण्टेनपेन, घड़ियों तथा कमरमें बाँधनेके पट्टे, मिठाई अथवा अन्य खाद्य पदार्थोंके डिब्बे, चश्मेके फ्रेम—यहाँ तक कि चश्मेके काँच भी—, रंग-बिरंगे खिलौने, चाय-कॉफी पीनेके प्याले और रकाबियाँ, ग्रामोफोनके रेकर्ड, संश्लिष्ट रेशोंके कपड़े, फिल्म, जूते, बरसातमें काम आनेवाले जलसह (वाटर प्रूफ़) वस्त्र आदि शुद्ध प्लास्टिकके बनाये जाते हैं और हमारे जीवनके अनिवार्य अंग बन गए हैं। औद्योगिक क्षेत्रमें तो प्लास्टिकने मैदान ही मार लिया है। अम्लों अथवा क्षारोंके द्वारा संक्षारित होनेका कोई डर नहीं, वजनमें हलका-फुलका, रंगीन भी बनाया जा सकता है इसलिए रँगने-रँगानेकी झंझट नहीं, साथ ही दृढ़ता और कठोरतामें धातुओंके समकक्ष—इतनी सुविधाएँ और इतने गुण होनेके कारण उद्योगोंमें भी प्लास्टिकका उपयोग दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है।
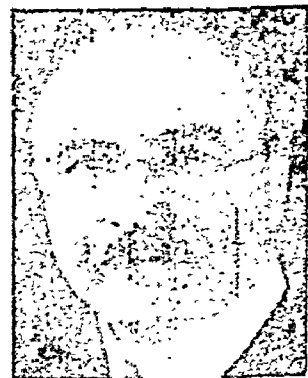
लियो हेन्ड्रिक बैकलैण्ड
(१८६४–१९४४)

ऐतिहासिक दृष्टिसे प्लास्टिकोंके जन्मका कारण हाथी दाँतकी दुर्लभताके परिणामस्वरूप 'बिलियर्ड गेंदों'के उत्पादनका रुक जाना है। न्यूजर्सीके जान ह्याटने १८६८ ई०में रुई और नाइट्रिक अम्लसे बने सेल्यूलोज नाइट्रेट और कपूरके संयोगसे पहले-पहल सैल्यूलायड बनाया और थोड़े ही समयमें तरह-तरहकी चीजोंको बनानेमें कचकड़ेका उपयोग किया जाने लगा। उसके बाद १८९७में डब्ल्यू० क्रिस्टी नामक एक जर्मनने कागज पर दूधसे प्राप्त केसीनका विलयन लगाकर सुखानेके बाद अन्य रासायनिक क्रियाओंके द्वारा उसे जलसह बनानेका प्रयोग किया। दूधको फाड़कर बनाया जानेवाला दूधका यह केसीन नामक उत्पाद उस समय तक केवल खाद्य पदार्थ बनानेके ही काम आता था। क्रिस्टीने उसका औद्योगिक उपयोग भी खोज निकाला। क्रिस्टीका एक और साथी एडोल्फ स्पिटलर भी इसी दिशामें प्रयोग कर रहा था। उसकी सहायतासे केसीनमें 'फॉर्मालिडहाइड' प्रकारके प्लास्टिकका पता चला। इस बीच १९०७में संयुक्त राज्य अमरीकामें लियो हेन्ड्रिक बैकलैण्डने 'फिनोल' और फॉर्मालिडहाइडके

संयोगसे लाख-जैसा प्लास्टिक पदार्थ बनानेकी विधि खोज निकाली और उस पदार्थका नाम 'वेकेलाइट' रखा गया। धीरे-धीरे वेकेलाइटका उपयोग खूब व्यापक होता गया। वजनमें हलका होते हुए भी वहुत मजबूत होनेके कारण उसे गृहोद्योगकी चीजोंसे लेकर औद्योगिक क्षेत्र तकमें अभूतपूर्व स्थान मिलता गया। आज तो दुनियाके हर देशमें वेकेलाइटका उत्पादन किया जाता है।

यहाँ प्लास्टिकके दो विभागोंका उल्लेख करना प्रसंगानुकूल ही होगा। पहले विभागको ताप सुनम्य या उष्णमृदु (thermoplastic) कहते हैं और दूसरेको ताप स्थापित अथवा उष्णकठोर (thermosetting)। ताप सुनम्य लाख-जैसा पदार्थ होता है। गरम करनेसे वह पिघलने लगता है और ठण्डा करने पर कठोर हो जाता है। ताप स्थापित प्लास्टिक गरम करनेसे पहले मिट्टीके लोंदे-जैसा मृदु होता है; लेकिन एक वार उसका द्रव बनाकर साँचेमें ढाल दिया जाए तो फिर गरम करने पर भी उसकी वह आकृति बनी रहती है और उसे दुबारा मृदु नहीं किया जा सकता। वेकेलाइट ताप स्थापित किस्मका प्लास्टिक है, जबकि सैल्यूलायड (कचकड़ा) ताप सुनम्य किस्मका।

दो-दो विश्व-युद्धोंने रासायनिक उद्योगोंके विकासको खूब वेग प्रदान किया है। युद्ध-कालमें प्राकृतिक पदार्थोंकी कमी हो जानेसे कृत्रिम पदार्थोंको खोजनेकी तीव्र आवश्यकता अनुभव न की जाती तो प्लास्टिक और रवर-उद्योगका इतनी तेजीसे विकास कदापि न होता। इस समय लगभग पचासेक प्रकारके भिन्न-भिन्न प्लास्टिक अस्तित्वमें आ चुके हैं। पहले वर्गीकरणमें मुख्य १७ प्रकारके प्लास्टिकों-का समावेश किया जा सकता है। अन्य प्रकारोंको मुख्य प्रकारोंके गौण विभागोंमें समाविष्ट करना होगा। प्लास्टिक उद्योगका वास्तविक आरम्भ १९१८के वादसे मानना चाहिए। १९३०से १९४०के वीचकी अवधिमें आधुनिक प्लास्टिकोंका युग आरम्भ होता है। १९४०से १९५५के बीचके समयमें यह उद्योग उत्तरोत्तर विकसित होता गया और आज लगभग एक दर्जन प्रकारके प्लास्टिकोंका टनोंसे उत्पादन होने लगा है।

वानस्पतिक सैल्यूलोज़ एसीटेट प्लास्टिक १९१७में प्रथम विश्व-युद्धके समय वायुयानके पंखों पर अज्वलनशील पदार्थ लगाये जानेकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए खोजा गया था। यह पदार्थ कचकड़े-के समान ज्वलनशील नहीं है। इस पदार्थका उपयोग वस्त्र-रेशे वनानेके लिए भी किया जाता है। १९३०से १९४०के दस वर्षोंके बीच आजके सुप्रसिद्ध पोलीस्टाइरिन, पोलीवाइनिल क्लोराइड (पी० वी० सी०), पोली ओलेफ़ीन, पोलीमिथाइल एक्रीलेट आदि तापसुनम्य प्लास्टिकोंकी खोज की गई थी। एथिलीन नामक गैससे इन पदार्थोंको प्राप्त किया गया, इसलिए ये एथेनॉयड प्लास्टिक भी कहलाते हैं। एथिलीन वस्तुतः एक पेट्रो-केमिकल है, इसलिए पेट्रो-केमिकल्स उद्योगके विकासके साथ-साथ प्लास्टिक-उद्योग भी विकसित हुआ।

१९३० ई०में जर्मनीमें फार्वेन कम्पनी तथा अमरीकामें डाऊ केमिकल कम्पनीने सवसे पहले पोलीस्टाइरिन प्लास्टिक वनाया। इन्हीं दिनों पोलीवाइनिल क्लोराइडकी खोज भी हुई। १९३१में इंग्लैण्डकी आई० सी० आई० (इम्पीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज़)की प्रयोगशालामें पोलीएथिलीन प्लास्टिककी खोज की गई, परन्तु उसका विकास दूसरे महायुद्धके वाद ही हो सका और अव तो इसका उत्पादन टनोंसे होने लगा है। आई० सी० आई०की प्रयोगशालामें ही हिल और क्राफर्ड नामके रसायन-विदोंने कठोर पारदर्शक प्लास्टिक पोलीमिथाइल मिथाक्रिलेटकी खोज की, जिसका उपयोग पिछले महायुद्धमें वड़े पैमाने पर किया गया। इन दिनों यह 'परपेक्स' नामक पारदर्शक तख्तोंके रूपमें वेचा

जाता है। इस पदार्थका उपयोग दन्दानसाजीमें नकली दाँतोंके चौखटे बनानेमें भी किया जाता है। इसपर आवहवाका असर बहुत कम होता है।

अमरीकामें १९३९में ड्यूपॉण्ट कम्पनीके डॉ० वालेस ह्यूम केरोदर्सने नायलोनकी खोज की, जिसका सर्वप्रथम उपयोग प्लास्टिकके साँचे बनानेमें किया गया था।

१९४१में ड्यूपॉण्ट कम्पनीकी प्रयोगशालामें ही आर० जे० प्लैकेटने 'टेफलॉन' नामसे विख्यात पोलीटेट्राफ्लु ओरोएथिलीन नामक प्लास्टिककी खोज की।

दूसरे महायुद्धके बाद दस वर्ष पूरे होते-होते प्लास्टिक-उद्योग दुनियामें अपने पाँव जमा चुका था। आरम्भमें महँगे दामोंवाले प्लास्टिकोंका काफी तादादमें उत्पादन होनेसे वे धीरे-धीरे सस्ते होते जा रहे थे। समयके साथ अनुसन्धानोंके परिणामस्वरूप प्लास्टिकोंके गुणोंमें भी आवश्यक सुधार और वृद्धि होती गई। अधिक कठोर और दृढ़ प्लास्टिकोंकी खोजके बाद खास प्रकारके प्लास्टिकोंकी खोजमें सफलता मिली। ए० बी० एस० (एक्रिलोनाइट्राइल-ब्यूटाडाइन-स्टाइरिन) प्रकारका सबसे आधुनिक प्लास्टिक अपनी संरचनामें रबरके अत्यन्त सूक्ष्म कणोंवाला होता है। वह मजबूतीमें धातुओं-के समान है। पिछले विश्वयुद्धमें उसका उपयोग रेडार और वायुयानके पुर्जे बनानेमें किया गया था।

प्लास्टिक-उद्योगमें कच्चे मालके लिए रसायनोंका प्रचुर मात्रामें उपयोग किया जाता है। ३०-३५ वर्ष पहले वानस्पतिक (सेल्यूलोज़), प्राणिज (केसीन) और जन्तुओं द्वारा उत्पादित पदार्थ (लाख) प्लास्टिक बनानेका मूल पदार्थ हुआ करता था। उसके बाद अलकतरा (तारकोल)से उत्पादित 'फिनोल' नामक रसायनका उपयोग किया जाने लगा। आज तो पेट्रोलियमके रसायनक (पेट्रो-केमिकल्स) प्लास्टिक-उद्योगमें बुनियादी पदार्थोंके रूपमें महत्त्वपूर्ण हो उठे हैं। प्लास्टिक-उद्योगको पेट्रो-केमिकल उद्योगने अभूतपूर्व वेग प्रदान किया है। पेट्रो-केमिकल उद्योगने प्लास्टिक उद्योगके लिए काफी बड़ी मात्रामें और सस्ते रसायनोंका उत्पादन किया है। यदि अकेले कोयलेसे बनाये जाने-वाले रसायनों पर यह उद्योग निर्भर करता तो सम्भवतः इतनी तेज़ीसे इसका विकास कभी न हो पाता।

पेट्रोलियम रसायनकोंका उद्योग पहले महायुद्धके बाद स्थापित हुआ था। क्रूड आयलके बड़े अणुओंका भंजन (क्रेकिंग) करके उससे अनेक विलयन तैयार किये गए थे। दूसरा महायुद्ध छिड़ने पर इस उद्योगने प्रगति करके एथिलीन, डाइक्लोराइड, एथिलीन ग्लायकोल, एथिलीन आक्साइड, वाइलिन क्लोराइड और स्टाइरिन आदि रसायनक बनाये। कृत्रिम रबर प्राप्त करनेकी आवश्यकताके कारण ब्यूटाडाइन और स्टाइरिनसे मानव-निर्मित रबर बनाया गया। पोली-एथिलीन प्लास्टिक पूरा-का-पूरा अब पेट्रोलियमके एक उत्पाद एथिलीनसे ही बहुलीकरणकी क्रियाके द्वारा बनाया जाता है। इस प्रकार पेट्रोलियमसे प्राप्त होनेवाले मध्यस्थ रसायनक प्लास्टिक बनानेके लिए आवश्यक सस्ते-कच्चे मालकी गर्ज पूरी करते हैं।

प्लास्टिक बनानेके लिए सबसे पहले प्लास्टिक पदार्थका चूर्ण बनाया जाता है। इस चूर्णमें रंग देकर और पूरक (filler) डालकर उसे अच्छी तरह मिला लिया जाता है। पूरक उसकी मजबूती-को बढ़ाता है, लेकिन पूरककी भी सीमाएँ हैं। बीस प्रतिशत पूरकके उपयोगसे मजबूतीमें लगभग १७ प्रतिशतकी वृद्धि होती है; ४० प्रतिशत करनेसे मजबूतीमें अपेक्षाकृत कम वृद्धि होती है, और ५० प्रतिशतसे तो उलटे मजबूती घट जाती है। इसलिए पूरकके अनुपातको खासतौर पर ध्यानमें रखना आवश्यक होता है। मूल पदार्थोंका चूर्ण बनानेके लिए गरम किये हुए बेलनोंका उपयोग किया जाता

है। वेलनोंके द्वारा मिलावटका काम भी सही अनुपातमें हो जाता है। चूर्ण वनाते समय तापका ध्यान रखना भी वहुत ज़रूरी है, नहीं तो चूर्ण एकदम भंगुर हो जाएगा। चूर्ण वन जानेके वाद उसे छानकर डिव्वोंमें वन्द कर दिया जाता है। फिर वहाँसे उसे 'साँचों'में ढालनेके लिए ले जाया जाता है। ये साँचे एक साथ पचीसेक अदद निकालनेकी क्षमतावाले होते हैं। चूर्णको एक ढोलमें भर देते है जहाँसे वह अपने-आप साँचेमें पहुँच जाता है। अव उसपर दाव वढ़ाया जाता और साथ ही साँचेको गरम भी किया जाता है। इसके वाद दाव कम करके साँचेको ठण्डा किया जाता है और तव उसमेंसे तैयार पदार्थ-को निकाल लिया जाता है।

अन्तःक्षेपण (injection) और पंच या वहिर्वेधन (extrusion) संचककरण—(moulding) मे फूंक ढलाई (blowing), सादा ढलाई (casting) आदि विधियाँ काममें लाई जाती हैं। 'अन्तःक्षेपण संचककरण'में पदार्थको तरल करके (रस वनाकर) ठण्डे साँचेमें भरते है, जहाँ वह जम जाता है और उसके वाद साँचेमेंसे निकाल लिया जाता है। द्रव भरते समय साँचे पर दाव जारी रखा जाता है और ढले हुए पदार्थको निकालते समय साँचे परसे दाव समाप्त कर दिया जाता है। 'वहिर्वेधन संचककरण'में वेलन पर चादरें (sheets) वना लेते हैं और उन्हें इच्छित आकारमें गढ़ लिया जाता है। उसके वादकी सारी क्रिया अन्तःक्षेपण संचककरणसे मिलती-जुलती है।

'कास्टिंग' या सादी ढलाई सवसे सस्ती विधि है। इसके मुख्य साधन या उपकरण है—सीसे, काँच अथवा रवरका साँचा और गरमी देनेके लिए एक भट्ठी। द्रवको साँचेमें भरकर उसे एक निश्चित समय तक भट्ठीमें रखकर गरम किया जाता है। यहाँ उसे लगभग ८०° सें० ताप पर चारसे लेकर दस दिन तक रखते हैं और वादमें ढले हुए पदार्थको साँचेसे पृथक् कर लिया जाता है। सीसेके साँचे वहुत सुविधाजनक रहते है, क्योंकि उसमेंसे सीसेको तोड़कर ढले हुए पदार्थको आसानीसे निकाला जा सकता है और फिर सीसेको गलाकर जल्दीसे नया साँचा तैयार किया जा सकता है; लेकिन इस विधिसे तैयार की हुई चीज़ें दाव देकर वनाई गई चीज़ोंसे कमज़ोर होती हैं।

पोली और पिलपिली (मृदु) चीजें वनानेके लिए फूंक-ढलाईकी विधि काममें लाई जाती है। इसमें साँचेके अन्दर प्लास्टिकके दो पत्तरोंके वीच दावके साथ-साथ हवा और भापको पारित किया जाता है और प्लास्टिक इच्छित आकार ग्रहण कर लेता है।

कागज अथवा कपड़े पर प्लास्टिकका लेप चढ़ानेकी विधिको परतवन्दी (lamination) कहते हैं। इस विधिसे लेपित कागज अथवा कपड़ेको दावके नीचे रखकर प्लास्टिकके तख्ते (फलक) तैयार किये जाते हैं, जो वहुत ही मजवूत—यहाँ तक कि धातुओंके स्थानापन्न—और फिर वजनमें भी काफी हलके होते हैं। इनका वजन एल्युमीनियमसे आधा होता है। इसके अतिरिक्त अम्ल अथवा क्षारसे इनका संक्षारण नहीं होता और न धातुओंकी तरह जंग ही लगता है। विविध रंगों और नयनाभिराम अलंकृतियोंवाले इस तरहके तख्ते (हार्डवोर्ड) वनाये और वेचे जा रहे है। सामान्यतः एक तख्तेकी लम्वाई-चौड़ाई १०० × ५० इंच और मोटाई ०·००४ इंचसे ४ इंच तक होती है। इसी प्रकार प्लास्टिककी सलाखें और पाइप भी वनाये जा सकते हैं।

प्लास्टिकोंसे वननेवाली विभिन्न वस्तुओंकी यदि सूची वनाई जाए तो वह काफी लम्वी हो जाएगी। प्लास्टिकके नित नये उपयोगोंकी खोज होती ही रहती है। आरम्भमें प्लास्टिक पदार्थ धातु अथवा लकड़ी-जैसी वस्तुओंके वदले काममें लाये जाते थे। परन्तु अव तो प्लास्टिक

साधिकार और ससम्मान अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त करते जा रहे हैं। अब तो हमारे चारों ओर प्लास्टिक इस तरह व्याप्त हो गया है कि 'जिधर देखता हूँ तू ही तू नजर आता है'।

प्लास्टिककी दिग्विजयका सर्वेक्षण उससे बनी लौहवत् वस्तुओं—हार्डवेअर—से आरम्भ किया जाए। दरवाजेके हत्थे और ताले, परदा टाँगनेकी सलाखें, स्नानगृहका साज-सामान (fittings and fixtures), विद्युत् जुड़नारें (electrical fittings), नाम और नम्बरके पटिये, तरह-तरहके उपस्कर (फर्नीचर) आदिका इस सूचीमें समावेश किया जा सकता है। लन्दनकी अति विशाल वेस्ट एण्ड होटलकी सजावटमें, कहा जाता है कि प्लास्टिककी बनी ६० हजार चीजोंका उपयोग किया गया था। संयुक्त राज्य अमरीकामें राकेट निर्माण केन्द्रके सन्दूकनुमा भवन 'कैनेडी स्पेस सेण्टर'की ४१८ फुट ऊँची धुंधली पारदर्शक दीवारें पोलीवाइनिल फ्लुओराइडके अन्तरवाले पोलीएस्टर प्लास्टिकसे बनाई गई हैं; क्योंकि यह पदार्थ हवाके भारी बवण्डरों, जबर्दस्त झोंकों और आघातोंको झेल सकता है। ७५० फुट व्यासवाले हाउस्टन एस्ट्रोडोमके गुम्बदके मध्य भागमें एक्रिलिक प्लास्टिककी चादर लगी हुई है। भावी प्लास्टिकके बारेमें तो वैज्ञानिकोंका यहाँ तक कहना है कि नगरोंके ऊपर प्लास्टिकका चन्दोवा तानकर उन्हें वातानुकूलित कर दिया जाएगा और नागरिकोंकी सर्दी, धूप और वर्षासे मुक्ति हो जाएगी। वहाँ केवल फूल और बगीचे होंगे और लोग-बाग स्वर्गीय सुखोपभोगमें अपने दिन बिताएँगे! अमरीकामें एक जगह विद्यार्थियों-के दंगोंसे बचनेके लिए पारदर्शक एक्रिलिक प्लास्टिकके काँचकी खिड़कियाँ बनाई गई हैं, जिससे उनपर फेंके जानेवाले पत्थर उलटकर दंगाई विद्यार्थियोंके ही सिरों पर गिरें।

आजकल फेनिल (फोम) प्लास्टिक सभीके मनको लुभा रहा है। इसके बने बिस्तरों, गद्दों, तकियों आदिका चलन खूब बढ़ गया है। प्रशीतकों (रेफ्रीजेरेटरों)में भी उष्णतावरोधनके लिए इस तरहका मृदु पैकिंग बहुत महत्व रखता है। फेनिल प्लास्टिकोंसे सुन्दर खिलौने भी बनाये जाते हैं। इमारतोंकी विशाल गुम्बदें भी इससे बनाई जा सकती हैं। इस किस्मके प्लास्टिक खूब हलके होते हैं। क्योंकि उनमें कार्बन-डाइआक्साइड गैस भरी रहती है, जिसके कारण वे मूल आकारसे तीस गुना फूलते और उनका आयतन भी बढ़ जाता है।

अब अन्तरिक्ष यात्रा सम्भव हो गई है, इसलिए चन्द्रमा अथवा अन्य किसी ग्रह पर निवास-स्थान बनानेके लिए सबसे पहले प्लास्टिकोंकी ही ओर नजर दौड़ाई जाएगी। वहाँ पानी ले जानेके बदले गुब्बारेमें प्लास्टिकके पर्देकी सहायतासे हाईड्रोजन और आक्सीजनको अलग-अलग रखकर ले जाया जाएगा और गन्तव्य ग्रह पर पहुँचकर दोनों गैसोंके रासायनिक संयोजनसे पानी बना लिया जाएगा।

प्लास्टिकसे कृत्रिम त्वचा बनाकर प्लास्टिक सर्जरीके द्वारा शरीरके अवयवोंको जोड़ा अथवा बदला भी जा सकेगा। सेलिस्टिक नामक 'सिलिकोन' प्लास्टिकका हृदय एक मृत बछड़ेके हृदयकी जगह लगाकर उसे ४८ घण्टे तक जीवित रखा गया था। इस तरहके सिलिकोन प्लास्टिकसे यथावश्यकता स्नायु और मृदु ऊतक बनाए जा सकेंगे। कानकी शल्यक्रियामें टेफलॉनकी सलाईके द्वारा पदाधानास्थि (stirrup bone)को आन्तर कर्ण (internal ear)से जोड़ दिया जाता है। सिलिकोन प्लास्टिकसे बना ट्रांजिस्टर जर्मेनियमके प्लास्टिकसे कहीं अधिक काम देता है और उससे बनी सौर ऊर्जासे चलनेवाली सिलिकोन सेल कृत्रिम उपग्रहोंमें रखी जाती है। कृत्रिम फल-फूलोंसे

लदे-भरे विशाल उद्यानोंका निर्माण भी किया गया है, जो प्राकृतिक उद्यानोंसे वाजी मार ले जाते हैं। ऐसा ही एक उद्यान अमरीकामें विलियम फुस नामक व्यक्तिने अपने मकानकी छतपर वनाया है, जिसकी कीमत १० हजार पौंड आँकी गई है।

सिलिकॉन प्लास्टिककी एक सिल्लीके नीचे दो हजार डिग्री सेंटिग्रेड ताप देनेवाली ज्वाला प्रज्ज्वलित कर उसके ऊपर विल्लीके एक वच्चेको विठाया गया। आप मानेंगे? विल्लीके वच्चेको जरा भी आँच न लगी। यह प्रयोग, अन्तरिक्ष यात्रियोंकी सुरक्षाके लिए किया गया था। जव अन्तरिक्ष यान लौटानीमें पृथ्वीके वायुमण्डलमें प्रवेश करता है तो उसे तीन मिनट तक ८ हजार सेंटिग्रेड तापका प्रतिरोध करना पड़ता है।

प्लास्टिकोंकी रासायनिक संरचना और उनके उपयोग

'कार्वनिक रसायनकी भूमिका' शीर्षक अध्यायमें हम कुछ कार्वनिक पदार्थोंसे परिचित हो आए हैं। अव हम प्लास्टिकसे सम्वन्धित पदार्थोंका परिचय प्राप्त करेंगे। इन पदार्थोंके नाम इस प्रकार हैं: ऐमोनिया गैस, एसीटिलीन गैस, एसेटिक गैस, एथिलीन गैस, पोलीएथिलीन और फॉर्मोल्डिहाइड फिनोल।

वेनजिनके एक हाइड्रोजन परमाणुके स्थानपर OH अणु आनेसे 'फिनोल' नामक पदार्थ वनता है, जो 'फॉर्मोल्डिहाइड'से संयुक्त होकर एक प्रकारका प्लास्टिक, फिनोल-फॉर्मोल्डिहाइड वनाता है। ऐसे वहुतसे अणु आपसमें घुल-मिलकर (संघनित होकर) वड़ा अणु वनाते हैं, जो 'प्लास्टिक' कहलाता है। इस क्रियाको संघनन' (condensation) कहते हैं। ऐसी ही दूसरी क्रिया 'वहुलीकरण' (poly merisation) है। संघननमें अलग-अलग (भिन्न प्रकारके) अणुओंका संयोग होता है और पानीका पृथक्करण हो जाता है। वहुलीकरणमें एक ही जैसे (समान प्रकारके) अणु एकत्रित होते हैं। एथिलीनके अणु इसी तरह एकत्रित होकर पोलीएथिलीन प्रकारका प्लास्टिक वनाते हैं।

पोलीएथिलीनका अणु एथिलीन गैसके २००० अणुओंके जुड़नेसे वना है।

प्लास्टिक, रवर, रेशे और समस्त वानस्पतिक (सेल्यूलोड) तथा प्राणिज (केसीन) पदार्थ पोलीमर (वहुलक) नामसे प्रसिद्ध विशाल अणुओंके परिवारके सदस्य हैं। 'पोली' शव्दका अर्थ ही यह ध्वनित करता है कि अनेक अणुओंने संघनित होकर विशाल रूप धारण किया है। यह एक अद्भुत घटना है। हम चारों ओर पोलीमरों (वहुलकों)से घिरे हुए हैं। उनके विना हमारा जीवन असम्भव हो जायगा। हमारी खूराक, हमारे कपड़े-लत्ते, हमारा मकान, हमारे रोजमर्रा इस्तेमालकी चीजें सभी कुछ पोलीमर-मय हैं।

यहाँ पोलीमेराइज़ेशन अर्थात् वहुलीकरण क्रियाकी सफलताके सिद्धान्तोंकी जानकारी कर लेना उचित होगा:

१. कार्यान्तिरित पदार्थका अणु भार सामान्यत: १०,०००से ऊपर होना चाहिए।

२. उसका अणु सुगठित और सानुपातिक आकृति वाला होना चाहिए।

३. उसके अणुओंकी दिक्‌स्थिति (orientation) सुव्यवस्थित होनी चाहिए, ताकि उससे मजवूत किस्म उत्पन्न हो सके।

४. पदार्थके प्रत्येक अणुमें उत्तम आकर्षण होना चाहिए और उसका क्वथनांक भी उच्च होना चाहिए।

५. उसमें ताप, पानी और रासायनिक क्रियासे प्रतिरोधकी अच्छी शक्ति होनेके साथ-साथ रासायनिक रंगोंको पकड़े रहने (धारण किये रहने)का गुण भी होना चाहिए।

प्लास्टिक दो प्रकारके होते हैं: ताप सुनम्य और ताप स्थापित।

(अ) ताप-सुनम्य प्लास्टिक (थर्मो प्लास्टिक)

१. पोलीएथिलीन : इसके अणुकी एकलक संरचना (monomer structure) इस प्रकार है:

$$\begin{matrix} H & & & & H \\ & \diagdown & & \diagup & \\ & C & = & C & \\ & \diagup & & \diagdown & \\ H & & & & H \end{matrix}$$
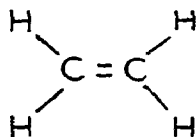
उपयोग : प्रशीतककी बर्फ रखनेकी तश्तरी (ट्रे), कूड़ादान, टोकनियाँ, दबनेवाली बोतलें, पुड़िया बनानेकी झिल्ली, कागजके आवरण (कवर), सन्तरण कुण्डके अन्दरका अस्तर, दूध भरनेके पात्रोंके अन्दरका अस्तर, टेनिस कोर्टको वर्षासे बचानेका आच्छादन आदि।

२. पोलीप्रोपेलीन : अणु एकलक संरचना:

$$\begin{matrix} H & & & & H \\ & \diagdown & & \diagup & \\ & C & = & C & \\ & \diagup & & \diagdown & \\ H_3C & & & & H \end{matrix}$$
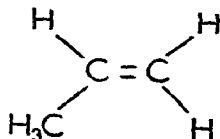
उपयोग : पाइप जुड़नारें, कपड़ा उद्योगमें काम आनेवाले यंत्र, 'एरोसोल' पात्र, विद्युत् अथवा उष्णता अवरोधक (विसंवाहक), पुड़िया बनानेके कागज आदि।

३. पोलीवाइनिल क्लोराइड तथा वाइनिल एसीटेट और विनिलिडीन क्लोराइडके सह-बहुलक (को-पोलीमर) : अणु एकलककी रासायनिक संरचना निम्नानुसार है:

$$\begin{matrix} H & & & & H \\ & \diagdown & & \diagup & \\ & C & = & C & \\ & \diagup & & \diagdown & \\ H & & & & CL \end{matrix}$$
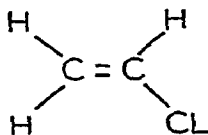
उपयोग : बरसाती, सोफा और पर्दोंका कपड़ा, टाइल्स, होज-पाइप, विद्युत् तथा उष्णता अवरोधक तार, ग्रामोफोन रेकर्ड, जूतेके तले, बटुए, सामान ले जानेके सन्दूक, लैम्प शेड, खिलौने, छातेका कपड़ा आदि। अब तो समूचा जूता भी इससे बनने लगा है।

४. पोलीविनिलिडीन क्लोराइड : अणुकी एकलक संरचना निम्नानुसार है:

H CL
C = C
H CL
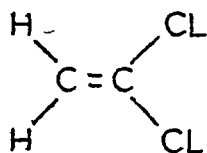
उपयोग : रसायनोंके लिए काममें ली जानेवाली नलियाँ, ब्रश, सोफेका कपड़ा, खिड़कियोंके पर्दे और रसायनोंको छाननेका कपड़ा (निस्यन्दन कपड़ा—filter cloth)।

५. पोलीस्टाइरिन: एकलककी अणु संरचना इस प्रकार है:

H CL
C = C
H
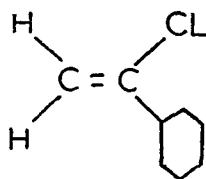
उपयोग : रेडियोकी मंजूपिकाएँ (केबिनेट), प्रशीतकोंके पुर्जे, दीवाल पर जड़नेके टाइल्स, उपकरणिकाओं (instrument)के दिल्हे या फलक (panel) आदि।

६. स्टाइरिन-एक्रिलोनाइट्राइल सह-बहुलक : अणु संरचना (एकलक):

H H
C = C
H

, CH_2= CHCN
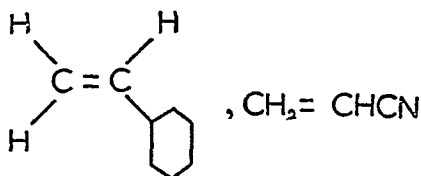
उपयोग : वायुयानके केबिनके अन्दरके हिस्से, अन्य उपयोग पोलीस्टाइरिनके सामान।

७. पोली मिथाइल-मेथाक्रिलेट (प्लेक्सि ग्लास) : अणु संरचना (एकलक):

H CH_3
C = C O
H C
CH_3
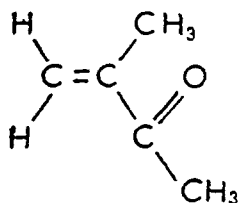
उपयोग : मोटर गाड़ीके पीछेकी बिजली बत्तियाँ, कारखानोंकी खिड़कियाँ, पाइप ब्रशके हत्थे। पारदर्शक होनेके कारण इस प्लास्टिकका उपयोग काँचकी जगह किया जा सकता है।

८. पोलीवाइनिल व्यूटिराल : अणु संरचना (एकलक) :

$$H_2C=CH-O-C(=O)-CH_3 \quad ; \quad CH_3CH_2CH_2CH=C$$
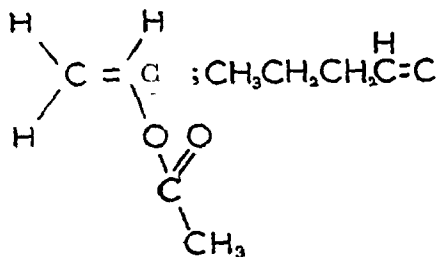
उपयोग : यह प्लास्टिक रवर जैसा है और कांचके साथ मजवूतीसे चिपक जाता है। सुरक्षा कॉंच (safety glass)के भीतरकी परतके लिए इसका उपयोग किया जाता है।

९. पोलीक्लोरो ट्राइफ्लुओ एथिलीन ('Kel-F') : अणु संरचना (एकलक) :

$$ClFC=CF_2$$
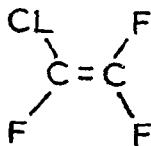
उपयोग : रसायनोंके प्रति प्रचुर प्रतिरोध क्षमता; विद्युत् विसंवाहकके रूपमें प्रयुक्त।

१०. पोलीटेट्राफ्लुओरो एथिलीन : एकलककी अणु संरचना :
४५०°से ५००° फे० ताप पर मृदु होता है। इसे 'टेफलॉन' भी कहते हैं।

$$F_2C=CF_2$$
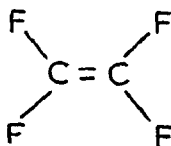
उपयोग : 'टेफलॉन' अत्यन्त 'स्थिर' पदार्थ है। यह कहना कि इसे कुछ नहीं होता, अत्युक्ति न होगी। कोई भी चीज इस पर चिपकती नहीं और इस पर लगी सब चीजें जलकमलवत् फिसल जाती हैं। सबसे पहले इसका उपयोग परमाणु-बम बनानेके पेकिंगके लिए किया गया था। द्रव ईंधन रखनेके पात्रोंमें इसका अस्तर लगानेसे वह ईंधन ठण्डसे जमता नहीं है। इसीलिए काफी ऊँचाई पर उड़ान भरनेवाले वायुयानोंका ईंधन टेफलॉनकी अस्तरयुक्त टंकियोंमें भरा जाता है। जिन पात्रोंमें इसका अस्तर लगा होता है वे अम्लों अथवा अन्य रसायनोंसे संक्षारित नहीं होते। रसोईघरमें काम आनेवाली तलनेकी तई (छिछली कड़ाही)मे टेफलॉन लगानेसे वह तेलसे सनती नहीं है और सदा साफ रहती है। शल्यक्रियामें शरीरकी अस्थियों जैसे हिस्सोंके साथ इसे जोड़ा जा सकता है।

११. नायलोन-६६ : अणु संरचना (एकलक):

$$HO\overset{O}{\overset{\|}{C}}(CH_2)_4\overset{O}{\overset{\|}{C}}OH$$

$$NH_2(CH_2)_6NH_2$$
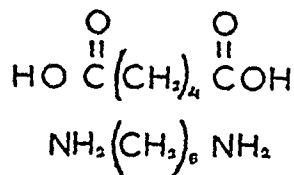
उपयोग : ब्रश, योक्त्र, मछली पकड़नेके जाल, बरसातियाँ, टेनिसके रेकेटकी डोरियाँ, कृत्रिम बेंत (बुनाईके लिए) आदि।

१२. नायलोन-६ (केप्रोलेक्टाम) : अणु संरचना (एकलक):

CH₂ / CH₂ CH₂ / C CH₂ / O N H
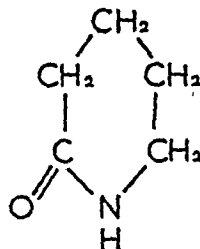
उपयोग : नायलोन-६६के समान।

१३. पोलीकार्बोनेट : प्लास्टिककी अणु संरचना (एकलक) है:

$$C_6H_5-O-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O-C_6H_5$$

$$HO-C_6H_4-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{C}}-C_6H_4-OH$$
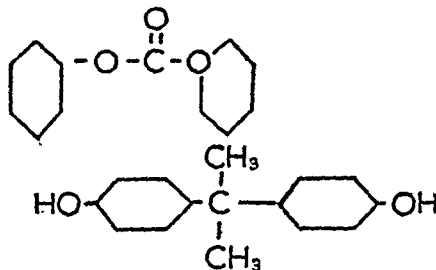
उपयोग : 'लेक्सान' और 'मरलोन' नामसे प्रसिद्ध यह प्लास्टिक बहुत मजबूत होता है। इसमें धातुके जितनी दृढ़ता होती है। आघात सहनेकी क्षमता होती है और उष्णताका अच्छा प्रतिरोधक है। प्लास्टिकके कीलक (रिवेट), कीलें, काबले (बोल्ट) आदि इसी प्लास्टिकसे बनाये जाते हैं।

१४. पोलीक्लोरोइथर (पेण्टेन) : अणु संरचना (एकलक):

$$ClCH_2-\overset{H}{\overset{|}{C}}-CH_2$$
$$H_2C-O$$
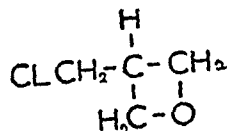
उपयोग : पम्पके हिस्से और जहाँ रसायनोंका प्रतिरोध करनेकी आवश्यकता होती है वहाँ लगाये जानेवाले हिस्से बनाये जाते हैं। पेण्टाएरिथ्रिटोलसे इसे प्राप्त किया जाता है।

१५. पोलीफार्माल्डिहाइड (डेल्रीन) : एकलककी अणु संरचना :

$$\mathrm{H_2C{=}O} \quad ; \mathrm{HOROH}$$
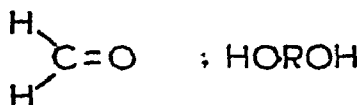
उपयोग : इसे 'एसीटाल प्लास्टिक' भी कहते हैं। इसमें धातुओं जैसे गुण होते हैं। यह धातु और प्लास्टिकको जोड़ने वाले सेतुकी तरह है। अत्यन्त मजबूत, रसायनोंका प्रतिरोध करनेकी क्षमतासे सम्पन्न और इच्छित आकार ग्रहण करने योग्य यह प्लास्टिक है। इसकी दृढ़ता पर पानीका कोई असर नहीं होता। यंत्रोंके पुर्जे धारुक (bearings) और धारुक अस्तर (bustings) इससे बनाये जाते हैं।

१६. पोलीयुरेथन : एकलककी अणु संरचना :

$$CH_3\text{-}C_6H_3(\text{-}N{=}C{=}O)(\text{-}N{=}C{=}O) \qquad HO\overset{O}{\overset{\|}{C}}R\overset{O}{\overset{\|}{C}}OH$$
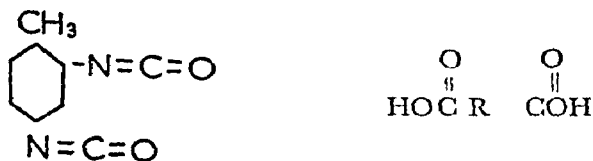
उपयोग : नायलोनके अनुसार। फेनिल अवस्थामें भी तैयार किया जाता है। इसके कालीन, कम्बल, रग, तकिए तथा मोटरके टायर बनाये जाते हैं।

१७. वानस्पतिक सेल्यूलोज़ प्लास्टिक : सेल्यूलोज़ एसीटेटकी अणु संरचना :

$$\left[\cdots O \cdots (\text{CH}_2\text{OR}, \text{H}, \text{OR}, \text{H}, \text{H}, \text{OR}) - O - (\text{H}, \text{OR}, \text{OR}, \text{H}, \text{H}, \text{CH}_2\text{OR}) \cdots \right]_n$$

$$n = 50-100$$

$$R = -\underset{\overset{\|}{O}}{C}-CH_3$$

१८. सेल्यूलोज़ नाइट्रेट : अणु संरचना :

$$n = 250$$

$$R = NO_2$$

१९. सेल्यूलोज़ एसीटेट ब्यूटिरेट : अणु संरचना :

$$R = \overset{O}{\overset{\|}{C}}-CH_3$$

$$R' = -\overset{O}{\overset{\|}{C}}\,CH_2CH_2CH_3$$
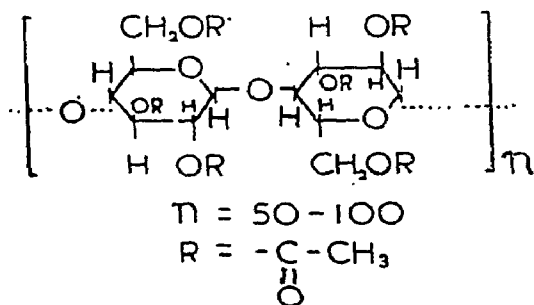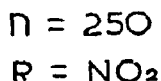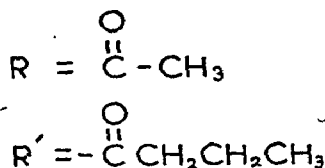
२०. एथिल सेल्यूलोज : अणु संरचना :

$$n = 250$$

$$R = CH_2CH_3$$

उपयोग : कंघे, चश्मेके फ्रेम, मेज़पोश, जूतोंके तले, फाउण्टेनपेन, बटन, फर्नीचरकी पेटियाँ, बेलन, रेडियोकी जालियाँ, भित्तिफलक (wall-board), औजारोंके हत्थे, पियानोकी चाभियाँ आदि। सेल्यूलोज़ नाइट्रेड ज्वलनशील होनेके करण आजकल उसका बहुत कम उपयोग किया जाता है।

(आ) ताप स्थापित प्लास्टिक (थर्मोसेटिंग)

२१. फिनोल-फार्मोल्डिहाइड (बेकेलाइट) : अणु संरचना (एकलक) :

OH (बेंज़ीन वलय) ; $H_2C=O$
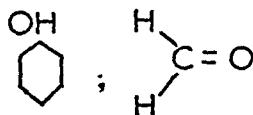
उपयोग : आटोमोबाइलके 'प्रज्वलन' (ignition) के पुर्जे, फर्नीचर, फिल्मोंको धोने (develop) की किश्ती, टेलीफोनका हत्था, दीप-धारक तथा कोटर (lamp holder & socket), कला-कृति, कृत्रिम पर्ती लकड़ी (ply wood) आदि।

२२. यूरिया फॉर्मोल्डिहाइड : एकलककी अणु संरचना :

$$H_2N\underset{\underset{O}{\parallel}}{C}NH_2, \; CH_2O$$
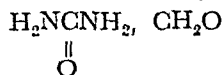
उपयोग : रसोईघरमें काम आनेवाली चीज, रेडियो मंजूषिका, पटल-भाण्ड (table-ware), ब्रशके हत्थे, आकाच लेपन (enamel coating) आदि।

२३. मेलेमिन-फॉर्मोल्डिहाइड : अणु संरचना (एकलक) :

$$C_3N_3(NH_2)_3 \text{ (वलय: } H_2N-C, \; C-NH_2, \; C-NH_2\text{)}, \; CH_2O$$
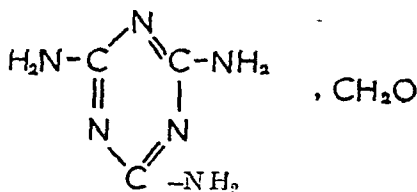
उपयोग : धुलाई मशीनका प्रक्षोभक (agitator), रंगीन आकर्षक पटल-भाण्ड, भोजन करनेकी तश्तरियाँ, भोजन की मेज पर इस्तेमाल की जानेवाली वस्तुएँ आदि।

२४. एपोक्सी : अणु संरचना (एकलक) :

$$HO-C_6H_4-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{C}}-C_6H_4-OH, \; \overset{O}{CH_2-CH}CH_2CL$$
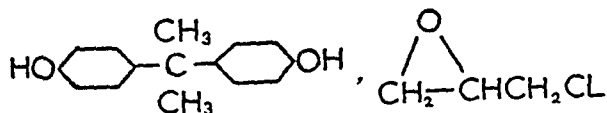
उपयोग : पाइप लाइनें और मुद्रित परिपथ (printed circuit), औद्योगिक सामग्री, धातुसे संलग्न करनेवाला आसंजक (adhesive) द्रव एवं ठोस दोनों अवस्थाओंमें प्राप्त हो सकता है।

बिना किसी दाबके चीजोंको एक-दूसरेसे मजबूतीके साथ चिपकानेके लिए इस प्लास्टिकका उपयोग किया जाता है। रसायनकोंके प्रति अतीव प्रतिरोधात्मक शक्ति वाला होनेके कारण रासायनिक कारखानोंके अन्दर साज-सामानमें परतें लगानेके काम आता है।

२५. पोली एस्टर अथवा आल्किड : अणु संरचना (एल्कड) :

HOROH
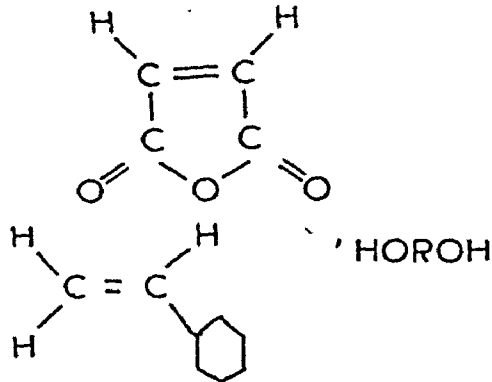
उपयोग : रंगके संवाहक और कलाई चूर्णके रूपमें तथा आमतौर पर योजक (binder), प्लास्टिककारक (plasticizer) और अस्तर लगानेके लिए इसका अधिक उपयोग किया जाता है।

२७. सिलिकोन्स : अणु संरचना :

$$(CH_3)_2\ SiCL_2$$

$$(C_6H_5)_2\ .\ SiCL_2$$
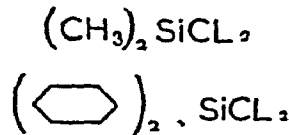
उपयोग : विद्युत् स्विच, वस्त्रकी परिसज्जा (finish), प्रेरण तापक उपकरण (induction heating appliances), काँचके कपड़ेके ऊपरका अस्तर आदि।

सारणी : १

खास किस्मके प्लास्टिक

(१) एक्रिलिक : पोलीमेथाक्रिलेट, पोलीएलीक्रेट और एक्रिनोलाइट्राइल बहुलक (पोलीमर) वर्गके रासायनिक पदार्थ।

(२) आल्किड रेज़िन : (व्यापारिक नाम प्लास्कोन)।

(३) सेल्यूलोज़िक (वानस्पतिक) : सेल्यूलोज एसीटेट, सेल्यूलोज़ प्रोपिओनेट, सेल्यूलोज़ एसीटेट ब्यूटिरेट, एथिल सेल्यूलोज़।

(४) एपोक्सी रेजिन

(५) मेलेपिन रेज़िन

(६) नायलोन

(७) फिनोलिक

(८) पोली एस्टर

(९) पोली फ्लुओरो कार्बन

(१०) पोली फॉर्मल्डिहाइड रेज़िन

(११) पोली ओलेफ़ीन: पोली एथिलीन, पोली प्रोपेलीन आदि

(१२) पोली स्टाइरिन

(१३) पोली युरेथेन

(१४) सिलिकोन

(१५) यूरिया

(१६) वाइनिल: पोली वाइनिल एसीटेट (पी० वी० ए०), पोली वाइनिल क्लोराइड, पोलीवाइनिल ऐलकोहल, पोलीवाइनिल एसीटाल—पोलीवाइनिल क्लोराइड एसीटेट।

(१७) नवीनतम प्लास्टिक: पोली कार्वोनेट और पोली क्लोरोईथर।

सारणी : २

खाद्य पदार्थ रखनेके लिए प्लास्टिकोंकी उपयुक्तता-अनुपयुक्तता

उपयुक्तता	अनुपयुक्तता
पुनर्जनित सेल्यूलोज़	फिनोल–फॉर्माल्डिहाइड (वेकेलाइट)
पोली एथिलीन	पोली युरेथेन (फेनिल रवर)
पोली प्रोपेलीन	पोलीईथर
पोली स्टाइरिन	केसीन
पोली मिथाइल मिथाक्रिलेट	
पी० टी० एफ० ई० (टेफ़लॉन)	
नायलोन	
आल्किड (पोलीएस्टर)	
मेलेमिन फॉर्माल्डिहाइड	
पोली विनिल क्लोराइड (पी० वी० सी०)	

सारणी : ३

निम्नगामी क्रममें प्लास्टिकोंकी कीमत

[प्रति पौण्ड २ पाउण्डसे ३ शिलिंग तककी सीमामें]

टेफ़लॉन, पोली कार्वोनेट, नायलोन, एसीटाल, एपोक्साइड, सेल्यूलोज़ प्रोपिओनेट, सेल्यूलोज़ एसीटेट व्यूटिरेट, एक्रिलिक, सेल्यूलोज़ एसीटेट, पोली प्रोपेलीन, पोलीएस्टर, मेलेमिन फॉर्माल्डिहाइड, पोली एथिलीन (भारी), पोलीएथिलीन (हलका), पोलीविनिल क्लोराइड, पोलीविनिल ऐलकोहल, पोली स्टाइरिन, यूरिया-फॉर्माल्डिहाइड, फिनोल फॉर्माल्डिहाइड।

वीसवीं सदीके वल्कल
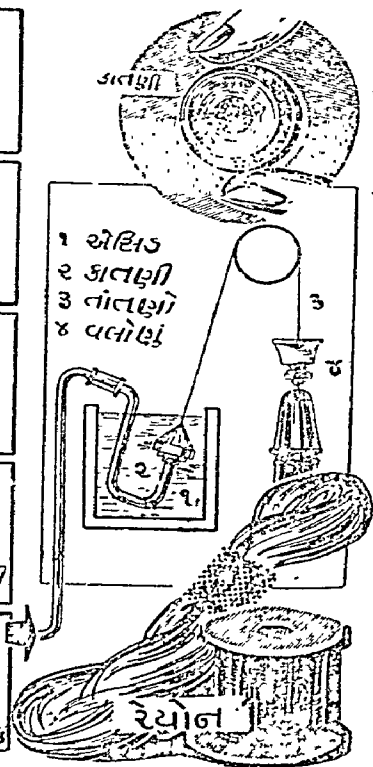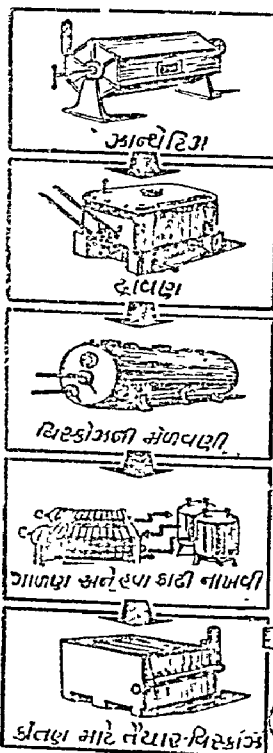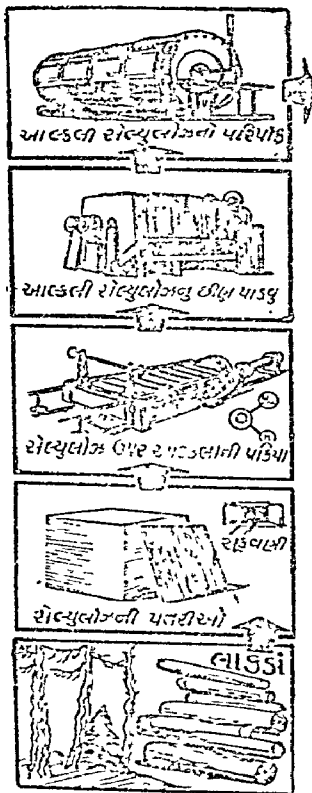
१३ : संश्लिष्ट वस्त्र-रेशे

वस्त्रोंने हमारे रहन-सहन और सामाजिक व्यवस्थामें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हमारे जीवनमें हवा, पानी और भोजनके बाद वस्त्रोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन वस्त्रोंका उपयोग केवल शरीरको ढकनेके ही लिए नहीं किया जाता। व्यक्तिके अहम्‌का पोषण करनेमें भी वस्त्रोंका प्रमुख भाग रहा है। वस्त्रोद्योगके विकासका यह भी एक कारण है। व्यक्तिकी 'प्रतिष्ठा' भी बहुत कुछ उसके वस्त्रों पर निर्भर करती है। फिर 'फैशन' बदलनेके साथ-साथ नये ढंगके वस्त्र बनानेके लिए अधिक कपड़े खरीदे जाते हैं। सुन्दर दिखनेकी इच्छा मानव स्वभावकी मूल एषणा है। 'एक नूर आदमी, हज़ार नूर कपड़े' कहावत मानव जीवनके व्यावहारिक पहलूका मूल मंत्र ही बन गई है।

पहले, सुन्दर वस्त्र सम्पन्न वर्गोंकी इजारेदारी थी। अब यह एकाधिकार टूटता जा रहा है और सामान्यजनको भी सुन्दर और अच्छे कपड़े सुलभ हो गए हैं। इस प्रकार, संश्लिष्ट वस्त्र-रेशोंने जनतामें समता स्थापित करनेकी दिशामें उल्लेखनीय योगदान किया है।
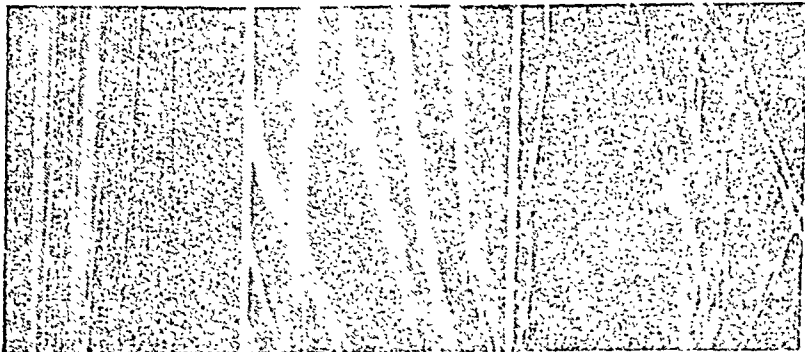
रेयान रेशम सूत

मानव निर्मित कृत्रिम अथवा संश्लिष्ट रेशेका विचार सबसे पहले इस विज्ञानके पिता समझे जानेवाले अंग्रेज वैज्ञानिक रावर्ट हूकके मनमें १६६४ ई०में उदित हुआ था, ऐसा माना जाता है। यद्यपि उनसे सहस्रों वर्ष पूर्व प्राचीन मिस्रवासियोंने मकड़ीको जाला बुनते देख उसकी देखादेखी कपड़े बुनना आरम्भ कर दिया था। रेशमका कीड़ा शहतूतकी पत्तियां खाकर अपने पेटसे लसदार चाशनी-जैसे चिपचिपे द्रव पदार्थका तार बाहर निकालता है, जो बाहर आते ही

तरल अवस्थासे ठोस अवस्था ग्रहण कर लेता है। यह देखकर कृत्रिम रेशेके सृजनकी सम्भावनाकी भविष्यवाणी रावर्ट हूकने लगभग ३०० वर्ष पूर्व की थी। फिर भी १९वीं सदीके उत्तरार्द्ध तक पहला मानव निर्मित कृत्रिम रेशा बनाया न जा सका।

मनुष्य द्वारा बनाये हुए कृत्रिम रेशमके लिए अब 'रेयन' नाम रूढ़ हो चुका है। अंग्रेजी शब्द 'रे' का अर्थ होता है 'किरण'; इसलिए किरण-जैसे चमकीले तन्तुका नाम 'रेयन' रखा गया।

रेयन बनानेमें लगनेवाला मूल पदार्थ 'सेल्यूलोज' है, जो वृक्षोंकी गीली लकड़ीसे प्राप्त किया जाता है। इसके लिए देवदारु, पाइन (चीड़), सनोवर (झाऊ-Spruce) आदि वृक्षोंकी मृदु लकड़ी अधिक उपयुक्त है, क्योंकि उनके रेशे अधिक लम्बे होते हैं और उनका सरलतासे रासायनिक उपचार किया जा सकता है। सेल्यूलोजकी जिस किस्मका रेयनके लिए उपयोग किया जाता है उसे आल्फ़ा-सेल्यूलोज़ कहते हैं। सेल्यूलोज़की अन्य किस्में हेमी-सेल्यूलोज़ कहलाती हैं; कास्टिक सोडेमें विलेय होनेके कारण रेयन बनानेसे पहले इन्हें उपचारित करके सेल्यूलोज़से अलग करना आवश्यक होता है। रेयन बनानेके लिए सेल्यूलोज़में आल्फ़ा किस्मका अनुपात ९८ प्रतिशतसे अधिक होना ही चाहिए। रूई और बिनौलों परके छोटे रेशों (linters)में सेल्यूलोज़ बहुत अधिक मात्रामें रहता है।

रेयनके पश्चात् ऊनके समान गुणोंवाले कृत्रिम रेशोंका सृजन किया गया। इनके लिए आवश्यक कच्चा माल दूध, सोयाबीन, मूँगफली और मक्का आदिसे प्राप्त किया गया था। कालान्तरमें कृत्रिम रेशोंको बनानेमें मूल रसायनकोंका आदि पदार्थोंके रूपमें उपयोग किया जाने लगा, उदाहरणके लिए नायलोन और टेरीलीनको लिया जा सकता है। इन रासायनिक द्रव्योंको पेट्रोलियमके आसवनसे प्राप्त किया जाता है, इसलिए इन पदार्थोंसे निर्मित रेशे पूरी तरह कृत्रिम होते हैं। इसके विपरीत ऊनके समान गुणोंवाले कृत्रिम रेशे प्राकृतिक पदार्थोंसे प्राप्त किए जानेवाले कच्चे मालसे बनाये जाते हैं, इसलिए उन्हें अर्द्धकृत्रिम रेशा कहा जाता है।

रेयन बनानेकी चार विधियाँ है : इन विधियोंसे बने चार प्रकारके रेयनमें एक तो नाइट्रो-सेल्यूलोज़ अथवा शार्दोने रेयन, दूसरा, विस्कोस रेयन; तीसरा क्यू प्रेमोनियम अथवा ताम्र रेयन और चौथा सेल्यूलोज़ एसीटेट रेयन कहलाता है।

पहले प्रकारके अर्थात नाइट्रो-सेल्यूलोज़ अथवा शार्दोने रेयनका आज कोई विशेष महत्त्व नहीं रह गया है। लेकिन सबसे पहले रेयनका सफल निर्माण इसी विधिसे किया गया था, इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही। काउण्ट हिलेर द शार्दोनेके जीवन-भरके कठोर परिश्रमका यह परिणाम था। शार्दोनेकी कार्य विधिमें सेल्यूलोज़को नाइट्रिक अम्लकी क्रिया द्वारा रूपान्तरित करके उसे ईथर और ऐलकोहलके मिश्रणमें घुलाया जाता जिससे शीरे-जैसा गाढ़ा द्रव बनता था; उस द्रवको एक खास प्रकारकी चलनी (Spinneret तन्तुवाय)के महीन छेदोंकी राह ज़ोरके साथ बाहरकी ओर धकेला जाता था। वह छिद्रोंके बाहर लम्बे तार अथवा तन्तुके रूपमें निकल आता था। बाहर आते ही तन्तुओंमें विद्यमान ईथर और ऐलकोहल हवामें उड़ जाते और केवल तन्तु रह जाते थे। आरम्भमें इस रेयनको बड़ी सफलता मिली, लेकिन बादमें ज्यादा अच्छी विधियाँ रेयन बनानेकी खोज ली गई। फिर इस विधिसे बनाया जानेवाला रेयन जल्दीसे जल उठता था, इसलिए कालान्तरमें इसका उत्पादन बन्द कर दिया गया।

दूसरे प्रकारके अर्थात् विस्कोस रेयनके उत्पादनमें मूल पदार्थ सेल्यूलोज़ है, जो हलकी और मृदु लकड़ी (देवदारु, चीड़, सनोवर, बाँस आदि) से प्राप्त किया जाता है। १८९१ ई०में चार्ल्स क्रोच, एडवर्ड वेवन और क्लेटन विडल नामके तीन अंग्रेज रसायनविदोंने सेल्यूलोज़की जिस रासायनिक प्रक्रियाकी खोज की थी, उस पर इस प्रकारका रेयन वनानेकी विधि आधारित है। कास्टिक सोडेके सान्द्र (१८ प्रतिशत) विलयनमें सेल्यूलोज़को रखनेसे सोडा सेल्यूलोज़ नामक पदार्थ वनता है। इस सोडा सेल्यूलोज़ पर कार्वन वाइ सल्फाइड नामक रसायनकी क्रिया द्वारा सोडियम सेल्यूलोज़ ज़ेन्थेट नामक पदार्थ तैयार होता है।

$$\text{(Cellulose)}\,.\,\text{ONa} + \text{CS}_2 \rightarrow \text{SC} < \begin{matrix}\text{O . Cellulose} \\ \text{S . Na}\end{matrix}$$
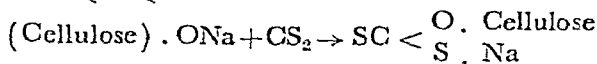
Cellulose xanthate

यह पदार्थ कास्टिक सोडेके विलयनमें विलेय है और उसमें इसका विलेय होकर शहद-जैसा लसदार पदार्थ वनता है। रंग-रूपमें भी यह शहद-जैसा ही होता है। इस पदार्थको विस्कोस कहते हैं, क्योंकि अंग्रेज़ीमें श्यानता (चिकनाहट)के लिए 'विस्कोसिटी' शब्द है। इस विस्कोस को तन्तुवाय (स्पिनरेट)के महीन छेदोंकी राह दवावके साथ वाहर खींचा जाता है। इस प्रक्रियामें विस्कोस-रूपी सेल्यूलोज़का तन्तुओंमें कायान्तरण हो जाता है। रासायनिक दृष्टिसे वह अपने पूर्व स्वरूप जैसा ही होता है। यह रेयन शुद्ध नहीं होता, इसलिए विभिन्न उपचारोंके द्वारा इसका परिष्करण किया जाता है। इसकी अशुद्धियोंको दूर करनेके लिए सल्फ्यूरिक अम्ल और सोडियम सल्फाइडका उपयोग किया जाता है, पीलापन दूर करनेके लिए हाइपोक्लोराइडका प्रयोग करते हैं। इन अशुद्धियोंको दूर करनेके वाद सावुनके पानीमें और तत्पश्चात् स्वच्छ जलमें धोकर 'शुष्कक'में सुखा लिया जाता है। सूख जानेके वाद कागजके शंकु पर आकर्षक ढंगसे लपेटकर पेटियोंमें वन्द कर दिया जाता है और रेशमी कपड़ा वनानेवाली मिलोंमें भेज दिया जाता है। इसके वने कपड़ेमें चमक-द्युति (lustre) होती है। विना चमकवाला तार वनानेके लिए विस्कोस रेयनकी लुगदीमें टिटेनियम डाइआक्साइड मिलाते हैं।
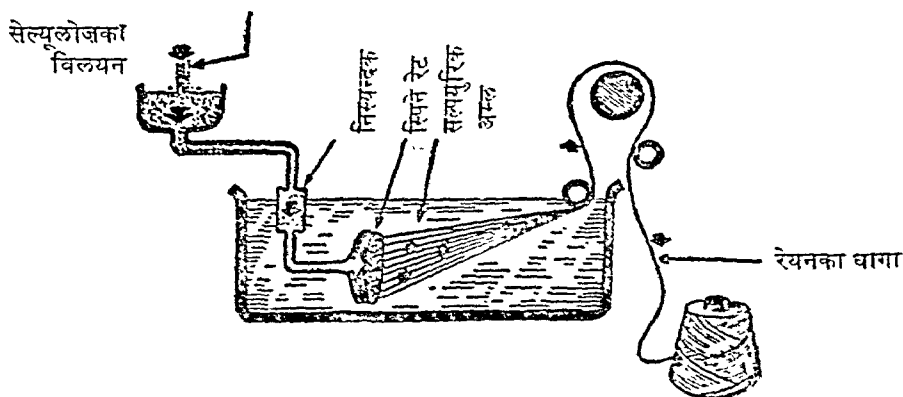
रेयनका सवसे वड़ा दोप यह है कि वह वहुत अधिक मात्रामें, अर्थात् ३०से ४० प्रतिशत तक आर्द्रताका अवशोपण कर सकता है और इससे उसकी दृढ़तामें ३०से ४० प्रतिशत तक कमी हो जाती है।

इसलिए रेयनकी धुलाईमें बहुत सावधानी बरतनी होती है, नहीं तो वह फट जाता है या सिलाईमेंसे उध़ जाता है। इसलिए जब इस कपड़ेका चलन शुरू हुआ ही था तो इसके बारेमें यह कहावत दृढ़ हो गई थी कि जो 'इसको धोता है वह रोता है।'

तीसरे प्रकारका अर्थात् क्युप्रेमोनियम अथवा ताम्र रेयन खोज तो लिया गया था १८९० ई०में ही, परन्तु बड़े पैमाने पर इसका उत्पादन सात साल बाद पाउलीने किया। इसीलिए कई दिनों तक यह 'पाउली सिल्क'के नामसे जाना जाता रहा। आरम्भमें इसे बनानेमें बड़ी मुश्किलोंका सामना करना पड़ा था। इस रेयनको बनानेका मूल पदार्थ सेल्यूलोज़ ही है और अन्तमें भी (अन्तिम पदार्थके रूपमें) वही रहता है। नीलाथूथाका ऐमोनियाके पानीमें विलेय करनेसे क्युप्रेमोनियम नामका विलयन बनता है, जो गहरे भूरे रंगका होता है। इसमें ३ प्रतिशत ताम्र (नीलाथूथाके रूपमें) और २५ प्रतिशत ऐमोनिया रहना जरूरी है।

इस विलयनमें सेल्यूलोज़ मिलाकर उस मिश्रणको अच्छी तरह गूँधा जाता है, जिससे वह गाढ़ा द्रव बन जाता है। फिर उसमें इस तरह पानी बढ़ाया जाता है कि सेल्यूलोज़का अनुपात दस प्रतिशत बना रहे। इसके बाद उसमेंकी हवा निकाल दी जाती है और छान लिया जाता है। कताई विस्कोसकी ही तरह की जाती है। अन्तर केवल इतना है कि सेल्यूलोज़के पृथक्करणके लिए यहाँ अम्लके स्थान पर पानीका उपयोग किया जाता है। इस विधिमें तन्तुकी खिचाई अधिक की जाती है, जिससे वह प्राकृतिक रेशमके तन्तु-जैसा महीन हो जाता है। यह तन्तु भूरे रंगका होता है, इसलिए शुद्ध करना पड़ता है। इसके परिष्करणमें तनु सल्फ्युरिक अम्लका उपयोग किया जाता है।

इस प्रकारका रेयन 'बेम्बर्ग रेयन'के नामसे जाना जाता है। विस्कोस रेयनकी भाँति यह रेयन पुनरुत्पादित सेल्यूलोज़ होनेके कारण इसके रासायनिक गुण विस्कोस रेयनके ही समान होते हैं। भीगनेसे इसकी मज़बूती घटती और यह कमज़ोर हो जाता है। महँगा होनेके कारण यह रेयन उद्योगमेंसे निकलता जा रहा है।

चौथे प्रकारके अर्थात् एसीटेट रेयनका आरम्भिक पदार्थ तो तीनों प्रकारके रेयनकी ही भाँति सेल्यूलोज़ ही है, परन्तु यह रेयन अन्तिम पदार्थके रूपमें पुनरुत्पादित सेल्यूलोज़ नहीं, अपितु सेल्यूलोज़ एसीटेट नामक प्लास्टिक वर्गका रासायनिक द्रव्य है। इसलिए इसके गुण भी विशिष्ट प्रकारके हैं। विस्कोस रेयनकी खोजके पहले यह बात ज्ञात हो चुकी थी कि कपासके सेल्यूलोज पर एसेटिक अम्लकी रासायनिक क्रियासे सेल्यूलोज़ एसीटेट नामक पदार्थ बनता है। इस पदार्थ-की बार-बार परीक्षा करने पर यह तथ्य सामने आया कि भंगुर हो जानेके कारण इससे अखण्ड तार नहीं खींचा जा सकता। परन्तु १९१४-१८के प्रथम विश्वयुद्धमें वायुयानोंके पंखोंको ऐसे अस्तर लगानेकी आवश्यकता पड़ी, जिन पर हवा अथवा पानीका असर न हो सके। इसके लिए जैव (organic कार्बनिक) रासायनिक विलायकोंमें सेल्यूलोज़ एसीटेटका विलयन बहुत उपयोगी पाया गया; इसलिए बड़े पैमाने पर इसका उत्पादन करनेके लिए ब्रिटिश सरकारने डॉ० हेनरी और केमिल ड्रेफ्स नामक स्विस रसायनविदोंकी नियुक्ति की। इन लोगोंने इंग्लैण्डमें सेल्यूलोज़ एसीटेट बनानेका कारखाना लगाया और युद्धकालमें इस कारखानेमें प्रचुर मात्रामें सेल्यूलोज़ एसीटेट बनने लगा। युद्ध समाप्त हो जाने पर यह समस्या उठ खड़ी हुई कि इस पदार्थका दूसरा

कौन-सा उपयोग किया जा सकता है। समस्याका हल सेल्यूलोज़ एसीटेटसे वस्त्र रेशा बनाकर किया गया और इस तरह वस्त्रोद्योगको एक नये प्रकारका रेयन प्राप्त हुआ।

इस रेयनको बनानेके लिए कपासके सेल्यूलोजको एसेटिक अम्ल, एसेटिक एनहाइड्राइड और उत्प्रेरक (catalyst) सल्फ्युरिक अम्लके मिश्रणमें मथा (विलोया) जाता है। इस क्रियासे सेल्यूलोज़से सेल्यूलोज़ ट्राइ-एसीटेट नामक रासायनिक द्रव्य बनता है। फिर इस पदार्थमें पानी मिलाकर मिश्रणको निश्चित अवधि तक परिपक्व किया जाता है, जिससे होनेवाले रासायनिक परिवर्तनोंके फलस्वरूप सेल्यूलोज़ ट्राइ-एसीटेटसे द्वितीयक (secondary) सेल्यूलोज़ एसीटेट बनता है, जो एसीटोन नामक द्रव रसायनकमें विलेय है। इस पदार्थका शोधन करनेके बाद एसीटोनमें इसका २५ प्रतिशत विलयन किया जाता है, जिससे इतनी श्यानता (लसलसापन) आ जाती है कि तार (तन्तु) खींचे जा सकें। एसीटोन जल्दीसे उड़नेवाला द्रव है और गर्म हवामें फौरन भाप बन जाता है। इसलिए इस विधिमें कताईका काम बहुत आसानीसे हो जाता है। सेल्यूलोज़ एसीटेटके विलयनको तन्तुवाय (स्पिनेरेट)के महीन छेदोंकी राह बाहर खींचनेसे बाहरके गर्म वातावरणके कारण एसीटोन फौरन उड़ जाता है और अकेले सेल्यूलोज एसीटोनका तन्तु (तार) बनता रहता है, जिसे अत्यन्त शुद्ध अवस्थामें होनेके कारण, अलगसे परिष्करणके किसी उपचारकी आवश्यकता नहीं रह जाती। इस्तेमाल किये हुए अम्ल और एसीटोनको पुनः प्राप्त करनेका प्रबन्ध तो किया ही रहता है।

एसीटेट रेयन गुणोंके विचारसे अन्य रेयनकी अपेक्षा भिन्न होता है, इसलिए इसे रेयनके बदले केवल एसीटेट भी कहते हैं। यह ताप सुनम्य अथवा उष्ण-मृदु अर्थात् गर्म किये जाने पर मृदु (नर्म) होनेवाला और अनेक रसायनकोंमें विलेय है। लेकिन सौभाग्यसे यह पेट्रोल और उसी प्रकारके अन्य तेलोंमें विलेय नहीं है। इस गुणवत्ताके कारण इस पर कमीज़के कालर, कफ आदि भागोंको कड़े रखनेका खास उपचार किया जाता है। फिर यह स्पर्शमें भी शीतल नहीं है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि उचित पदार्थ मिलानेसे इसमें यथावश्यक चमक (द्युति) पैदा की जा सकती है। फिर वस्त्र बनानेका रेशा होनेके अतिरिक्त यह एक महत्त्वपूर्ण प्लास्टिक भी है, जिससे फिल्म आदि अनेक प्रकारकी वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं।

सेल्यूलोज़से बननेवाले वस्त्र-रेशोंकी कहानी यहाँ समाप्त हुई। अब हम कृत्रिम ऊन (प्राकृतिक प्रोटीनके रेशे)की बनावटकी ओर मुड़ते हैं।

दूध, सोयाबीन, मूँगफली, मक्का आदि पदार्थोंके प्रोटीन (प्रोभूजीन; गुजरातीमें नत्रिल)से ऊनके गुणोंवाले रेशोंका निर्माण सम्भव हो गया है। दूधके केसीनसे १९३५ ई०में फेरेण्ट्री नामक इतालवी वैज्ञानिक दस वर्षके परिश्रमके उपरान्त वस्त्र रेशा बनानेमें सफल हुआ था। उसके एकस्वका उपयोग करके एक इतालवी कम्पनी १९३७से 'लेनिटाल' नामक वस्त्र रेशेका उत्पादन बड़े पैमाने पर कर रही है। अमरीकामें इसी प्रकारका रेशा 'आरालाक' नामसे प्रसिद्ध है। मक्काके प्रोटीनसे 'विकारा' नामक वस्त्र रेशा बनाया जाता है। मूँगफलीके प्रोटीनसे इंग्लैण्डमें 'आरडिल' नामक रेशा बनाया गया था। प्रोटीनसे बनाये जानेवाले रेशोंको एक वर्गके रूपमें 'एज़लॉन' कहा जाता है।

इन रेशोंको कृत्रिम (अथवा संश्लिष्ट) ऊन कहा जा सकता है, क्योंकि ऊनकी रासायनिक संरचनासे इनकी रासायनिक संरचना बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।

इन रेशोको वनानेके लिए सवसे पहले मूल पदार्थसे उसके प्रोटीनको विलग किया जाता है और तव कास्टिक सोडाके उपचारके द्वारा प्रोटीनको गाढे लमदार द्रव पदार्थमे परिवर्तित करते हे। अन्तमे उसे तन्तुवायकी राह दवावके साथ वाहर निकालकर रेशोके रूपमे प्राप्त किया जाता हे। इन तन्तुओको फॉर्मोल्डि-हाइडके विलयनमे वोनेसे ये कडे हो जाते ह। इन रेशोके टुकडे करके ऊनके रेशोके साथ मिलाकर काता जाता हे। सूती ओर ऊनी कपडोकी मिलोमे जो मशीने होती हे उन्हींसे इस मिश्र धागेके कपडे वुने जाते ह।
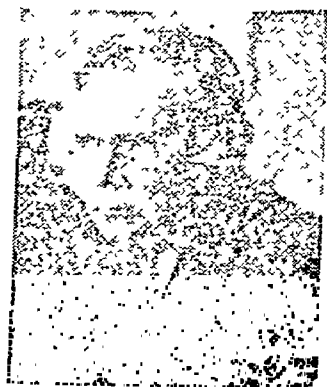
डा० वालेस ह्यूम केरोदर्स
(१८९६-१९३७)

ऊपर जिन रेशोका वर्णन किया गया हे उनका मूल पदार्थ प्राकृतिक वस्तुओसे प्राप्त किया जाता हे, इसलिए उन्हे पूर्णत. मानव निर्मित नही कहा जा सकता, जवकि नायलोन, टेरीलीन, एक्रिलान आदि वस्त्र रेशे मूलत. रसायनकोसे वनाये जाते हे, इसलिए उन्हे पूर्णत मानव निर्मित (fully synthetic) कहा जाता हे। १९२७मे अमरीकाकी ड्युपाण्ट कम्पनीमे डा० वालेस ह्यूम केरोदर्सने अणुओके सयोजन-सम्वन्धी जो मोलिक अनुसन्धान किये, उनके फलस्वरूप नायलोन ओर अन्य रेशोका
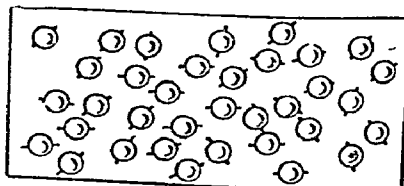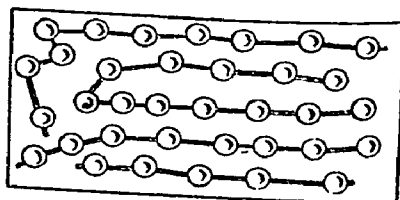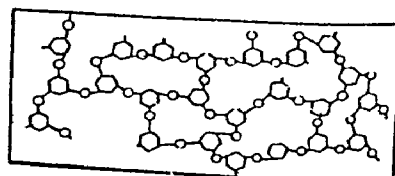
निर्माण सम्भव हो सका। रेशोके निर्माणमे अणुओकी दो अलग-अलग क्रियाओका अलग-अलग नामकरण किया गया है। एक क्रियाको सघनन (condensation) और दूसरीको वहुलीकरण (polymerisation) कहते हैं। वहुलीकरणमे एक ही जैसे अणुओका एकत्रीकरण (सघनन)

होता है और पदार्थ भारी हो जाता है। इस प्रकार एकत्रित होनेवाले अणुओंके एक समूह (गुच्छे)को एकलक (मोनोमर) कहते हैं। अनेक एकलकोंके संयुक्त होनेसे बहुलक (पोलीमर) बनता है। कार्बनिक (आर्गेनिक) अम्ल (उदाहरणके लिए एसेटिक अम्ल) और ऐलकोहलके रासायनिक संयोगके परिणामस्वरूप 'पोलीएस्टर' वर्गके द्रव्य उत्पन्न होते हैं। ऐमाइन नामके अणुओंका वर्ग कार्बनिक अम्लसे संयोजित होकर पोलीऐमाइड नामका पदार्थ बनाता है। इस प्रकारके द्रव्योंमें शीत और उष्णताके नियन्त्रणके द्वारा प्रत्यास्थ (स्थिति स्थापक) पदार्थ बनाये जा सकते हैं और अनुकूल स्थितिमें उनसे तार (तन्तु) भी खींचे जा सकते हैं।

नायलोन बनानेमें काम आनेवाले आदि पदार्थ—एडिपिक अम्ल और हेक्सामिथिलीन डाइऐमाइन—मूलत. फिनोलसे प्राप्त किये गए थे। फिनोल बेनजिनसे और बेनजिन तारकोल अथवा पेट्रोलियमसे प्राप्त किया जाता है। फिनोलसे साइक्लोहेक्सेनोल नामक पदार्थ बनाया जाता है। इससे नाइट्रिक अम्लकी क्रियाके द्वारा एडिपिक अम्ल बनाते हैं। दूसरा पदार्थ हेक्सामिथिलीन डाइऐमाइन एडिपिक अम्ल और ऐमोनियाकी पारस्परिक क्रियासे बनता है। अन्तमें हेक्सा-मिथिलीन डाइऐमाइन एडिपिक अम्लको मिथाइल ऐलकोहलमें अलग-अलग एकत्रित किया जाता है और इन विलयनोंको आपसमें मिलानेसे हेक्सामिथिलीन डाइऐमाइन एडिपेट नामक पदार्थका पृथक्करण होता है, इस पदार्थको 'नायलोन साल्ट' कहते हैं। फिर इस नायलोन साल्टका बहुलीकरण किया जाता है, अर्थात् नायलोन साल्टके एकलकोंका अणुसघनन करके बहुलक बनाया जाता है, जो नायलोन-६६ कहलाता है, क्योंकि ऐमाइन तथा अम्ल, प्रत्येकमें ६ कार्बन अणु होते हैं। इसके बादके क्रममें बहुलकको काटकर छिप्पियां (साबुनके चिप्स-जैसी) बनाते और उन्हें गलाकर जो रस बनता है, उससे नायलोनके तार खींचे जाते हैं। ठण्डे हो जानेके

स्पिनेरेटसे निकलते तार
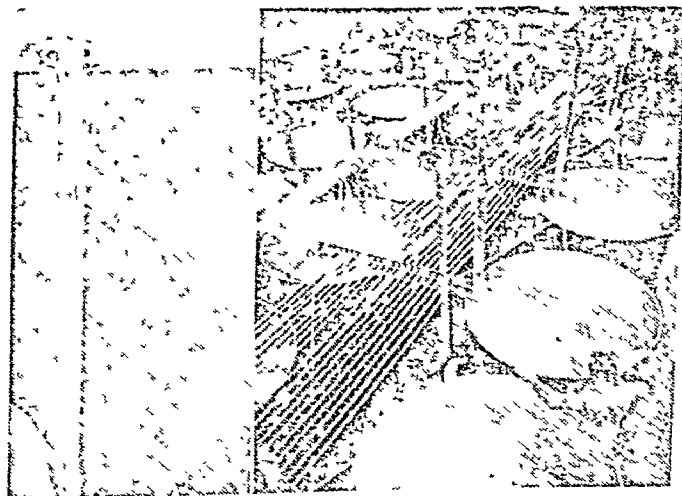
नायलोनका ताना-बाना

बाद इन रेशोंको और भी खींचा जाता है, यहाँ तक कि उनकी लम्बाई मूलसे चौगुनी हो जाती है। इस प्रकार १९३०में नायलोनका पहले-पहल उत्पादन किया गया था। १९३९में ड्युपोण्ट

कम्पनीने वाणिज्यीय आधारपर नायलोनका उत्पादन आरम्भ किया। परन्तु दूसरा महायुद्ध छिड़ जानेसे उसका अधिकांश उपयोग सैनिक कार्योंमें वायुयानके टायर और हवाई छतरियाँ (पैराशूट) बनानेमें ही हुआ। युद्धकी समाप्ति पर ही उसका उपयोग पुनः वस्त्र रेशे बनानेमें किया जाने लगा। आज तो नायलोन एक उच्चकोटिके वस्त्र रेशेके रूपमें लोकप्रिय हो चुका है।

डा० केरोदर्सके अनुसन्धानका उपयोग करके इंग्लैण्डमें ब्रिटिश वैज्ञानिक डा० विनफील्ड और डिक्सनने पेट्रोलियममूलक एथिलीन ग्लायकोल और टेरेप्थेलिक अम्ल नामक रसायनकोंके संयोगसे टेरीलीन नामक वस्त्र रेशा बनाया (१९५३)। उसके बाद अमरीकामें भी ड्युपोण्ट कम्पनीने इसी प्रकारका रेशा बनाया और उसका नाम 'डेक्रोन' रखा। भारतमें 'टेरीन' नामसे उसका उत्पादन १९६५से आरम्भ हुआ। जर्मनी, जापान और संसारके अन्य देशोंमें विभिन्न नामोंसे यह बनाया जाता है।

टेरीलीन और नायलोनका पदानुसरण कर वाइनिल, पोलीएथिलीन, पोलीवाइनिल क्लोराइड, पोलीवाइनिल ऐलकोहल, विन्योन, एक्रिलान, पोली प्रोपेलीन आदि कई प्रकारके वस्त्र-रेशे प्रयोगशालामें जन्म लेकर विभिन्न कारखानोंके स्तरोंके अनुसार उत्पादित होकर बाजारमें आ चुके हैं और अच्छी लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं। इन वस्त्र-रेशोंको बनानेके मूल पदार्थ पेट्रोलियमके रसायनक (petro-chemicals) हैं, इसलिए जैसे-जैसे पेट्रोलियम उद्योगका विकास होगा, इनका उत्पादन आसान होता जाएगा और कीमतें भी घटेंगी।

पूर्णतः मानव-निर्मित रेशोंके गुण प्राकृतिक रेशोंके गुणोंसे बहुत ही भिन्न होते हैं। आर्द्रता अवशोषणकी कम क्षमता, रासायनिक क्रियाओंमें टिके रहनेकी शक्ति, फफूँद और कीटाणुओंका सामना करनेकी सामर्थ्य और अधिक टिकाऊपन आदि उनकी विशेषताएँ हैं। प्राकृतिक रेशोंकी खामियाँ इन रेशोंके मिश्रणसे दूर हो जाती हैं और दोनोंको मिलाकर जो धागा बनाया जाता है वह अधिक मजबूत होता है। ऊनके रेशेके साथ टेरीलीनका मिश्रण करके जो गर्म कपड़ा बनाया जाता है वह बहुत ही टिकाऊ होता है। नायलोन और टेरीलीन अथवा उनके मिश्रणवाला कपड़ा आर्द्रता अवशोषी नहीं होता इसलिए जल्दी सूख जाता है। फिर वह जल्दी कुचलता भी नहीं, इसलिए एक बार जैसी चुनट या सिलवट (rease) डाल दी जाती है वह बनी रहती है। इसलिए इनसे बने कपड़ों पर बार-बार इस्त्री करने (लोहा करने)की झंझटसे छुट्टी मिल जाती है।

इस प्रकार मानव-निर्मित वस्त्र-रेशोंने सामाजिक क्रान्ति ही कर दी है और यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि उनका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।

तत्त्व	'आरालाक' (प्रतिशत)	ऊन (प्रतिशत)
कार्बन	५३.०	४९.२
हाइड्रोजन	७.५	७.६
आक्सीजन	२३.९	२३.७
नाइट्रोजन	१५.०	१५.९
गन्धक	०.७	३.६
फास्फरस	०.८	—

१४ : रंग और वर्णक

हम अपने चारों ओर तरह-तरहकी रंग-विरंगी चीजें देखते हैं। घास-पातका हरा रंग, तितलियोंके पंखोंके इन्द्रधनुषी रंग, और पशु-पक्षियों एवं कीट-पतंगोंके शरीर पर छाये हुए रंग तथा पत्थरों और खनिजोंके नानाविध रंग प्रकृतिके विपुल वर्ण वैभवका हमें दर्शन कराते हैं। रंगोंके प्रति मनुष्यका आकर्षण आदिकालसे चला आता है, इसीलिए प्रागैतिहासिक युगसे जो भी रंग दिखाई दिये मनुष्यने उनका उपयोग किया। हर्र, मजीठ, कत्था, हल्दी, अनार (दाड़िम)की छाल, पत्रंग (पतंगका पेड़ जिसकी लकड़ीसे गुलाल वनाया जाता है)की लकड़ी, कुसुंव (कुसुम्भी), नील और अन्य कई पेड़ोंकी छाल आदि वस्तुओंका उपयोग कर हमारे देशके रंगरेज वढ़िया रंगाई करते थे। लियोटार्डने १८८१ ई०में प्रकाशित अपनी एक पुस्तकमें देशी रंग वनानेकी विधिकी वहुत प्रशंसा की है। आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र रायने देशी रंगोंकी कलाको पुनर्जीवित करनेका प्रयास १९२०के स्वदेशी आन्दोलनके समय रंगाई कलासे सम्वन्धित एक पुस्तक प्रकाशित करके किया था। परन्तु आजके रंग वानस्पतिक नहीं संश्लिष्ट रंग हैं। इन रंगोंका प्रादुर्भाव १९वीं सदीमें अंग्रेज रसायनविद डब्ल्यू० एच० पर्किनके हाथों हुआ था। तारकोलसे प्राप्त किये जानेवाले वेनजिन पर आधारित एनिलीन रंग निर्माणमें इसका प्रेरणा स्रोत वना। इस दिशामें कार्य उसने वेनजिनसे आरम्भ किया। उस पर नाइट्रिक अम्लकी क्रिया करनेसे नाइट्रो-वेनजिन वन सकता था, परन्तु उन दिनों इंग्लैण्डमें आवश्यक घनत्ववाला नाइट्रिक अम्ल मिलता नहीं था, इसलिए पर्किनने वेनजिन, सोडियम नाइट्रेट और सल्फ्युरिक अम्लकी पारस्परिक क्रिया द्वारा नाइट्रो-वेनजिन प्राप्त किया। आरम्भमें इन क्रियाओंके दौरान कई वार विस्फोट भी हुए, परन्तु पर्किनने हिम्मत न हारी और सतत प्रयत्नोंसे इस क्रियाको निरापद ढंगसे करनेकी विधि खोज निकाली।

इस विधिसे वने नाइट्रो-वेनजिनमे लौहचूर्ण और एसिटिक अम्ल मिलानेसे उसे ऐनिलीन प्राप्त हुआ।

पर्किनने संश्लिष्ट कुनैन वनानेके लिए ऐनिलीनसे मिलता-जुलता दूसरा पदार्थ ऐलाइल टोल्युडिन लेकर उसका आक्सीकरण करनेका प्रयास किया। कुनैन तो नहीं वना, परन्तु एक लाल सुंघनी-जैसा पदार्थ उसे प्राप्त हुआ। आक्सीकरणकी इस क्रियासे प्राप्त अनुभवका उपयोग
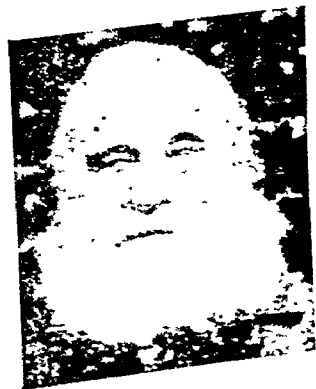
सर विलियम हेनरी पर्किन
(१८३८-१९०७)

उसने ऐनिलीन बनानेमें किया। ऐनिलीनको अम्ल सल्फेट और पोटेशियम डाइक्रोमेटके बीच क्रिया करनेसे उसे काले रंगकी बुकनी प्राप्त हुई, जिसमें पाँच प्रतिशत बैंगनी रंग था और जो ऐनिलीन पर्पल अर्थात् 'मॉव' (चमकदार बैंगनी)के रूपमें प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद तो कृत्रिम रंगोंके निर्माणमें रसायनविदों और उद्योग-विद्या-विशारदोंको सफलता पर सफलता मिलती गई और आज वह विज्ञानकी एक महान उपलब्धि है।

सामान्य भाषामें कपड़ोंकी रँगाईमें काम आनेवाले पदार्थों और तैलीय रंग-रोगनमें इस्तेमाल किये जानेवाले पदार्थोंको भी हम 'रंग' नामसे सम्बोधित करते हैं। परन्तु वैज्ञानिक भाषामें पहले प्रकारको 'रंग या रंजक' और दूसरे प्रकारको वर्णक (pigments) कहते हैं।

रंग अधिकतर कोई रंगीन कार्बनिक यौगिक अथवा पदार्थोंका मिश्रण होता है। उससे कपड़े, कागज़, प्लास्टिक अथवा चमड़े-जैसी चीज़ोंको पक्के रंगसे रंगा जा सकता है। जो रंग प्रकाश, हवा, पानी या साबुनकी धुलाई और प्रतिदिनके सामान्य उपयोगसे प्रभावित हुए बिना टिके रहते हैं उन्हें पक्का (fast) रंग कहते हैं; और जो रंग इनसे प्रभावित होकर उड़ जाते या फीके पड़ जाते हैं उन्हें कच्चा (fugitive) रंग कहते हैं।

बाज़ारमें बिकनेवाले बहुतसे रंग बेनज़िन और टोल्युइन-जैसे सुरभित (एरोमेटिक) हाइड्रोकार्बनों अथवा उनसे मिलते-जुलते पदार्थोंसे संश्लेषित किये जाते हैं। रंगोंका मुख्य उपयोग वैसे तो कपड़ा रंगनेमें किया जाता है, लेकिन वे दूसरे कामोंमें भी आते हैं। जैसे कि ऑयलपेंट (रोगन) और उनसे सम्बन्धित पदार्थोंमें, तेल और मोटरगाड़ियोंमें प्रयुक्त होनेवाले पेट्रोलमें प्रति हिमायक अथवा जमावरोधी (ठण्डसे जम न सकें (anti freeze) मिश्रणोंमें, अन्य रासायनिक यौगिकोंमें, खाद्य पदार्थों और मुरब्बों, जेली, जाम आदि परिरक्षित फलोंमें, स्याही और कागज़ोंमें, रबर, रेज़िन (बैरोज़ा आदि) और प्लास्टिकोंमें, कार्बन पेपर और टाइपराइटरोंके फीतों (रिबनों)में, साबुन, नख पालिश और सौन्दर्य प्रसाधनोंमें, फर्नीचरकी पालिश, मोमबत्ती और अन्य मोमी पदार्थोंमें तथा कुछेक वर्णकोंमें भी इन रंगोंका बहुलतासे उपयोग होता है।

रंगोंका वर्गीकरण दो तरहसे किया जा सकता है। एक रीति रंगके अणुकी रासायनिक संरचना पर आधारित है; दूसरी रीति रंग लगाते समय व्यक्त होनेवाले उसके आचरण पर आधारित है। अभी हम रासायनिक संरचना पर आधारित रीतिकी ही चर्चा करेंगे। दूसरी रीतिसे किये जानेवाले वर्गीकरण पर आगे विस्तारसे चर्चा की जाएगी।

यदि हम किसी सामान्य रंगके पेचीदा रासायनिक सूत्रको देखते हैं तो हममेंसे कई बड़ी उलझनमें पड़ जाते हैं। लेकिन अगर हम अपने मकानकी रचना और रंगके सूत्रकी बनावटका तुलनात्मक दृष्टिसे विचार करें तो रंगकी संरचनाको समझनेमें ज़रा भी कठिनाई न होगी। विभिन्न प्रकारके मकानोंका निर्माण करनेमें जिस प्रकार वास्तुशिल्पी केवल लकड़ी, ईंट, पत्थर, इस्पात, बालू, सीमेण्ट आदि चीज़ोंका उपयोग कर उन्हें भिन्न-भिन्न आकृतियाँ प्रदान करते हैं, उसी प्रकार रसायनविद केवल पाँच सौ रंगोत्पादक माध्यमिकों (intermediates)का उपयोग कर असंख्य प्रकारके रंग बना सकते हैं। फिर जिस प्रकार मकान बनानेमें दीवाल खड़ी करना, पानी छींटना (तरी करना), इस्पातका उपयोग कर खम्भे बनाना और सिल्लियाँ (slab) भरना आदि विधियोंका सहारा लेना पड़ता है, उसी प्रकार माध्यमिकोंसे भिन्न-भिन्न प्रकारके रंगोंका निर्माण

करनेमें भी लगभग एक दर्जन विभिन्न प्रक्रियाएँ अपनानी होती हैं। उन विधियोंमेंसे कुछको यहाँ आलेखित किया जाएगा।

किसी भी पदार्थ पर नाइट्रिक अम्लकी क्रिया द्वारा नाइट्रो समूहको ($-NO_2$) अणुमें प्रविष्ट किया जा सकता है। इस क्रियाको नाइट्रो-प्रवेशन अथवा नाइट्रेटीकरण (nitration) कहते हैं। पदार्थमें ऐमिनो समूह ($-NH_2$)के प्रवेशनको ऐमिनीकरण (amination) कहते हैं। पदार्थमें क्लोरिन (–cl) सम्मिलित करना क्लोरिनीकरण (chlorination) कहलाता है। सल्फ्युरिक अम्लके साथ पदार्थकी क्रिया कर सल्फोनिक समूह ($-SO_3H$)की अणुमें वृद्धि करना सल्फोनिक प्रवेशन कहा जाता है। नीचेके रेखाचित्रसे इन विधियोंको समग्र रूपसे और सरलतासे समझनेके लिए नीचेका रेखांकन देखिए :

SO_3H NO_2 NH_2 H_3C CH_3 N

सल्फोनिक प्रवेशन नाइट्रेटीकरण ऐमिनीकरण एलकेलीकरण

बेनजिन सल्फोनिक अम्ल

बेनज़िन

cl OH OCH_3

जलपृथक्करण एलकेलीकरण ऐनिसोल

→ फिनोल

एलकेली संगनल (fusion)
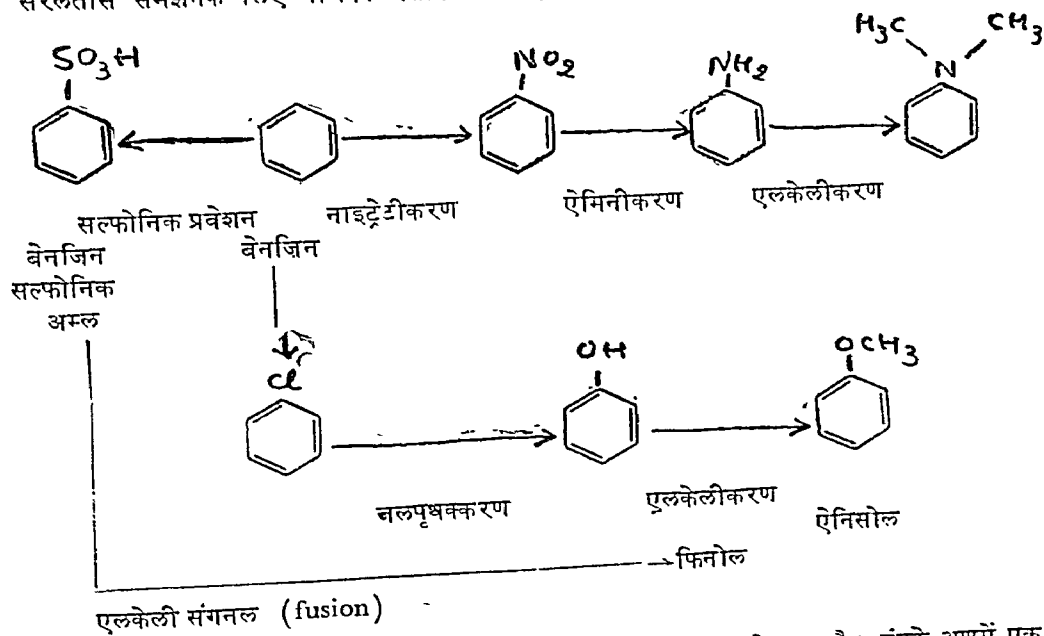
पदार्थ रंगकी तरह कब आचरण करता है, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। रंगके अणुमें एक खास मात्रामें परमाणुओंके बीचके बन्धनमें असन्तृप्तता होनी चाहिए। जब कार्बनको कार्बनसे जोड़नेवाली रेखा एकके बदले दो या तीन दिखलाई जाएँ तो यह कहा जाएगा कि उन कार्बन परमाणुओंके बीचका बन्धन असन्तृप्त है। उदाहरणके लिए बेनज़िन असन्तृप्त है, परन्तु साइक्लो-हेक्सेन सन्तृप्त है। बेनजिन और उसके वर्गके जातकोंमें रहनेवाले वलयको ऐरोमेटिक कहते हैं। इस ऐरोमेटिक वलयके हिस्सेमें असंतृप्तताका होना आवश्यक है। फिर इस असंतृप्तताके साथ ही साथ कम-से-कम पेचीदा क्विनोइड संरचना भी होनी चाहिए। ये हैं रंगके अणुसे सम्बन्धित बुनियादी शर्तें। उदाहरणके लिए बेनजिन वलय पर नाइट्रोसो समूहों (–NO) और हाइड्रोक्सिल (–OH) समूहोंका प्रवेशन करनेसे हमें
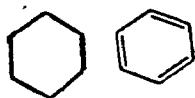
साइक्लोहेक्सेन बेनज़िन

एक सादा नाइट्रोसो रंग प्राप्त होता है। रिसोर्सिनॉलके साथ सोडियम नाइट्राइट और सान्द्र सल्फ्युरिक अम्लकी क्रियासे नाइट्रोसो रिसोर्सिनॉल प्राप्त होता है। इस अणुकी संरचना ऐसी है कि हाइड्रोक्सिल समूहके हाइड्रोजन परमाणु अपना स्थान बदलकर नाइट्रोसोके आक्सीजनसे संयोजित हो जाते हैं और द्विबन्धोंमें भी परिवर्तन होता है। स्थानान्तरकी इस क्रियाको 'टोटोमेरिज़्म' कहते हैं और उसे प्रदर्शित करनेके लिए दोनों ओर तीरके चिह्न (→) लगाये जाते हैं। इन चिह्नोंसे यह पता चलता है कि दोनों प्रकारके अणुओंका पारस्परिक सन्तुलन है। दूसरे शब्दोंमें यों कहेंगे कि डाइनाइट्रोसो रिसोर्सिनॉल क्विनोइड सहित और क्विनोइड रहित दोनों ही अवस्थाओंमें विद्यमान रहता है। क्विनोइड परमाणु लौह (Fe) से संयोजित होनेपर वर्णक बन जाता है। इस वर्णककी संरचनामें द्विबन्ध होनेसे सभी स्थितियोंमें असंतृप्तता बनी रहती है। लौहके परमाणुसे संयोग होने पर जो पदार्थ बना वह नये प्रकारका अणु है। उसमें धातु और कार्बनिक समूहोंके साथ संयोजन हुआ है। रंग बंधकसे स्थायी बननेवाले (mordant) रंग धातुके परमाणुओंसे संयोजित होकर पक्के रंग बन जाते हैं।
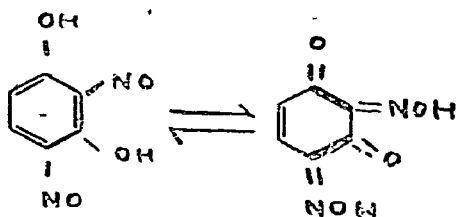
डाइनाइट्रोसो रिसोर्सिनोल   क्विनोइड संरचना   वर्णक
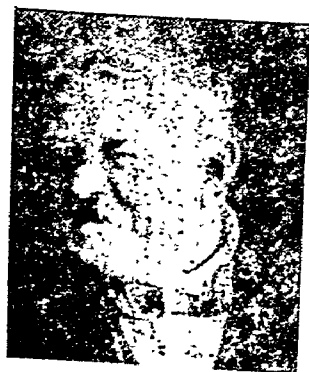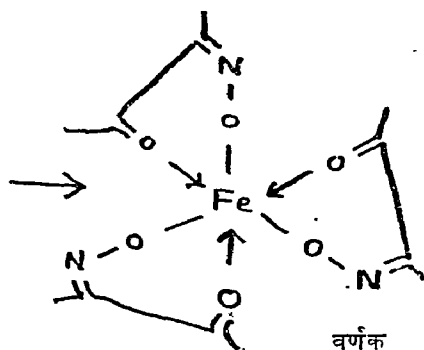
ऑटो निकोलसविट
(१८५३–१९३२)

रासायनिक संरचना और रंगके बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करनेवाले कुछ सामान्य अनुमान निरूपित किये गए हैं। १८६७ ई०में ओ० एन० विटने जो तथ्य निरूपित किये वे आज भी हमारे काम आते हैं। हम एक सूत्र लिख सकते हैं: रंग (रंजक)=वर्णजन (chromogen) + वर्ण वर्धक (auxo chrome)।

वर्णमूलक या वर्णसूचक (chromophose) नामसे अभिज्ञात समूहवाले ऐरोमेटिक वलयदेहको वर्णजन कहते हैं। वर्णमूलक या वर्णसूचकका अर्थ ही है रंग देनेवाला। ये वर्णमूलक इतने अधिक महत्त्वपूर्ण हैं कि रंगोंका वर्गीकरण इन्हींके आधार पर किया जाता है। इस प्रकारके वर्णमूलकोंका अवकरण (अपचयन=reduction) सम्भव है और अवकरण होने पर रंग अदृश्य हो जाता है। जब द्विबंध और एकबन्ध

बारी-बारी आते हों तो अणु अधिक रंगीन होता है। डाइमिथाइल फ्लिवन नारंगी रंगका पदार्थ है। यह रंगीन होते हुए भी रंगकी तरह इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं, कि वर्णजन रंगीन होता है परन्तु बुने हुए रेशोंसे चिपकनेकी रासायनिक प्रवृत्ति उसमें नहीं होती। इसीलिए सहायक समूहोंकी अर्थात् वर्णवर्धकोंकी आवश्यकता पड़ती है। ये वर्णवर्धक अधिकतर लवण प्राप्त होनेवाले समूह ($-NH_2$; $-OH$) और उनके अभिजात होते हैं; अथवा पदार्थकी गलन क्षमताको बढ़ानेवाले कार्बोक्सिल ($-COOH$) या सल्फोनिक अम्ल ($-SO_3H$) समूह होते हैं। इस प्रकार वर्णजनों और वर्णवर्धकोंकी अद्‌भुत लीला रंगविज्ञानमें विस्तारित है।

अब हम रंगोंके कुछ वर्णो (प्रकारों)से परिचित होनेका प्रयत्न करेंगे। सबसे पहले अम्लीय रंगों (acid colours)को लिया जाए। ये रंग अम्लकी तरह आचरण करते हैं, इसलिए ऊन और रेशमको रँगनेमें इनका उपयोग किया जाता है। अम्लीय रंगोंमें ऐज़ो, ट्राइ-फिनाइलमेथेन और एन्थ्राक्विनोन रंगोंका समावेश होता है। उनकी संरचनामें नाइट्रो ($-NO_2$) कार्बोक्सिल ($-COOH$) अथवा सल्फोनिक अम्ल ($-SO_3H$) समूह उपस्थित रहते हैं। ऊन और रेशमके अणुओंमें उपस्थित प्रोटीनके मूल (basic) समूहोंसे अम्ल समूह संयोजित हो जाते हैं। ऑरेन्ज-टू और ऐलिजरिन-ब्लू इस तरहके रंगोंके अच्छे उदाहरण हैं।
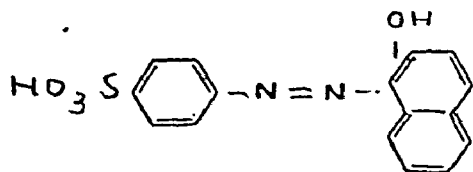
ऑरेन्ज-टू
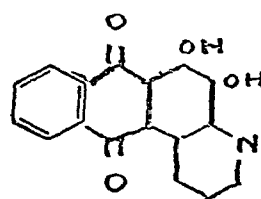
ऐलिजरीन-ब्लू

जिन रंगोंमें एमिनो ($-NH_2$) अथवा प्रस्थापित अमिनो ($-NHR$ अथवा NR_2) समूह रहते हैं उन ट्राइएटिलमेथेन अथवा जैन्थीनवर्गके पदार्थोको बेसिक रंग कहते हैं। उनका
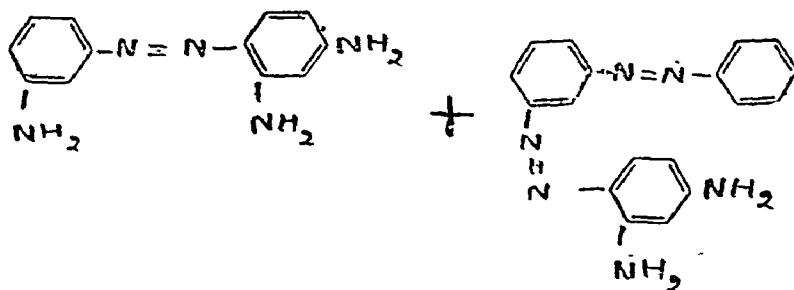
बिस्मार्क ब्राउन-जी (दोनोंका मिश्रण)

खास उपयोग कागजको रँगनेमें किया जाता है। बिस्मार्क ब्राउनका उपयोग चमड़ेको रँगनेमें

आक्सीकरण होने पर रंग उभरता है। रूई, और रेयन अथवा कभी-कभी रेशमकी रंगाईके लिए नीलका उपयोग किया जाता है।

रंग-बन्धकों द्वारा स्थायी होनेवाले स्थापक रंग विभिन्न धातुओंसे संयोजित होकर विभिन्न प्रकारके धातु-संकीर्ण (metal complex) उत्पन्न कर सकते हैं। इन रंगोंकी कुछ निश्चित विशेषताएँ होती हैं। इन रंगोंकी संरचनामें एक लवणयुक्त समूह होना चाहिए; दूसरा ऐसा समूह होना चाहिए जो अपने अबद्ध इलेक्ट्रानोंको दे सके। इस तरह रंग दो प्रकारके समूहों द्वारा धातुके परमाणुको ग्रहणकर धातु-संकीर्ण बनाता है। उदाहरणके लिए मजीठमें उपस्थित ऐलिज़रीन-में हाइड्रोक्सिल (–OH) समूह लवणयुक्त है और कार्बोनिल समूह (–C–O:)में उपस्थित बिन्दियोंसे दर्शित अबद्ध इलेक्ट्रान दे सकनेवाला समूह है। इसी प्रकार ओरथो-ओरथो डाइहाइड्रोक्सी ऐजोरंग भी धातु-संकीर्ण बनाता है। क्रोमियम, एल्युमीनियम और लोहके लवणोंका रंगबन्धककी तरह उपयोग किया जाता है।
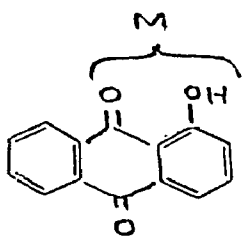
ऐलिज़रीन M=धातु
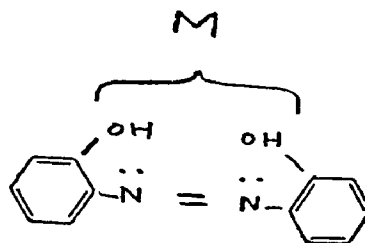
ओरथो-ओरथो डाइहाइड्रोक्सी एज़ो रंग

वेट-रंगकी तरह गन्धकयुक्त (sulphur) रंगोंका, अवकरण होनेपर, पानीमें विलेय ल्युको (निर्वर्ण-वर्णहीन) वेसमें परिवर्तन होता है। इन निर्वर्ण पदार्थोंका कपड़ेके रेशोंके प्रति लगाव होता है, जिससे ये उसपर चिपक जाते हैं। जब 'निर्वर्ण'का रेशोंपर आक्सीकरण होता है तो मूल रंग उभर आता है। गन्धक युक्त रंगोंमें वर्णजनकके स्थान पर –S– होता है। सोडियम सल्फाइड द्वारा गन्धकयुक्त रंगका अवकरण होता है। गन्धकयुक्त रंग अधिकतर सूती कपड़ों पर चढ़ाये जाते हैं। नारंगी, लाल, कत्थई, भूरा, हरा और काला आदि कई प्रकारके रंग इस वर्गमें पाये जाते हैं। कीमतमें भी ये सस्ते होते हैं। परन्तु गन्धकयुक्त रंगोंकी संरचना बहुत पेचीदा होती है।

ऊपर हमने विभिन्न रंगोंका सामान्य परिचय प्राप्त किया, यद्यपि उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता। छोटेसे रासायनिक समूहके आधारपर वर्गीकरण और उसके उदाहरण दे पाना लगभग असम्भव ही है। यहाँ केवल दो वर्गोंका नामोल्लेख किया जाएगा, क्योंकि दोनों ही वर्गके रंगोंका चिकित्साकी दृष्टिसे भी महत्त्व है।

एक हैं ट्राइफिनाइल वर्गके रंग और दूसरे हैं एक्रिडिनवर्गके रंग। ट्राइफिनाइल रंगोंमेंसे क्रिस्टल वायोलेट, मिथाइल वायोलेट, मेलेचाइट ग्रीन, ओरेमाइन आदि जीवाणुरोधी (anti-

biotic) क्रियाशीलतासे सम्पन्न होनेके कारण प्रतिदोपरोधी (anti-septic) की तरह इस्तेमाल किये जाते हैं। एक्रिडिन रंगोंमें से दवाके रूपमें काम आनेवाला एक्रिफ्लेविन प्रोफ्लेविन और उसके मेथोक्लोराइडका मिश्रण होता है। यह जीवाणुरोधी क्रियाशीलतासे सम्पन्न होता है और इसलिए घावके उपचारमें इसका उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐज़ो रंग भी प्रतिदोपरोधी गुणोंवाले होते हैं और उनकी यह गुणवत्ता एक्रिडिन रंगोंसे उच्चकोटिकी होती है; क्योंकि वे घावपर आनेवाली त्वचाकी वृद्धिमें सहायक होते हैं। औषधीय रंगोंमें मेथिलिन-ब्लूका ऐतिहासिक महत्त्व है। डॉ० एहरलिकने रसायन-चिकित्सा सम्बन्धी जो आरम्भिक प्रयोग किये वे रंगोंपर थे और मेथिलिन ब्लू उनमेंसे एक था।

रासायनिक वर्गीकरणके अनुसार भिन्न-भिन्न रंगोंको बनानेकी विधि भिन्न-भिन्न होती है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि अलकतरेसे प्राप्त बेनज़िन, टॉल्युइन, नेफ्थेलिन और एन्थ्रेसिन जैसे सादे पदार्थोंसे आरम्भ कर भिन्न-भिन्न एकम विधियोंको काममें लाकर सारे रंग तैयार किये जाते हैं।

वर्णक

वर्णक कार्बनिक भी होते हैं और अकार्बनिक भी। अकार्बनिक श्वेत वर्णकोंमें व्हाइटलेड [$2\ PbCO_3, Pb\ (OH)_2$], ज़िंक आक्साइड (ZnO), लिथोपोन [$ZnS + BaSO_4$], और टिटेनियम आक्साइड [TiO_2] मुख्य हैं। प्रशियन ब्लू [$Fe\ (FeCN)_6$], लेडक्रोमेट [$PbCrO_4$], रेड लेड [Pb_3O_4], फेरिक आक्साइड [Fe_2O_3], क्रोमियम आक्साइड [Cr_2O_3] आदि रंगीन वर्णक हैं। इन वर्णकोंको रंगरोगन (oil paints)के लिए उपयुक्त तैलीय मिश्रणोंमें मिलाकर काममें लाया जाता है।

ये वर्णक प्राकृतिक ढंगसे अथवा संश्लेषण द्वारा प्राप्त रासायनिक पदार्थ हैं। अधिकतर वर्णक महीन चूर्ण होते हैं। ये पानी अथवा तेलमें विलेय नहीं हैं। लेकिन उपयोगमें लानेके लिए इन्हें भिगोया जा सकता है। वर्णक और रंगमें कोई खास अन्तर नहीं होता: परन्तु यह कहा जा सकता है कि वर्णक, बिना किसी अपवादके, अविलेय होते हैं; जबकि रंग कपड़ों और अन्य रेशेवालों तथा प्लास्टिक पदार्थोंको रंगे जा सकनेवाले विलेय पदार्थ होते हैं। परन्तु वर्णक इस कार्यके सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं। रंगरोगनमें, छपाईकी स्याहियोंमें, फर्शकी रंगाईमें, प्लास्टिक और रबर बनानेमें चमड़ा, मोम, चाक, क्रेयान आदिमें वर्णकोंका उपयोग किया जाता है।

सबसे पहले हम कुछ प्राकृतिक वर्णकोंको लेंगे। सुविधाके लिए प्राकृतिक वर्णकोंको चार वर्गोंमें विभाजित कर लेना ठीक रहेगा: (१) क्विनोन वर्णक; (२) एन्थोसायनिन और फ्लेवोन वर्णक; (३) पोलिन वर्णक और (४) पोरफाइरिन वर्णक।

क्विनोन वर्णक वनस्पति और प्राणियोंमें देखनेको मिलते हैं। उदाहरणके लिए मेंहदीके पत्तोंमें उपस्थित ललछौंहा पीला वर्णक लोसॉन, कुछ प्रकारकी लकड़ियोंसे प्राप्त होनेवाला पीला स्फटिकीय पदार्थ लेपोकोल, 'अल्काना टिक्टोरिया' की जड़से प्राप्त होनेवाला वर्णक अल्कानिन समुद्री अर्चिनके अण्डोंमें रहनेवाला वर्णक इकिनोक्रोम-ए आदि इस वर्गमें आते हैं। इन सभी वर्णकोंकी संरचना मुख्यतः क्विनोन प्रणालीकी होती है।

किया जाता है। क्रिस्टल वायोलेट टाइपराइटरके फीते, कार्बन पेपर और डुप्लीकेटिंग स्याही बनानेके काम आता है। स्पिरिटमें गलनशील बेसिक रंगोंका लेखन और मुद्रणकी स्याही बनानेमें उपयोग होता है। कुछ विशिष्ट बेसिक रंग, जैसेकि एस्ट्राजोन, नये संश्लिष्ट रेशोंकी रँगाई और सेल्यूलोज़ एसीटेटकी छपाईमें काम आते हैं।
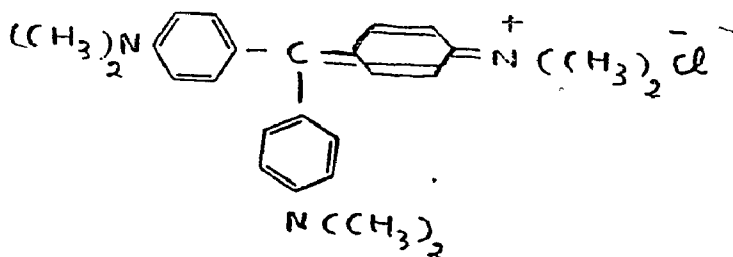
क्रिस्टल वायोलेट (ट्राइफिनाइल मेथेन वर्गका)
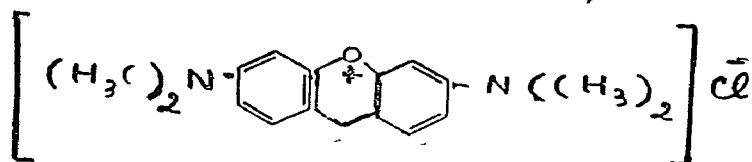
पाइरोनिन जी (जैन्थिन वर्गका)

कुछ रंग सीधे या प्रत्यक्ष (direct) रंग कहलाते हैं, क्योंकि उन्हें सीधे-सीधे उपयोगमें लाया जा सकता है। ऐसे रंग सूती या अन्य वानस्पतिक रेशोंकी रँगाईके काम आते हैं। ये रंग ऐजोवर्गीय हैं। सोडियम क्लोराइड और सोडियम सल्फेट जैसे लवणोंकी उपस्थितिमें ये रंग कपासके रेशोंके प्रति लगाव प्रदर्शित करते है। इसलिए उन्हें अक्सर लवण रंग भी कहा जाता है। उदाहरणके लिए चटकलाल रंग कांगोरेड सूती कपड़ेको सीधे-सीधे रँगता है। इसका सूत्र नीचे दिया जाता है:
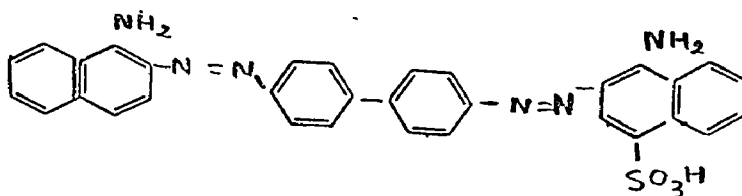
कांगो रेड

कुछ रंग कपड़े पर विकसित होते हैं। कपड़े अथवा सूतको एक या दो माध्यमिक पदार्थोंसे तर कर लिया जाता है। फिर दूसरे पदार्थसे रासायनिक क्रिया करके रंगको विकसित कर लेते हैं। इस प्रकारके रंग पानीमें विलेय नहीं होते। कपड़े अथवा सूत पर ही जिन रंगोंको तैयार किया जाता है उन्हें, तैयार करनेकी विधिके कारण, क्रम विकसित या अन्तः विकसित रंग कहा

जाता है। उदाहरणके लिए पैरा-रेडसे कपड़ा रँगनेके लिए पहले वीटा-नेप्थोलको कास्टिक सोडाके विलयनमें घुला लिया जाता है, फिर उसमें टर्की रेड आयल नामक पदार्थ मिलाया जाता है। यह टर्की रेड आयल एरंडके तेलपर सल्फ्युरिक अम्लकी क्रियासे वनता है। इस विधिसे तैयार किये हुए विलयनसे कपड़े को तर कर लिया जाता है। उसके वाद सोडियम नाइट्राइटकी क्रिया द्वारा बर्फ-जैसे ठण्डे पैरानाइट्रो ऐनिलीनसे वने विलयनमें उस कपड़ेको डुवो दिया जाता है। इस तरह रासायनिक क्रिया द्वारा पैरा-रेड रंग वनता है।

$$O_2N-C_6H_4-N=NCl \;+\; C_{10}H_7OH \longrightarrow C_6H_5-N=N-C_{10}H_6OH$$
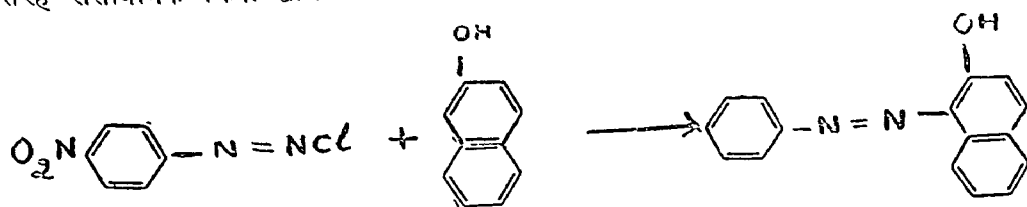
पैरा नाइट्रो ऐनिलीनसे वना पदार्थ वीटा नेप्थाल पैरा रेड

'वेट-रंग' नामक पदार्थोंका आसानीसे अवकरण किया जा सकता है। अवकरण हो जाने पर ये पदार्थ रंगहीन ल्युको अथवा 'वेट' अवस्था अपना लेते हैं और तव पानीमें विलेय होते हैं। रेशोंको 'वेट'से तर करनेके वाद उनपर आक्सीकरणकी क्रिया करनेसे रंग फिर उभर आता है। इस विधिसे तैयार किये हुए रंग धुलाई, प्रकाश और रासायनिक द्रव्योंमें भी टिके रहते हैं। इसका मतलव यह हुआ कि वेट-रंग पक्के (fast) होते हैं। उदाहरणके लिए नील; यह अल्ट्रामेराइन नही, वेट-रंग है। जव वेट रंगों पर सोडियम हाइड्रो सल्फाइटके ऐलकेलीन विलयनकी क्रिया होती है तो उनका अवकरण होकर 'वेट' प्राप्त होता है। इस 'वेट'का हवा, परवोरेट अथवा डाइक्रोमेटसे

$$C_6H_4\langle{}^{CO}_{NH}\rangle C=C\langle{}^{NH}_{CO}\rangle C_6H_4 + Na_2S_2O_4 + 6NaOH \longrightarrow$$

इंडिगो (व्लू) सोडियम हाइड्रोसलफाइट कास्टिक सोडा

$$C_6H_4\langle{}^{C(ONa)=}_{NH}\rangle C-C\langle{}^{NH}_{=C(ONa)}\rangle C_6H_4 + Na_2SO_4 + Na_2SO_3$$
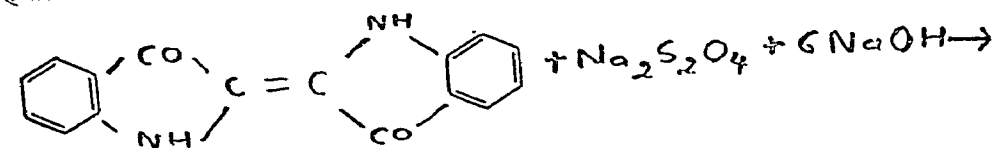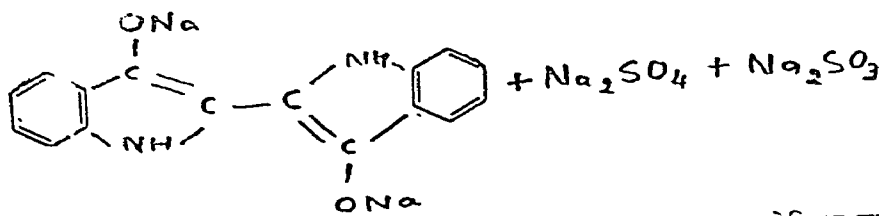
इंडिगो (सफेद) सोडियम सल्फेट सोडियम सल्फाइट

हवा, परवोरेट अथवा डाइक्रोमेटकी क्रिया द्वारा इंडिगो—व्लू
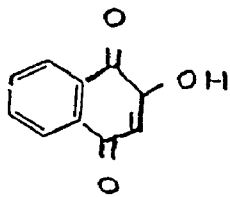
लोसॉन (पीला)

लेपोकोल (पीला)

अल्कानिन (कत्थई लाल)
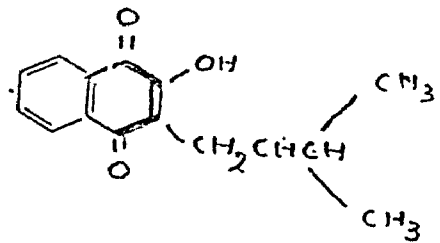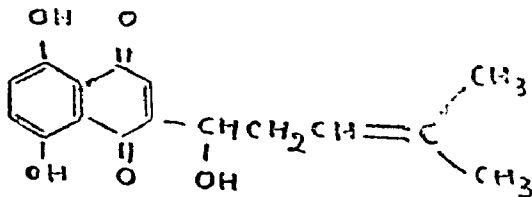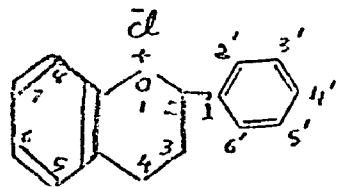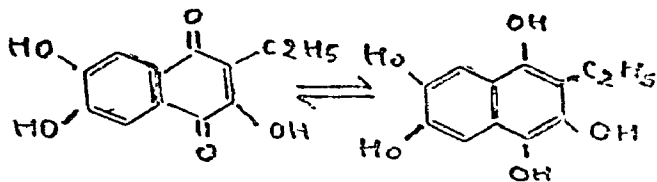
फ्लाविलियम क्लोराइड

इकिनोक्रोम-ए (लाल)

कई फूलों और फलोंके वर्णक एन्थोसायनिन वर्गके होते हैं। इन वर्णकोंकी विशिष्टता यह है कि इनके अणुमें रंगीन भागके साथ शर्कराके अणु संयोजित होते हैं। शर्करा रहित रंगीन भागको एन्थोसायनिडिन कहते हैं। इस फ्लाविलियम क्लोराइडके चारों ओर ३, ४, ५, ६, ७, ८ और २', ३', ४', ५', ६' स्थानों पर उपयुक्त समूह और शर्करा अणु लगानेसे भिन्न-भिन्न फूलोंके वर्णकों-

ग्लूकोज़
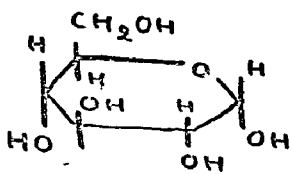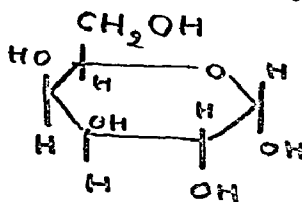
गेलेक्टोज़
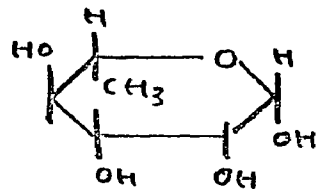
रेम्नोज़

का आविर्भाव होता है। इन वर्णकोंमें खासतौर पर वलयोंके ऊपर हाइड्रोक्सिल (–OH) अथवा / और मेथोक्सी ($-OCH_3$) समूह होते हैं। इसके अतिरिक्त ग्लूकोज, गेलेक्टोज़ और रेम्नोज़ नामक

शर्करा द्रव्यके भी एक या दो अणु चिपके रहते हैं। उदाहरणके लिए गुलाबके लालफूलमें सायनिन नामक वर्णक होता है। यह वर्णक अम्लयुक्त स्थितिमें लाल होता है, एलकेलीन स्थितिमें भूरा होता है, लेकिन लगभग उदासीन (neutral) स्थितिमें बैंगनी (violet) होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न रंग उनमें उपस्थित वर्णक तथा अम्लता (acidity) पी एच (p_h) के अंक पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार, फूलोंके रंगोंकी विविधता फ्लाविलियमके चारों ओर लिपटे हुए समूहोंके कारण है।

एन्थोसायनिनसे बहुत अधिक मात्रामें मिलते-जुलते फ्लेवोन वर्णक हैं। फूल तथा पत्तोंपर-की रेणुके रूपमें फ्लेवोनका अस्तित्व पाया जाता है। इसकी सामान्य संरचनासे पता चलता है कि चौथे स्थान पर $>C=O$ समूह होता है। जब ३, ३', ४', ५ और ७ स्थानों पर OH समूह रहता है तो क्वरसेटिन नामक फ्लेवोन प्राप्त होता है।

वनस्पतिकी पत्तियोंमें क्लोरोफिलके साथ कैरोटिन नामका वर्णक रहता है। केरोटिन-जैसे वर्णकोंको 'कैरोटिनोइड' कहते हैं। कैरोटिनोइड वनस्पतिमें ही नहीं, प्राणी जीवनमें भी व्याप्त है। रासायनिक दृष्टिसे इसे 'पोलीन' कहते हैं, क्योंकि इसके अणुमें कई द्विबन्ध होते हैं। इसका मूल हाइड्रोकार्बनका अणुसूत्र $C_{40}H_{56}$ है। इसके अणुमें वलय हो या न भी हो, परन्तु द्विबन्धवाली श्रृंखला अवश्य होनी चाहिए। उदाहरणार्थ गाजरमें विद्यमान मुख्य बीटा-कैरोटिनकी संरचना इस प्रकार है:

फ्लेवोन
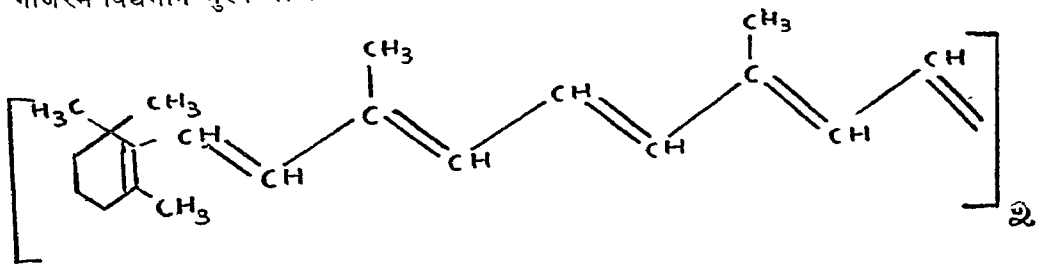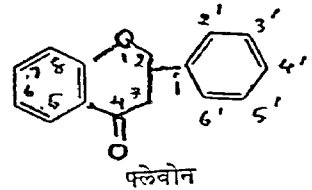
बीटा-कैरोटिन

बीटा-कैरोटिनका सूत्र विटामिन ए से दुगुना है, इसलिए कैरोटिनवाली चीज़ें खानेसे शरीरको विटामिन-ए मिल सकता है।
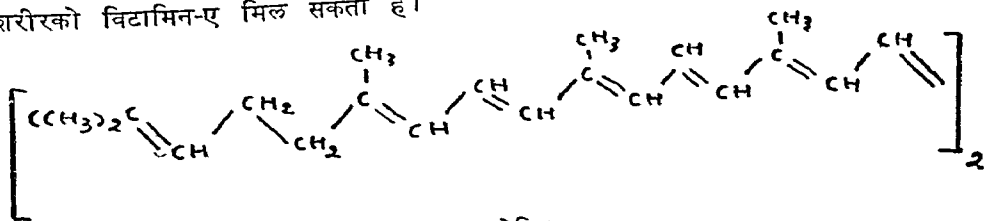
लायकोपिन

टमाटरका लालवर्णक लायकोपिन भी पोलीन वर्णका है। उसके अणुसूत्रमें एक भी वलय नहीं, केवल द्विबन्धोंवाली लम्बी श्रृंखला है।

पोलीन वर्णकोंमें आक्सीजन समूहवाले जैन्थाफिल कहलाते हैं। उदाहरणार्थ मक्काके दानोंमें पाया जानेवाला पीला ज़िज़ान्थिन इसी वर्गका है। उसकी अणु-संरचना वीटा-कैरोटिन-जैसी होती है। सिर्फ यह अन्तर है कि वलयमें अतिरिक्त हाइड्रोक्सिल (–OH) समूह रहता है।

ज़िज़ान्थिन
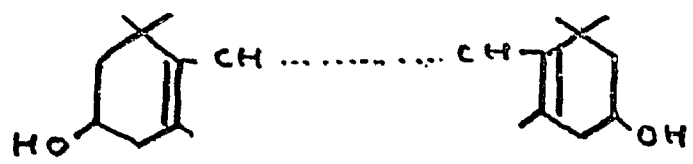
कोसेटिन केसरमें जेन्शी ओवायोज नामक शर्करा द्रव्यसे संयोजित अवस्थामें रहता है। कोसेटिनकी संरचनासे यह स्पष्ट हो जाता है कि केसरका रंगभी पोलीन वर्णकका ही आभारी है।
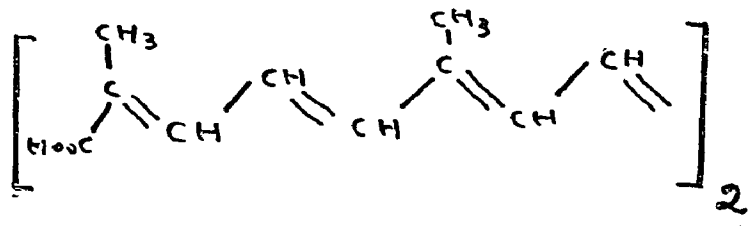
कोसेटिन
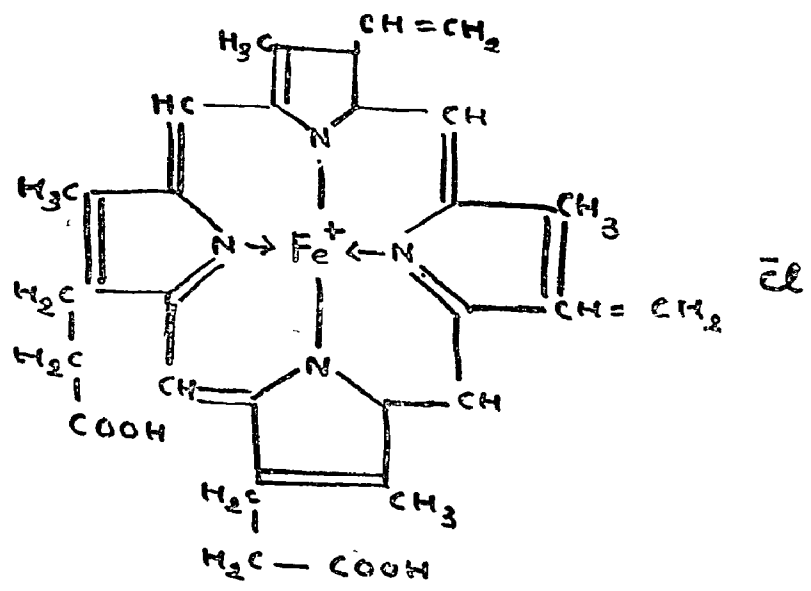
हेमिन
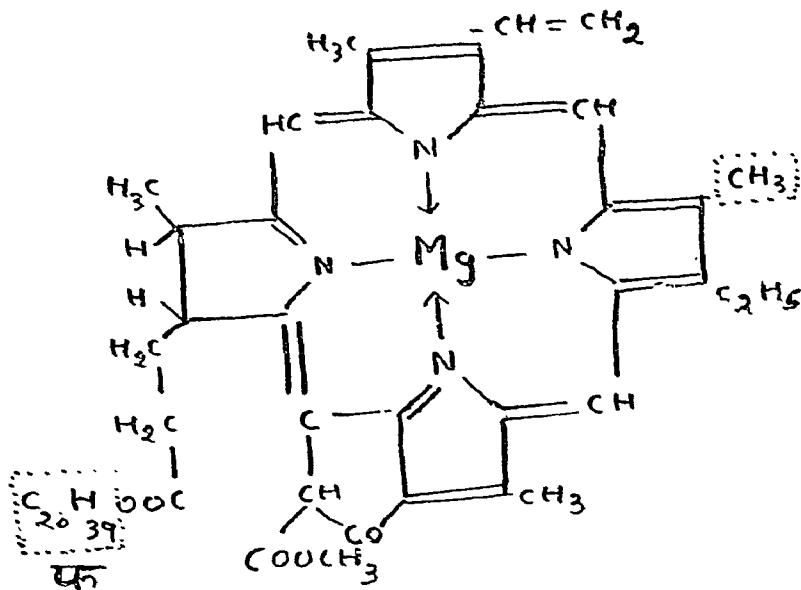
क्लोरोफिल-ए

प्रकृतिमें 'पोरफाइरिन' वर्गके दो महत्त्वपूर्ण वर्णक हैं: एक क्लोरोफिल और दूसरा हेमिन। हरी वनस्पतिकी पत्तियोंमें क्लोरोफिल फैला रहता है। प्राणिमात्रके रुधिरमें हेमोग्लोविनके रूपमें हेमिन रहता है। हेमोग्लोविन एक प्रोटीन है, जिसमें ९४ प्रतिशत ग्लोबिन नामक प्रोटीन और ६ प्रतिशत हेमिन होता है। उसके स्फटिकका रंग पारदर्शक प्रकाशमें कत्थई और परावर्तक प्रकाशमें इस्पाती भूरा होता है। इसमें उपस्थित लौहके परमाणु अवकारित (reduced) अवस्थामें होते हैं। इसीलिए वह आक्सीजन ग्रहण करता है। हेमिनके ही कारण रुधिरके रक्तकणमें आक्सीजन-का विनिमय होता रहता है। हेमिनकी संरचनाको देखनेसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणमें भी प्रकृतिके कलाविन्यासका पता चलता है।

यह कलापूर्ण आकृति पोरफाइरिन वलय-प्रणालीपर रची गई है। आश्चर्यकी बात यह है कि वनस्पतिके व्यापक हरे क्लोरोफिलमें भी यह वलय-प्रणाली रहती है। वनस्पतिमें प्रकाश संश्लेपणके कार्यमें क्लोरोफिल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्लोरोफिल दो प्रकारके होते हैं; दोनोंकी अलग-अलग पहचानके लिए उन्हें क्लोरोफिल-ए और क्लोरोपिल-वी नाम दिये गए हैं। इन दोनोंमें वहुत अन्तर नहीं होता। आकृतिमें लम्ब वर्तुलमें प्रदर्शित मियाइल ($-CH_3$) समूहके वदले ($-CHO$) समूह होनेपर उसे क्लोरोफिल-वी कहते हैं। हेमिन और क्लोरोफिलमें यदि कोई उल्लेखनीय अन्तर है तो धातुके परमाणुका ही है। हेमिनमें लौहका परमाणु होता है और क्लोरोफिलमें मैग्नेशियमका। इसके सिवा क्लोरोफिलमें एक वलय (व) अधिक और लम्वी पार्श्व- शृंखला $C_{20}H_{39}$ (फ)—फाइटिल समूह—होती है।

कलात्मक संरचनाकी दृष्टिसे संश्लिष्ट थेलोसायनिन हेमिन और क्लोरोफिलके प्रति-स्पर्धी कहे जा सकते हैं। इस वर्गके वर्णकोंका इतिहास बड़ा ही रोचक और रोमांचक भी है। १९२८ ई०में स्काटिश डाइज़ लिमिटेडके कारखानेमें एक आकस्मिक खोज हुई और इस वर्गके वर्णकका पता चला। लोहेके पात्रमें नेप्थेलिनसे मिलते-जुलते थेलिक अम्ल और ऐमोनियाके मध्य रासायनिक क्रिया चल रही थी तब इस क्रियासे प्राप्त होनेवाले थेलिमाइडमें भूरा रंग बनता दिखाई दिया। इसका कारण कोई अज्ञात वर्णक था: उस अज्ञातवर्णककी संरचना निश्चित करनेमें छह वर्षका समय लग गया। फिर तो ताम्र, मैग्नेशियम, सीसा आदि धातुओंसे विभिन्न प्रकारके रंगवाले वर्णक बनाना सम्भव हो गया। सबसे पहले बाज़ारमें इस प्रकारका जो वर्णक लाया गया वह ताम्र (कॉपर) थेलोसायनिन था। उसकी संरचना भी कलात्मक है। इसे मोनेस्ट्राल फास्ट ब्लू० बी० एस०के नामसे पुकारा जाता है।
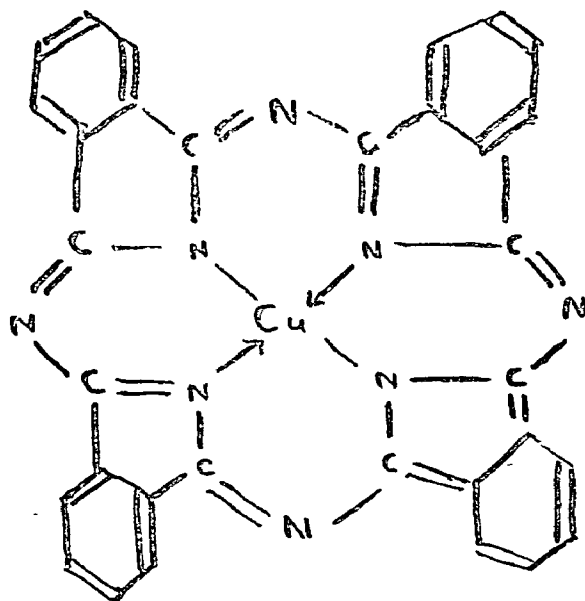
मोनेस्ट्राल फास्ट ब्लू बी० एस०

धातुरहित वर्णक भूरापन लिये हुए हरे होते हैं। ताम्रसहित वर्णक गहरे भूरे होते हैं। ताम्रसहित वर्णकमें जब हाइड्रोजनके बदले पन्द्रहसे सोलह क्लोरिन प्रस्थापित किये जाते हैं तो हरा वर्णक प्राप्त होता है। सामान्यतः ये वर्णक अविलेय होते हैं; परन्तु उनमें दो हाइड्रोजनके बदले सल्फोनिक समूह ($-SO_3H$)का प्रवेशन करनेसे जो हरा वर्णक मिलता है वह विलेय होता है। थेलोसायनिनके विभिन्न उपयोग किये जाते हैं। शोभायमान एनेमल, परिसज्जाएँ (finishes), लिनोलियम, प्लास्टिक, मुद्रणकी स्याहियाँ, भित्तिपत्र (wall-paper), रबरकी चीजों आदिमें इन वर्णकोंका उपयोग किया जाता है।

समूह	समूहके सूत्र	उदाहरण
नाइट्रोसो समूह	—NO (अथवा=NOH)	डाइनाइट्रोसो रिसोर्सिनोल
नाइट्रो समूह	$—NO_2$ (अथवा=NO.OH)	मार्शियस यलो
ऐजो समूह	—N=N—	एनिलिन यलो
एथिलिन समूह	>C=C<	सन यलो
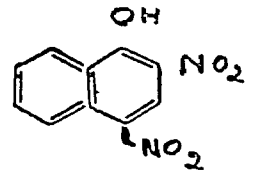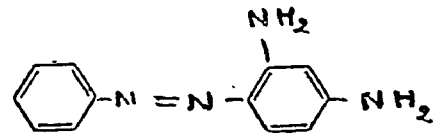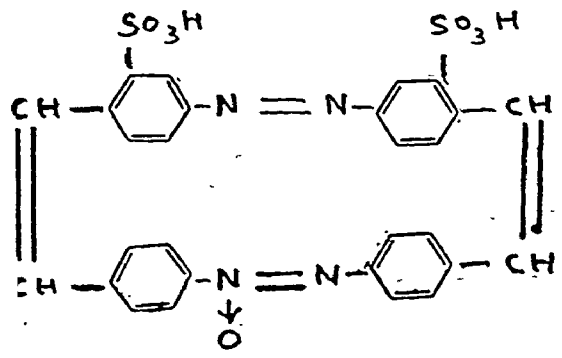
समूह	समूह के सूत्र	उदहारण
कार्वोनिल समूह	$>C=O$	ऐलिज़रीन
कार्वन-नाइट्रोजन समूह	$>C=NH$ और $—CH=N$	ओरेमाइन
		परलोन फास्ट यलो आर० एस० (M=धातुका परमाणु)
सल्फर-समूह	$>C=S$ और $->C—S—S—C<-$	हाइड्रोन ब्लू आर०
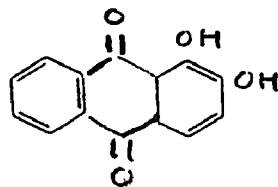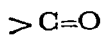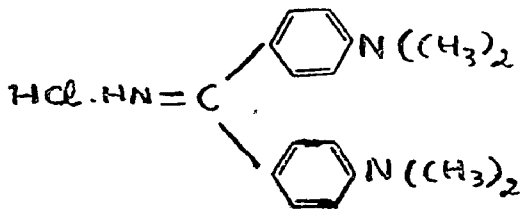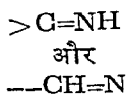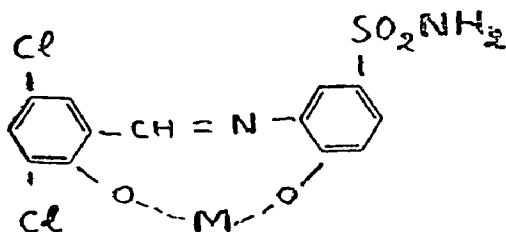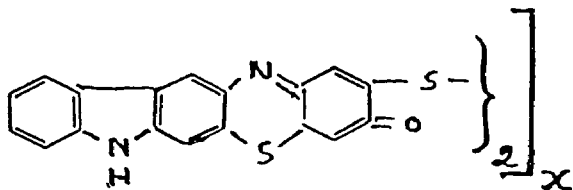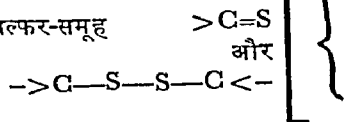
१८ : संश्लिष्ट औषधियाँ

आधुनिक भेपज (औषध pharmaceutical) रसायनकी महान कल्याणकारी उपलब्धियाँ कोई चमत्कार नहीं, विगत सात दशाब्दियोंमें चिकित्सकों और भेपजविदों (pharmacologist) के सहयोगसे रसायनविदों द्वारा किये गए अनुसन्धानों-अन्वेषणोंका परिणाम है। भेपज-रसायनसे सम्बद्ध इतिहासके कुछ सुप्रसिद्ध व्यक्तियों और उनके महत्त्वपूर्ण योगदानके सम्बन्धमें 'स्वास्थ्य-दर्शन'में लिखा जा चुका है। यहाँ भेपज-रसायनके जाज्वल्यमान विकासका समग्र चित्र प्रस्तुत करनेका सीमित प्रयत्न किया जा रहा है।

रसायनविदोंने दवाइयोंके क्षेत्रमें कार्य आरम्भ किया उसके पहले चिकित्सा-विज्ञान विकसित तो हो ही चुका था। यह विकास मुख्यतः अनुभव पर आधारित था। वानस्पतिक, प्राणिज और कतिपय खनिज पदार्थोंको दवाइयोंके रूपमें मान्य किया जा चुका था। यह ज्ञान परम्परागत था। विभिन्न वैद्य या डाक्टर बार-बार आजमाकर किसी वनस्पति या खनिज पदार्थके औषधीय गुण खोज निकालते थे। लेकिन यह सारा विकास 'प्रयास करो और भूले वहाँसे फिर गिनो' की भूलने-सुधारनेकी पद्धतिके आधार पर हुआ था। बरसों-बरसके अनुभवके बाद यह स्थिर हो पाया था कि अमुक प्रकारके रोगमें अमुक उपाय या औषधि कारगर है। लेकिन औषधिके रूपमें प्रयुक्त होने-वाली वानस्पतिक, प्राणिज अथवा खनिज वस्तुएँ रासायनिक दृष्टिसे नितान्त शुद्ध पदार्थ नहीं होती थीं। शीतज्वरमें सिनकोनावृक्षकी छालका उपयोग किया जाता था, परन्तु उस छालमें कई पदार्थ थे। लोग उसके चूर्ण अथवा काढ़ेका उपयोगकर मलेरिया बुखारको दूर किया करते थे। रसायनविदोंने जब औषधीय क्षेत्रमें कार्यारम्भ किया तो यही परिस्थिति थी। तब उनके लिए यह खोज करना आवश्यक हो गया कि सिनकोना वृक्षकी छालमें पाये जानेवाले अनेक पदार्थोंमेंसे कौन-सा पदार्थ मलेरिया बुखार मिटानेका औषधीय गुण रखता है और कौनसे पदार्थ फालतू हैं। मतलब यह कि भिन्न-भिन्न रोगोंको मिटानेवाली विभिन्न वस्तुओंमें औषधीय सत्त्व अथवा सक्रिय अवयव (active principle) क्या है, इसका पता लगाना आवश्यक समझा गया और इस बारेमें ज्ञान प्राप्त करनेकी उत्सुकता पैदा हुई। उनकी इस उत्सुकता और तज्जन्य लगनके परिणामस्वरूप भेपज-विज्ञानने दूसरे चरणमें प्रवेश किया। उस दौरमें उन्होंने ज्ञात औषधियोंमें विद्यमान शुद्ध औषधीय सत्त्वको अन्य फालतू पदार्थोंसे पृथक् करनेकी विधियाँ खोजीं। उदाहरणके लिए, अफीमके ऐलकालायडोंसे सेटर्नरने १८१६ ई०में मार्फिनका पृथक्करण किया; १८८७ ई०में नगाईने एफेड्रा वल्गारिससे एफेड्रिनको पृथक् किया और सिनकोनाकी छालसे १८२० ई०में पेलेशिये और क्वेण्टोने कुनैनको अलग किया। भेपज संग्रह (फार्माकोपिया) में प्रयुक्त (संकलित) पदार्थोंके उत्तरोत्तर शुद्ध औषधीय सत्त्वोंका पृथक्करण करनेके काममें रसायनविद जुट गए और

डाक्टर अन्वेषक उन सत्त्वोंकी सीधी आजमाइश करके उस-उस औषधिकी निश्चित (सही-सही) मात्रा निर्धारित करनेमें लग गए।

सबसे पहले तो औषधीय सत्त्वके रूपमें पृथक् किये गए पदार्थके विशुद्ध नमूने लेकर उनमे कार्वन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि मूलतत्त्वोंके अनुमानका निश्चय करनेके लिए उसका प्राथमिक विश्लेषण करना पडता है। इसमे मूलतत्त्वोंके परमाणुभारके आधार पर पारस्परिक मूलतत्त्वोंका अनुपात निश्चित किया जाता है और उस अनुपातकी सहायतासे मूलानुपाती सूत्र (empirical formula) तय किया जा सकता है। इसके बाद अणुभार-सम्बन्धी प्रयोगोंके द्वारा अणुभार निकालकर उसका अणुसूत्र निश्चित किया जाता है। इस प्रारम्भिक विश्लेषणके साथ-साथ यह भी मालूम करना पड़ता है कि उस सत्त्वमें क्रियाशील परमाणु समूह कौन-से और कितने-कितने हैं। फिर यह भी पता लगाना पड़ता है कि उसमें आक्सीजन-युक्त समूहोंमेंसे हाइड्रोक्सिल ($-OH$) मेथोक्सी ($-OCH_3$), कार्बोक्सिल ($-COOH$), एस्टर ($-COOR$) आदि समूह हैं या नहीं और यदि हैं तो उनकी अलग-अलग संख्या क्या है। सभी प्रकारके ऐलकालायडोंमें नाइट्रोजनकी उपस्थिति रहती ही है, इसलिए वह नाइट्रोजन वलय (ring) मे है या मुक्त समूहके रूपमें, इस बातका पता भी लगाना पडता है। फिर ऐलकालायडोंमे वलय प्रणालीका स्वरूप भी मालूम करना पड़ता है। इससे पता चल जाएगा कि इस विश्लेषणका तीसरा चरण औषधीय सत्त्वकी संरचनाका पता लगाना कितना श्रमसाध्य होता है। दवाइयोंकी तरह इस्तेमाल किये जाने वाले अनेक ऐलकालायडों, विटामिनों और हारमोनोंकी संरचना-सम्बन्धी सही-सही जानकारी प्राप्त करनेमें कई रसायनविदोंको बरसों अपना पसीना बहाना पड़ा है।

चौथे चरणमें रसायनविदोने ज्ञात संरचनावाले सक्रिय अवयवोंके संश्लेषणका कार्य अपने हाथमे लिया। यह काम विश्लेषणसे कहीं कठिन था। यद्यपि सादे कार्बनिक पदार्थोंके संश्लेषणकी

रावर्ट बर्न्स वुडवर्ड
(जन्म : १९१७)

> डब्ल्यू० फान ई० डोरिंगके सहयोगसे १९४४में कुनैनका संश्लेषण; १९५१मे सहकार्यकर्ताओंकी मददसे सम्पूर्ण सन्तृप्त स्टेरोइडका संश्लेषण; १९५९मे सहकर्मियोंके सहयोगसे स्ट्रिकनाइन (कुचलेके ऐलकालायड) का संश्लेषण, रिसर्पिन (सर्पगन्धाके औषधीय सत्त्व) का संश्लेषण और एफ० फिजर एण्ड कम्पनीके रसायनज्ञोंके सहयोगसे टेट्रासाइक्लिनका और १९६०मे क्लोरोफिलका संश्लेषण किया। इसके अतिरिक्त सहकर्मियोंके सहयोगसे लेनोस्टेरोल और कोल्चिसाइनका संश्लेषण भी किया। १९६५मे इन महती सफलताओंके लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

विधि तो रसायनविद ईजाद कर चुके थे, परन्तु कुनैन-जैसे पदार्थका संश्लेषण कर पाना बहुत मुश्किल था। डब्ल्यू० एच० पर्किनने एलाइल टोल्युडिनसे कुनैन बनानेका प्रयत्न किया था, जिसमें वह असफल

हुआ, परन्तु जिसके परिणामस्वरूप कृत्रिम रंजकोंका उद्योग स्थापित हो सका (देखिए अध्याय १४ : रंग और वर्णक)। कुनैनका पूर्ण संश्लेपण तो ठेठ १९४४ ई०में वुडवर्ड और डोरिंगके हाथों हुआ।

प्रकृतिसे प्राप्त होनेवाले सक्रिय अवयवोंका दवाइयोंमें उपयोग होता था; परन्तु १९वी शताब्दीके अन्तिम दो दशकोंमें प्रकृतिमे सर्वथा अप्राप्य कुछ पदार्थोंका संश्लेपण किया जा सका। १८८३ ई०में नोरने ज्वरापहारी एंटिपाइरिन, १८८८ ई०में वोमन और कास्टने निद्रापक सल्फोनल और १८९९ ई०में ड्रेसरने पीड़ापहारी एस्पिरिन बनाये। इनके सिवा उपर्युक्त दो दशाब्दियोंमें और भी बहुतसे पदार्थ रासायनिक प्रयोगशालाओंमें संश्लेपणके द्वारा बनाये गए।

किसी कोशिकाके आन्तरिक भागोंको देखने, जानने और समझनेके लिए उन भागोंको रंगना पड़ता है। मिथिलिन ब्लू, रोजेनिलिन, इओसिन आदि रंजकोंका इस काममें उपयोग किया जाता है। कुछ रंजक कोशिकाके केन्द्रीय भागको, तो कुछ उसके बाह्यभागको रंगते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रंजकोंकी कोशिकाके किसी एक भागके प्रति अभिमुखता होती है और दूसरे भागके प्रति विमुखता। इस परसे डॉ० एहलिकके मनमें यह प्रश्न उठा कि रंगीन पदार्थोंका यह गुण क्या रंगहीन पदार्थोंमे भी नहीं हो सकता? रंगहीन होनेके कारण उस पदार्थको सूक्ष्मदर्शीमें भले ही न देखा जा सके, परन्तु कोशिकाके विविध अंगोंमें उसका वरणात्मक (selective) प्रकीर्णन तो होगा ही। इसी तरह शरीर अथवा रक्तके अन्दर पहुँचे हुए जीवाणुकी कोशिकामें रंगहीन पदार्थका अवशोपण होता है और वह अवशोपित रंगहीन पदार्थ उस जीवाणुकी वृद्धिको रोक सकता है या उसे नष्ट भी कर सकता है। इस विचारके फलस्वरूप डॉ० एहलिकने अनगिनत रंगहीन रसद्रव्य बनाए। संखिया और पारा उपदंश रोगमें दवाईकी तरह इस्तेमाल किये जाते थे। डॉ० एहलिकने संखियाकी धातु आरसेनिक लेकर उससे रंगहीन आरसेनिक पदार्थोंकी कई-नई-नई श्रेणियाँ बनाई और उनका औपधीय परीक्षण किया और जबतक प्रभावशाली औपधि प्राप्त नही हो गई वे उन पदार्थोंकी संरचनामें बराबर परिवर्तन करते रहे। अन्तमें ६०६वें प्रयोगमें उन्हें साल्वरसन-जैसी औपधि प्राप्त हुई, जो उपदंशके इलाजकी रामबाण दवा है।
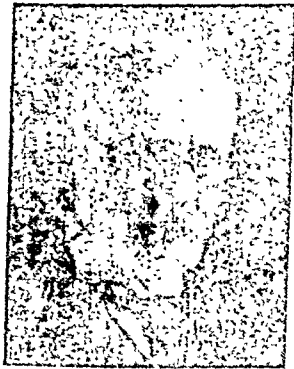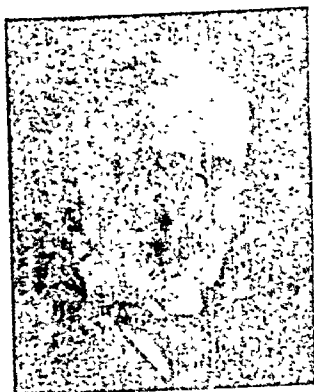
डॉ० पाल एहलिक
(१८५४–१९४५)

इस और इस-जैसी अनेक उपलब्धियोंसे रसायनविदोंको यह बुनियादी ज्ञान प्राप्त हुआ कि पदार्थोंकी रासायनिक संरचनाका उनके औपधीय गुणके साथ सीधा सम्बन्ध होता है। इस ज्ञानसे संश्लेपणके कार्यको गति तो मिली ही, बादके संश्लेपण सुनियोजित और सोद्देश्य भी हुए। तत्पश्चात् इस ज्ञानमें भी वृद्धि होती गई कि किन परमाणु-समूहोंका औपधीय गुण-सम्बन्धी प्रभाव कितना है।

औपधिकी तरह इस्तेमाल किये जानेवाले रसायनकों (रसद्रव्यों) और अन्य पदार्थोंको दो वर्गोंमें बाँटा जा सकता है: (१) तन्त्रान्वयी (systematic) और (२) रसायनी-चिकित्सा-

डाक्टर अन्वेषक इन सत्त्वोंकी सीधी आजमाइश करके उस-उस औषधिकी निश्चित (सही-सही) मात्रा निर्धारित करनेमें लग गए।

सबसे पहले तो औषधीय सत्त्वके रूपमें पृथक् किये गए पदार्थके विशुद्ध नमूने लेकर उनमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि मूलतत्त्वोंके अनुमानका निश्चय करनेके लिए उसका प्राथमिक विश्लेषण करना पड़ता है। इससे मूलतत्त्वोंके परमाणुभारके आधार पर पारस्परिक मूलतत्त्वोंका अनुपात निश्चित किया जाता है और उस अनुपातकी सहायतासे मूलानुपाती सूत्र (empirical formula) तय किया जा सकता है। इसके बाद अणुभार-सम्बन्धी प्रयोगोंके द्वारा अणुभार निकालकर उसका अणुसूत्र निश्चित किया जाता है। इस प्रारम्भिक विश्लेषणके साथ-साथ यह भी मालूम करना पड़ता है कि उस सत्त्वमें क्रियाशील परमाणु समूह कौन-से और कितने-कितने हैं। फिर यह भी पता लगाना पड़ता है कि उसमें आक्सीजन-युक्त समूहोंमेंसे हाइड्रोक्सिल ($-OH$) मेथोक्सी ($-OCH_3$), कार्बोक्सिल ($-COOH$), एस्टर ($-COOR$) आदि समूह हैं या नहीं और यदि हैं तो उनकी अलग-अलग संख्या क्या है। सभी प्रकारके ऐल्कालायडोंमें नाइट्रोजनकी उपस्थिति रहती ही है, इसलिए वह नाइट्रोजन वलय (ring) में है या मुक्त समूहके रूपमें, इस बातका पता भी लगाना पड़ता है। फिर ऐल्कालायडोंमें वलय प्रणालीका स्वरूप भी मालूम करना पड़ता है। इससे पता चल जाएगा कि इस विश्लेषण-का तीसरा चरण औषधीय सत्त्वकी संरचनाका पता लगाना कितना श्रमसाध्य होता है। दवाइयोंकी तरह इस्तेमाल किये जाने वाले अनेक ऐल्कालायडों, विटामिनों और हारमोनोंकी संरचना-सम्बन्धी सही-सही जानकारी प्राप्त करनेमें कई रसायनविदोंको बरसों अपना पसीना बहाना पड़ा है।

चौथे चरणमें रसायनविदोंने ज्ञात संरचनावाले सक्रिय अवयवोंके संश्लेषणका कार्य अपने हाथमें लिया। यह काम विश्लेषणसे कहीं कठिन था। यद्यपि सादे कार्बनिक पदार्थोंके संश्लेषणकी

रावर्ट वर्न्स वुडवर्ड
(जन्म : १९१७)

डब्ल्यू० फान ई० डोरिंगके सहयोगसे १९४४में कुनैनका संश्लेषण; १९५१मे सहकार्यकर्ताओंकी मददसे सम्पूर्ण सन्तृप्त स्टेरोइटका संश्लेषण; १९५९में सहकर्मियोंके सहयोगसे स्ट्रिकनाइन (कुचलेके ऐलकालायड) का संश्लेषण, रिसर्पिन (सर्पगन्धाके औषधीय सत्त्व) का संश्लेषण और एफ० फिजर एण्ड कम्पनीके रसायनज्ञोंके सहयोगसे टेट्रासाइक्लिनका और १९६०मे क्लोरोफिलका संश्लेषण किया। इसके अतिरिक्त सहकर्मियोंके सहयोगसे लैनोस्टेरोल और कोल्चिसाइनका संश्लेषण भी किया। १९६५में इन महती सफलताओंके लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

विधि तो रसायनविद ईजाद कर चुके थे, परन्तु कुनैन-जैसे पदार्थका संश्लेषण कर पाना बहुत मुश्किल था। डब्ल्यू० एच० पर्किनने एलाइल टोल्युडिनसे कुनैन बनानेका प्रयत्न किया था, जिसमें वह असफल

हुआ, परन्तु जिसके परिणामस्वरूप कृत्रिम रंजकोंका उद्योग स्थापित हो सका (देखिए अध्याय १४ : रंग और वर्णक)। कुनैनका पूर्ण संश्लेषण तो ठेठ १९४४ ई०में वुडवर्ड और डोरिंगके हाथों हुआ।

प्रकृतिसे प्राप्त होनेवाले सक्रिय अवयवोंका दवाइयोंमें उपयोग होता था; परन्तु १९वी शताब्दीके अन्तिम दो दशकोंमें प्रकृतिमें सर्वथा अप्राप्य कुछ पदार्थोंका संश्लेषण किया जा सका। १८८३ ई०में नोरने ज्वरापहारी एंटिपाइरिन, १८८८ ई०में बोमन और कास्टने निद्रापक सल्फोनल और १८९९ ई०में ड्रेसरने पीड़ापहारी एस्पिरिन बनाये। इनके सिवा उपर्युक्त दो दशाब्दियोंमें और भी बहुतसे पदार्थ रासायनिक प्रयोगशालाओंमें संश्लेषणके द्वारा बनाये गए।

किसी कोशिकाके आन्तरिक भागोंको देखने, जानने और समझनेके लिए उन भागोंको रंगना पड़ता है। मिथिलिन ब्लू, रोज़ेनिलिन, इओसिन आदि रंजकोंका इस काममें उपयोग किया जाता है। कुछ रंजक कोशिकाके केन्द्रीय भागको, तो कुछ उसके बाह्यभागको रंगते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रंजकोंकी कोशिकाके किसी एक भागके प्रति अभिमुखता होती है और दूसरे भागके प्रति विमुखता। इस परसे डॉ० एर्हलिकके मनमें यह प्रश्न उठा कि रंगीन पदार्थोंका यह गुण क्या रंगहीन पदार्थोंमें भी नहीं हो सकता? रंगहीन होनेके कारण उस पदार्थको सूक्ष्मदर्शीमें भले ही न देखा जा सके, परन्तु कोशिकाके विविध अंगोंमें उसका वरणात्मक (selective) प्रकीर्णन तो होगा ही। इसी तरह शरीर अथवा रक्तके अन्दर पहुँचे हुए जीवाणुकी कोशिकामें रंगहीन पदार्थका अवशोषण होता है और वह अवशोषित रंगहीन पदार्थ उस जीवाणुकी वृद्धिको रोक सकता है या उसे नष्ट भी कर सकता है। इस विचारके फलस्वरूप डॉ० एर्हलिकने अनगिनत रंगहीन रसद्रव्य बनाए। संखिया और पारा उपदंश रोगमें दवाईकी तरह इस्तेमाल किये जाते थे। डॉ० एर्हलिकने संखियाकी धातु आरसेनिक लेकर उससे रंगहीन आरसेनिक पदार्थोंकी कई-नई-नई श्रेणियाँ बनाईं और उनका औषधीय परीक्षण किया और जबतक प्रभावशाली औषधि प्राप्त नहीं हो गई वे उन पदार्थोंकी संरचनामें बराबर परिवर्तन करते रहे। अन्तमें ६०६वें प्रयोगमें उन्हें साल्वरसन-जैसी औषधि प्राप्त हुई, जो उपदंशके इलाजकी रामबाण दवा है।

डॉ० पाल एर्हलिक
(१८५४–१९४५)

इस और इस-जैसी अनेक उपलब्धियोंसे रसायनविदोंको यह बुनियादी ज्ञान प्राप्त हुआ कि पदार्थोंकी रासायनिक संरचनाका उनके औषधीय गुणके साथ सीधा सम्बन्ध होता है। इस ज्ञानसे संश्लेषणके कार्यको गति तो मिली ही, बादके संश्लेषण सुनियोजित और सोद्देश्य भी हुए। तत्पश्चात् इस ज्ञानमें भी वृद्धि होती गई कि किन परमाणु-समूहोंका औषधीय गुण-सम्बन्धी प्रभाव कितना है।

औषधिकी तरह इस्तेमाल किये जानेवाले रसायनकों (रसद्रव्यों) और अन्य पदार्थोंको दो वर्गोंमें बाँटा जा सकता है: (१) तन्त्रान्वयी (systematic) और (२) रसायनी-चिकित्सा-

न्वयी (chemotherapeutic)। पाचनतन्त्र, श्वसनतन्त्र, रुधिराभिसरणतन्त्र, तन्त्रिकातन्त्र, उत्सर्जनतन्त्र आदि शरीरके तन्त्रोंमें अजीवाणुजन्य अथवा अनियन्त्रित कोशिका विभाजनके कारण होनेवाले कैन्सर-जैसे रोगोंके अतिरिक्त अन्य बीमारियोंके उपचारके लिए इस्तेमाल की जानेवाली औषधियोंको पहले वर्गमें रखा जाता है। विभिन्न प्रकारके औषधीय गुणोंके अनुसार, इस वर्गकी औषधियोंका, उपवर्गोमें विभाजन किया गया है। इन उपवर्गोकी संख्या पचास-पचपनके लगभग हो चुकी है। इनमेंसे प्रमुख उपवर्गोकी जानकारी प्राप्त कर ली जाए।

तन्त्रान्वयी औषधियाँ

१८६४ ई० में वेहरेण्डने अनिद्रा रोगके लिए ब्रोमाइड (पोटेसियम ब्रोमाइड) का उपयोग किया। उसके बाद और भी कई पदार्थोंका उपयोग किया गया। परन्तु इस दिशामें योजनाबद्ध कार्य सल्फोन नामक पदार्थोंके उपयोगसे आरम्भ हुआ माना जाता है। बोमन और कास्ट नामक दो वैज्ञानिकोंने १८८८ ई०में कई सल्फोन द्रव्य बनाये और उन्हें कुत्तेको खिलाकर उनके निद्रापक गुणोंका परीक्षण किया। उन्होंने सल्फोनके सामान्य सूत्रमें R_1, R_2, R_3, R_4, के स्थान पर मिथाइल $-CH_3$, और इथाइल $-C_2H_5$ रखकर भिन्न-भिन्न पदार्थ बनाए और उनका परीक्षण किया। R_1, R_2, R_3, और R_4, इन चारों स्थानों पर $-C_2H_5$ अणुसमूह प्रस्थापित करनेसे जो पदार्थ बना उसका नाम टेट्रानल रखा गया। R_1 के बदले CH_3 और शेष सब स्थानों पर C_2H_5 प्रस्थापित करनेसे जो पदार्थ बना उसे ट्रायोनल नाम दिया गया। R_1 और R_2 के स्थान पर $-CH_3$ समूहोंको प्रस्थापित कर जो पदार्थ बनाया गया उसका नाम सल्फोनल रखा गया।
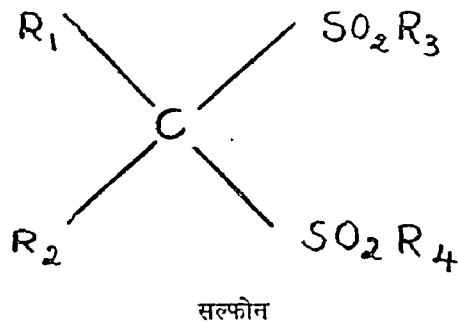
सल्फोन

इस प्रकार हमें टेट्रानल, ट्रायोनल और सल्फोनल पदार्थ उपलब्ध हुए। प्रत्येकके निद्रापक गुणकी कड़ी जाँच-पड़तालके बाद पाया गया कि टेट्रानल सर्वश्रेष्ठ, ट्रायोनलका स्थान दूसरा और सल्फोनलका अन्तिम है। इससे यह बात प्रमाणित हुई कि औषधिकी संरचनासे औषधीय गुण-दोषका सीधा सम्बन्ध है।

एमिल फिशर
(१८५२–१९१९)

नींद लानेवाली दवाइयोंमें 'बार्बिट्युरेट' भी काफी महत्त्वपूर्ण हैं। सबसे पहले १९३० ई०में फिशर और फोन मेरिंगने बार्बिटाल (वाणिज्य नाम वेरोनाल) नामक औषधिका प्रयोग किया। बार्बिट्युरिक अम्लका सामान्यसूत्र वलयवाला है। इस संरचनामें R_1 और R_2के स्थानपर भिन्न-भिन्न जातिके समूहोंको रखकर भिन्न-भिन्न प्रकारके बार्बिट्युरिक अम्ल बनाये गए हैं। दूसरे

नम्बरके स्थान वाले CO के बदले Cs समूह रखनेसे थायो-बार्बिट्युरिक अम्ल बनता है। R_1 और R_2 के स्थान पर मिथाइल ($-CH_3$), इथाइल ($-C_2H_5$), प्रोपाइल ($-C_3H_7$)-जैसे अणु समूहोंको रखनेसे विविध प्रकारकी कुछ अन्य औषधियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमेंसे कुछेकका असर तो इतनी तेज़ीसे होता है कि मनुष्यको बिस्तर पर लेटनेके बाद ही उन्हें लेनेकी सलाह दी जाती है; अन्यथा खानेके साथ ही नींद आ जानेसे गिरनेका भय रहता है। इन पदार्थोंमें निद्रापक गुणोंको सुरक्षित रखनेके लिए बार्बिट्युरेटकी संरचनासे सम्बन्धित कुछ नियम भी निर्धारित और प्रतिपादित किये गए हैं। जैसेकि C_5 पर आनेवाले समूहोंमें कार्बनकी संख्या कुल मिलाकर आठसे अधिक नहीं
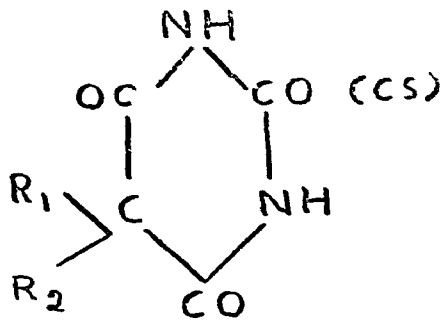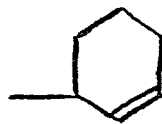
बार्बिट्युरिक अम्ल — साइक्लो हेक्सिनिल समूह — फिनाइल समूह
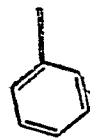
होनी चाहिए; R_1 और R_2 मेंसे एक ही स्थान पर वलय समूह होना चाहिए। इससे यह पता चला कि औषधिमें इस प्रकारकी संरचना और उसके निद्रापक गुणमें पारस्परिक सम्बन्ध है।

शल्यक्रियाके दौरान रोगीको पीड़ा न हो इसलिए अफीम, भांग और मद्यार्कवाले पेय देनेकी रीति पुरातनकालसे ज्ञात थी। लेकिन पीड़ा न हो ऐसे आधुनिक निश्चेतकों (anaesthetics) का उदय तो १९वीं सदीमें ही हुआ। १८४२ से १८४७ ई० तकके पाँच वर्षोंकी अवधिमें नाइट्रस आक्साइड, डाइइथाइल ईथर और क्लोरोफार्म-जैसे निश्चेतक अस्तित्वमें आये। कोल्टन नामका एक व्याख्यान देनेवाला नाइट्रस आक्साइड (laughing gas)का इंग्लैण्डमें जनसमुदायके समक्ष प्रदर्शन कर रहा था। कूले नामके एक क्लर्कने उस गैसको सूँघा और वह उत्तेजित हो गया। अगली पंक्तिमें बैठे हुए एक शक्तिशाली आदमीसे लड़नेके लिए वह खम ठोंककर कूद पड़ा। वह आदमी भागा। कूले उसे पकड़नेके लिए लपका तो कुर्सीको फाँदते हुए गिर पड़ा और उसके पाँवमें चोट लग जानेके कारण खून बहने लगा। लेकिन उसे चोट लगनेकी जरा भी पीड़ा न हुई। यह देखकर वहाँ उपस्थित हारेस वेल्स नामक एक दाँतके डाक्टरने यह सिद्ध किया कि नाइट्रस आक्साइडका उपयोग दन्त चिकित्सामें किया जा सकता है।

प्रो० चार्ल्स टी० जेक्सन (रसायन शिक्षक) और बर्नेल (फार्मासिस्ट—औषधि बनानेवाला) रातमें ताश खेल रहे थे। जलनेवाले दीपमें भूलसे डाइइथाइल ईथर भर दिया गया था। उसके प्रभावके कारण दोनों खेलते-खेलते बेहोश होकर गिर पड़े। जब होशमें आये तो ईथरके निश्चेतक गुणका उन्हें पता चला। इस घटनाके आधार पर प्रो० जेक्सनके विद्यार्थी विलियम टी० जी० मोर्टनने ईथरका प्रयोग स्वयं अपने ऊपर और घरके कुत्ते, बिल्ली, मुर्गी और चूहे पर कर देखा। १८४६ ई०में

दांत निकालते समय रोगीको पीड़ा न हो, इस दृष्टिसे किया गया ईथरका प्रयोग सफल हुआ।

एडिनबराके सर्जन जेम्स सिम्पसनने क्लोरोफार्मका सफल प्रयोग १८४७ ई०में किया। निश्चेतक दो प्रकारके होते हैं। निश्चेतक केन्द्रीय तन्त्रिकातन्त्र (ज्ञानतन्तुओं) पर इस सीमातक असर करता है कि मनुष्य बेहोश हो जाता है और उसके स्नायु ढीले पड़ जाते हैं। ऐसी स्थितिमें शल्यक्रिया करनेपर रोगीको पीड़ाका अनुभव नहीं होता। ऐसी क्रियाशीलतावाले रसायनकोंको 'सामान्य (general-व्यापक) निश्चेतक कहते हैं। ऊपर बताये गए तीन निश्चेतकोंके अतिरिक्त डाइविनाइल ईथर, साइक्लोप्रोपेन आदि वाष्पशील रसायनक इसी सामान्यवर्गके निश्चेतक हैं, जिन्हें रोगियोंको सुंघाया जाता है। सामान्य निश्चेतक सुंघानेसे पहले रोगीको मार्फिन (मारफिया), एट्रोपिन, स्कोपोलेमाइन, बार्बिट्यूरेट्स आदिकी सुई लगाकर तैयार किया जाता है। अब तो कतिपय शल्यक्रियाओंके लिए रीढ़में दवाइयोंका इंजेक्शन लगाकर रोगीको बेहोश कर लिया जाता है।

दूसरे प्रकारके निश्चेतक 'स्थानीय (local) निश्चेतक' कहलाते हैं। जिन स्थानों पर इनका उपयोग किया जाता है वह स्थान अथवा अंग-विशेष एक निश्चित समयके लिए असंवेदनशील हो जाता है। दूसरे शब्दोंमें कहेंगे कि उन स्थानपर ज्ञानतन्तुओंकी संवेदनशीलता अथवा संवेदन-व्यापार कुछ समयके लिए स्थगित हो जाता है। स्थानीय निश्चेतकोंके विकासका इतिहास बड़ा ही गौरवशाली है। एरिथ्रोजाइलोन कोकाकी पत्तियोंसे १८६० ई० में कोकेन ऐल्कालायडकी खोज की गई। १८८४ ई०में कोलरने कोकेनका दन्त-चिकित्सामें उपयोग किया। कोकेनकी निश्चेतक क्रियाशीलताका आकस्मिक ढंगसे पता चला था। डॉ० सिग्मंड फ्रायड और कार्ल कोलर मार्फिनके स्थानपर अन्य किसी औषधिकी खोज कर रहे थे। एक बार परीक्षण करते समय कोलरकी आंखमें कोकेन गिर पड़ा और यह माना जाता है कि तब उसे कोकेनके निश्चेतक गुणका पता चला। उसके बाद रसायनविदोंने कोकेनकी संरचनामें परिवर्तन कर नई-नई दवाइयां बनाईं। १९०० ई०में आइनहोर्नने बेंजोकेन और १९०१-४ में प्रोकेन का संश्लेषण किया। आजतक जितने भी संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं वे सब कोकेनके निश्चेतमूलक (anaestheophore) के आसपास किये गए हैं। विभिन्न स्थानीय निश्चेतकोंकी संरचनाको ध्यानसे देखनेपर यह स्पष्ट हो जाएगा।

अ ब क

निश्चेतमूलक कोकेन
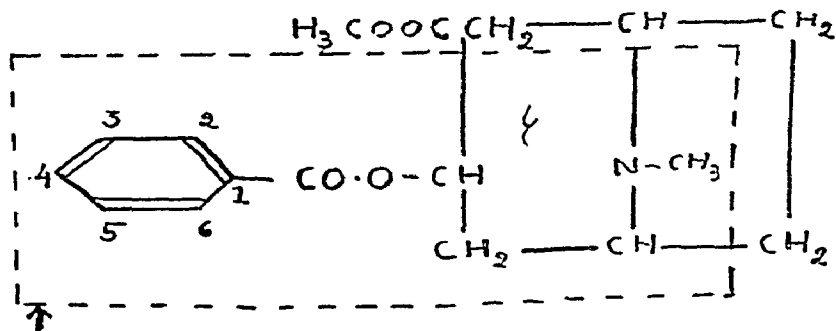
इस निश्चेतक सूत्रमें जो वलय है उसके चौथे स्थान पर एमिनो ($-NH_2$) समूह रखकर दूसरी तरह लिखा जाए तो हमें एक सामान्य सूत्र मिलता है। उसके आधार पर $n=2$ और R_1 = R_2 = इथाइल समूह लगानेसे प्रोकेन प्राप्त होता है। अ, ब और क विभागोंमें कई तरहके परिवर्तन सम्भव हैं। स्थान २ पर $-OH$ समूह रखा जाए तो आक्सीकेन मिलता है। ब शृंखला में $-CH_2-$ की संख्या बढ़ाकर या घटाकर, उसे लम्बा या छोटा कर अथवा शाखावाला बनाकर भी परिवर्तन किये जा सकते हैं। R_1 और R_2 के स्थान पर मिथाइल $-CH_3$, इथाइल $-C_2H_5$, प्रोपाइल C_3H_7 आदि समूह रख संरचनाको बदलकर कई नये-नये निश्चेतक बनाये गए हैं। इस प्रकार प्रोकेन वर्ग की कई दवाइयाँ अस्तित्वमें आ चुकी हैं।

१९४७ ई०में ऊपरकी संरचनामें थोड़ा परिवर्तनकर जाइलोकेन नामक एक बहुत ही प्रभावी निश्चेतक बनाया गया। अपने सामान्य समीकरणकी दृष्टिसे इसके चौथे स्थानपर ब्यूटो-किस समूह, दूसरे और छठवें स्थानपर मिथाइल समूह और $-CO_2$ समूहके बदले $-NHCO-$ समूह रखे गए हैं। इस प्रकार अभी भी अ, ब, क के स्वरूपमें परिवर्तनके प्रयोग किये जा रहे हैं।

$$H_2N-C_6H_4-COO-(CH_2)_n-N<^{R_1}_{R_2}$$

अ | ब | क
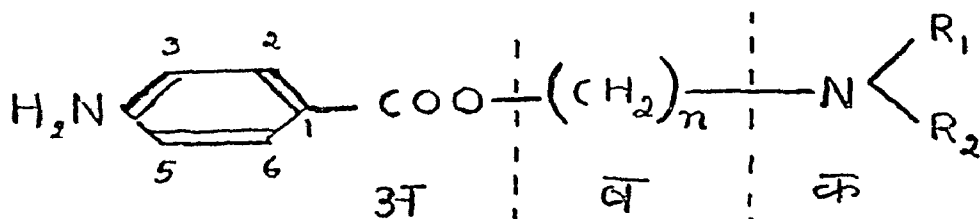
पीड़ापहारी अथवा शामक (analgesic) औषधियोंको भी दो विभागोंमें बाँटा जा सकता है। एस्पिरिन, फिनासेटिन, एण्टिपाइरिन आदि अनेक संश्लिष्ट पदार्थोंका एक विभाग। मार्फिन और उसकी संरचनाके आधार पर संश्लिष्ट पीड़ापहारियोंका दूसरा विभाग। यहाँ हम केवल दूसरे विभागकी ही चर्चा करेंगे। अफीमसे प्राप्त होनेवाले लगभग बीस ऐलकालायडोंमें मार्फिन, कोडिन और थिबेन मुख्य हैं। इन तीनोंकी संरचनामें काफी समानता है। मार्फिनमें तीसरे

मार्फिन

R_1=मिथाइल, R_2=इथाइल } पेथिडिन
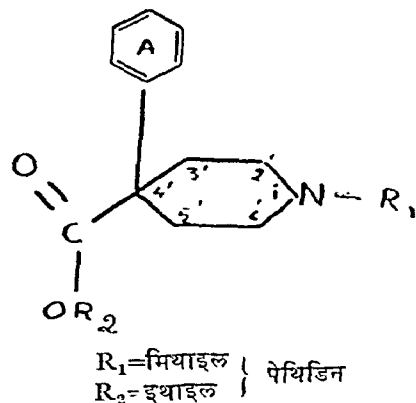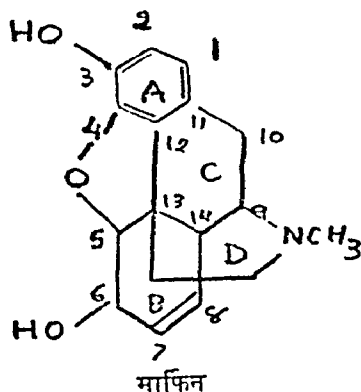
और छठे स्थानपर मुक्त हाइड्रोक्सिल (–OH) समूह होता है। परन्तु कोडिनमें तीसरे स्थान पर मिथोक्सी समूह ($-OCH_3$) होता है। मार्फिनसे नशा चढ़ता है, पीड़ाका शमन होता है और रोगी स्फूर्तिका अनुभव करता है; कोडिन खास तौरपर खांसीको रोकता है।

शुरू-शुरूमें मार्फिनके वलय विन्यासको अक्षुण्ण बनाये रख जितने समूह-परिवर्तन सम्भव हो सकते थे, वे सब किये गए और इस प्रकार जितने पदार्थ प्राप्त हुए उनमें पीड़ापहारी गुण अधिक मात्रामें पाये गए। उदाहरणके लिए मेटापॉन मार्फिनसे सवा दो गुनी अधिक सक्रिय औषधि सिद्ध हुई।

उसके बादके प्रयोग तो और भी आश्चर्यजनक है। मार्फिन वलय-विन्यासके कुछ भागोंको अक्षुण्ण रख और कुछका खण्डनकर नये संश्लिष्ट पदार्थ अन्य रीतिसे प्राप्त किये गए हैं। उदाहरणके लिए, पेथिडिनमें मार्फिनके केवल A और D वलय अक्षुण्ण हैं। पेथिडिनके विन्यासपर कई प्रयोगात्मक परिवर्तन हुए हैं। उसमें A वलयके खाली स्थानोंमें उपयुक्त समूह रखकर अनेक पदार्थ प्राप्त किये गए हैं। परन्तु सक्रियताकी दृष्टिसे सभी पदार्थ पेथिडिनसे निम्नकोटिके अथवा समकक्ष ही सिद्ध हुए हैं। इस श्रेणीमें जब ($-COOR_2$) के बदले (COR_2) रखा गया तो पेथिडिनसे २० गुना सक्रिय पीड़ापहारी किटोबिमिडोन प्राप्त हुआ। अफीमकी तरह इसका व्यसन लग जानेसे इसे दवाईके रूपमें लेनेकी सलाह नहीं दी जाती। इसके अतिरिक्त ($COOR_2$) के बदले ($-O.COR_2$) रखकर पीड़ापहारी प्राप्त करनेका प्रयत्न हुआ है और परिणामस्वरूप पेथिडिनसे पाँच गुना अधिक सक्रिय निसेण्टिल प्राप्त किया गया है। इसमें एक अतिरिक्त मिथाइल-समूह ३' स्थान पर और ४ स्थान पर ब्यूटोकिस समूह होता है।

हमने यह देखा कि मार्फिनकी संरचनाके केवल एक भागके आधार पर कितने पीड़ापहारी प्राप्त किये गए। लगभग तेरह-चौदह अन्य भागोंको लेकर पीड़ापहारियोंके संश्लेषणकी दिशामें

वनस्पति जगत्के ऐलकालायडकी खोजके लिए १९४७ में जिन्हें रसायनका नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।
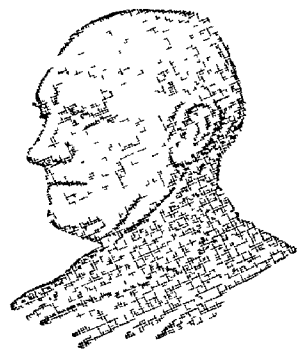
सर राबर्ट राबिन्सन
(जन्म १८८६)

व्यापक रूपसे कार्य हुआ है। इससे यह पता चलता है कि रसायनविदोंकी संश्लेषण-सम्बन्धी गति-विधियाँ योजनाबद्ध और सोद्देश्य होती हैं; परन्तु साथ ही वे समय और श्रमसाध्य भी हैं। फिर

काफी समयतक कठोर परिश्रम करनेके बाद भी सब-के-सब नवनिर्मित पदार्थ उपयोगी सिद्ध नहीं होते। कई बार तो एक भी पदार्थ उपयोगी नहीं होता। केवल रासायनिक पदार्थोंकी नाम वृद्धि-की खाना-पूरी होकर रह जाती है। हाँ, पाँच-पचीस वर्ष बाद उसका कोई नया उपयोगी गुण मालूम हुआ तो उस खोजका महत्त्व बढ़ जाता है।

पिछले १५ वर्षोंमें कई प्रशामक (tranquiliser) प्रकाशमें आये हैं। विशेष रूपसे इनका उपयोग मनोरोगियोंपर किया जाता है। प्रशामकके प्रभावसे रोगीका चित्त शान्त होता है; उसकी घबराहट और उत्तेजना मिटती है। इन दवाइयोंसे रोगीको शान्ति मिलती है, परन्तु नशा नहीं आता। सर्पगन्धासे प्राप्त किया जानेवाला एक ऐलकालायड रेसर्पिन है, जो प्राकृतिक प्रशामक है। सर्पगन्धाका यह गुण हमारे वैद्योंको पुरातन कालसे ज्ञात था और इसीलिए सर्पगन्धाका नाम ही 'पागलकी दवा' प्रसिद्ध हो गया। १९३२ ई०में सेन और बोसने यह घोषणाकी कि सर्प-गन्धाकी जड़ रक्तचापको कम करती और उत्तेजनाको मिटाती है। १९४१ ई०में कर्नल चोपड़ा
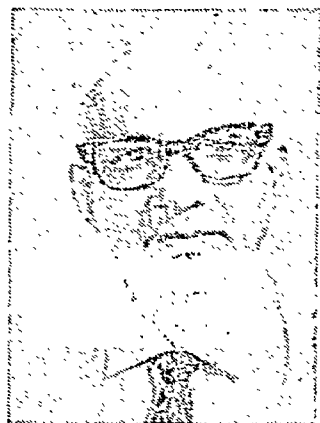
डा० आर० ए० हकीम

रेसर्पिन

फिनोथायाज़िन

$$CH_3CH_2CH_2-\overset{\displaystyle CH_2OCONH_2}{\underset{\displaystyle CH_2O.CONH_2}{C}}-CH_3$$

इक्वानिल
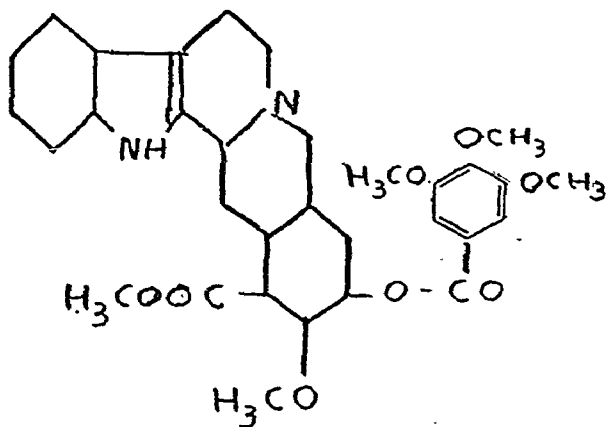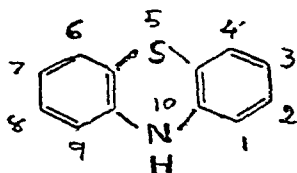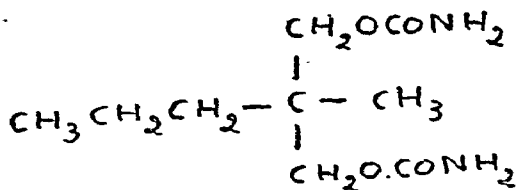
और उनके सहकर्मियोंने सर्पगन्धाके औषधीय गुणोंका पता लगाया। १९४३ ई०में सीबा कम्पनीने सर्पगन्धापर अनुसन्धान किया। १९५२ में सीबा कम्पनीके अन्वेषकोंने रावोल्फीया सर्पेण्टिना (सर्प-

कार्डियोजोल

$$CH_2 \cdot O \cdot NO_2$$
$$|$$
$$CH \cdot O \cdot NO_2$$
$$|$$
$$CH_2 \cdot O \cdot NO_2$$

ग्लिसरिल ट्राइनाइट्रेट

H_3C ... $CON(C_2H_5)_2$, N, CH_3, O

साइक्लिटोन

$$CH_2O \cdot NO_2$$
$$|$$
$$(O_2N \cdot OCH)_2$$
$$|$$
$$(HCO \cdot NO_2)_2$$
$$|$$
$$CH_2O \cdot NO_2$$

मेनिटाल हेक्सानाइट्रेट

N — N, C_2H_5C, CH, N

एजोमान

$$O_2N \cdot O \cdot H_2C \quad CH_2 \cdot O \cdot NO_2$$
$$C$$
$$O_2N \cdot O \cdot H_2C \quad CH_2 \cdot O \cdot NO_2$$

पेण्टाइरिथिटोल टेट्रानाइट्रेट

$$N \text{(pyridine)} - CON < \begin{matrix} C_2H_5 \\ C_2H_5 \end{matrix}$$
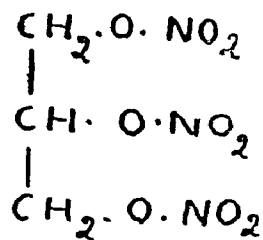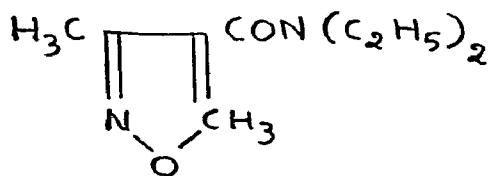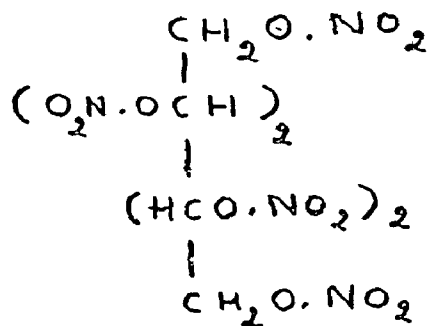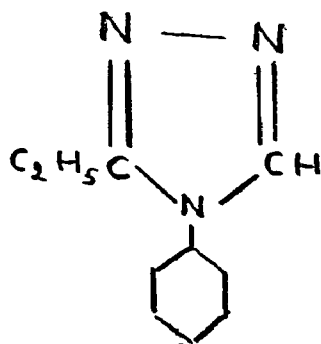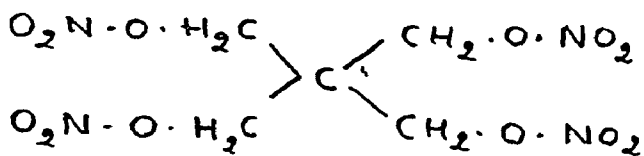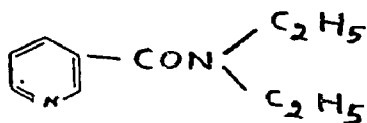
कोरेमाइन

गन्धा)की जड़से औषधीय सत्त्व अथवा सक्रिय अवयव रेसर्पिनको पृथक् किया। और बादके चार वर्षोंमें स्विटलर, बर्जर, राबिन्सन, कारेर, वुडवर्ड आदिके अथक प्रयत्नों और सहयोगके परिणामस्वरूप रेसर्पिनकी संरचना और संश्लेषणमें सफलता प्राप्त हुई। १९५३ में अहमदाबादके डॉ० आर० ए० हकीमने रेसर्पिनका मनोभ्रंशके रोगियोंपर सफलतापूर्वक उपयोग किया, जिसके बहुत अच्छे परिणाम निकले। इस सम्बन्धमें उन्होंने अपने जो अनुसन्धान प्रकाशित किये उसपर उन्हें स्वर्णपदक प्रदान किया गया। रेसर्पिनमें रक्तचापको कम करनेकी क्षमता भी है। रसायनविद फौरन इस प्राकृतिक प्रशामक जितने अथवा इससे अधिक सक्रियतावाले पदार्थका संश्लेषण करनेमें लग गए। १९५६ ई० में मिलर और विनबर्गने रेसर्पिनकी संरचनामें खंडित रेखाओंसे दिखाये गए भागकी ओर ध्यान दिया; और उन्होंने पाया कि इस भागसे संयोजित होनेवाले सादे तृतीयक एमाइनोंमें कुछ अंशोंमें रेसर्पिन जैसे प्रशामक गुण हैं।

प्रशामकके रूपमें इस्तेमालकी जानेवाली दवाइयाँ एक भिन्न ही श्रेणीसे निकली हैं। वालेस लेबोरेटरी, न्यू ब्रुन्सविक, न्यूजर्सीने सबसे पहले मेप्रोबेमेट (equanil) का संश्लेषण किया और वह शीघ्र ही दैनन्दिन जीवनमें लोकप्रिय हो गई। सबसे अधिक प्रभावी प्रशामक क्लोरप्रोमेज़िन है। इसमें सर्वथा नये प्रकारका वलय होता है, जिसे फिनोथायज़िन वलय कहते हैं। इसमें बेनज़िनके दो वलयोंको नाइट्रोजन और गन्धकके परमाणु सेतु बनाकर जोड़ते हैं। इस वलयके स्थान २ पर

$$—CH_2–CH_2 . CH_2N <^{C_2H_5}_{C_2H_5}$$
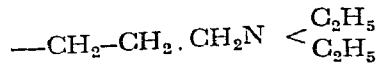
क्लोरिन और दसवें स्थानपर नाइट्रोजनसे चिपके हुए हाइड्रोजनके बदले समूह लगा हो तो क्लोर-प्रोमेज़िन प्राप्त होता है। फिनोथायज़िन वलय इस अर्थमें महत्त्वपूर्ण है कि उसके आसपास अन्य वर्गकी औषधियाँ, जैसेकि हिस्टामिनरोधी, कृमिनाशक प्राप्त की जा सकी हैं। वलयके ऊपरके नाइट्रोजनपर भिन्न-भिन्न शृंखला लगानेसे उसकी सक्रियतामें परिवर्तन किया जा सकता है।

प्रशामकोंकी चर्चा करते हुए 'निर्मूलभ्रम' अथवा 'विभ्रम' (hallucination) पैदा करनेवाली औषधियोंका जिक्र भी कर लिया जाए। कई बार मनुष्यको विभ्रम हो जाता है, अर्थात् गलत आभास होने लगता है। मनोभ्रंश अथवा विभक्त मनस्कता (schrizophrenia) जैसे मनो-मानसिक-रोगमें विभ्रम होनेकी काफी गुंजाइश है। इस रोगमें विचारों, मनोभावों और कार्यमें कोई तालमेल नहीं रह जाता। भाँग या उससे मिलता-जुलता पेय पीनेपर चित्तकी जैसी विभ्रमित अवस्था हो जाती है वैसा ही अनुभव अथवा चित्तभ्रम (भ्रान्ति) कुछ औषधियाँ खाने पर भी होता है। इस प्रकारकी औषधियोंको विभ्रामक (hallucinogenic) कहते हैं। इनमेंसे कुछकी संरचना निश्चित की जा सकी है।

मस्केलिनमें रेसर्पिनका अंशतः खंडित रेखावाला भाग और अन्य पदार्थोंमें इन्डोल-वलय विद्यमान रहता है। इण्डोल-वलयवाले रसायनक (रस-द्रव्य) मनोवृत्तियोंकी क्रिया-प्रतिक्रियामें महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। अर्गट ऐलकालायडमें जो लाइसर्जिक अम्ल होता है उसका डाइइथाइल-एमाइड विभ्रामककी तरह इस्तेमाल किया जाता है।

हृदयको शक्ति देनेवाली उत्तेजक (संजीवक या शक्तिवर्द्धक—analeptic) व्यापक उपयोगकी दृष्टिसे बार्बिट्यूरेट और मार्फिन जैसी नशीली दवाइयोंका असर भी कम करते हैं।

कपूर और स्ट्रिक्निनकी गणना प्राचीनकालसे उत्तेजकोंमें होती आई है। १९२४ ई०में स्मिटने कार्डियोज़ोल नामक पहली औषधिका संश्लेषण किया। यह दवा एक प्रवल उत्तेजक सिद्ध हुई। उसके वाद ट्रायोज़ोल ऐज़ोमान प्रकाशमें आया। इसके कुछ समय वाद साइक्लिटोनका पता लगाया गया। इस तरह एक प्रभावशाली अणुसमूहकी जानकारी मिली, जिसके परिणामस्वरूप सवसे सक्षम कोरेमाइन वनाया जा सका। आज भी हृदयगति वन्द होनेकी आशंकापर श्वसन और रुधिराभिसरणको वरावर करनेके लिए इस औषधिका प्रयोग किया जाता है।

हृदय और रुधिराभिसरणके सन्दर्भमें कुछ और औषधियोंकी चर्चा कर ली जाए। रुधिराभिसरणतन्त्रमें हृदय और रक्तवाहिनीकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी वीमारियाँ होती हैं और उनके लिए अलग-अलग दवाइयाँ उपलव्ध हैं। यहाँ तो हम केवल उन्हीं औषधियोंका उल्लेख करेंगे जो हृदयके स्नायुओंपर सीधा असर करती हैं। डिजिटेलिस, सिल्ला और स्टोपेन्थस वर्गके ऐल्कालायड, टोड-विष, खेलिन और विसनागिन, स्टेरायड ऐल्कालायड आदि प्राकृतिक स्रोतसे प्राप्त होनेवाली औषधियाँ हैं। संश्लिष्ट औषधियोंमें ग्लिसरिल ट्राइनाइट्रेट, पेण्टा इरिथ्रिटोल टेट्रानाइट्रेट और मेनिटाल हेक्सानाइट्रेट महत्त्वपूर्ण हैं। ये नाइट्रेट महाधमनीके विस्तारककी तरह काम करते हैं और एंजाइना पेक्टोरिस हृदयशूलकी पीड़ाको कम करते हैं। आश्चर्यकी वात तो यह है कि जो ट्राइनाइट्रोग्लिसरिन यहाँ पीड़ाहारक है वही अन्यत्र विस्फोटक भी है (देखिए अध्याय ६ : विस्फोटक पदार्थ, पृष्ठ ९९)।

$$\underbrace{(HO)_2C_6H_3}_{\text{अ}}-\underset{\underset{OH}{|}}{CH}-\underbrace{CH_2}_{\text{ब}}-\underbrace{NHCH_3}_{\text{क}}$$

एड्रिनलिन

$$C_6H_5-\underset{\underset{OH}{|}}{CH}-\underset{\underset{CH_3}{|}}{CH}-NHCH_3$$

एफिड्रिन

$$C_6H_5-CH_2-\underset{\underset{CH_3}{|}}{CH}-NH_2$$

एम्फेटेमाइन

$$C_6H_5-CH_2-\underset{\underset{CH_2CH_2Cl,\ \bar{Cl}}{|}}{\overset{+}{N}H}-CH_2-C_6H_5$$

डाइवेनामिन

$$(CH_3)_3\overset{+}{N} \;\Big|\; (CH_2)_2 \;\Big|\; O\cdot COCH_3$$

अ | ब | क
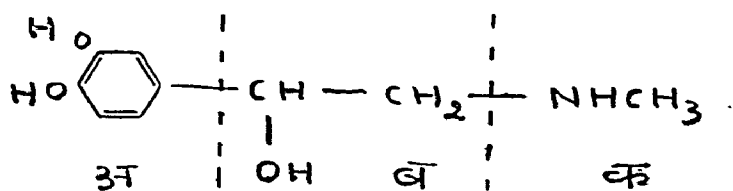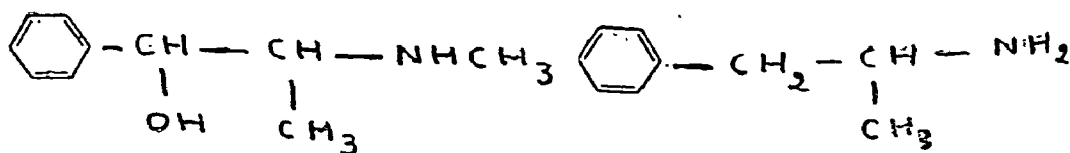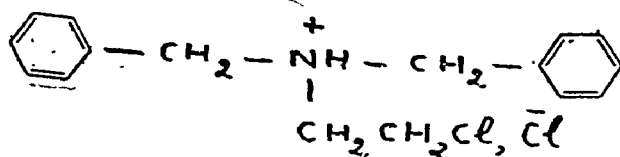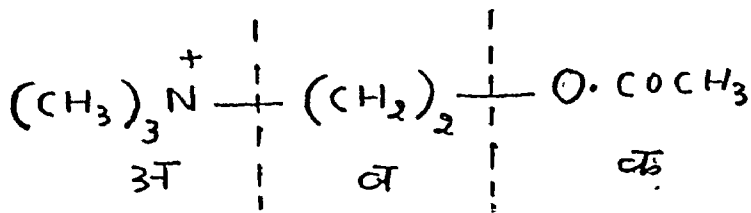
एसिटिल कोलिन

स्वायत्त तन्त्रिकातन्त्र (autonomic nervous system) पर असर करनेवाली औपधियाँ एक भिन्न उपवर्गमें विभाजित की गई हैं—एड्रिनलिनधर्मी, एड्रिनलिन क्रियाविरोधी, कोलिनधर्मी, कोलिन क्रियाविरोधी, हिस्टामिनरोधी आदि। स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्रके संचालनमें एड्रिनलिन और एसिटिल कोलिन हारमोन प्रमुख भूमिका निभाते पाये गए हैं। रसायनविदोंने अव ऐसी औपधियोंका संश्लेपण कर लिया है जो हारमोन-जैसी सक्रिय और हारमोन-क्रियाशीलताकी अवरोधक भी हैं।

$$(CH_3)_3\overset{+}{N}CH_2-\underset{\displaystyle CH_3}{\underset{|}{CH}}-O\cdot COCH_3$$

मेथाकोलिन क्लोराइड

$$(C_6H_5)_2\overset{\displaystyle OH}{\overset{|}{C}}-CO\cdot OCH_2CH_2\overset{+}{N}(CH_3)_3\;\bar{Cl}$$
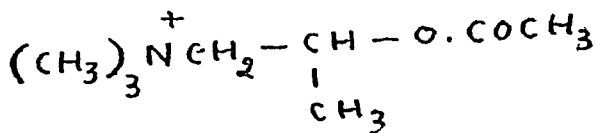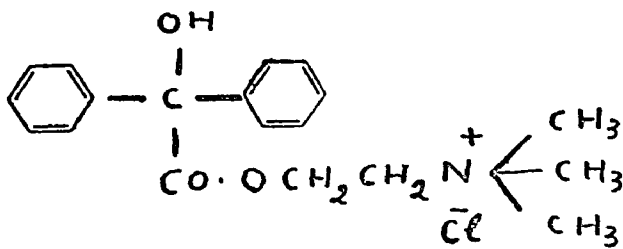
लॉकेसिन

हिस्टामिन एक विपम-चक्रीय एमाइन है और शरीरमें प्रोटीनके साथ संयुक्त स्थितिमें रहता है। जव वह शरीरके अन्दर मुक्त अवस्थामें आ जाता है तो एक प्रकारका विकार पैदा होता है, जिसे 'एलर्जी' कहते हैं। एलर्जी वैसे तो कई कारणोंसे होती है, लेकिन हिस्टामिनके कारण हुई हो तो उसे मिटानेके लिए खास प्रकारकी दवाइयाँ दी जाती हैं। इनमें रसायनविदों द्वारा संश्लिष्ट वेनाड्रिल और फेनर्गन-जैसी दवाइयाँ प्रमुख हैं। इस प्रकारकी औपधियोंको एण्टी-एलर्जिक अथवा प्रति-एलर्जिक कहते हैं।

बेनाड्रिल

फेनर्गन
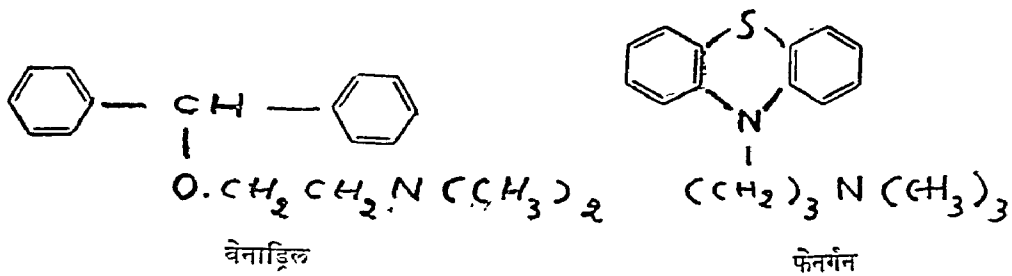
अभी तक हम कुछ तन्त्रान्वयी औषधियोंका विवेचन करते रहे; अब चिकित्सामें रसायनी औषधियोंकी चर्चा की जाएगी।

रसायनी चिकित्सान्वयी (Chemotherapeutic) औषधियाँ

डॉ० एर्हलिक ट्राइप्नोसोम नामक विषाणुओंपर ऐज़ो वर्गके ट्रिपन रेड रंगका प्रयोग कर रहे थे। उन्हीं दिनों अफ्रीकामें होनेवाले निद्रालुरोग (sleeping sickness) पर एटोक्सिल नामकी संखिया-युक्त दवाईका प्रयोग किया गया। इससे डॉ० एर्हलिकके मनमें यह विचार जाग्रत हुआ कि यदि इस औषधिकी संरचनामें परिवर्तन कर दिया जाए तो सम्भवतः सक्षम औषधि उपलब्ध हो जाए। इस विचारने उन्हें अनेक रासायनिक पदार्थोंके संश्लेषणकी प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने जिन पदार्थोंको संश्लिष्ट किया उनमेंसे कुछ उपदंश तथा ट्राइप्नोसोम जीवाणुओंसे होनेवाले रोगोंको रोकनेवाले साबित हुए; यद्यपि उपदंशके अकसीर इलाजके लिए उन्हें संश्लेषणके प्रयोगों-

एटोक्सिल
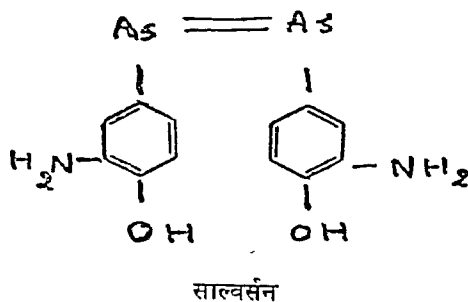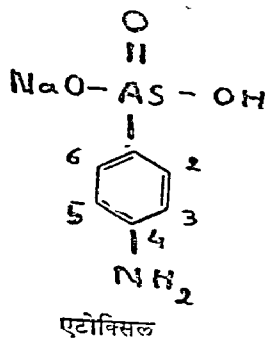
साल्वर्सन

को जारी रखना पड़ा, जब तक कि '६०६' के नामसे प्रसिद्ध 'साल्वर्सन' प्राप्त न हो गया। साल्वर्सनकी संरचनामें नाम-मात्रके परिवर्तनसे उससे भी श्रेष्ठ नियोसाल्वर्सन नामक औषधि उपलब्ध हुई। इस प्रकार संखियावाले पदार्थोंके संश्लेषणका विपुल विकास हुआ।

ट्रिपन रेडने चूहेके पेटमें विद्यमान ट्राइप्नोसोमका अवश्य प्रतिरोध किया, परन्तु वह सभी प्रकारके ट्राइप्नोसोमपर प्रभावी सिद्ध न हुआ। काफी अन्वेषण-अनुसन्धानके बाद १९४२ ई०में फोर्नो सुरेमाइन-श्रेणीका पता लगा पाया। इस श्रेणीमें यूरिया समूह था। इस समूहके बदले नये

अणुसमूह NH_2 जोड़नेसे डाइएमिडिन वर्गकी औषधियाँ बनाई जा सकीं। इसके अतिरिक्त क्विनो-
लिनवाली औषधियाँ भी खोजी गईं। इस वर्गमें एक उल्लेखनीय घटना देखनेको मिली। सक्रियता
प्रदर्शित करनेके लिए अणुमें सममिति (symmetry) होनी चाहिए और साथ ही अन्तिम समूह
भारी होना चाहिए। फिर यह भी पता चला कि सममित औषधियाँ खास प्रकारकी बीमारियोंको
और असममित औषधियाँ दूसरे प्रकारकी (ट्राइप्नोसोमसे पैदा होनेवाली) बीमारियोंको अच्छा
करनेमें प्रभावी होती हैं। इससे यह तथ्य ज्ञात हुआ कि अणुकी दिग्रचना और औषधीय गुणमें
काफी-कुछ सम्बन्ध रहता है।

असममित पदार्थोंमें अणुओंकी दिग्रचना विशिष्ट प्रकारकी होती है। उनके विलयनमेंसे
प्रकाश पारित किया जाए तो प्रकाश-किरणें बाईं अथवा दाईं ओर मुड़ जाती हैं। इसलिए इस
तरहके पदार्थोंको प्रकाश सक्रिय (optically active) कहते हैं। इनके अणुकी दिग्रचना
वामवर्ती और दक्षिणवर्ती, दोनों ही प्रकारकी होती हैं। यों ऊपरसे देखनेपर तो इनकी दिग्रचना
एक-जैसी ही प्रतीत होती है, परन्तु व्यक्ति और काँचमें दिखाई देते उसके प्रतिबिम्बमें पाये जाने
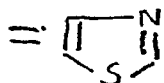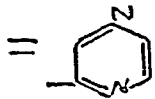
$H_2N-C_6H_4-SO_2NH.R$

पिरिडिन-वलय (1–6; 4 — अ)

R = सल्फापिरिडिन

= सल्फाथायेजोल

= सल्फाडायाजिन
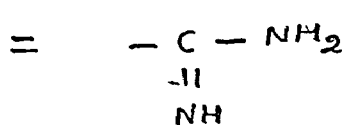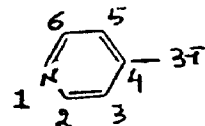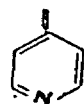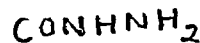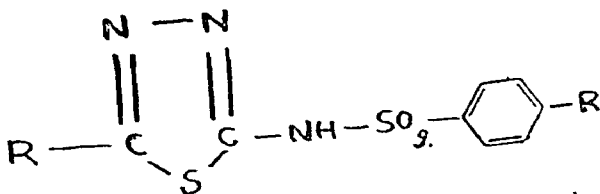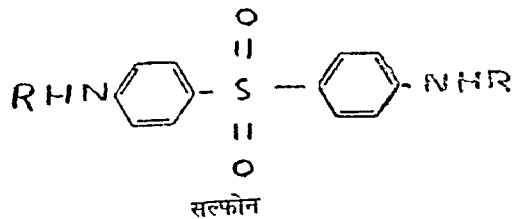
= $-C(=NH)-NH_2$ सल्फाग्वायनेडिन

$CONHNH_2$

आयसोनायेजाइड

$R-C(=N-N=)C(-S-)-NH-SO_2-C_6H_4-R$

सल्फाथायाडायाजोल

$RHN-C_6H_4-SO_2-C_6H_4-NHR$

सल्फोन

$CH_3CONH-C_6H_4-CH=N-NH-C(=S)-NH_2$

टिबियोन .... अ .... पैराएमिनो सेलिसिलिक अम्ल

$C_5H_7-(CH_2)_n COOH$

n=10 हिड्नोकार्पिक अम्ल
n=12 शाल्मुगरिक अम्ल

$H_2N-C_6H_4-N=N-C_6H_4-SO_2NH_2$
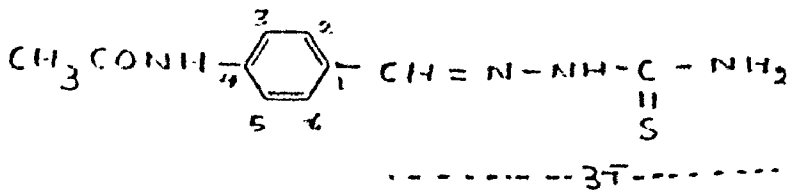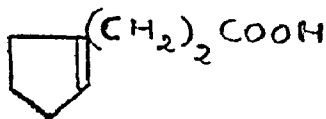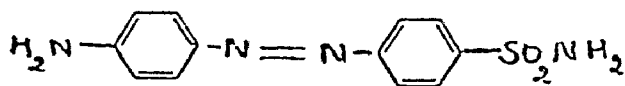
प्रोन्टोसिल

वाले अन्तरकी तरह बाईं बाजू दाहिनी ओर दिखाई देती है। वामवर्ती पदार्थ शरीरके अन्दरके कुछ जीवाणुओंका नाश कर सकते हैं, परन्तु दक्षिणवर्ती उनपर कोई भी प्रभाव नहीं डालते। वामवर्ती एड्रिनलिन और दक्षिणवर्ती एड्रिनलिन दोनों रासायनिक दृष्टिसे एक ही पदार्थ हैं; परन्तु संरचना बाईं और दाहिनी होनेके कारण उन्हें भिन्न समझा जाता है। वामवर्ती एड्रिनलिन मानव-शरीरमें औषधीय दृष्टिसे उल्लेखनीय कार्य करता है, जो दक्षिणवर्ती एड्रिनलिन नहीं कर पाता।

रसायनी चिकित्साके विकासक्रमका दूसरा उल्लेखनीय सीमाचिह्न गेहार्ड डोमाग्कने १९३४ ई०में स्थापित किया। प्रोन्टोसिल नामक एक ऐजो रंग स्ट्रेप्टोकोकाईसे उत्पन्न होनेवाले रोगों पर प्रभावी सिद्ध हुआ। परीक्षणोंके बाद पता चला कि प्रोन्टोसिल शरीरमें जानेके बाद विखण्डित होता और पैराएमिनो बेनज़िन सल्फोनेमाइड बन जाता है। इस जानकारीके बाद उसपर अनेक समूह-परिवर्तनकर हजारों सल्फोनेमाइड पदार्थोंका संश्लेषण किया गया। उनमेंसे कुछ निश्चित संरचनावाले पदार्थ ही औषधिके रूपमें प्रभावी साबित हो सके। इन औषधियोंकी विशेषता यह है कि वे भिन्न-भिन्न जातिके कोकाई जन्य रोगोंके इलाजमें कारगर पाई गई। सल्फा-ग्वायनेडिन बेसिलसजन्य पेचिशमें फायदेमन्द साबित हुई। सल्फा-औषधियोंकी खोजसे पहले न्युमोनिया, मेनिनजाइटिस, और सूजाक (gonorrhoca) जैसे रोगोंका सामना करना बड़ा ही विकट काम था। परन्तु विभिन्न प्रकारकी सल्फा-दवाइयोंके आविष्कारके बाद इन रोगोंकी सफल चिकित्सा सम्भव हुई और ये रोग न तो भयंकर और न असाध्य ही रह गए।

इसी सन्दर्भमें लगे हाथों यह भी देख लिया जाए कि औषध-मारण या औषध-विरोध (drug-antagonism) क्या है? पैरा-एमिनो बेनजोइक अम्लकी थोड़ी-सी मात्रा भी यदि सल्फा-औषधियोंमें मिला दी जाए तो उससे औषधिकी प्रति-जीवाणु सक्षमतामें बाधा पहुँचती है। इससे पैरा-एमिनो बेनजाइक अम्लको सल्फा-औषधियोंका मारक या विरोधी (antagonist) कहा जाता है। औषध-विरोधकी प्रक्रियाको समझ पाना बहुत मुश्किल है, क्योंकि वह भिन्न-

$$CH_3CONH-C_6H_4-CH=N-NH-C(=S)-NH_2$$

---------अ---------

टिवियोन

पेराएमिनो सेलिसिलिक अम्ल

$$C_5H_7(CH_2)_nCOOH$$

n=10 हिड्नोकार्पिक अम्ल
n=12 शालमुगरिक अम्ल

$$H_2N-C_6H_4-N=N-C_6H_4-SO_2NH_2$$

प्रोन्टोसिल

वाले अन्तरकी तरह वाईं वाजू दाहिनी ओर दिखाई देती है। वामवर्ती पदार्थ शरीरके अन्दरके कुछ जीवाणुओंका नाश कर सकते हैं, परन्तु दक्षिणवर्ती उनपर कोई भी प्रभाव नहीं डालते। वामवर्ती एड्रिनलिन और दक्षिणवर्ती एड्रिनलिन दोनों रासायनिक दृष्टिसे एक ही पदार्थ हैं; परन्तु संरचना वाईं और दाहिनी होनेके कारण उन्हें भिन्न समझा जाता है। वामवर्ती एड्रिनलिन मानव-शरीरमें औषधीय दृष्टिसे उल्लेखनीय कार्य करता है, जो दक्षिणवर्ती एड्रिनलिन नहीं कर पाता।

रसायनी चिकित्साके विकासक्रमका दूसरा उल्लेखनीय सीमाचिह्न गेहार्ड डोमाग्कने १९३४ ई०में स्थापित किया। प्रोन्टोसिल नामक एक ऐज़ो रंग स्ट्रेप्टोकोकाईसे उत्पन्न होनेवाले रोगों पर प्रभावी सिद्ध हुआ। परीक्षणोंके वाद पता चला कि प्रोन्टोसिल शरीरमें जानेके वाद विखण्डित होता और पेराएमिनो वेनज़िन सल्फोनेमाइड वन जाता है। इस जानकारीके वाद उसपर अनेक समूह-परिवर्तनकर हजारों सल्फोनेमाइड पदार्थोंका संश्लेषण किया गया। उनमेंसे कुछ निश्चित संरचनावाले पदार्थ ही औषधिके रूपमें प्रभावी सावित हो सके। इन औषधियोंकी विशेषता यह है कि वे भिन्न-भिन्न जातिके कोकाई जन्य रोगोंके इलाजमें कारगर पाई गई। सल्फा-ग्वायनेडिन वेसिलसजन्य पेचिशमें फायदेमन्द सावित हुई। सल्फा-औषधियोंकी खोजसे पहले न्युमोनिया, मेनिनजाइटिस, और सूजाक (gonorrhoea) जैसे रोगोंका सामना करना वड़ा ही विकट काम था। परन्तु विभिन्न प्रकारकी सल्फा-दवाइयोंके आविष्कारके वाद इन रोगोंकी सफल चिकित्सा सम्भव हुई और ये रोग न तो भयंकर और न असाध्य ही रह गए।

इसी सन्दर्भमें लगे हाथों यह भी देख लिया जाए कि औषध-मारण या औषध-विरोध (drug-antagonism) क्या है? पैरा-एमिनो वेनजोइक अम्लकी थोड़ी-सी मात्रा भी यदि सल्फा-औषधियोंमें मिला दी जाए तो उससे औषधिकी प्रति-जीवाणु सक्षमतामें वाधा पहुँचती है। इससे पैरा-एमिनो वेनजाइक अम्लको सल्फा-औषधियोंका मारक या विरोधी (antagonist) कहा जाता है। औषध-विरोधकी प्रक्रियाको समझ पाना वहुत मुश्किल है, क्योंकि वह भिन्न-

मलेरियाके फैलावको रोकनेके लिए मच्छरको नष्ट करना जरूरी है। डी० डी० टी० इसका अकसीर उपाय है। परन्तु मनुष्यको एक बार मलेरिया हो जाने पर उसे मिटानेके लिए रोगकी पहली, दूसरी और तीसरी, एवं चौथी—तीनों ही अवस्थाओंके अनुरूप त्रिपक्षीय प्रयत्न करने होते हैं। रसायनविदोंने ऐसी दवाइयाँ खोज निकाली हैं कि मलेरियाके जीवाणु किसी भी अवस्थामें क्यों न हों, उन्हें नष्ट किया जा सकता है। पहले मलेरियाके उपचारमें कुनैन प्रचलित था। उसकी संरचनामें क्विनोलिन वलय होता है। प्रथम विश्वयुद्धके समय और उसके बाद जर्मनीमें कुनैन मिलना मुश्किल हो गया। तब रसायनविदोंने क्विनोलिन वलयमें आठवें स्थान पर $-NH(CH_2)_2N(C_2H_5)$ समूह रखकर और उस शृंखलामें परिवर्तन करके पेण्टाक्विन-जैसी अनेक दवाइयाँ बनाईं। उसके बाद कुछ वर्षोंके उपरान्त मेपाक्रिन बनाया गया। द्वितीय विश्वयुद्धके समय जर्मन सैनिक जिन दवाइयोंका उपयोग करते थे वे मित्र-राष्ट्रके सैनिकोंके हाथ लगीं और तब पता चला कि उन दवाइयोंमें पार्श्वसमूह क्विनोलिनके चौथे स्थानपर है। इस जानकारीसे इस दिशामें संश्लेषणके कार्यको वेग मिला और क्लोरोक्विन और केमोक्विन जैसी औषधियाँ अस्तित्वमें आईं।

१९४२ ई०में इंग्लैण्डमें कर्ड, डेवी और रोज़ने विकासका एक नया क्षेत्र खोज निकाला। उन्होंने जैसा क्विनोलिन और मेपाक्रिनमें होता है उस तरहके एक्रिडिनके बदले पिरिमिडिन वलयको चुना और नये-नये औषधीय पदार्थोंका संश्लेषण आरम्भ कर दिया।

$NH-CH(CH_3)-(CH_2)_3N(C_2H_5)_2$

क्लोरोक्विन

डी० डी० टी०

$H_3C-CH-(CH_2)_3N(C_2H_5)_2 \rightarrow R$

पेमाक्विन

बेनज़िन-पिरिमिडिन वलयकी सन्धि
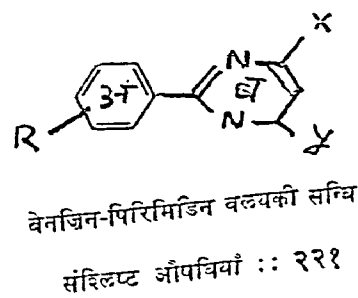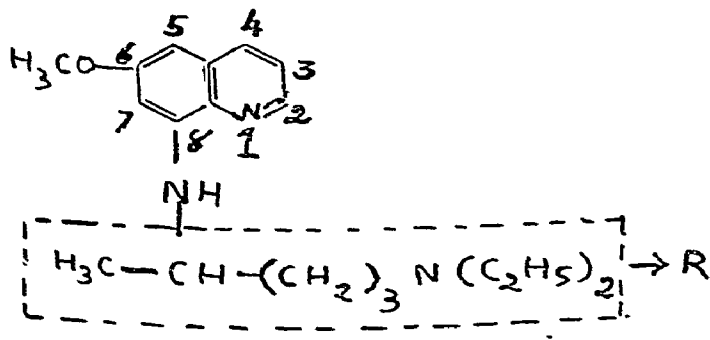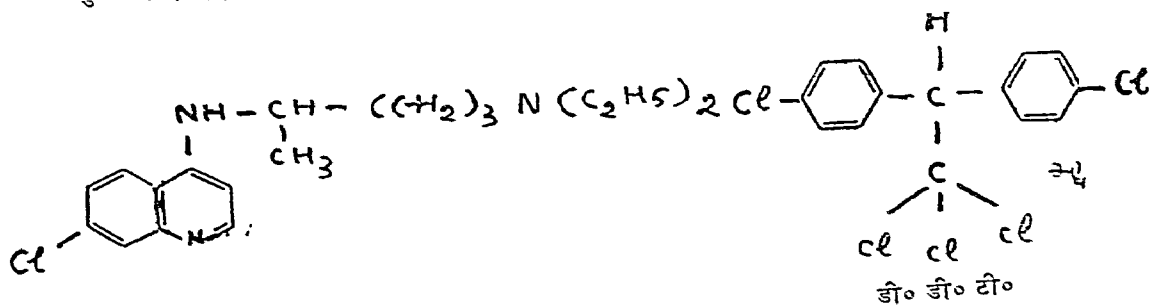
E = Mc²

रसायन दर्शन

COMPLEMENTARY COPY
Presented by..........................
...................Dt..........

संयोजक : रमेश सुमन्त महेता
प्रधान सम्पादक : भोगीलाल गांधी
सहायक सम्पादक : वंसीधर गांधी

सम्पादक-मण्डल

श्री ईश्वरभाई पटेल : श्री उमाशंकर जोशी : श्री वावूभाई जश० पटेल
श्री रविशंकर रावल : श्री वी० सी० पटेल : श्री एच० एम० पटेल
श्री व० ही० भणोत : श्री यशवन्त शुक्ल : श्री हरिहर प्रा० भट्ट
श्री विजयगुप्त मौर्य : श्री पी० सी० वैद्य : श्री नीरूभाई देसाई
श्री जशभाई का० पटेल : श्री अम्वूभाई पटेल : श्री भोगीलाल सांडेसरा
श्री रमणभाई पटेल : श्री जे० जी० चौहाण

परामर्शकगण

पंडित सुखलाल जी : श्री रामप्रसाद वक्षी
श्री काकासाहव कालेलकर : श्री अनन्तराय रावल
श्री गगनविहारी महेता : श्री चन्द्रवदन सी० महेता
श्री हंसा वहन महेता : श्री वापालाल वैद्य
श्री उमाशंकर जोशी : श्री फीरोज का० दावर
डा० विक्रम साराभाई : श्री हरिनारायण आचार्य
श्री वी० वी० योध : श्री सी० एन० वकील
डा० शान्तिलाल महेता : प्रो० डी० टी० लाकडावाला
श्री विष्णुप्रसाद त्रिवेदी : प्रो० एम० एल० दांतवाला
श्री रसिक लाल परीख : श्री वचुभाई रावत

गुजरात रिफ़ाइनरी—तीसरी यूनिट

गुजरात रिफ़ाइनरी
(कोयली)

० नींव डालनेका मुहूर्त्त

१० मई, १९१३

उत्पादन का आरंभ :

प्रथम यूनिट—२८-१०-६३

दूसरी यूनिट —२८-५-६६

तीसरी यूनिट—१८-९-६७

० केपेसिटी—क्षमता

प्रतिदिन ९००० टन क्रूड तैलका फ्रेक्शनेशन

० उत्पादन

मोटर स्पिरिट

केरोसिन

हाईस्पीड डीज़ल

लाइट डीजल

जलानेका तैल

विशिष्टता

भारतीय इंजीनीयर ० भारतीय साजसामान ० कम-से-कम विदेशी मुद्रा

गुजरात रिफ़ाइनरीके (कोयली) प्रथम दो यूनिट—प्रत्येककी केपिसिटी १० लाख टन।

पुनर्योजन—रिफॉर्मिंग यूनिट्स (कोयली)

४

ज्ञान-गंगोत्री ग्रन्थमाला : विज्ञान-विद्याशाखा
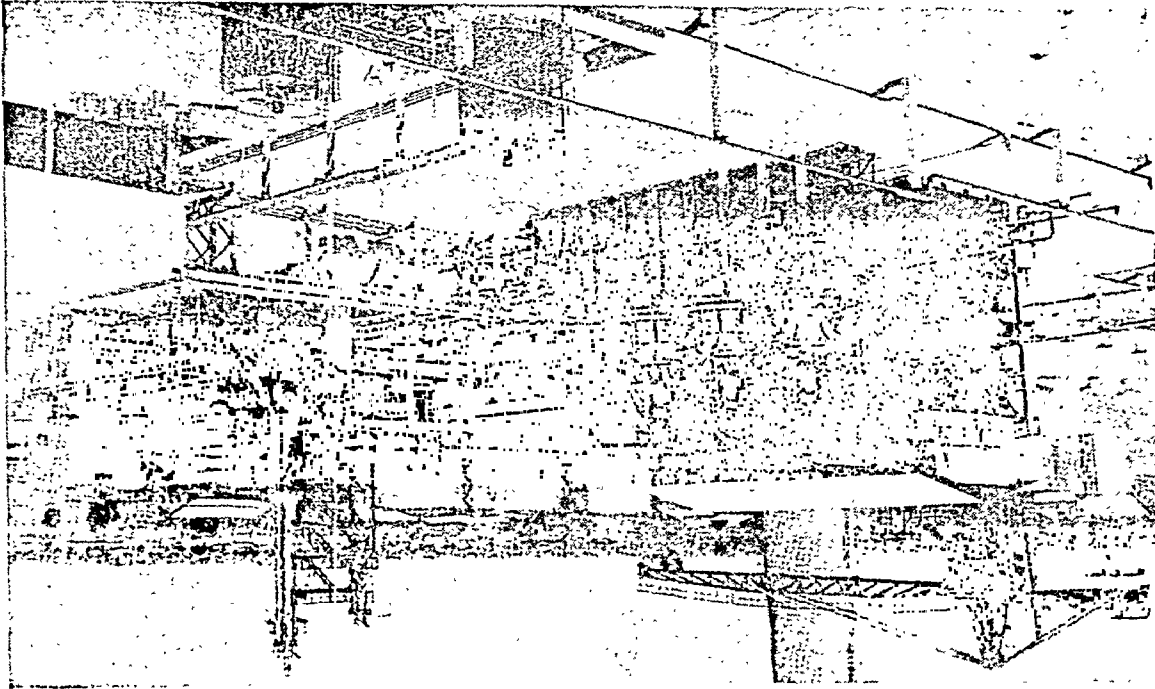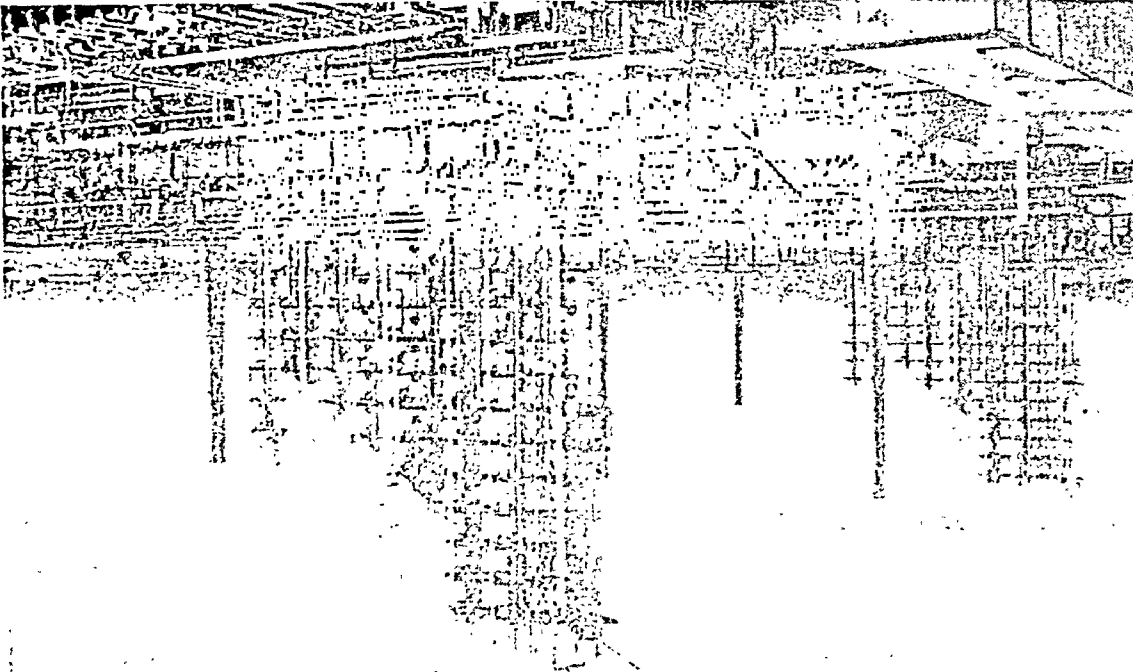
रसायन दर्शन

लेखक-मंडल

डा० नरसिंह मू० शाह

डा० सुरेश सेठना

डा० भास्कर मांकड

श्री पद्मकान्त शाह

श्री वंसीधर गांधी

अनुवादक:

श्री श्यामू सन्यासी

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालयकी मानक-
ग्रन्थोंकी प्रकाशन-योजनाके अन्तर्गत प्रकाशित

सरदार पटेल युनिवर्सिटी-वल्लभविद्यानगर

आभार दर्शन

73877

लेखन :

⊙ डा० नरसिंहभाई मू० शाह : रसायन विज्ञानके क्षेत्रमें अग्रगण्य प्राध्यापक और लेखक।

⊙ डा० सुरेश सेठना : म० स० विश्वविद्यालय, वड़ोदाके रसायन विभागके अध्यक्ष और लेखक तथा १९६८की 'अखिल भारतीय विज्ञान परिषद'के रसायन विभागके अध्यक्ष।

⊙ डा० भास्कर मांकड : सरदार पटेल युनिवर्सिटीके रसायन विभागके प्राध्यापक।

⊙ श्री पद्मकान्त शाह : नेशनल रेयन कारपोरेशन (बम्बई)के पुस्तकालय-अध्यक्ष : रसायनशास्त्रके सिद्धहस्त लेखक।

⊙ श्री बंसीधर गांधी : ज्ञान-गंगोत्री-ग्रन्थमालाके सह-सम्पादक; वैज्ञानिक विषयोंके लेखक।

अनुवाद :

⊙ श्री श्यामू सन्यासी : विज्ञान और मानविकी विषयोंके अधिकारी विद्वान, लेखक और अनुवादक।

योजना-दान : हरि ॐ आश्रम, नडियाद

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालयकी मानक-ग्रन्थोंकी प्रकाशन-योजना-के अन्तर्गत इस पुस्तकका अनुवाद और पुनरीक्षण वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोगकी देखरेखमें किया गया है और इस पुस्तककी एक हज़ार प्रतियाँ भारत सरकार द्वारा खरीदी गई हैं।

© सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर

प्रकाशन तिथि : १ जनवरी, १९७२ ई०
प्रथम संस्करण, ३००० प्रतियाँ

कीमत :
रु० २०.०० (Rs. 20.00) + डाक खर्च रु० २.०० (Rs. 2.00)

प्रकाशक : कान्तिलाल अमीन, रजिस्ट्रार : सरदार पटेल युनिवर्सिटी-वल्लभविद्यानगर (भारत

मुद्रक :
सम्मेलन मुद्रणालय : १३ सम्मेलन मार्ग : प्रयाग (भारत)

प्रस्तावना

हिंदी और प्रादेशिक भाषाओंको शिक्षाके माध्यमके रूपमें अपनानेके लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्च कोटिके प्रामाणिक ग्रंथ अधिकसे अधिक संख्यामें तैयार किये जाएँ। भारत सरकारने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोगके हाथमें सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमानेपर करनेकी योजना बनायी है। इस योजनाके अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओंके प्रामाणिक ग्रंथोंका अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाये जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकोंकी सहायतासे प्रारंभ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान अध्यापक हमें इस योजनामें सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नये साहित्यमें भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलीका ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारतकी सभी शिक्षा-संस्थाओंमें एक ही पारिभाषिक शब्दावलीके आधारपर शिक्षाका आयोजन किया जा सके।

ज्ञान-गंगोत्री श्रेणीका चतुर्थ ग्रंथ 'रसायन दर्शन' आयोग द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। इस ग्रंथके लेखक हैं : सर्वश्री डा० नरसिंह मू० शाह, डा० सुरेश सेठना, डा० भास्कर मांकड, श्री पद्मकांत शाह तथा श्री वंसीधर गांधी। श्री श्यामू सन्यासी ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है तथा श्री गिरिराज किशोरने इस अनुवादका पुनरीक्षण कार्य किया है।

अध्यक्ष

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

निवेदन

स्वतंत्रता-प्राप्तिके पश्चात हमारे देशमें शिक्षाका विस्तार हुआ है। साथ ही उच्च शिक्षा-परिपाटीके कारण ज्ञान-विस्तारके नये अवसर सुलभ हुए हैं। तकनीकी क्षेत्रमें भी हम वड़े कदम भर रहे हैं। इतना होते हुए भी, कई कारणोंसे, उच्च शिक्षाकी प्राप्तिके लिए साधारण छात्रके ज्ञान-संस्कारका संवल पर्याप्त नहीं है; अतः विश्वविद्यालयीय छात्रका ज्ञान-व्याप भी वहुत कम प्रतीत होता है।

यह भी स्वाभाविक है कि स्वाधीन लोकतांत्रिक समाजके सर्वांगीण विकास-कालमें सर्व-साधारण शिक्षित प्रजाजनको चुनौतियाँ देने वाली असंख्य जटिल समस्याएँ भी उपस्थित होती रहें। ऐसी परिस्थितिमें, वौद्धिक तालीमका ज्ञानसंचय अपर्याप्त रह जानेपर एक सुसज्ज नागरिकके रूपमें उसके व्यक्तित्वकी क्षति वैयक्तिक व राष्ट्रीय—दोनों दृष्टियोंसे प्रभावशाली पूर्तिकी अपेक्षा करती है।

इस क्षति-पूर्तिके उद्देश्यसे सरदार पटेल युनिवर्सिटीने अपनी सीमाओंमें रहकर यथासंभव, एक अल्प किन्तु संनिष्ठ प्रयास किया है, और इसे 'ज्ञान-गंगोत्री'के माध्यमसे मानव विद्या-शाखाके वीस और विज्ञान विद्याशाखाके दस—इस तरह कुल तीस ग्रंथोंकी मालाकी योजनासे आरंभ किया है।

महाविद्यालय-स्तरके छात्रों व शिक्षित नागरिकोंको ध्यानमें रखकर यह ग्रंथमाला तैयार करनेका निश्चय किया गया है। इस ग्रन्थ-मालाके उद्देश्य हैं:

(१) अध्ययनकी इच्छावाले पाठक इन ग्रंथोंको थोड़े परिश्रमसे किंतु रसपूर्वक पढ़ें; उनकी ज्ञान-पिपासा अधिक वढ़े; (२) अध्ययनके उपरांत अध्येताके चित्त-पटल पर वहुविध विकासके मुख्य सोपान उभर आवें; (३) जानकारी व तथ्योंकी अनेक-विधता द्वारा ज्ञान-प्राप्तिका 'गुर' पाठक हस्तगत करें और (४) अध्येताओंके चित्तमें मूलभूत सत्य एवं मूल्योंके प्रति श्रद्धाका वीजारोपण हो।

इस दृष्टिसे इतिहास, चिंतन-साहित्य, ललितकला और विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रोंके विभिन्न प्रकारके आलेखनोंके लिए कुछ आधारभूत वातें स्वीकार करके ही हम अग्रसर हुए हैं। यथा—

(१) मानव-विकासमें अनेक प्रेरक-शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं; परंतु अंततोगत्वा परिस्थितियोंके परिवर्तनमें मानवीय चेतना भी प्रमुख भूमिका अदा करती है; और हरेक मानवके व्यक्तित्वके यथासंभव पूर्ण विकासकी नींव पर ही सामाजिक व सामुदायिक विकासका भवन रचा जाना चाहिए।

(२) विज्ञानका रहस्य परिवर्तनशीलतामें निहित है और अखंड शोध-वृत्ति ही उसकी कुंजी है। विज्ञानकी विलक्षणता तथ्योंके भंडारका संचय करनेमें नहीं है। किंतु बाह्य विशृंखलताओंकी अंतर्निहित संवादिता खोज लेनेमें है।

(३) अन्वेषणकी इस प्रक्रियामें मानवकी चेतना और कल्पना शक्तिका योगदान असाधारण है; और यह वैज्ञानिक सत्य मुक्त मानवके निर्णयका ही फल है।

(४) आखिर तो विज्ञान भी अन्य मानवीय क्षेत्रोंकी भांति मूल्योंके निर्णयके बिना मात्र यांत्रिक प्रवृत्तिके रूपमें टिकेगा नहीं। इस संदर्भमें विज्ञान और मानव-विद्याओंके बीचकी ज्ञान-सीमाएँ अभिन्न प्रतीत होती हैं।

(५) जीवनकी समग्रताके साथ आदिकालके तदात्मभूत बनी सृजन-प्रवृत्तियोंके प्रति विशेष अभिमुख होना व आत्मीयता जगाना उचित है। हमारा विद्यार्थी और नागरिक सौंदर्य निरखनेवाला बने, सौंदर्य पहचाननेवाला बने और उसका आस्वादन करनेवाला अर्थात् परमानंदी घंट पीनेवाला बने; ऐसी चैतसिक सृजन-शक्तिका रहस्योद्घाटन करना चाहिए।

(६) इस ग्रंथमालाका लक्ष्य उस रहस्यको अवगत करना है कि ज्ञान केवल जानकारी नहीं है; विज्ञान भौतिक या प्राकृतिक शक्तियोंका केवल संकलन या पृथक्करण नहीं है; अनुभूति केवल घटनाओंका बाह्य स्पर्श नहीं है; ज्ञानानुभूति इससे भी कुछ विशिष्ट है।

हमने सदैव इस समानताका अनुभव किया है कि उपर्युक्त बातें सिद्ध करनेका कार्य अति दुष्कर है। एक ओर युवकों व नागरिकोंके स्तर, उनकी अभिरुचि, अध्ययन-क्षमता और बोध-क्षमताकी सीमाएं हैं; तो दूसरी ओर इतिहास-विकासकी झाँकी करानेका कार्य कठिन है। गंभीर व कठिन समझे जानेवाले विषयोंको गंभीरतासे किंतु आस्वाद्य बनाकर प्रस्तुत करनेका कार्य लेखकोंके लिए कसौटी-रूप है। सम्पादकोंकी भी मर्यादाएं होती हैं। इस प्रकार यह प्रयास महत्त्वाकांक्षी व दुराराध्य लगते हुए भी अति महत्वाकांक्षी किंवा असाध्य नहीं है। इस यात्राका आरंभ हमने इस विश्वाससे किया है कि गंगावतरण करानेका तो नहीं, गंगोत्रीमें आचमन करानेका यश तो हमें मिलेगा। विदेशी ग्रंथोंके अनुवाद या रूपान्तरोंको प्रस्तुत करनेके बजाय यथासंभव मौलिक अध्ययन व चिंतन प्रस्तुत करना हमारा उद्देश्य है।

अपने इस प्रयासमें हरिः ॐ आश्रम, नडियादवाले पूज्य श्री मोटासे, भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालय और राज्य सरकारके शिक्षा विभागसे तथा अन्य सज्जनों और संस्थाओंकी ओरसे जो आर्थिक सहायता हमें प्राप्त हुयी है उसके लिए हम इन सभीके बहुत ही कृतज्ञ हैं। नडियाद और रांदेरके अपने भक्तों और प्रशंसकों द्वारा ज्ञान-गंगोत्री श्रेणीके ग्रंथोंके प्रकाशनार्थ दो लाख रुपयोंका दान सरदार पटेल युनिवर्सिटीको दिलवाकर पूज्य श्री मोटाने ज्ञान-गंगोत्रीके इस कार्यका मंगलारंभ किया है।

मगर यह हुयी गुजराती ग्रंथ-श्रेणीकी बात। इस श्रेणीके प्रथम दो ग्रंथोंके प्रकट होनेके बाद पूज्य श्री मोटाने सोचा कि यह ग्रंथ-श्रेणी हिंदी जनताके लिए भी उतनी ही उपयोगी है जितनी गुजराती जनता के लिए और उन्होंने ज्ञान-गंगोत्रीकी हिन्दी-आवृत्तिके लिए पैंतीस हजार रुपयेका दान सरदार पटेल युनिवर्सिटीको देनेका विचार प्रकट किया। पूज्य श्री मोटाकी यह शुभ भावना फलवती साबित हुयी। हिन्दी संस्करणके लिए अन्य व्यक्तियोंसे हमें दान

मिलने लगा और इस प्रकार इस श्रेणीके प्रथम ग्रंथ 'ब्रह्माण्ड दर्शन'के हिन्दी-संस्करणका प्रकाशन शक्य बना। हम पूज्य श्री मोटाके और अन्य सभी सज्जनोंके बहुत कृतज्ञ हैं। हम आशा करते हैं कि हिंदी संस्करणके इस कार्यमें भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालयसे भी हमें सहायता प्राप्त होगी।

इस ग्रंथ श्रेणीमें हिन्दीमें अबतक तीन ग्रंथ—ब्रह्माण्ड दर्शन, पृथ्वी दर्शन और स्वास्थ्य दर्शन प्रगट हो चुके हैं। यह चौथा ग्रंथ 'रसायन दर्शन' प्रगट हो रहा है।

गुजरातके अनेक श्रेष्ठ चिंतकों व लेखकोंने इस योजनाके सम्पादक-मण्डलके सदस्यों और परामर्श-दाताओंके रूपमें अपनी सेवाएँ अर्पितकर तथा अनेक प्राध्यापकों, अध्येताओं और विद्वानोंने लेखनका दायित्व स्वीकार कर हमारी योजनाओंको मूर्तरूप दिया है, तदर्थ हम उनके ऋणी हैं।

ज्ञान-गंगोत्री श्रेणीकी हिन्दी आवृत्तिको हिन्दी जगतके समक्ष लानेका श्रेय दिल्लीकी राधाकृष्ण प्रकाशन संस्थाके अध्यक्ष श्री ओंप्रकाश जीको है। उन्होंने इस ग्रंथ-मालाके प्रमुख वितरक होनेकी स्वीकृति देकर हमारी योजनाको बल प्रदान किया है।

हमारी युनिवर्सिटीकी सिण्डिकेटके सदस्यों, अन्य अध्यापकों और प्रशासकीय कर्मचारियोंने 'ज्ञान-गंगोत्री'के इस कार्यमें उत्साहपूर्वक सहयोग प्रदान किया है। उस बातका तथा इस योजना-के सम्पादक श्री भोगीलाल गांधी और सह-सम्पादक श्री बंसीधर गांधीकी नैष्ठिक यत्नशीलताका यहाँ उल्लेख करते हुए मुझे प्रसन्नता होती है।

भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्धारित पारिभाषिक पदावलीका प्रयोग इस ग्रन्थ-श्रेणीमें किया गया है।

—आर. एस. महेता
उपकुलपति
सरदार पटेल युनिवर्सिटी-वल्लभविद्यानगर

वल्लभविद्यानगर
१५-१२-७१

सत्कार

सरदार पटेल युनिवर्सिटीने शिक्षा-विस्तारका जो भगीरथ कार्य-भार अपने कंधोंपर उठाया है, उसका प्रारंभ विज्ञान शाखाके ग्रंथोंसे हुआ है यह निश्चय ही स्वागतार्ह है। पूर्वके तीन ग्रंथोंका सभी दिशाओंसे अच्छा स्वागत हुआ है, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यह चौथा ग्रंथ 'रसायन दर्शन' भी अपनी विशेषता सिद्ध करेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

आधुनिक युगमें रसायन विद्याका महत्त्व असाधारण है। औद्योगिक व चिकित्सा क्षेत्रके अतिरिक्त आधुनिक भौतिक आवश्यकताओंके साथ रसायन विज्ञान आश्चर्य उत्पन्न करे उस सीमा तक ओतप्रोत हो गया है। इस ग्रंथके प्रारंभमें भारतीय विज्ञानके आदि युगका परिचय देनेवाला अध्याय है; और अंतमें बीसवीं शतीकी क्षिप्र गति व विकासका परिचय देनेवाला अध्याय है। इन दो छोरोंके अति महत्त्वपूर्ण अध्यायोंके बीच रसायन विज्ञानके विकासके अनेक सोपान (काफी चित्रोंके साथ) तथा मूलभूत सिद्धान्त (आवश्यक तथ्योंके साथ) सुंदर रीतिसे निरूपित कर दिये गये हैं, यह इस ग्रंथकी विशेषता है। इतना ही नहीं बल्कि रसायन विज्ञान जैसे कठिन विषयको उसके निष्णात लेखकोंने और सुधी संपादकोंने विद्यार्थियों तथा नागरिकोंके लिए सुलभ व रोचक स्वरूपमें प्रस्तुतकर इस ग्रंथको बहुत उपयोगी बना दिया है।

आजकी हमारी पीढ़ीके बौद्धिक-सांस्कारिक विकासका विचार करते समय मुझे ऐसा लगता है कि 'ज्ञान गंगोत्री'की पूरी योजना एक गौरवपूर्ण ज्ञानयज्ञके समान है।

मैं 'रसायन दर्शन' ग्रंथका सानंद सत्कार करता हूँ।

—डा० चतुरभाई एस० पटेल

भूतपूर्व उपकुलपति, महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, वड़ौदा

सम्पादकीय

ज्ञान-गंगोत्री श्रेणीका यह चतुर्थ ग्रंथ प्रगट हो रहा है।

यह एक प्रकारसे तकनीकी विषयका ग्रंथ है। उसका अध्ययन वैज्ञानिक ज्ञानकी अपेक्षा रखता है। किन्तु आधुनिक युगके औद्योगिक विकासमें इस विद्याका अपूर्व व्यावहारिक प्रदाय (योगदान) रहा है। अतः इस विज्ञानसे अपरिचित शिक्षित नागरिकोंका इस विषयमें प्रवेश करानेके उद्देश्यसे इस ग्रंथमें महत्त्वपूर्ण मूलभूत सूत्रोंका परिचय दे कर, उत्तरोत्तर विकसमान इस क्षेत्रके इतिहास, उसके व्यावहारिक प्रयोग व उसकी उपलब्धियाँ प्रस्तुत की गई है; भविष्य-की संभावनाओंकी ओर अंगुलिनिर्देश भी किया गया है। इस विद्याके क्षेत्रमें आदियुगमें भारतका आरंभ हमने भारतीय रसायन विद्यासे करना उचित समझा है। यहाँ एक स्पष्टता कर लेना उचित है: 'कृषि विज्ञान' पर एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार किया जा रहा है अतः हमने इस ग्रंथमें 'कृषि क्षेत्रमें रसायन विज्ञान' विषयका समावेश करना उचित नहीं समझा।

इस ग्रंथके सभी लेखक रसायन विज्ञानके क्षेत्रके प्रतिष्ठाप्राप्त, तद्‌विद लेखक है। उनके ज्ञान और सरल शैलीका लाभ इस ग्रंथके लिए उपकारक सिद्ध हुआ है। इस क्षेत्रके मूर्धन्य व आदरणीय विद्वान् आचार्य श्री नरसिंह भाई मू० शाहने इस ग्रंथकी सारी सामग्रीका आदिसे अंततक अवलोकन किया है तथा उनके निर्देश हमें बराबर मार्गदर्शन देते रहे हैं, एतदर्थ हम उनके विशेष आभारी है। इस ग्रंथके लेखक डा० सुरेश सेठनाने, हृदय रोगके असरमेसे मुक्त होनेके बाद, अपने सिर पर अखिल भारतीय विज्ञान परिषद्‌के रसायन विभागकी विभागीय अध्यक्षताका भारी उत्तरदायित्व होने पर भी, इस ग्रंथके सम्बन्धमें स्वीकृत जिम्मे-दारियाँ पूर्ण करनेमें जो उत्सुकता (तत्परता) दिखाई है, वह सचमुच उल्लेखनीय है।

इस ग्रंथके भारतीय रसायन विज्ञान वाले अध्यायमें जैन तत्त्वज्ञान (दर्शन)के सम्बन्धमें कुछ स्थापनाएँ है। इन स्थापनाओंका पुनरीक्षण करनेमें जैन दर्शनके पण्डित व इतिहासविद् एवं इस योजनाके एक परामर्शक श्री रसिकलाल छो० परीखने जो ममतापूर्ण सहकार प्रदान किया है, वह अपूर्व है।

इस ग्रंथको इस विषयके विद्वान् डा० चतुरभाई एस० पटेल (भूतपूर्व उपकुलपति म० स० यूनिवर्सिटी, बड़ोदा)की ओरसे जो सत्कार (स्वागत) प्राप्त हुआ है, वह विशेष आनंदप्रद बात है।

पूर्वके ग्रंथोंकी तरह यह ग्रंथ भी विद्यार्थियों व शिक्षित नागरिकोंके लिए एक महत्त्वपूर्ण विषयमें प्रवेश करानेमें उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसी आशाके साथ हम इसे प्रस्तुत कर रहे है।

मानविकी विद्याशाखा [२० ग्रन्थ]

- मानव-कुल दर्शन : (विश्व इतिहास सोपान) ३ ग्रन्थ
- विश्व दर्शन : (क्रान्तियाँ और वैज्ञानिक विकास) ३ ग्रन्थ
- भारत दर्शन : (आदि युगसे अद्यतन विकास) ७ ग्रन्थ
- विदेश दर्शन : (दुनियाके प्रमुख देशोंका परिचय) ३ ग्रन्थ
- साहित्य दर्शन : (विश्व साहित्य : गुजराती साहित्य) २ ग्रन्थ
- ललित कला दर्शन : (विविध कलाएँ : सिद्धान्त परिचय) २ ग्रन्थ

विज्ञान विद्याशाखा [१० ग्रन्थ]

- ब्रह्माण्ड दर्शन
- पृथ्वी दर्शन
- स्वास्थ्य दर्शन
- रसायन दर्शन
- जीव-रहस्य
- यांत्रिकी
- कृषि-विज्ञान
- परमाणु-दर्शन
- गणित शास्त्र
- विज्ञान : मानव और मूल्य

कुल **३०** ग्रन्थ

प्रत्येक ग्रन्थकी कीमत रु० २०.०० (Rs. 20.00) + डाकखर्च रु० २.०० (Rs. 2.00)

: प्राप्ति-स्थान :

राधाकृष्ण प्रकाशन

२, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली—६

अनुक्रम

खंड : १

महर्षि आचार्यश्री

डॉ० प्रफुल्लचंद्र राय

जन्म : २-८-१८६१

अवसान : १६-६-१९४४

"आप प्राचीन भारतके कोई महर्षि, गुरु हैं जो पुनर्जन्म लेकर आधुनिक भारतके ज्ञान-भाण्डार पर प्रकाश डालकर हमें प्रेरणाका पीयूष-पान करानेको पधारे हैं।

जब वर्तमानकालकी बुद्धिमत्ता द्वारा प्राप्त की हुई सिद्धियोंका इतिहास लिखा जायगा, तब रसायन-विद्याके आद्य-पिता, प्रचारक और अग्रदूतकी तरह आपका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा।

भारतीय रसायन-विद्याका इतिहास लिखकर, आपने भारतकी सिद्धियोंपर एक नवीन ही प्रकरण खोला है, और विस्मृत हो गए भूतकाल तक सेतुका निर्माण करके, वर्तमानकालके युवक शोधकर्त्ताओंको किन्हीं नागार्जुन तथा चरककी आत्मासे हाथ मिलानेका अवसर ला दिया है।

रसायन-विद्याके आपके शास्त्रीय ज्ञानने आपको अपने देशके कच्चे धनका व्यावहारिक उपयोग करनेके लिए प्रेरित किया और एक कौड़ी भी खर्च किये बिना विज्ञान एवं उसकी आनुषंगिक संस्था क्या-क्या कर सकती है, इसका जीवंत प्रतीक आपके द्वारा संस्थापित बंगाल केमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स बना रहेगा।

जीवनकी संध्यामें जब बहुजन समाज शांति और विश्रामका यत्न कर रहा है, तब एक पीढ़ी पहले आपकी जलाई हुई विज्ञानकी ज्योति-शिखाके सतत प्रज्ज्वलित रखनेके हेतु आप उसकी धुरीको वहन करते रहे हैं।"

[प्रेसिडेन्सी कालेज, कलकत्तासे निवृत्त होनेपर जब युनिवर्सिटी कालेजसे सम्बद्ध हुए, तब उनके शिष्यों द्वारा दिये गए अभिनन्दन-पत्रसे उद्धृत]

१ : भारतीय रसायन-शास्त्र

यह बताना सम्भव नहीं है कि रसायन-शास्त्रका प्रारम्भ कबसे हुआ। अनेक देशोंमें प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेषोंसे पता चलता है कि ई० पू० ३५०० वर्षसे भी पहले कतिपय रासायनिक प्रक्रियाएँ प्रचलित थीं। शराब, सिरका, धातु-कर्म, वानस्पतिक तथा प्राणिज रंग, खनिज रंग, पालिश किये हुए मिट्टीके बरतन आदिका उपयोग बहुत पुराना है। लेकिन इस प्रकारकी वस्तुओंमें निहित रासायनिक सिद्धान्तों एवं रासायनिक क्रियाओंकी जानकारी हमारे पूर्वजोंको नहीं थी। पाषाणकालीन अवशेषों (वस्तुओं)में सोनेके गहने भी मिले हैं। रसायनके क्षेत्रमें भारत, चीन और मिस्रने उल्लेखनीय प्रगति की थी। प्राचीनकालमें इस विद्याके जानकार जादूगर अथवा कीमियागर कहे जाते थे। विज्ञानके रूपमें रसायन-शास्त्रकी प्रगति पिछली दो शताब्दियोंमें हुई है। अब क्रमशः भारत, चीन, अरबदेश और यूरोपमें यह प्रगति किस प्रकार हुई, उसका विहंगावलोकन कर लिया जाए।

अन्य देशोंकी तरह प्राचीन भारतमें भी रसायन-शास्त्रका उद्‌भव जीवनकी आवश्यकताओंकी सन्तुष्टिके लिए व्यावहारिक कलाओंके विकासके परिणामस्वरूप हुआ। इसके अतिरिक्त द्रव्यकी रचना और उसके स्वरूपको समझनेकी दिशामें भी विचारोंका विकास हुआ। आत्म-परिरक्षण एवं नया ज्ञान प्राप्त करनेकी उत्कण्ठाने भी रसायन-शास्त्रको जन्म दिया।

भारतीय रसायन-शास्त्रके इतिहासको नीचे लिखे छह कालखण्डोंमें विभाजित किया जा सकता है :

१. प्रागैतिहासिक काल (ई० पू० ४०००से १५०० तक)
२. आयुर्वेदिक काल (वैदिक युग अथवा प्राक्-बुद्धकाल—लगभग ई० पू० ६००से ई० ८०० तक)
३. संक्रान्ति काल (ई० ८००से ११०० तक)
४. तांत्रिक युग (ई० ८००से १३०० तक)
५. औषधीय-रसायन (Iatro-chemical) युग—रसायनका औषधियोंके लिए उपयोग करनेका युग (ई० १३०० से १५०० तक)
६. अँगरेजोंके आगमनके बादका युग (लगभग १८०० ई०)—उस समय कला-कौशल और उद्योग-धन्धोंमें होनेवाला रसायनका उपयोग।

बलूचिस्तान, सिन्ध, पंजाब और गुजरातमें प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेषोंसे यह पता चलता

है कि प्रागैतिहासिक कालके भारतमें रसायनके जानकार थे। सिन्धके मोहेन-जो-दड़ो, पंजाबके हड़प्पा और गुजरातके लोथलमें मिले पुरातात्त्विक अवशेष यह प्रमाणित करते हैं कि प्राक्-आर्य-संस्कृति इन स्थानोंमें फैली हुई थी। यह संस्कृति मिस्रकी नील-नदीकी घाटी और मेसोपोटामिया (इराक)की सुमेरियन संस्कृतिसे सम्बद्ध या उसके समकक्ष थी।

विशेषज्ञोंके मतानुसार हड़प्पा संस्कृति ई० पू० २५००से १८०० तक सिन्धु नदी और उसकी सहायक पाँच नदियोंके प्रदेशमें फली-फूली। इसीलिये उसका नामोल्लेख आदि-कांस्ययुगकी सिन्धुघाटी-संस्कृतिके रूपमें किया जाता है।

उस प्रागैतिहासिक कालके लोग मिट्टीके बरतन बनानेकी कलासे ही परिचित नहीं थे, दो या अधिक रंगोंसे रंगनेकी कला भी जानते थे। इसका यह अर्थ हुआ कि उन्हें मिट्टीके बरतन पकानेवाली भट्ठियाँ बनानेकी विधि भी मालूम थी। ताम्र-खनिजसे ताँबा निकालनेकी कला, विभिन्न प्रकारकी आकृतियाँ बनानेके लिए उसे हथौड़ेसे पीटना, धातुको काटना और उसकी चादरें (पत्रे) बनाना तथा काँसेकी ढलाई करना भी वे जानते थे। इस कामके लिए ७००°–८००° सें० तापकी आवश्यकता होती है, यह अनुभव सिद्ध ज्ञान भी उन्होंने अर्जित कर लिया था।

ई० पू० १५००के आसपास आर्योंका आगमन हुआ। तबतक यह संस्कृति अपने विकसित रूपमें विद्यमान थी। आर्य आरम्भमें खेतिहर थे। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने विज्ञान, साहित्य, कला, दर्शन और धर्म आदि क्षेत्रोंमें प्रगति कर आर्य-संस्कृतिका निर्माण किया। इस संस्कृतिके आरम्भ-कालसे रसायन-विज्ञान तरक्की करने लगा। देशमें अनेक राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तनोंके बावजूद रसायन-विज्ञानकी प्रगति अनेक वर्षों तक जारी रही। लेकिन अन्तमें इस सचाईको मानना होगा कि मध्ययुगके आखिरी दिनोंमें इसके विकासमें क्रमिक रुकावट आने लगी।

ऋग्वेदके देवता मूलतत्त्वों एवं अन्य नैसर्गिक घटनाओंके विशिष्ट प्रतीक हैं, जैसे कि अग्निदेव, वायुदेव, सूर्यदेव आदि। औषधीय वनस्पतियोंको भी देवता माना जाता था, उदाहरणार्थ सोमवल्ली; इसका देवता सोमदेव रोगियोंको रोग-मुक्त करता है। हिन्दू कीमियागरीका उपाकाल सोमरससे आरम्भ होता है। अथर्ववेदमें डाकिनी, मारण-उच्चाटन एवं जादू-टोनेका उल्लेख मिलता है। अथर्ववेदको अन्य तीन वेदोंके समान पवित्र नहीं माना जाता था, क्योंकि उसके कुछ सूक्तोंमें स्वार्थ एवं दुष्कर्मोंकी सिद्धिके लिए आसुरी शक्तियोंका आह्वान किया गया है। अथर्ववेदमें रोगोंके निवारण एवं प्रेत-बाधा दूर करनेके लिए जो सूक्त दिये गए हैं उन्हें 'भैषज्यानि' कहा जाता है। इसके विपरीत दीर्घायु और स्वास्थ्य-प्राप्ति करानेवाले सूक्त 'आयुष्याणि' कहे गए हैं। रसायन-विद्याका उद्गम इन दोनों प्रकारके सूक्तोंसे हुआ होगा।

अथर्ववेदके समय स्वर्ण और सीसेके सम्बन्धमें जो रासायनिक विचार एकत्रित किये गए, वे दृष्टव्य हैं :

'रसरत्नसमुच्चय'में पाँच प्रकारके स्वर्णका उल्लेख है। स्वर्णको जीवनका सत्व माना गया है। सीसेको जादूका प्रभाव दूर करनेवाला कहा गया है।

वेदोंके उत्तरकालमें विकसित दर्शनकी पद्धतियों और उपनिषदोंके सिद्धान्तोंकी इसमें प्रबलता थी। विश्वरचना और विज्ञानकी रीतियोंसे सम्बन्धित भौतिक और रासायनिक सिद्धान्तोंका

इस युगसे सम्बन्ध है। इन सिद्धान्तोंका विगतवार ब्यौरा बी० एन० सीलने अपनी पुस्तक 'पाजिटिव सायन्सेज़ आफ़ एन्श्यण्ट हिन्दूज'में दिया है। द्रव्यकी रचना और उसमें होने वाले परिवर्तनोंका सम्बन्ध मुख्यतः रसायन विज्ञानके साथ होनेसे उन सिद्धान्तोंमेंसे कुछेककी विशेषताओंका यहाँ उल्लेख करना उपयुक्त होगा।

सबसे पहले यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ये सिद्धान्त केवल काल्पनिक थे। इन्हें प्रमाणित करनेके लिए प्रयोगोंका आधार शून्यवत् था। ये सूक्ष्म कोटिकी विचार-परम्पराका परिणाम थे। विश्वोत्पत्तिके सम्बन्धमें दो सिद्धान्त उल्लेखनीय हैं: ई० पू० ५००के आसपास छान्दोग्य उपनिषद और सांख्य-विचारधारामें इनका विवेचन किया गया है। पतंजलि द्वारा 'योगशास्त्र'में प्रतिपादित विश्वोत्पत्तिका सांख्य-सिद्धान्त वास्तवमें वैज्ञानिक तर्क पद्धतिके सभी लक्षणोंसे युक्त है। वह शक्ति-संरक्षण, परिवर्तन और वितरणके सिद्धान्तों पर तो आधारित है ही, उसमें देश और कालका विचार भी किया गया है। ऋग्वेदके कुछ सूक्तोंमें, छान्दोग्य आदि उपनिषदोंमें और पुराणोंमें विश्वोत्पत्तिका जो निरूपण किया गया है, उसमें एक कल्पना इस प्रकार है:

पहले पानी था। उसमेंसे हिरण्यगर्भ नामक एक सोनेका अण्डा ऊपर आया। परिपक्व होनेके बाद एक खास समय पर उसके दो टुकड़े हुए और उन टुकड़ोंसे स्वर्ग और पृथ्वीकी सृष्टि हुई। यह बहुत प्राथमिक विचार है, लेकिन 'विकासमान विश्व'के विचार पर आधारित विकासवादके आधुनिक सिद्धान्तसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। ब्रह्माण्ड शब्दमें भी 'ब्रह्म' और 'अंड' दो शब्द हैं। ब्रह्मका अर्थ है विकसित होता या वृद्धि प्राप्त करता हुआ तत्त्व और अंडका मतलब है अंडा। यह विश्वोत्पत्तिकी प्रक्रियाका सूचक है।

विपरिणमन अथवा परिणमन या परिणामके सिद्धान्तका ज्ञान भी प्राचीनकालके हिन्दुओंको था। यास्कके निरुक्तमें, जिसका रचनाकाल ई० पू० आठवींसे छठवीं शताब्दीके बीच माना जाता है, जिन छह भावोंका वर्णन किया गया है उनमें परिणामका भी समावेश हुआ है। इसकी व्याख्या यों की गई है: (द्रव्यके) स्वभाव (या प्रकृत अवस्था, रूप, गुण आदि)का विकार (जिससे वह द्रव्य कुछ और ही हो जाए) विपरिणमन कहलाता है। यह सिद्धान्त आगे चलकर सांख्यवादके प्रकृति दर्शनमें विकसित हुआ और जैन दर्शनमें जड़ और चेतन तत्त्वोंकी व्याख्याके रूपमें भी विकसित हुआ।

सांख्यदर्शनके प्रसिद्ध प्रणेता कपिलने द्रव्यके अन्तिम तत्त्वोंके बारेमें अपने विचारोंको इस तरह निरूपित किया: प्रकृतिमेंसे महत् (बुद्धि), उसमेंसे अहंकार (विशिष्टीकरण individuation) और उसमेंसे सोलह तत्त्व विकसित हुए। ये षोडशक कहलाते हैं। पाँच तन्मात्रा हैं—शब्द तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र, रूप तन्मात्र, रस तन्मात्र और गन्ध तन्मात्र। इनसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानक्रिया उभयात्मकमें पाँच तन्मात्रासे पाँच महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई; जैसे कि शब्द तन्मात्रसे आकाश, स्पर्श तन्मात्रसे वायु, रूप तन्मात्रसे तेज, रस तन्मात्रसे पानी और गन्ध तन्मात्रसे पृथ्वी। इस प्रकार पाँच परमाणुसे पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। (ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, २२, गौडपाद भाष्य)

हमारी पंचेन्द्रियोंका सम्बन्ध पंच तन्मात्रासे है; और यह भी उल्लेखनीय है कि जिन पंच

महाभूतोंके संयोग (संयोजन) और विघटन (वियोजन) से यह विश्व प्रक्रिया चलती है, उनके मूलमें भी यही पंच तन्मात्रा है। क्षिति, अप् और वायु रसायनके मूलतत्त्व माने गए हैं। क्षिति अर्थात् सब ठोस पदार्थ, अप् अर्थात् सब द्रव्य (तरल) पदार्थ और वायु अर्थात् तमाम गैसें।

सांख्य-मतके अनुसार इन सभी स्थूल मूलतत्त्वोंके परमाणु (अणु) 'तन्मात्रा' के बने होते हैं। अणुओंमें 'तन्मात्रा'के समूहीकरणमें परिवर्तन होनेसे एक ही 'भूत' वर्गके गुण-धर्ममें अन्तर हो जाता है। यूनानी दार्शनिक एम्पीडोक्लिस (ई० पू० ४९०–४३०) के मूलतत्त्वके सिद्धान्तसे सांख्यवाद काफी मिलता-जुलता है। वैशेषिक-दर्शनके रचयिता कणादके सिद्धान्तसे डेमोक्रिटस (ई० पू० ४७०–३६०)के सिद्धान्तमें बहुत समानता है। नैयायिक पद्धतिमें भी लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त किये गए हैं।

जैनोंका (लगभग ई० ४०) परमाणुवादका सिद्धान्त रासायनिक संयोजनके विषयमें काफी रोचक योगदान करता है। परमाणु संयोजनोंके पृथक्करण और अणुकी रचनामें परमाणुओंके आकर्पण या प्रत्याकर्पण (विकर्पण) की चर्चा भी वह करता है। जैन दर्शनोंकी मान्यता है कि प्राथमिक पदार्थों (भूतों)के विविध वर्ग एक ही मूल परमाणुओंके बने हैं। इसलिए रासायनिक संयोजनों एवं अणुकी रचनामें एक ही प्रकारके अन्तर-परमाणु बल जुड़े होते हैं। जैन-मतानुसार परमाणुओं या अणुओंके एक दूसरेके समीप आने मात्रसे रासायनिक संयोजन नहीं होता। संयोजनसे पहले परमाणुओं या अणुओंमें अन्तर-गठन होना चाहिए। द्रव्य (भूत)को जैन दर्शनमें पुद्गल कहते हैं। उसके दो रूप हैं: एक परमाणु (अणु) और दूसरा समूह (स्कन्ध)।

विरोधी गुण-धर्मवाले द्रव्यके रजकणोंके ही बीच संयोजन सम्भव है। एक धन (+) होना चाहिए और दूसरा ऋण (–)। इस तरहके विरोधी या विपरीत गुणोंके लिए खुरदुरा और चिकना, सूखा और स्निग्ध आदि उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक-जैसे दो रजकणों—दोनों धन या दोनों ऋण—का, यदि उनके गुण एक समान हुए तो संयोजन नहीं हो सकता।

परमाणुके गुणों और संयोजनोंके भौतिक गुणोंके परिवर्तन इस संयोजन पर निर्भर करते हैं। जैनोंका यह मत महान स्वीडिश रसायनाचार्य बर्जीलियस (ई० १७७९–१८४८) द्वारा प्रतिपादित रासायनिक संयोजनका द्वन्द्ववाद (dualistic hypothesis)से काफी मिलता है। इन दर्शनोंके रचना-कालके सम्बन्धमें निश्चित और प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। लेकिन मैक्समूलर, मैक्डोनल और अन्य विद्वानोंके मतोंके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दू दर्शनकी छह पद्धतियाँ बुद्धके समय (ई० पू० पाँचवीं शताब्दी)से पहले, लगभग ई० पू० १०० तक, जैन और बौद्धधर्मके विकास और विस्तारके साथ, निरूपित की जा चुकी होंगी। साथ ही यह भी माना जाता है कि उपनिषदों एवं ब्राह्मण ग्रन्थोंके सिद्धान्तोंसे भी वे सम्बन्धित हैं।

ईसाकी दूसरी-तीसरी शताब्दीमें, गुजरातमें, रसायनशास्त्रके ज्ञाताके रूपमें नागार्जुन और उनके गुरु पादलिप्तका नाम प्रसिद्ध है। यह नागार्जुन और बौद्ध कीमियागर नागार्जुन भिन्न व्यक्ति है। जैनोंका तीर्थ शत्रुंजय पालिताणाके समीप है। ऐसा माना जाता है कि पादलिप्तसे ही पालिताणा नाम पड़ा।

ताँबा पकाने (निष्कर्षण) की देहाती भट्ठी [स्थल : जयपुरके पास खेतड़ी]
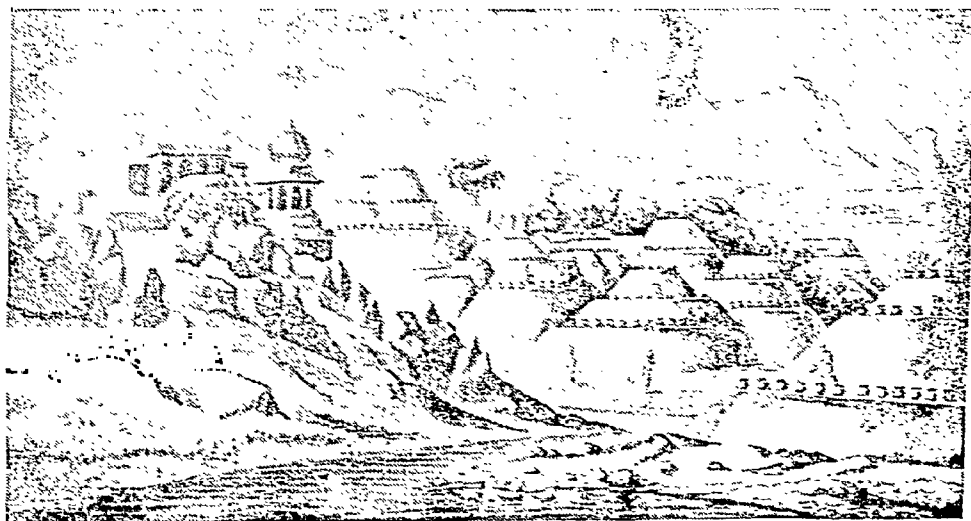
नीला थोथा, फिटकरी आदि रसायन पकाने (निष्कर्षण) का कारखाना [स्थल : खेतड़ी]
(सर पी० सी० रायकी 'हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री' से)

कोष्ठी यन्त्र

नीचेकी मटकीमे पानी भरकर उसके ऊपर चलनी ढाके, चलनीमे कैलेमाइन (कच्चा जस्ता), लाख, गुड, सरसो आदिसे भरा कुल्हड रखे, ऊपर दूसरा औंधा मटका ढक दे, फिर आँच देनेमे ओषध तत्त्वका पृथक्करण होगा। दवाइयोमे उसका उपयोग किया जाए।

आसवनके लिए उपयोगमे लाया जानेवाला तिर्यक्‌पातन यन्त्र
(सर पी० सी० रायकी 'हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री'से)

कहा जाता है कि जैनाचार्य नागार्जुनने 'योगरत्नावली', 'योगरत्नमाला', 'कक्षपुटी' आदि ग्रन्थोंकी रचना की थी। नागार्जुनकी रुचि बचपनसे ही रसायन-सिद्धिकी प्रक्रियाओंमें रही होगी, इसीलिए उसने वन, नदी और पहाड़ोंको अपना निवासस्थान बनाया था। परिणामस्वरूप उसे स्वर्ण-रसकी प्राप्ति हुई। बादमें पादलिप्तसे उसका सम्पर्क हुआ, जो रसायन-शास्त्रमें उससे अधिक निपुण थे। कहा जाता है कि पादलिप्तको आकाशगमन (हवामें उड़ने)के रासायनिक प्रयोगका भी ज्ञान था। इस ज्ञानको प्राप्त करनेके ही लिए नागार्जुन उनका शिष्य बना था। ('प्रभाव चरित्र', प्रस्तावना, पृष्ठ ३०-३२, कल्याण विजयजी; प्रकाशक, आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर; वि० सं० १९८७)।

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिन्दू दर्शनोंमें विवेचित द्रव्यरचना और द्रव्यके गुण बिलकुल स्वतन्त्र रूपसे विकसित हुए; और जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका मत है, यूनानियों-से ग्रहण नहीं किये गए। 'हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर'में प्रो० मैक्डोनल लिखते हैं : "थेल्स, एम्पीडोक्लिस, एनाक्सागोरस, डेमोक्रिटस और अन्य यूनानी विद्वानोंने प्राच्य दर्शनशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए पूर्वी देशोंकी यात्राएँ की थीं; इसीलिए फारस देशके माध्यमसे यूनानियोंके भारतीय विचारोंसे प्रभावित होनेकी ऐतिहासिक सम्भावना है।" सांख्यकारिकाकी प्रस्तावनामें प्रो० एच० एच० विल्सन भी उपर्युक्त अनुमानका समर्थन करते हैं।

आचार्य कौटिल्य (ई० पू० ३२१–२९६)के 'अर्थशास्त्र'में, रसायन, धातुशोधन और औषधियोंके बारेमें काफी जानकारी दी गई है। कौटिल्य या चाणक्य मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तके प्रधाना-मात्य (प्रधान मंत्री) थे। खनिजों, धातुओं और मिश्र धातुओंसे सम्बन्धित समग्र जानकारी उनके द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र'में मिलती है। कांच बनानेकी विधि और सोना तोलनेकी तुला (बैलेन्स)का वर्णन भी उसमें किया गया है। सोनेमें मिलावट करनेवालेको कड़ा दण्ड दिया जाता था। आसवनके द्वारा विविध प्रकारकी शराबें बनानेका ज्ञान काफी उन्नत था। कौटिल्यके समय कीमियागरीको अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। उसके बाद आयुर्वेदमें रसायनकी विशेष प्रगति हुई। वैज्ञानिक परिभाषाओं सहित हिन्दू चिकित्सा-शास्त्रकी विधिवत रचना इसी कालमें हुई। इस युगके 'चरक संहिता' और 'सुश्रुत संहिता' नामक ग्रन्थ, जो क्रमशः वैद्यक और शल्यक्रिया (सर्जरी)से सम्बन्धित हैं, काफी प्रसिद्ध हैं। इन दोनोंमें तत्कालीन रासायनिक जानकारी प्रचुर मात्रामें दी गई है।

'चरक संहिता'में छह धातुओं—सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, राँगा और लोहा तथा इनकी भस्मों (आक्साइड)का दवाइयोंके लिए उपयोग किये जानेका उल्लेख है। चरकने पाँच प्रकारके क्षारोंका उल्लेख किया है : सौवर्चल या शोरा (nitre), सैन्धव (rock-salt), विट (black-salt), औद्भिद (वनस्पति क्षार) और समुद्रक्षार (sea-salt)। त्वचाके रोगोंमें ऊपर लगानेके लिए नीलाथोथा, हीराकसीस, गन्धक आदि वस्तुओंके उपयोगकी बात 'चरक संहिता'से ज्ञात होती है। क्षार बनाने और धातुओंको फूंकनेकी विधियोंका वर्णन भी उसमें किया गया है। सुश्रुतने सुहागेका उल्लेख अल्कली (क्षार)के अन्तर्गत किया है। उसने मुख्यतः वानस्पतिक औषधियोंका वर्णन किया है। संखिया (arsenic)के यौगिकोंके विषैले होनेकी बात स्वीकार की गई है।

इसके वादके कालमें रंगोंके लिए राल, लाग, हल्दी, नील और मजीठका उपयोग किये जानेका उल्लेख मिलता है।

चीनी तुर्किस्तानमें कुत्याके निकटस्थ वौद्ध स्मारकमें ई० १८९०में ब्रिटिश सैन्य अधिकारी लेफ्टिनेंट ए० वॉवरने एक प्राचीन पांडुलिपि प्राप्त की थी, जो 'वॉवर' पांडुलिपि'के नामसे प्रसिद्ध है। इस पांडुलिपिमें जिन विधियोंका वर्णन किया गया है उनमेंसे कुछ अक्षरशः चरक और सुश्रुतसे मिलती हैं। इस ग्रन्थका नाम 'नावनीतक' है। चरक और सुश्रुतकी संहिताओंके ही समान दूसरा महत्त्वपूर्ण वैद्यकग्रन्थ 'अष्टांग हृदय' है। इसमें पारेका उल्लेख है।

आयुर्वेदिक युगमें रसायन-सम्बन्धी ज्ञानकी क्या स्थिति थी, अब उसे देखा जाए। कौटिल्यके 'अर्थशास्त्र'में उपलब्ध कांच वनानेकी विधिका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। सुश्रुतने कांच और स्फटिकका अन्तर समझाया। प्लीनीने इस वातको स्वीकार किया है कि भारतके कांच अन्य देशोंके वने कांचसे श्रेष्ठ होते थे। महाभारतमें कांचका उल्लेख कई स्थानोंमें आया है। उत्तरप्रदेशके वस्ती जिलेमें खलीलावादके निकट अनोमा नदीके किनारे ई० पू० पांचवीं सदीका कांच वनानेका एक पुराना कारखाना मिला है। यह प्रमाणित करता है कि भारतीयोंको कांच वनानेकी कला मालूम थी। तक्षशिलाकी खुदाईमें कांचकी चूड़ियाँ और मनके (गोलियाँ) मिले हैं।

ई० पू० ५००से १०० तककी वनी मिट्टीकी वहुत-सी चीजें मिली हैं, जिनपर पालिश की हुई है।

अव धातुओंको लिया जाए। ताँवा और उसकी मिश्र धातुओं, काँसा एवं पीतलकी वनी अनेक वस्तुओंके अवशेष वहाँसे मिले हैं। दिल्लीमें कुतुवमीनारके पास जो लौहस्तम्भ है, उसपर अंकित लेखसे पता चलता है कि वह ई० ४००में वनाया गया होगा। लोहेकी और भी वस्तुएँ मिली हैं। उन चीजोंको देखनेसे पता चलता है कि प्राचीन भारतमें गढ़नेके लिए जो लोहा प्रयुक्त हुआ वह पिटवाँ लोहा (wrought iron) है, क्योंकि शोधनके लिए ईंधनके रूपमें लकड़ीका उपयोग किया जाता था, जिसका ताप वहुत उच्च नहीं हो सकता था। इससे यह भी प्रकट होता है कि ढलवाँ लोहा (cast iron) वनानेके लिए आवश्यक उच्चताप भट्ठियोंमें पैदा नहीं किया जा सकता था। इस्पात वनाया और उपयोग में लाया जाता था। वराहमिहिर (ई० ५५०के लगभग)की रचनाओंसे पता चलता है कि लोहे पर पानी (temper) चढ़ानेकी विधिका ज्ञान भी था। अंगरागों (सौन्दर्य साधन cosmetics) और चिनाईके लिए चूना और रेतीका गारा (मिश्रण) वनानेकी कलाएँ भी सुपरिचित थीं। मणि-माणिक्यों और रत्नोंसे सम्वन्धित ज्ञान भी खूब प्रचलित था।

हिन्दू औषधि-विज्ञानकी प्रगतिमें लगभग ई० ८००से संक्रान्ति आरम्भ हुई। अभी तक औषधियोंके लिए अधिकतर वनस्पतियोंका ही उपयोग किया जाता था; औषधिके लिए खनिज, क्षार और रासायनिक पदार्थ अल्पमात्रामें उपलब्ध थे। वाग्भटके समयसे धातुके संपाकोंका औषधिके रूपमें अधिकाधिक उपयोग होने लगा। रसायन-शास्त्रकी प्रगतिके कारण प्रयोगशाला-में वने धातु-यौगिकोंका उपयोग वढ़ा। इस जमानेकी दो उल्लेखनीय पुस्तकें हैं: वृन्दका 'सिद्ध-

योग' और चक्रपाणि दत्तका 'चक्रदत्त'। ये दोनों नागार्जुनका उल्लेख करते और चरक, सुश्रुत एवं वाग्भटका अनुसरण करते हैं। वृन्द और चक्रपाणिकी रचनाओंमें तान्त्रिक क्रियाओंका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। तांत्रिककाल संक्रान्तिकालके ही साथ चलता रहा है। चक्रपाणिने अपने ग्रन्थमें वृन्दकी स्थापनाओंको आधार बनाया। चरक और सुश्रुतके टीकाकार चक्रपाणिने अपने ग्रन्थकी रचना ई० १०५०में की थी। ईसवी सदी आठवींमें खलीफाओंके हुक्मसे वैद्यकग्रन्थ 'माधवनिदान'का अरवी भाषामें अनुवाद किया गया। इससे वृन्दका समय ई० ९७५से १०००के बीच निश्चित होता है। पारेके खनिज, गन्धक, ताम्रमाक्षिक (copper pyrites) आदिके उपयोग भी लिखे गए हैं। चक्रपाणिने अपने ग्रन्थमें रसपर्पटी (कज्जलि), तांबेका सल्फाइड, लोहभस्म, चांदीकी भस्म आदि बनानेकी विधियाँ दी हैं।

अन्य देशोंके मुकाबले, भारतमें कीमियागरीका विकास मुख्यतः तांत्रिक क्रियाओंसे हुआ। अन्य देशोंमें वैद्यक, निकृष्ट धातुओंसे स्वर्ण बनाने और पारसमणि (Philosopher's stone) की खोजमें लगे हुए कीमियागरोंके अथक परिश्रमके परिणामस्वरूप रसायनशास्त्रकी कुछ जानकारी मिली। उस कीमियागरीसे ही रसायन-विज्ञानकी प्रगति हुई। स्वास्थ्य, धन-प्राप्ति, शक्ति और दीर्घायु वैद्यक एवं कीमियागरीका अन्तिम उद्देश्य नहीं माना जाता, बल्कि ईश्वर साक्षात्कारके लिए उसे उपासनाका एक ढंग कहा जाता है।

भारतमें कीमियागरीका विकास तांत्रिककालमें विशेष रूपसे हुआ, लेकिन तांत्रिक कालसे पहले भी यहाँ कीमियागरीका ज्ञान प्रचुर मात्रामें था। छटवीं शताब्दीके 'वासवदत्ता' और 'दश-कुमारचरित'में पारेके संपाकों और निश्चेतकोंके रूपमें योग चूर्ण, स्तम्भन चूर्ण आदि विनिर्मित पदार्थोंका उल्लेख किया गया है।

जादू, नजरबन्दी, कीमियागरी और सम्बन्धित विषयोंकी विवेचना करनेवाले तन्त्र दो प्रकारके हैं: ब्राह्मण और बौद्ध। बुद्ध और शिवके भक्तों द्वारा रचित कीमियागरीसे सम्बन्धित पुष्कल साहित्य मिलता है। भारतीय कीमियागरोंमें नागार्जुन सबसे प्रसिद्ध है (यह नागार्जुन बुद्धका अनुयायी था; इसके गुजरातके जैनाचार्य पादलिप्त सूरिके शिष्य क्षत्रिय नागार्जुन होनेकी सम्भावना बहुत कम है)।

उपनिषद समाजके उच्चस्तरीय बौद्धिक वर्गको ही सुलभ थे। उपनिषदोंके अनुसार निर्वाण या मोक्ष सदाचारके द्वारा अनेक पुनर्जन्मोंके पश्चात ही प्राप्य है। तंत्र इसके लिए सरल मार्ग सुझाते हैं। मुमुक्षुको अपने शरीरकी हिफाजत करते हुए काम करना चाहिए और शरीरकी हिफाजत पारा, औषधियों एवं योगसे होती है, इसलिए तंत्रों (तांत्रिक ग्रन्थों) में औषधियाँ बनानेकी विधियाँ भी दी गई है। और यह तो मानी हुई बात है कि औषधियाँ बनानेके लिए रसायनका ज्ञान आवश्यक था।

सभी तांत्रिक ग्रन्थोंमें पारेके लिए रस शब्द प्रयुक्त हुआ है। रसायन-शास्त्रका मूल अर्थ ही है पारेके संपाकों और उद्योगका शास्त्र। उस समयके तांत्रिक ग्रन्थोंमें अनेक रासायनिक जानकारियाँ और कीमियागरीके सूत्रोंका बृहद् भंडार ही भरा हुआ है। प्रमुख कीमियागरों और उनके ग्रन्थोंकी सूची नीचे दी जाती है:

मुख्य तांत्रिक ग्रन्थ

ग्रन्थकार	ग्रन्थका नाम
आनन्दानुभाव	रसदीपिका
भोजदेव	रसराजमृगांक
चन्द्रसेन	रसचन्द्रोदय
चारपट	चारपटसिद्धान्त
चूडामणि मिश्र	रसकामधेनु
धनपति	दिव्य रसेन्द्रसार
गुरु दत्तसिद्ध	सर (रस ?) रत्नावली
गोरक्षनाथ	गोरक्षसंहिता
	रसेश्वर सिद्धान्त

इनके अतिरिक्त हरिहर, कपाली, केशवदेव, नान्दी, नरहरि, रामराज, श्रीनाथ, त्रिमल्ल भट्ट, वासुदेव, कंकरी, मल्लरी, (सिद्ध) भास्कर, (सिद्ध) प्राणनाथ वैद्यराज आदि नामोंका उल्लेख भी मिलता है।

तांत्रिक युगमें प्रमुख रूपसे रस या पारेका उपयोग होता था, इसलिए उस युगमें रसायनके सम्बन्धमें प्रचुर जानकारी एकत्र हो गई थी। यह सारी जानकारी बादके युगमें—भारतीय रसायन-शास्त्रके औषधोपयोगी रसायन (आएट्रो-केमिकल) युगमें खूब काम आई।

अमृत या अमररसकी खोज तांत्रिक युगकी विशेषता थी; आएट्रो-केमिकल युगमें इस विचित्र और 'हवाई' कल्पनाको असम्भव मानकर छोड़ दिया गया और व्यावहारिक बातोंकी ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। पारा, लोहा, ताँबा और अन्य धातुओंके कई विनिर्मित पदार्थ (संपाक) चिकित्साके लिए उपयोगी मालूम हुए; और इसके परिणामस्वरूप रसायन-सम्बन्धी ज्ञानमें वृद्धि हुई।

चरक और सुश्रुतके सूत्रोंके अनुसार बनाई हुई वानस्पतिक औषधियोंके साथ सभी रासायनिक पदार्थ काममें लाये जाने लगे और आयुर्वेदकी प्राचीन पद्धतिमें इन्होंने अपना स्थान बना लिया। धीरे-धीरे इनका महत्त्व इतना बढ़ा कि वैद्यकमें रसादि (धातुओंसे बनी) औषधियोंको अचूक माना जाने लगा। इस युगका ग्रन्थ 'रसरत्न समुच्चय' विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। औषधीय रसायनसे सम्बन्धित और भी कई ग्रन्थ मिलते हैं और सभीमें कमो-बेश एक ही तरहकी बातें लिखी हुई हैं। 'रसरत्न समुच्चय'में रोगोंके निवारणके लिए पारेसे विनिर्मित उपयोगी पदार्थो और खनिजोंका विवरण है। भारतीय 'मेटेरिया 'मेडिका'में खनिजोंका वर्गीकरण रस, उपरस, रत्न और लौहमें किया गया है। इसका अर्थ सामान्यतः पारा है। बुढ़ापेको रोकने और आयुको बढ़ानेवाली औषधियाँ रसायन कहलाती हैं। कालान्तरमें पारद और अन्य धातुओंके औषधियोंमें प्रयुक्त किये जानेके अर्थमें भी इस शब्दका उपयोग होने लगा।

अभ्रक (अबरक), वैक्रान्त (चुन्नी नामक मणि), माक्षिक (Pyrites), विमल (एक उपधातु), अद्रिज (शिलाजीत), सस्यक (नीला थोथा : $CuSo_4, 5H_2O$), चपल (गन्धक युक्त खनिज bismith)

और रसक (खर्पर calamine)—ये आठ रस; और गन्धक, लाल-गेरू, हीराकसीस ($FeSO_4$, $7H_2O$), फिटकरी, हरताल (orpiment), मैनसिल (realgar), सुरमा (अंजन, antimony) और कंकुष्ठ (उशारे रेवन्द या रेवतसार)—ये आठ उपरस पारेकी क्रियाओंमें उपयोगी हैं।

सोमदेवने अपने 'रसेन्द्र चूड़ामणि'में पारिभाषिक शब्द दिये हैं। प्रयोगशाला कहाँ बनानी चाहिए, उसमें प्रयोग साधन (यन्त्र) कहाँ और किस तरहके रखे जाएँ, प्रयोग करनेवालेकी योग्यता क्या हो—ये सभी ब्योरे 'रसरत्नसमुच्चय'में दिये हुए हैं। 'रसप्रदीप'में (लगभग १५३५ ई०) खनिज अम्ल बनानेकी विधियां बताई गई हैं। ये अम्ल धातुओंको गलाते और शंखको पिघालते हैं, इसलिए शंखद्रावक कहलाए। 'रसकौमुदी'में अफीमके उपयोगोंके बारेमें लिखा गया है। सिफिलिस (फिरंग रोग : गर्मी)के लिए पारेके यौगिक केलोमेल (HgCl)का प्रयोग बताया गया है। इस समयके कुछ अन्य ग्रन्थोंमें सालिनाथकी 'रसमंजरी', 'रसरंजन', 'गन्धककल्प' (तंत्र), 'रसार्णव' (कीमियागरीके इसी नामके प्रामाणिक ग्रन्थसे भिन्न), 'रसरत्नाकर' (नित्यनाथके ग्रन्थके अतिरिक्त) आदि उल्लेखनीय हैं; यद्यपि इनमें कोई नई बात नहीं कही गई है। ऊपर जो कुछ बताया जा चुका है उन्हीं क्रियाओंका पुनरावर्तन हुआ है।

प्राचीन भारतमें उपयोगी कलाओं और विज्ञानके विकासका कार्य ऊँची जातियोंके हाथमें था। यह बड़े दुःखकी बात है कि जाति-संस्थाका संगठन बहुत दृढ़ और कठोर होनेके बावजूद यह सारा ज्ञान लुप्त हो गया। 'कामसूत्र'में (१५०० ई०) ६४ कलाओंका उल्लेख है। आयुर्वेदमें दस कलाएँ थीं। 'लोहविद्' और 'धातुविद्' शब्द संस्कृत साहित्यमें प्रचुरतासे मिलते हैं। इससे पता चलता है कि धातुशोधनके जानकारोंका समाजमें ऊँचा स्थान था। रंगनेकी कला भी खूब विकसित थी। वैदिक युगमें ऋषियोंने अपनी जातिकी घड़ेबन्दी नहीं की थी, इसलिए सामान्य जन भी अपनी सुविधा और रुचिके अनुसार भिन्न-भिन्न पेशे अपना लेते थे।

बौद्ध धर्मकी अवनतिके बाद ब्राह्मणोंने अपनी सर्वोपरिताका सिक्का बिठाया तो परिस्थिति बदली। जातिके बन्धन कठोर हुए। सुश्रुतके अनुसार शल्यक्रिया (सर्जरी) सीखनेवाले विद्यार्थीके लिए व्यवच्छेदन (शवच्छेदन dissection) आवश्यक है, परन्तु मनुने इसे चलने नहीं दिया। यह प्रतिपादित किया गया कि मुर्देका स्पर्श मात्र ब्राह्मणकी पवित्र देहको दूषित करनेवाला है। धन्धे वंश-परम्परागत हो गए। बुद्धिजीवियोंने कलामें सक्रिय भाग लेना बन्द कर दिया; परिणामस्वरूप जिज्ञासाकी भावना नष्ट हो गई और भारतमें प्रायोगिक विज्ञान समाप्त हो गया। बॉयल, डेकार्ट्स अथवा न्यूटनके जन्मके उपयुक्त परिस्थितियाँ भारतमें नहीं रह गईं और विज्ञान-जगत्के नक्शेसे भारतका नाम मिट गया। इसके बाद तो यथार्थमें हमारे यहाँ कीमियागरी और रहस्यवाद (अगम्यवाद)की साधना गलत रास्ते पर जा पड़ी। परिणाम यह हुआ कि मध्ययुगके अन्तिम काल-खण्डमें विज्ञानका प्रवाह रुक गया और वह क्षीण होने लगा।

मध्ययुगीन यूरोपमें भी विज्ञानकी दशा हमसे अच्छी नहीं थी; लेकिन कोपर निकस, गैलिलियो, न्यूटन, बॉयल, लवाशिये और डॉल्टन आदिने उसे नया झुकाव दिया। उनके विचारोंने विज्ञानको नया प्रोत्साहन दिया। लेकिन १९वीं सदीके मध्य तक, भारतमें ब्रिटिश शासनके आगमन और स्थिर होने तक, इन विचारोंका भारतमें प्रवेश न हो सका।

२ : चीनी-अरबी कीमियागरी

जोसेफ निडहाम नामक सुप्रसिद्ध विचारकने अपनी पुस्तक 'सायन्स एंड सिविलिजेशन'में जो अधिकृत जानकारी दी है उससे चीनी रसायन-शास्त्रके आरम्भ और विकास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उनके द्वारा प्रदत्त जानकारियोंके अनुसार चीनका आदि दर्शन ताओवाद प्रकृति-पर्यवेक्षण द्वारा ज्ञान सम्पादनके पक्षमें था; इसके परिणामस्वरूप और उस जमानेकी समझके अनुसार वहाँ विज्ञानका विकास हुआ। आजकी दृष्टिसे विचार करने पर वह हमें बौना लगेगा, लेकिन उस समयके लिहाजसे एक नई विद्या विकसित हो रही थी। उस विद्याको हम चीनकी अल्केमी-कीमियागरी कह सकते हैं।

ई० पू० दूसरी शताब्दीमें लिखी गई एक पुस्तक 'हु आई नान त्सु'के लेखक, हु आई नानके राजा ल्यू आन अपनी इस पुस्तकमें निम्न जानकारियां देते हैं—लकड़ीके दो टुकड़ोंको घिसनेसे आग पैदा होती है; आगमें धातुको तपानेसे वह पिघल जाती है; पहिए गोल-गोल घूमते हैं; कुरेदकर खोखली बनाई हुई चीजें पानी पर तैरती हैं—इस प्रकार प्रत्येक पदार्थका अपना विशिष्ट गुण होता है।

एक दूसरा चीनी लेखक जानकारी देता है कि तृण मणि (amber) सड़ी सरसोंके छिलकोंको आकर्षित नहीं करेगा; सीनावार—रससिन्दूर (HgS) निकृष्ट धातुसे क्रिया नहीं करेगा; और लौहचुम्बक निकृष्ट धातुओंको (लोहेके अतिरिक्त) आकर्षित नहीं करेगा।

जादूको एक प्रकारकी करामात और आम लोगोंके बूतेके बाहरकी बात समझा जाता था। ऐसी करामातोंको लोगोंकी नजरसे छिपाकर भी रखा जाता था। करामातोंकी शोध-खोजमें लगे हुए जिन लोगोंको जादूगर कहा जाता था, मूल रूपमें वे लोग अच्छे पर्यवेक्षक, निरीक्षक और प्रयोगकर्ता थे। उस कालकी कीमियागरीको एक प्रकारका प्रयोग क्षेत्र ही मानना चाहिए। परन्तु उन प्रयोगोंके परिणामोंकी व्याख्या पर उस समयके प्रचलित विचार और विश्वास हावी हो जाया करते थे, जिससे विज्ञानका विकास अवरुद्ध होने लगता था। परन्तु ऐसे विचारोंका तो यूरोपमें भी पैरा सेल्सस (१६वीं शताब्दी)के समय तक बोलबाला रहा। यूरोप ऐसे विचारोंसे ठेठ उन्नीसवीं सदीमें ही अपनेको मुक्त कर सका। इस दृष्टिसे देखा जाए तो चीनके उस समयके रसायन-सम्बन्धी ज्ञानको काफी विशद और व्यापक मानना होगा।

'बुक आफ चेंजेज़' नामक एक चीनी ग्रन्थ ई० पू० ८००में लिखा गया था। मूल रूपसे तो वह ग्रन्थ केवल शुभ और अशुभ शकुनोंका संग्रह था। परन्तु उसके बाद सदियों तक जो वैज्ञानिक पर्यवेक्षण होते रहे, उन्हें भी इस पुस्तकके संकेतोंमें खोजने और समोनेका प्रयत्न हुआ। और इस प्रकार चीनकी विशिष्टताओंके कारण शकुनोंका ग्रन्थ विज्ञानका ग्रन्थ बन गया। मूल रचना तो वही रही, लेकिन

उसके नये अर्थ और नई टीकाएँ होती रहीं। ई० पू० तीसरी शताब्दीमें इस ग्रन्थका नया संस्करण तैयार किया गया। उसके बाद बारहवीं सदी तक समय-समय पर जो वैज्ञानिक पर्यवेक्षण हुए, उन सबका समावेश इस ग्रन्थमें होता रहा। इसीलिए इस पुस्तकमें लिखी हुई बातोंको समझाने और उनका सही-सही अर्थ लगानेमें बड़ी कठिनाई होती है। कुछ विद्वानोंने बड़े प्रयत्न और परिश्रमके बाद इस पुस्तकके संकेतोंका अर्थ किया है। कुछ लोगोंकी तो यह मान्यता है कि इस ग्रन्थमें पारा, सोना और गन्धककी क्रियाएँ भी दी हुई हैं।

ह्वांग ती नामके बादशाहने ई० पू० २६५०में लिखी अपनी पुस्तक 'निचिंग'में 'यांग' और 'यीन' नामक तत्त्वोंका विवेचन किया है। उसकी एक व्याख्या हम 'स्वास्थ्य दर्शन'में पढ़ आए हैं। इन दो तत्त्वोंकी पारस्परिक क्रियासे पानी, अग्नि, काष्ठ, धातु और मिट्टी उत्पन्न होती है। आकाशका पुरुष तत्त्व पृथ्वीके नारी तत्त्वको सम्पूर्णता प्रदान करता है। इन दोनों शक्तियोंके पारस्परिक प्रभावसे लाखों पदार्थ अस्तित्वमें आते हैं। अस्तित्वमें आनेके साथ ही उनके गुण भी पैदा हो जाते हैं। पहले जल, फिर काष्ठ, फिर अग्नि, फिर मिट्टी, फिर धातु और तब पुनः जल—इस प्रकारकी एक प्रक्रिया उत्तरोत्तर आगे बढ़ती रहती है। यह व्याख्या 'पुरुष और प्रकृतिसे विश्वोत्पत्ति'के सिद्धान्तसे बहुत अंशोंमें मिलती-जुलती है।

चीनी दर्शन शास्त्रमें 'यांग' और 'यीन', इन दोनों शक्तियोंको माता और पिता, धन और ऋण, अग्नि और जल, आकाश और पृथ्वी आदिके द्वन्द्वोंका प्रतीक माना जाता है। कीमियागर जब दो पदार्थोंको कुठाली या घड़ियामें (मूषा Crucible) गलानेके लिए रखते हैं तो ऐसा मानते हैं कि उनमेंसे एक पदार्थका पुरुष तत्त्व और दूसरे पदार्थका नारी तत्त्व संयोजित होकर नया पदार्थ बनता है। चीनी भाषामें इस घटनाको वहाँकी शब्दावलीमें 'मैथुन' जैसे शब्दके द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। एक और सांकेतिक-कथाको लिया जाए :

"एक पात्रमें किशोर विराजमान हैं और दूसरेमें सुन्दर कन्या। यदि कोई प्रथम पात्रके किशोरको दूसरे पात्रमें रख सके तो वे दोनों किशोर-किशोरी एक-दूसरेको देख सकते हैं और उनका संयुक्त रूप निर्मित हो सकता है।" सोने और पारेके संरस (एमलगम)—स्वर्ण-पारद-मिश्रणका वर्णन करनेके लिए इस प्रकारकी भाषाका उपयोग किया गया है।

"दोनों एक-दूसरे पर अधिकार जमाएँगे, एक-दूसरेको अंकुशमें रखेंगे, पारस्परिक सहयोग करेंगे और परस्पर गुँथ (गठित) जाएँगे। इसके परिणामस्वरूप परिवर्तन होगा। कई बार किशोर और किशोरी पृथक् दिखाई देंगे; कुछ क्षणोपरान्त वे उछलेंगे, दौड़ेंगे, कूदेंगे और एक क्षण भी शान्त नहीं होंगे। लेकिन वे पात्रसे बाहर नहीं निकल सकेंगे। ठीक इसी समय आगको फूँकना पड़ेगा और तब जबर्दस्त परिवर्तन होकर सीनाबार—रससिन्दूर (HgS) तैयार हो जाएगा।"

इन संकेतों अथवा प्रतीकोंके अर्थको जाने बिना चीनी रचनाओंको समझ पाना मुश्किल ही है। उदाहरणके लिए दूसरी शताब्दीके कीमियागर वेई पो-चांगकी एक पुस्तक 'शान युंग छी'को लें। इस पुस्तकके अनुसार राजाका अर्थ बरतनका भीतरी भाग और मंत्रीका अर्थ बाहरी भाग होता है। 'कुआली' पारेको कहते हैं और सीसे के लिए 'खान' शब्दका प्रयोग किया गया है। 'कुआ छियें' (Kua chhien) और 'खुन' (Khun) क्रमशः नाप और कुठाली या घड़ियाके द्योतक हैं। पिताका

अर्थ है आरम्भ और माताका अन्त। पति-पत्नीका मिलन अथवा मैथुन दो पदार्थोंके बीच होनेवाली रासायनिक क्रियाको दिग्दर्शित करता है। अमावस्याका अर्थ ऊपर और प्रतिपदाका अर्थ नीचे है। 'कुआ' और उसके 'हशियाव'से परिवर्तन अथवा नया स्वरूप ग्रहण करनेका अभिप्राय निकलता है।

यह सारी जानकारी टूटी हुई अथवा पूरी रेखाओंवाले तीन अथवा छह रेखाओंके संकेतोंमें ग्रथित की गई है। टूटी और पूरी रेखाओंके क्रमके अनुसार एक-एक संकेतके कई-कई अर्थ होते हैं। चीनी भाषामें इन रेखाओंको 'कुआ' कहते हैं, लेकिन कीमियाकी परिभाषामें इनका अर्थ परिवर्तन होता है। इस तरह सामान्य भाषाके शब्दोंको संकेतोंमें लिखा जानेसे कीमियागरीसे सम्बन्धित साहित्यका अर्थ लगाना बहुत मुश्किल हो गया।

	1 kua	2	3	4a
1	☰	Chhien	乾	♂
2	☷	Khun	坤	♀
3	☳	Chen	震	♂
4	☵	Khan	坎	♂
5	☶	Kên	艮	♂
6	☴	Sun	巽	♀
7	☲	Li	離	♀
8	☱	Tui	兌	♀

चीनी डायाग्राम

उत्तर-हन कालके एक सुपरिचित कीमियागर युफान (ई० १६४से २३३)ने और भी एक नई प्रणाली निकाली। उसने सूर्य, चन्द्र आदिको कीमियागरीके साथ संयुक्त कर दिया।

भट्ठीमें चीजोंको डालने और तैयार पदार्थोंको निकालनेके समय और अवधिकी चर्चा इस पुस्तकमें की गई है; साथ ही कतिपय रासायनिक उपकरणों अथवा साधनोंका नाम भी संकेतोंमें दिया गया है।

ई० सन् २७०से ५८०के मध्यकालमें चीनमें कीमियागरीका सोलहों आना विकास हो चुका था। ३२५ ई०में को हुंग चीनका राजा था। कागजका आविष्कार चीनमें ईसाकी दूसरी शताब्दीमें ही हो गया था। लेकिन वह कागज टिकाऊ नहीं था, इसलिए उस कालका अधिकांश साहित्य नष्ट हो गया। फिर भी बहुत-कुछ बचा लिया गया। उनमेंसे कुछ उद्धरण यहाँ दिए जाते हैं :

"चीनका सर्वश्रेष्ठ कीमियागरको हुंग चौथी शताब्दीमें हुआ। एक बार किसीने उससे कहा कि लु यान और गो ती-जैसे कारीगर भी पत्थरसे बढ़िया सुई नहीं बना सकते; ओ येह-जैसे लोग भी सीसे अथवा रांगेसे कुदालीका फल तक नहीं गढ़ सकते। यह सचमुच असम्भव है और उसे तो आसमान भी नहीं कर सकता।" परन्तु उसी पुस्तकमें यह उल्लेख भी मिलता है कि पानी और अग्नि आकाशमें रहते हैं, फिर भी आरसी (छोटा कांच)के द्वारा दोनोंको जमीन पर लाया जा सकता है। सीसा सफेद भसकीली धातु होते हुए भी उससे लाल पदार्थ बनाया जा सकता है और उस लाल पदार्थसे पुनः सीसा बनाया जा सकता है। आगे यह भी लिखा है कि

परिवर्तित हो जाता है। ये पत्थर हमेशा आर्द्रतावशोषी (hygroscopic) रहते हे।" ये सभी उदाहरण उस समयकी मान्यताके अनुसार पानीका परिवर्तन होनेसे बने पदार्थोंके हे।

कुछ गुफाओंमे पानी टपकता रहता हे और वह टपकता हुआ पानी स्तम्भमे परिवर्तित हो जाता हे।

इसी प्रकार लकड़ीका तत्त्व आकाशमें रहता हे तो हवा होती हे। लकडी अग्निको उत्पन्न करती है और पवन उसका पोषण। पाँच तत्त्वोके महाभूतोका धर्म ऐसा ही है।

इन उदाहरणोसे पता चलता है कि प्राचीन कालमे रासायनिक क्रियाओका अधकचरा, परन्तु प्रचुर ज्ञान चीन वालो को था और उनके पर्यवेक्षण भी त्रुटिहीन थे। केवल उन्हे यह जानकारी नही थी कि पानीका वाष्पीकरण होकर उड़ जाता हे और उसमे का विलेय क्षार बचा रह जाता हे; इसीलिए वे मानते थे कि पानीका पत्थरमे रूपान्तर हो जाता हे।

इसके अतिरिक्त भट्ठियो, बरतनों, धौकनियो, वमन मुखो आदि उपकरणो तथा कब धौकनीको धीरे चलाना चाहिए और कब तेज आदि क्रियाओका उल्लेख भी चीनी कीमियागर साहित्यमे मिलता

है। क्रियाके जोरको बढ़ाना हो तो शुक्ल पक्ष और कम करना हो तो कृष्ण पक्ष—इस प्रकार चन्द्रकी कला द्वारा क्रियाओंका वर्णन किया गया है।

चीनी कीमियागरीके समस्त साहित्यको देखनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि १७वीं शताब्दी तक चीनमें रसायन शास्त्र यूरोपकी अपेक्षा बहुत उन्नत था; लेकिन उसके बाद चीन पिछड़ गया।

अरबी कीमियागरीकी पुस्तक 'शाह दिवान अल् शुहुर'का एक पृष्ठ

ई० १६९८में येन युआनने चीनमें एक महाविद्यालयकी स्थापना की थी। उस महाविद्यालयमें भाषा ज्ञान, गणित, खगोल, चिकित्सा-शास्त्र और युद्ध-कलामें प्रयुक्त होनेवाले यंत्रोंका उपयोग करना सिखाया जाता था। रसायन शास्त्र और मद्य बनाने तथा उसका उपयोग करनेकी रीति भी सिखाई जाती थी। १६८३ई० में ताई जंग द्वारा रचित एक पुस्तकमें वायुदाबमापी, तापमापी, सुईके द्वारा आर्द्रतासूचक आर्द्रता मापी, उपक्षेपणी (वक्रनाली Siphon) और सूक्ष्मदर्शी जैसे अद्यतन ८० उपकरणोंका वर्णन किया गया है।
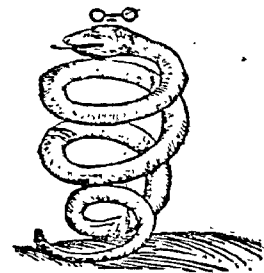
संखियाकी धातु आर्सेनिकका संकेत १७वीं शताब्दी

१७वीं शताब्दीमें सुर्मेकी धातु एण्टीमनीका संकेत

अब हम देखेंगे कि अरबदेशोंमें कीमियागरी और उससे रसायन शास्त्रका विकास किस प्रकार हुआ।

अल्केमीका विकास सबसे पहले चीनमें हुआ, लेकिन यूरोपको उसका ज्ञान मिस्रके ही द्वारा हो सका। यूनानी कीमियागरीके संचित ज्ञानको नेस्टोरियन लोग अपने साथ ईसाकी पाँचवीं शताब्दीमें सीरिया ले गए थे, इस तथ्यको हम 'स्वास्थ्यदर्शन'में पढ़ आए हैं। अरब राज्योंमें मुस्लिम संस्कृतिके उदयके बाद यूनानी कीमियागरीका वह संचित ज्ञान अरबोंको मिला। परन्तु उस समय मुस्लिम संस्कृतिने चीन, भारत और अन्य एशियाई देशोंकी विद्याको पचा ही नहीं लिया था, प्रयोगों-

के द्वारा सच और झूठको परखनेकी उमंग भी उनमें पैदा हो चुकी थी।

कुछ कीमियागर एक धातुके दूसरी धातुमें परिवर्तन होनेकी बातको स्वीकार नहीं करते थे। कुछ ऐसा अमृत-तत्त्व बनानेके फेरमें पड़े थे, जिससे मनुष्यकी आयुको खूब बढ़ाया जा सके। कुछ ग्रहोंकी गतिके आधार पर दृष्ट-अनिष्ट ग्रह दशाको मानते थे और वैज्ञानिक कार्योंमें भी शकुन-अपशकुनका बड़ा विचार रखते और इस बात पर ज़ोर देते थे कि ग्रहोंके अनुकूल होने पर ही सफलता सम्भव हो सकती है। इस प्रकार कीमियागरी अन्धविश्वासोंके जालमें फँसी हुई थी, फिर भी कुछ बहुत उज्ज्वल परिणाम सामने आये। कीमियागरीका युग १८वीं शताब्दी तक चलता रहा। और यह कहा जा सकता है कि कीमियागरीके ही कुछ प्रयोगकर्ताओंने रसायन-शास्त्र एवं रसायन-औषध-विज्ञान (Iatro-Chemistry) की नींव रखी।

रसायन-शास्त्रके विकासका श्रेय कीमियागरोंकी प्रयोगशालाओं और धातुविदों (metallurgist) के अनुभवोंको देना सर्वथा उचित होगा। मेसोपोटामिया और मिस्रके उत्खननोंमें प्राप्त वस्तुएँ ई० पू० पाँचवीं शताब्दीमें वहाँ होनेवाले धातु कर्म, काँच-निर्माण कला, आसवनी (distillery) आदिको प्रमाणित करती है। धातु-शोधन, चमड़ा कमाना, चूना पकाना, शराब निकालना, तरह-तरहके शरबत बनाना आदि क्रियाएँ मुस्लिम युगमें विकसित हो चुकी थीं।

अल्केमीके सम्बन्धमें अरब वैज्ञानिक जबीर (७६८–८०९) की कृतियाँ उल्लेखनीय है। अपनी पुस्तक 'गुण-धर्म' (Book of Properties) में उसने सफेदा बनानेकी रासायनिक विधिका विस्तारसे वर्णन किया है। उसकी कृतियोंसे यह भी पता चलता है कि उस समय नाप-तोलमें भी बड़ी सावधानी बरती जाने लगी थी।

जबीरने पदार्थके दो विभाग किए थे। गर्म करने पर वायु रूप होकर उड़नेवाले पदार्थोंको उसने 'साल' यानी 'स्पिरिट' कहा। गन्धक, संखियाके क्षार, पारा, नौसादर (साल एमोनिक) का समावेश इस विभागमें किया जाता था। उसके जमानेमें भी नौसादरका उपयोग धातु-शोधनमें प्रद्रावक (flux) के रूपमें होता था। नौसादर बनानेकी विधि भी उसे ज्ञात थी।

उस समयकी सात ज्ञात धातुओंको उसने दूसरे विभागमें रखा। ये थीं सोना, चाँदी, सीसा, राँगा, ताँबा, लोहा और पारा। इसके अलावा उसने चीनी-लोहे (जस्ता) के बारेमें भी लिखा है।

आसवनका पूर्व स्वरूप : संघननके पात्र-संघनित्र

जबीरने यह भी लिखा है कि जिन धातुओंका चूर्ण हो सकता है (भंगुर धातुएं) उन्हें पीटकर उनसे पत्ते (पत्तर) नहीं बनाये जा सकते। जबीरकी प्रयोगशाला तैग्रिस नदीके किनारे कूफामें थी।

हिराक्लीटस
[ई० पू० ५४०-४७५]

जेनोफेनिस, हिराक्लीटस, थैलस आदि सभी यूनानी दार्शनिक इस बातको मानते थे कि सारी सृष्टि एक ही आद्यतत्त्वसे पैदा हुई है, लेकिन उस मूलतत्त्वके स्वरूपके बारेमे उनमे मतभेद था।

थैलसका कहना था : आद्यतत्त्व पानी है। भाप बनाकर उसे उडा दो, या ठडा करके जमा दो तो ठोस पदार्थ प्राप्त होगे।

हिराक्लीटसका कहना था : आद्यतत्त्व अग्नि हे ओर उसके द्वारा जो परिवर्तन होता हे वही तथ्य वास्तविकता हे।

नीलमकी तख्ती

(हर्मिस द्वारा नीलमकी तख्ती पर अंकित कीमियागरीका रहस्य)

एक ही (सत्) के अनेक कौतुकोंकी सिद्धि. जो ऊपर (आसमानमें) है वही नीचे (पातालमें) है, और जो पातालमें है वही आसमानमें है, यह वास्तविकता सच्ची, असत् (दोष) रहित सर्वश्रेष्ठ सत्य है।

एकही के चिन्तनसे सभी वस्तुओंका प्रादुर्भाव होता है इसलिए ये सब एक हीसे बनी हुई हैं।

उनके पिता सविता हैं और माता चन्द्रमा है। वायुने उनकी स्थापना चन्द्रमाके उदरमें की है।

सृजनमें अवस्थित समस्त ज्ञानके पिता सविता ही है। उन्हें पृथ्वीकी ओर घुमाया जाए तो भी उनके गुण अबाधित रहेंगे।

बड़े ही कौशल और धैर्यसे तुम अग्निमेंसे धातुको पृथक् करते हो। स्थूलमेंसे सूक्ष्मको उपजाते हो। इसी प्रकार एक ही मूल सत्तासे समस्त वस्तुओंकी सृष्टि हुई है।

सविता देवकी सत्ताके सम्बन्धमें मुझे जो-कुछ कहना था वह मैंने समाप्त किया। वह (सत्) पृथ्वीसे ऊंचा उठकर आसमानको आच्छादित कर देता है और वहांसे फिर लौटकर पृथ्वीमें—पातालमें भी व्याप्त हो जाता है। जो-कुछ ऊंचा है या जो-कुछ नीचा है वह दोनों हीकी सत्ताको धारण किए हुए है।

इसी प्रकार समस्त सर्जनके ज्ञानका प्रकाश होगा और अज्ञान पलायन कर जाएगा।

बलोंका बल भी वही है; क्योंकि जितना भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान है वह सारा उसकी पहुँचमें है और स्थूलातिस्थूलके भी हार्द तक उसकी गति है।

रासायनिक प्रयोगके पुराने उपकरण
प्राचीन यूनानी पांडुलिपिसे

धातु पकानेके उपकरण : क्रमिक विकास
भभका (रिटार्ट) और प्रापक (रिसीवर)

उसने अपना यौवन काल कीमियागरी सीखनेमें विताया और अनुभव सिद्ध ज्ञानके आधार पर ही ग्रन्थ रचना की। प्रयोगशालाके लिए आवश्यक उपकरणोंकी सूची भी उसने दी है। उसकी सूचीमें विभिन्न प्रकारकी भट्ठियों, धौंकनियों, कुठालियों (मूषा), आसवनके लिए भभका-यन्त्रों (stills), तुलाओं, बटखरों, पलिघों (flask), शीशेके बरतनोंके अतिरिक्त रेणु ऊष्मकों एवं जल ऊष्मकों (sand bath and water bath)के उपयोग तथा पदार्थोंके छाननेके लिए अलग-अलग प्रकारके निस्यन्दन (filters) बनानेकी विधियोंका समावेश किया गया है। भारात्मक (gravimatric) पद्धतिसे रासायनिक प्रयोग करनेकी प्रथा भी उसीने शुरू की थी।

र्‌हेजीस (८६५–९२५) एक धातुके दूसरी धातुमें परिवर्तित होनेकी बातको मानता था। वह नाइट्रिक अम्ल और गन्धकके तेजावका उपयोग करता था। जड़ और चेतन पदार्थोंका उसने तीन विभागोंमें वर्गीकरण किया था : वनस्पति, प्राणी और खनिज। उस जमानेकी इस प्रचलित मान्यताको कि प्रत्येक (जड़) पदार्थमें गन्धक, लवण और पारेके गुण-धर्म होते हैं, उसने स्वीकार नहीं किया था; यद्यपि उसका परवर्ती पैरा सैल्सस इस धारणाको अन्त तक मानता रहा।

र्‌हेजीसने खनिजके छह विभाग किये थे :

१. वाष्पशील पदार्थ—पारा, नौसादर आदि और गन्धक, मैनसिल (realgar) जैसे दहनशील पदार्थ;

२. सात धातुएँ;

३. छह प्रकारका सुहागा बोरेक्स (क्षारांगार-नेट्रोन अथवा रेह कल्लर-नोनी मिट्टीके साथ);

४. ग्यारह प्रकारके लवण जिनमें सैंधव, चूना, मूत्र क्षार, पोटाश (सज्जी) आदिका समावेश किया गया था।

५. तेरह प्रकारके पत्थर—मुख्यत: कच्ची धातुएँ—मेर्लेचाइट, हिमेटाइट, जिप्सम, फिटकरी इत्यादि; और

६. विट्रियल—कासीस (सल्फेट), जिसे गरम करनेसे गन्धकका तेजाब निकलता है।

उसके बाद एवीसेना—इब्नसेना (९८०–१०३७)ने अल्केमी-सम्बन्धी अपने लेखोंमें स्पष्टतासे कहा कि एक धातुका दूसरी धातुमें परिवर्तन असम्भव है। निकृष्ट धातुओंके मिश्रणसे सोने या चाँदीकी तरह दिखाई देनेवाली मिश्र धातु बन जाती है, परन्तु वह सोना या चाँदी कदापि नहीं हो सकती।

एवीसेना

इस प्रकार प्रसिद्ध अल्केमिस्ट वैज्ञानिक पद्धतिसे काम करने लगे थे। उन्होंने मद्य-आसवनकी विधियोंमें सुधार किया; और शुद्ध ऐलकोहल (मद्यसार)का आसवन भी सिद्ध कर लिया था। गन्धक, लवण और शोरेके अम्ल बनानेकी विधियाँ भी उन्होंने खोज

निकाली थी और इन अम्लोंका वे उपयोग भी करते थे। भारात्मक पद्धतिसे कार्य करनेके ढंगको उन्होंने और भी विकसित किया। अरबी अल्केमीने विलयन, आसवन, निस्यन्दन, ऊर्ध्व पातन आदि रासायनिक विधियाँ यूरोपको भेंट कीं।

उसके बाद अरबी विज्ञान आगे प्रगति नहीं कर सका। ज्ञान-विज्ञानका क्षेत्र बगदाद अथवा अरबिस्तानके शहरोंमे हटकर सिकन्दरिया (अलेक्ज़ेण्ड्रिया) में सीमित हो गया। वहाँ अल्केमीको थोड़ा परिष्कृत रूप प्राप्त हुआ। अरस्तूने यह मत व्यक्त किया था कि धातुओंका रंग, द्युति, तन्यता (tenacity), आघात-वर्धनीयता आदि गुण ऊपरी हैं, उपयुक्त विधिके द्वारा हलकी धातुओंमें भी चाँदी-सोने-जैसी धातुओंके गुण पैदा किए जा सकते हैं। इसको आधार बनाकर अल्केमिस्ट आगे बढ़े। पदार्थ-मात्र चार महाभूतोंसे बने हैं और उनकी न्यून या अधिक मात्राकी मिलावटसे सभी पदार्थ बनते हैं—अरस्तूके समयसे चली आती इस प्राचीन मान्यताके साथ अरबी अल्केमी विद्याका मेल बिठानेके प्रयत्न किए गए। पाँच महाभूतोंकी दृष्टिसे, उनको न्यूनाधिक मात्रामें मिलाने अथवा अनुपातमें परिवर्तन करनेसे एक धातुको दूसरी धातुमें बदला जा सकता है—इस बातको कीमियागर मानते थे।

राबर्ट एस्टरने (१११०–११६०) ११४४ ई०में कीमियागरीके अरबी ग्रन्थोंका सबसे पहले लातिन भाषामें अनुवाद किया। जिरार्ड आफ़ क्रेमा (१११४–११८०) और उसके साथियोंने ९२ ग्रन्थोंका अरबीसे लातिनमें अनुवाद किया। परन्तु यूरोपके ईसाई देशोंकी मान्यताओंमें अरबी अल्केमीके साथ रहस्यवाद, फलित ज्योतिष, ग्रहोंकी इष्ट-अनिष्ट दशा आदिका भी प्रवेश हो चुका था।

उस समयके अल्केमिस्टोंकी यह मान्यता थी कि चार महाभूतोंका अन्तिम स्वरूप पारा है; पारेकी गन्धकके साथ क्रिया करनेसे पारसमणि (पारस पत्थर) तैयार होता है; हलकी धातुएँ इस पत्थरको छूनेसे सोना बन जाती हैं। गन्धकके तीन स्वरूपों (सफेद, पीला, लाल) का ज्ञान उन्हें था, इसलिए उन्होंने यह धारणा बना रखी थी कि सफेद गन्धकके द्वारा बनाया हुआ पत्थर धातुओंको चाँदीमें रूपान्तरित करता है, पीले गन्धक द्वारा बनाया हुआ पत्थर धातुओंको सोनेमें रूपान्तरित करता है, आदि। इस दिशा में प्रयत्न करनेवाले सभी प्रयोगकर्ताओंको अन्तमें निराश होना पड़ा। लेकिन ऐसे भी कुछ धूर्त और ढोंगी थे जो कुठालीकी पेंदीमें सोनेकी किरच रख ऊपर मोमकी तह जमा देते और फिर कुठालीमें हलकी धातुएँ डालकर तपाते और पिघल जाने पर उसमेंसे सोना निकाल कर दिखा देते और इस तरह हलकी धातुओंको सोनेमें रूपान्तरित करनेका दम भरा करते थे। उनकी इन करामातोंसे राज पुरुष तक धोखा खा जाया करते थे। इससे अल्केमिस्टोंकी बड़ी निन्दा हुई। तत्पश्चात् अल्केमी विद्याका झुकाव दवाइयाँ बनानेकी ओर हुआ। गन्धक, पारा और क्षारोंका उपयोग करके पैरा सैलसस (१४९३–१५४१) ने कई नई-नई दवाइयाँ बनाईं। वे कितनी कारगर थीं यह बताना मुश्किल है। लेकिन अल्केमिस्टोंका झुकाव दवाइयाँ बनानेकी ओर हुआ, यह निर्विवाद है। इसका भी कारण था। यूरोपमें उन दिनों प्लेग, चेचक, हैजा आदि महामारियोंका दौर एकके बाद एक चलता ही रहता था और उसमें इतने अधिक आदमी मरते थे कि सोना बनानेके बदले दवाइयाँ बनानेकी ओर अल्केमिस्टोंका ध्यान जाना स्वाभाविक था। इसी झुकावके कारण यूरोपमें औषधि-विज्ञानका उदय हुआ।

१८वीं सदी तक यूरोपके देशोंमें अल्केमीका प्रभुत्व रहा; यद्यपि वैज्ञानिकोंने उनसे पृथक् होकर शुद्ध विज्ञानका विकास १७वीं शताब्दीसे ही प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु जन सामान्य तो उन्हें भी

जादूगर, कीमियागर अथवा अल्केमिस्टके ही रूपमे जानते थे। जनमानस जादूगर और कीमयागरके बीच भेद नही कर सकता, इसीलिए तो न्यूटनको उन्होने अन्तिम जादूगर (last of the magicians) कहा था। १६वी सदीमे तो विज्ञानको भी 'कुदरती जादू' (natuıal magic)के ही नामसे पुकारा जाता था।

कालान्तरमे कीमियागर ओर जादूगरका युग समाप्त हुआ ओर शुद्ध विज्ञानने अपनी सम्पूर्ण गरिमाके साथ १९वी शताब्दीमे पदार्पण किया। अब हम यूरोपमे अल्केमीसे रसायन-शास्त्रके विकासका सक्षिप्त विहगावलोकन करेगे।
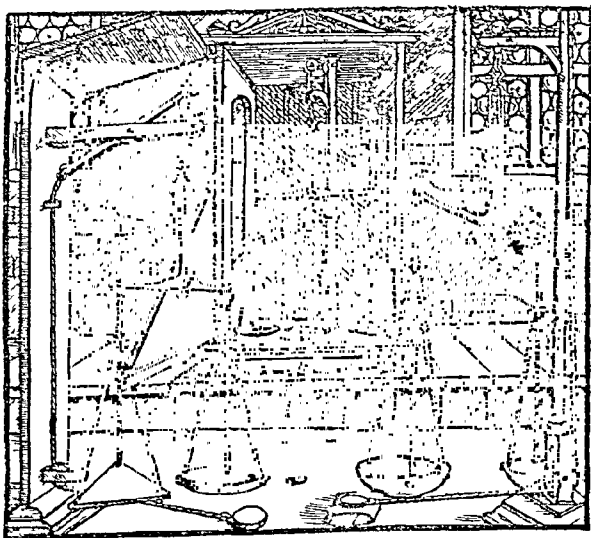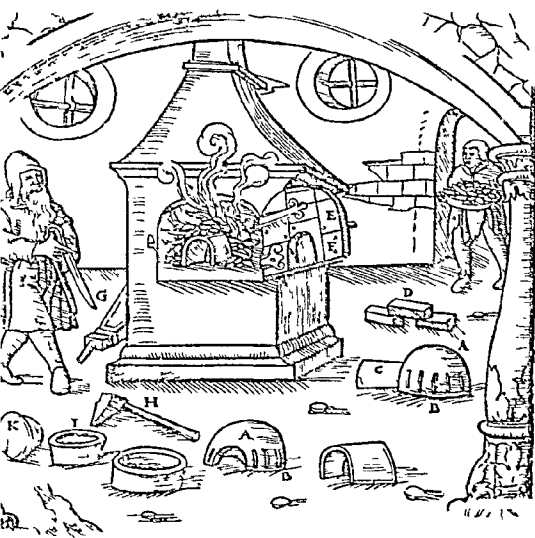
अग्रिकोला (१४९४-१५५५)की धातु शोधनकी प्रायोगिक भट्ठी ओर उसके उपकरण
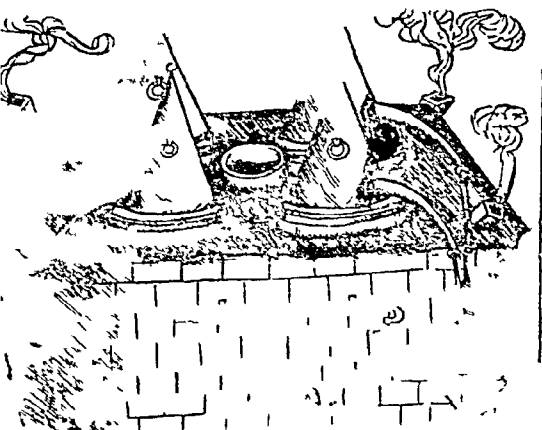
पारेका आसवन

सोलहवीं शताब्दीमें विज्ञानकी प्रगति

रायल इन्स्टीट्यूटके सदस्योंकी हँसी उड़ानेवाला एक व्यंग्य चित्र (डेवीके समयमें)

डूब मरो! विज्ञानके ऐसे विभाग भला विश्वविद्यालयमें खोले जाते होंगे? जब यूरोप करवट बदलकर विज्ञानकी ओर उन्मुख होता है तो पुरातन-पन्थी उसका विरोध करते हैं!
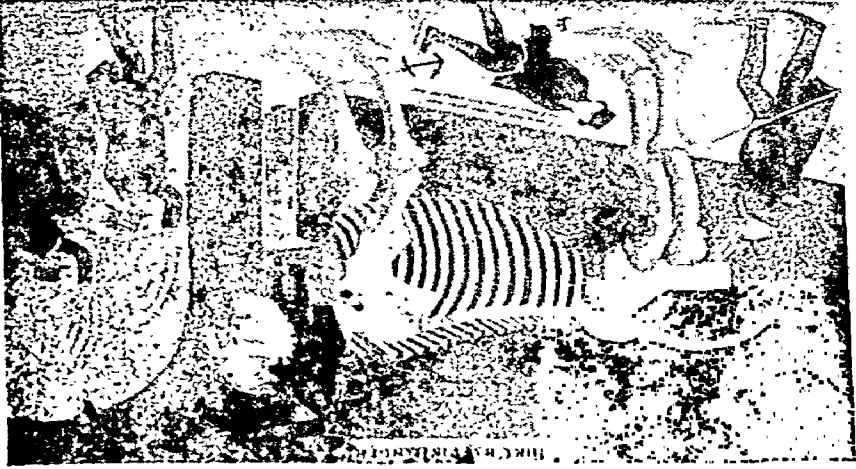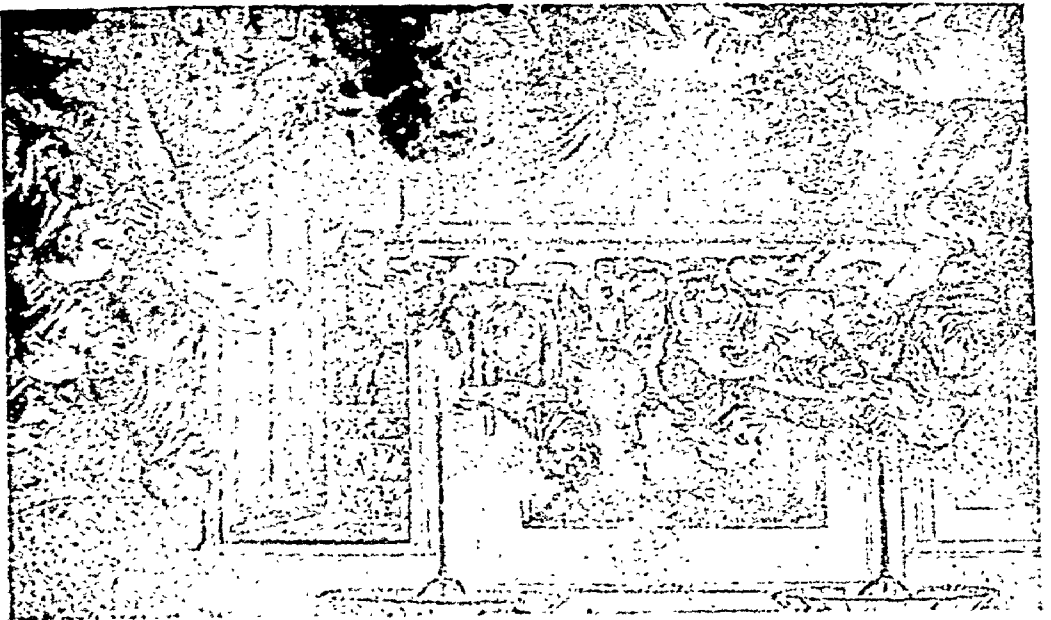
३ : यूरोपमें रसायन विज्ञानका विकास

मध्ययुगके अन्त तक यूरोपीय विज्ञानका इतिहास बहुत खेदजनक है। अज्ञान, अन्धविश्वास और धर्मान्धता आदि अवरोधक शक्तियाँ उसके विकासमें बराबर बाधा पहुंचाती रहीं। उस समयके विद्वान प्रत्यक्ष निरीक्षण (अवलोकन) और प्रयोगोंके द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेके बदले अनुमान (परिकल्पनाएं) करते थे। धर्मगुरु भी काफी शक्तिशाली थे और उनके अधिकारोंका डंका बजता था; परम्परागत प्रणालियों (रूढ़ियों)को चुनौती देने और नये सिद्धान्तोंको प्रतिपादित करनेवाले विद्वानोंको जेल या मौतकी सजाएं दी जाती थीं। अरस्तू, टालेमी (तोलेमी), गेलेन और प्लीनी जैसे दार्शनिकोंकी रचनाओं पर स्वतन्त्ररूपसे विचार कर नया ज्ञान सम्पादन और उसका प्रचार करनेका साहस गिने-चुने विद्वानोंमें ही था। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में यूरोपके कुछ नगरोंमें विश्वविद्यालय स्थापित किये गए थे, परन्तु वहाँ भी पुरातन यूनानी दार्शनिकोंके विचारों और मान्यताओंको ही विद्यार्थियोंके दिमागोंमें ठूंसा जाता था। चौदहवीं शताब्दीसे यूरोपके बुद्धिवादियोंने प्रयोगोंके द्वारा नया ज्ञान प्राप्त करने पर जोर दिया। पन्द्रहवीं शताब्दीमें मुद्रण-कलाका आविष्कार हुआ और उसके द्वारा जनतामें नये विचारोंको तेजीसे फैलानेकी सम्भावनाएँ पैदा हुई। १४५३में कुस्तुन्तुनिया (कान्स्टेण्टिनोपुल)का पतन हुआ, जिससे पूर्वी साम्राज्यका ज्ञान-विज्ञान यूरोपमें फैला। कोलम्बस, वास्को द' गामा, मैगेलैन (मगेलैन) आदि नायिकोंने अपने नौ-अभियानों द्वारा नये देशों और नये समुद्री मार्गोंका पता लगाया। इन सबसे प्रभावित होकर नवयुवक नई शोध-खोजकी ओर प्रवृत्त हुए। १६वीं शताब्दीमें खगोलके क्षेत्रमें कोपरनिकसने प्राचीन यूनानी खगोलवेत्ता टालेमीके इस मतका कि सूर्य पृथ्वीके चारों ओर घूमता है, खण्डन किया और अपना यह मत प्रतिपादित किया कि पृथ्वी स्थिर नहीं है, वह सूर्यकी परिक्रमा करती रहती है। इन्हीं दिनों चिकित्साशास्त्रके क्षेत्रमें वेसेलियसने यूनानी चिकित्साशास्त्री गेलेनके मानव शरीर-रचना-सम्बन्धी कई विचारोंको गलत और भ्रान्त ठहराया। इन अनुसन्धानोंने पुराणपन्थियोंमें खासी उथल-पुथल मचा दी, जिससे विज्ञानका झुकाव नई दिशाकी ओर हुआ। गैलिलियो, केपलर और न्यूटनने जो कार्य किये, उनके परिणामस्वरूप खगोल-विज्ञान और भौतिकी (भौतिकशास्त्र)का तो तेरहवीं शताब्दीमें द्रुत विकास हो रहा था, परन्तु रसायनशास्त्र अभी तक कीमियागरीसे मुक्त नहीं हुआ था; क्योंकि कई अच्छे-अच्छे विद्वान भी कीमियागरीका मोह छोड़ नहीं सके थे।

सोलहवीं शताब्दीमें रसायनशास्त्रकी प्रगतिमें योगदान करनेवाले वैज्ञानिकोंमें पैरा सैल्सस

पैरा सेल्सस (१४९३–१५४१)

अग्रिकोला (१४९४–१५५५)

(१४९३-१५४१), अग्रिकोला (१४९४-१५५५) और वान हेलमाण्ट (१५७७-१६४४)की गणना की जा सकती है। पैरा सैल्सस चिकित्साशास्त्रका शिक्षक था और नई-नई औषधियोंकी शोध-खोजके लिए प्रयोग करता रहता था। पारा, गन्धक आदिसे उसने नये क्षार बनाए थे। वह इस बात पर जोर देता था कि चिकित्सकोंको रासायनिक प्रयोगोंके द्वारा नई औषधियोंकी खोज करनी चाहिए। उसने चिकित्साशास्त्र, कीमियागरी, ज्योतिष, जादू और धर्म आदि विभिन्न विषयोंपर लगभग २३४ पुस्तकें प्रकाशित की

जान वेप्टिस्टा वान हेलमांट (१५७७–१६४४) और उसका लड़का फ्रान्सिस मरक्युरियस

रावर्ट वॉयल (१६२७-१६९१)

थी। उसकी कुछ मान्यताएँ बिलकुल गलत थीं। उदाहरणार्थ वह मानता था कि हमारा शरीर पारा, गन्धक और लवणका बना हुआ है। अग्रिकोला चिकित्साशास्त्र, रसायन और धातुओंके क्षेत्रमें पारंगत था और धातुओंपर उसने जो पुस्तक लिखी वह कई वर्षों तक चलती रही। वान हेलमाण्टने कार्बन डाइ-आक्साइड गैसकी खोज की थी और यह बतलाया था कि चूनेके पत्थर (lime-stone) पर अम्लकी क्रिया और किण्वन (fermentation)की क्रियाके दौरान यह गैस उत्पन्न होती है।

सत्रहवी शताब्दीमें रसायनशास्त्रमें सक्रिय

योगदान करनेवालोंमे रावर्ट बॉयल (१६२७-१६९१) अग्रणी था। सम्पन्न परिवारमे जन्मे रावर्टने इग्लैण्ड और यूरोपमे अच्छी शिक्षा पाई थी। उस जमानेके ज्ञानपिपासु और प्रगतिशील विचारोके विद्वानोंने एक गोष्ठी बनाई थी, जिसका उद्देश्य नया ज्ञान प्राप्त करना था। मिलने-बैठनेका कोई निश्चित स्थान न होनेके कारण उन्होने अपनी गोष्ठीका नाम अदृश्य कालेज (Invisible College) रखा था। १६६०मे इग्लैण्डके राजा चार्ल्स द्वितीयने इस गोष्ठीको चार्टर (शासपत्र) प्रदान किया और तबसे वह अदृश्य कालेजके बदले रॉयल सोसाइटी कहलाने लगी। पिछली तीन शताब्दियोंमे इस सस्था (रॉयल सोसाइटी)ने विज्ञानके क्षेत्रमे प्रचुर योगदान किया; और उसका फेलो (सदस्य) निर्वाचित होना बडे सम्मानकी बात समझी जाती है। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दीके वैज्ञानिक पानी, हवा और दहनको मूलतत्त्व मानते और इन मूलतत्त्वो एव प्रक्रियाओंको समझनेमे लगे हुए थे।

बॉयलने अनेक क्षेत्रोमे अनुसन्धान किये। गैस-सम्बन्धी उसके अनुसन्धान इतने महत्त्वपूर्ण है कि उनके कारण उसे आधुनिक रसायनशास्त्रका जनक कहा जाता है। अपने इन प्रयोगोके दौरान उसने गैसके दाव (pressure) और उसके आयतन (volume) के पारस्परिक सम्बन्धवाला जो नियम खोज निकाला वह 'बॉयलके नियम' (Boyle's law) के नाम से प्रख्यात है। उसने हवाका नाप-तोल किया और अदृश्य हवा 'अदृश्य कालेज' के सदस्योकी चर्चाका विषय बन गई। हवाका दाव कम करनेसे क्वथनाक (boiling point) कम होता है, जब पानी बर्फके रूपमे जम जाता है तो उसका विस्तार बढ जाता है, निर्वात (जिसमेसे हवा निकाल दी गई हो) पात्रमे भी लोहचुम्बकका चुम्बकीय गुण बना रहता है, आदि गवेषणाएँ बॉयलने की थी। मूलतत्त्वकी उसने जो व्याख्या की थी वह आज भी मान्य है। उसकी व्याख्याके अनुसार जिस पदार्थमेंसे रासायनिक क्रियाके द्वारा अन्य तत्त्वोको पृथक नही किया जा सके, वह मूलतत्त्व है। उसने मिश्रण, यौगिक और मूलतत्त्वके अन्तरको भी स्पष्ट किया। फास्फोरस बनानेका ढग भी उसने स्वतन्त्र रूपसे खोज निकाला था। रासायनिक विश्लेषणकी नीव उसीने रखी। उसकी पुस्तक 'दि स्केप्टिकल केमिस्ट'ने विज्ञानके क्षेत्रमे एक नई परम्पराको जन्म दिया। वह प्रायोगिक-विज्ञानमे अग्रगण्य था। १७वी शताब्दीमे रसायनशास्त्रके विकासमें योगदान करनेवाले और भी कई वैज्ञानिक थे, जिनमे रावर्ट हूक (१६३५-१७०३), जानमेयो (१६४५-१६७९), ग्लोबर (१६०४-१६७०), कुकल (१६३०-१७०१), बेचर (१६३५-१६८२) और लेमरी (१६४५-१७१५)के नामोका उल्लेख किया जा सकता है।

जान कुकल वान लोवेन्स्टर्न
(१६३०–१७०१)

हूकने दहन क्रियाको समझनेकी कोशिश की थी। वह इस नतीजे पर तो पहुँच गया था कि हवामे ऐसा कोई तत्त्व होता है जो दहनका सपोषण करता है, लेकिन उस तत्त्वका पता

लगानेमें वह सफल न हो सका। भौतिकीके क्षेत्रमें भी उसने प्रकाश इत्यादिके बारेमें अपने अनुमान व्यक्त किये थे। मेयो इस अनुमान पर पहुँचा था कि हवामें ऐसा कोई तत्त्व है जो धातुओंको गर्म करने पर उनसे संयोजित हो जाता है। उसने यह भी बताया कि वही तत्त्व सुवर्चल या शोरा (saltpetre)में है और उस तत्त्वके द्वारा अशुद्ध रक्त शुद्ध होता है। ग्लौवरने इस बातको स्वीकार किया था कि अम्ल और बेस (समाक्षार)की क्रियासे क्षार बनते है। उसने सोडियम सल्फेटको स्फटिक रूपमें तैयार किया था, जो आज भी 'ग्लौवर साल्ट'के नामसे जाना जाता है। एण्टीमनी सल्फाइड और मरक्युरिक क्लोराइडसे बननेवाला एण्टीमनी क्लोराइड उसने बनाया था; और आजकी सुपरिचित रासायनिक क्रिया द्विक्-विच्छेदन (double decomposition)की उल्लेखनीय गवेषणा उसीने की थी। काष्ठके आसवनसे ऐसेटिक अम्ल मिलनेकी बात भी उसीने बताई थी। कुंकल काँच बनानेमें कुशल था और फूंकनी (blow pipe)के द्वारा विश्लेषण करनेकी पद्धतिकी खोज उसने की थी, जो आज भी प्रचलित है। चीज़ोंके सड़ने और किण्वनकी क्रियामें साम्य होनेकी बात उसने बताई थी। फास्फोरसकी खोज उसने स्वतन्त्र रूपसे की थी। वेचरने धातुओंको गलानेके लिए ईंधनके रूपमें कोयलेके आसवनके दौरान प्राप्त होनेवाली गैस और उसीके साथ प्राप्त होनेवाले डामर (तारकोल)का उपयोग करनेका सुझाव दिया था; लेकिन उस समयका यूरोप डामरका उपयोग करनेके लिए तैयार नहीं था। वेचरकी विशेष प्रसिद्धि तो १८वीं सदीमें विज्ञानके क्षेत्रमें खासी हलचल मचानेवाले फ्लोजिस्टनवादके अग्रणीके रूपमें है। उसने यह मत प्रतिपादित किया था कि वस्तुएँ तीन प्रकारकी मिट्टीकी बनी होती हैं : टेरालेपिडा, टेरा मरक्युरिआलिस और टेरा पिंगुइस। उसके मतानुसार आसानीसे जलनेवाली वस्तुओंमें टेरा पिंगुइस अधिक मात्रामें होती है और जब वह वस्तु जलती है तो टेरा पिंगुइसका विलोप या विलीनीकरण हो जाता है। लेमरीने फ्रेंच भाषामें रसायन-शास्त्र पर एक पुस्तक लिखी थी, जिसका यूरोपकी सभी भाषाओंमें अनुवाद हुआ। लेमरीने खनिज पदार्थों और वानस्पतिक रसायनोंका अन्तर बताया और रसायनके आजके दो प्रमुख भेदों—अकार्बनिक और कार्बनिकका संकेत भी किया था।

गैस इकट्ठा करनेके लिए टेल्स द्वारा निर्मित उपकरण

१८वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें रसायनने तेजीसे प्रगति की, लेकिन इस सदीके पूर्वार्द्धमें उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो पाई। स्टीफन हेल्स (१६७७-१७६१)ने रक्त, काष्ठ, कोयला, चीनी

और शहद आदि कार्बनिक पदार्थोंको गर्म करनेसे जो गैसें निकलती हैं उन्हें पानीके ऊपर एकत्रित किया था। उसने इन गैसोंके गुणोंकी जाँच-पड़ताल, नहीं की। वह तो सिर्फ यह मालूम करना चाहता था कि विभिन्न पदार्थोंसे किस-किस परिमाणमें गैसें प्राप्त होती हैं। उसके प्रयोगोंकी सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि कुछ गैसें पानीमें घुल जाती हैं, जिस पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। स्टाल (१६६०-१७३४)ने आक्सिडेशन रिडक्शन (आक्सी-न्यूनीकरण)के क्षेत्रमें काम किया था और अनेक क्षारोंको गर्म कर उनमें होनेवाले परिवर्तनोंका परीक्षण किया था। उसकी ख्याति दहन-सम्बन्धी फ्लोजिस्टनवाद के प्रबल समर्थकके रूपमें है। स्टालने वेचरके टेरा पिंगुइसको 'फ्लोजिस्टन' नाम प्रदान कर यह मत प्रतिपादित किया कि सभी ज्वलनशील पदार्थोंमें फ्लोजिस्टन नामक तत्त्व रहता है और पदार्थके दहनके दौरान उड़ जाता है। जब लकड़ी (काष्ठ) जलती है तो उसमेंसे ज्वाला निकलती है और अन्तमें राख बच जाती है। स्टालके मतानुसार लकड़ी राख और फ्लोजिस्टनसे बनी होती है। राँगा, सीसा आदि धातुओंको गर्म करनेसे जो नया पदार्थ बनता है उसे धातुकी भस्म (आक्साइड) कह सकते हैं। फ्लोजिस्टनवादियोंके मतानुसार ये धातुएँ अपनी-अपनी भस्म और फ्लोजिस्टनकी बनी हुई हैं। कुछ वैज्ञानिकोंने इससे भी आगे जाकर फ्लोजिस्टनवादी सिद्धान्तको दहनके अतिरिक्त और भी कई रासायनिक क्रियाओं पर लागू किया। उदाहरणके लिए हमारे शरीरके अन्दर होनेवाली रासायनिक क्रियाओंकी उन्होंने दहनसे तुलना की। फ्लोजिस्टनवादियोंकी ऐसी मान्यता थी कि उच्छ्वसनमें हमारे फेफड़ोंमेंसे फ्लोजिस्टन बाहर निकलता है।

फ्लोजिस्टन सिद्धान्तमें कई खामियाँ थीं। फ्लोजिस्टनको किसीने देखा नहीं था, इसलिए इसके गुणोंको कोई भी निश्चयपूर्वक बता नहीं सकता था। जब किसी धातुको हवामें गर्म किया जाता है तो उसका आक्साइड (भस्म) बनता है और वजन बढ़ जाता है, इसलिए अगर दहनके दौरान धातुसे फ्लोजिस्टनके निकल जानेकी बातको माना जाए तो उसका वजन कम होना चाहिए। फ्लोजिस्टनवादियोंने इसका भी उत्तर खोज निकाला था। इस सम्बन्धमें उन्होंने यह मत प्रतिपादित किया कि फ्लोजिस्टन ऋणभार (negative weight) वाले पदार्थोंमेंसे है; इसीलिए धातुको गर्म करनेसे उसका वजन बढ़ जाता है। लगभग एक शताब्दी तक यह सिद्धान्त रसायनज्ञोंके दिमाग पर हावी रहा। १८वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें आक्सीजनकी खोज हो जानेके बाद लवाशिये और अन्य रसायनज्ञोंने अपने कार्योंसे इसे गलत साबित किया और तब कहीं फ्लोजिस्टनवादको तिलांजलि दी जा सकी। इस सिद्धान्तके सत्यासत्यके निर्णयके लिए वैज्ञानिकोंने अनेक प्रयोग किये, जिससे विज्ञानकी सीमाएँ विस्तृत हुईं। लेकिन ऐसे भी कई वैज्ञानिक थे जो प्रयोगोंके परिणामोंकी स्वतंत्र जाँच-पड़तालके बाद अनुमान पर पहुँचनेके बदले फ्लोजिस्टनवादी सिद्धान्तके द्वारा उन्हें समझने-समझानेका गलत प्रयत्न करते थे, जिससे विज्ञानकी प्रगतिमें बाधा पड़ती थी।

१८वीं सदीके उत्तरार्द्धमें कई कुशल रसायनज्ञ हुए; इनमें जोसेफ ब्लैक (१७२८-१७९९), कैवेण्डिश (१७३१-१८१०), शीले (१७४२-१७८६), जोसेफ प्रीस्टले (१७३३-१८०४) और लवाशिये (१७४३-१७९४)के कार्य महत्त्वपूर्ण हैं।

ब्लैकने मैग्नेशियम आल्वा नामक पदार्थ पर काम किया था। यह पदार्थ मैग्नेशियम कार्बोनेट है। ब्लैकने इस पदार्थको गर्मकर एक गैस प्राप्त की थी जो दहन अथवा जीवनका सम्पोषण नहीं करती थी और चूनेके पानीमें अवशोषित होकर उस पानीको सफेद कर देती थी। इस गैसको उसने स्थिर वायु (fixed air) नाम दिया। उसने यह भी बताया कि इस पदार्थ पर अम्लकी क्रियासे भी यही गैस प्राप्त होती है और हम उच्छ्वासके द्वारा इसी गैसको शरीरसे बाहर निकालते हैं। ब्लैक ग्लासगोमें रसायनशास्त्रका शिक्षक था और जो सिद्धान्त प्रयोग पर आधारित न होते उन्हें स्वीकार नहीं करता था।

जोसेफ ब्लैक (१७२८–१७९९)

कैवेण्डिश इंग्लैण्डके एक सम्पन्न जागीरदार परिवारमें जन्मा और कुछ अंशों तक सनकी समझा जाता था। उसने अपना सारा जीवन वैज्ञानिक शोध-खोजमें लगाया। उसने

हाइड्रोजन गैसका पता लगाया और आसानीसे जलनेवाली होनेके कारण उसे ज्वलनशील वायु (inflammable air) नाम दिया। धातुओं पर अम्लकी क्रियासे यह गैस उत्पन्न होती है। प्रीस्टले द्वारा आक्सीजनकी खोजके बाद कैवेण्डिशने इस ज्वलनशील गैसको आक्सीजनके साथ एकत्र कर इसे विद्युत-चिनगारी (electric spark) से संयुक्त (संयोजित) किया तो उसे पानी प्राप्त हुआ। इसपरसे उसने यह सिद्ध किया कि पानी मूल तत्त्व नहीं, बल्कि आक्सीजन और हाइड्रोजनका एक यौगिक है। इसके बाद उसने आक्सीजन और नाइट्रोजनके मिश्रणको विद्युत-चिनगारीसे संयुक्त किया और इस क्रियामें प्राप्त नाइट्रिक आक्साइडको कास्टिक पोटाशके विलयन में अवशोषित किया तो पाया कि आरम्भिक आयतनका १/१२०वाँ भाग गैसके ही रूपमें रह गया। वह आक्सीजन, नाइट्रोजन या नाइट्रिक आक्साइड नहीं थी। कैवेण्डिश इनका कारण समझ न सका। लगभग एक शताब्दी बाद विलियम रैम्जेने इस समस्याको सुलझाया और बताया कि गैसका यह बुलबुला नाइट्रोजनमें पाई जानेवाली आर्गन आदि निष्क्रिय गैसोंके कारण था। इस उदाहरणसे कैवेण्डिशके उच्चकोटिके प्रयोगोंका पता चलता है।

कैवेण्डिश (१७३१–१८१०)

शीलेने अपने छोटे-से जीवनमें काफी अच्छे काम किये। उसने आक्सीजन और क्लोरिन गैसोंका पता लगाया। टंग्स्टन और मालिब्डेनमके यौगिकोंका उसने अध्ययन किया। मालिब्डेनम-की कच्ची (मूल) धातु जो आजकल मालिब्डेनाइट कहलाती है उसे उस जमानेके लोग ग्रेफाइटके

कीमियागरकी प्रयोगशाला

चित्रकार : डेविड टेनियर [१६१०–१६९०]

सत्रहवीं सदीकी कीमियागरी
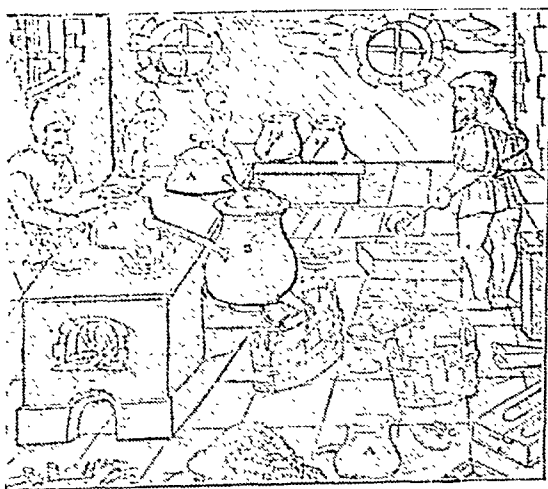
गन्धकका आसवन (१६वीं सदी)

जोसेफ प्रीस्टलेके प्रयोग-सम्बन्धी टिप्पणोसे आच्छादित नगरके मार्ग

वैज्ञानिककी कद्र !

फ्रासकी राज्यक्रान्तिसे कुछ लोग प्रसन्न हुए तो कुछेकके दिल दहल गए। आक्सीजनका पता लगानेवाले जोसेफ प्रीस्टलेने मुक्ति, समानता और भाईचारेका स्वागत कर फ्रान्सकी क्रान्तिकी प्रशसा की तो हमेशा स्वतन्त्रताके गीत गानेवाले एडमड बर्क-जैसोने उसका विरोध भी किया। परिणाम यह हुआ कि उत्तेजित लोगोकी भीडने प्रीस्टलेके मकान (फेअर हिल, बर्मिघम)को लूटा, फर्नीचर जला दिया और बीसियो बरसके कठिन परिश्रमसे तैयार किये हुए उसके प्रयोग-सम्बन्धी टिप्पणो और लेखोको फाडकर सड़को पर फेक दिया। सडको पर डेढ-दो मील तक बिखरी हुई जीवन-साधनाकी इस पूँजीको लोगोके पाँवो तले कुचले जाते देख उस वैज्ञानिकके हृदयको ऐसी करारी चोट लगी जो मृत्युपर्यन्त कसकती रही। इग्लैण्डमे जीना दूभर हो गया तो १७९४मे वह अमरीका जा बसा। इन्ही दिनो फ्रान्समे लवाशियेकी गर्दन नापी गई !

नामसे जानते थे। शीलेने इन दोनोंका अन्तर स्पष्ट करते हुए यह बताया कि ग्रेफाइट कार्बनका एक रूप है। उसने हाइड्रोजन सल्फाइड, आर्सीन और ताँबेके क्षार—कापर आर्सेनाइट जो अपने हरे रंगके कारण 'शीलेज ग्रीन' नामसे पुकारा जाता है—इन तीनोंका अध्ययन किया था। प्रशियन ब्लू रंगकी शोध-खोजके दौरान उसने अत्यन्त जहरीला हाइड्रोसायनिक अम्ल बनाया था। कार्बनिक रसायनके क्षेत्रमें उसने ग्लिसरीन यूरिकाम्ल (मूत्राम्ल), लैक्टिक टार्टरिक, साइट्रिक, मेलिक और आक्सेलिक अम्ल बनाये थे और उनके कैल्शियम क्षार तैयार कर परिष्करण (निर्मलीकरण)के तरीकेकी खोज की थी। इतना उच्च-कोटिका वैज्ञानिक होते हुए भी वह फ्लोजिस्टन सिद्धान्तका कट्टर समर्थक था और अपने प्रयोगोंके परिणामोंको फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके द्वारा समझानेकी कोशिश किया करता था।

कार्ल शीले (१७४२-१७८६)

प्रीस्टलेकी ख्याति आक्सीजनका पता लगानेके कारण है। इस गैसको उसने पारे और आक्सीजनके एक यौगिक मरक्युरिक आक्साइडको, गर्म करके प्राप्त किया था। इस गैसके गुणोंके सम्बन्धमें उसने यह खोज की कि वह दहन और जीवनका संपोषण करती है। प्रीस्टलेने गैसोंको पारे पर इकट्ठा करनेका ढंग खोजा था। इससे पहले गैसोंको पानी पर इकट्ठा किया जाता था, जिससे पानीमें घुलनेवाली गैसें प्राप्त नहीं की जा सकती थी। प्रीस्टले अपनी नई विधिसे पानीमें घुलनेवाली सल्फर डाइ-आक्साइड, हाइड्रोजन क्लोराइड और ऐमोनिया गैसोंको प्राप्त करनेमें सफल हुआ। ऐमोनिया गैसको विद्युत-चिनगारीसे संयुक्त करने पर हाइड्रोजन गैस मिलती है और जिस बरतनमें मोमबत्ती जलाई जाए उसमें जीवन सम्भव नहीं होता, लेकिन यदि उस बरतनमें वनस्पतिको उगाया जाए तो जीवन सम्भव हो जाता है—यह सब उसने प्रयोगोंके द्वारा प्रमाणित किया था। प्रीस्टले भी अन्त तक फ्लोजिस्टनवादका दामन थामे रहा और आक्सीजनको उसने 'डिफ्लोजिस्टेनेटेड एअर' अर्थात् फ्लोजिस्टन-रहित हवा और नाइट्रोजनको 'फ्लोजिस्टेनेटेड एअर' अर्थात् फ्लोजिस्टन-सहित हवा नाम दिये थे।

जोसेफ प्रीस्टले (१७३३–१८०४)

लवाशिये (१७४३-१७९४) १८वीं सदीका एक महान वैज्ञानिक था। उसके समयसे और उसके प्रयोगोंसे रसायनके क्षेत्रमें द्रुत विकास होने लगा। लवाशियेने भौतिकविदोंकी कार्य-पद्धति और विचार प्रणालीको रसायनके क्षेत्रमें अपनाया। उसने दहन-सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये और फ्लोजिस्टनवादको सदाके लिए तिलांजलि दे दी। उसने बताया कि दहन हवामें पाई जानेवाली

आक्सीजन और जलनेवाले पदार्थके बीच होनेवाली रासायनिक क्रिया है। फ्लोजिस्टन-जैसी किसी वस्तुका अस्तित्व ही नहीं है। कार्बनिक पदार्थोंके जलनेसे कार्बन डाइआक्साइड गैस और पानी बनता है, यह भी लवाशियेने ही बताया था। शराब, कपूर आदि अनेक पदार्थोंका विश्लेषण कर किसमें कितना अंश कार्बन, कितना अंश हाइड्रोजन और कितना अंश आक्सीजन है, यह भी उसने निश्चित किया था। राबर्ट बॉयल्की मूलतत्त्व-सम्बन्धी परिभाषाको आधार बनाकर उसने ३३ मूलतत्त्वोंकी सूची तैयार की थी। लवाशियेकी इस सूचीको शत-प्रतिशत सही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसने प्रकाश और गर्मीको भी मूलतत्त्व मानकर इस सूचीमें शामिल कर लिया था। १७८९में उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'ट्रेट द शीमी' प्रकाशित हुई, जिसमें उसने अपने रसायन-सम्बन्धी विचारोंको संकलित किया था। इस पुस्तकने रसायनके क्षेत्रमें क्रान्ति मचा दी थी। रासायनिक पदार्थोंका विश्लेषण और रासायनिक संयोजन उसके कार्योंके द्वारा अपने पाँवों पर खड़े हो सके। लवाशियेके समयमें कितनी भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित थीं, उसका एक उदाहरण देखा जाए। उस समय यह माना जाता था कि पानीको गर्म करनेसे वह मिट्टी बन जाता है। लवाशियेने १०० दिन तक पानीको एक बन्द बरतनमें गर्म करके इस मान्यताको गलत साबित किया था। रसायनके क्षेत्रमें क्रान्ति करने वाला लवाशिये फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिकी बलि चढ़ा दिया गया। लोगोंसे कर वसूल करनेवाली एक संस्था 'फेर्म द जनराल'का वह सदस्य था, और इस अपराधके कारण उसे प्राणदण्ड दिया गया।

लवाशिये (१७४३–१७९४)

हाफमैन, बिरहोव (१६६८-१७३८) और मारग्राफ (१७०९-१७८२) १८वीं शताब्दीके कुछ और रसायनज्ञ थे। हाफमैनने खनिज जल (mineral water)का विश्लेषण किया था और सल्फेट एवं नाइट्रेटका अन्तर बताया था।

बिरहोव लीडन विश्वविद्यालयमें रसायन और चिकित्साशास्त्रका अध्यापक था और उसने 'एलीमेण्टा केमिया' (Elementa Chemiae) नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें उसके समयकी रसायन सम्बन्धी जानकारी संकलित की हुई है। मारग्राफने कई महत्त्वपूर्ण खोजें की थीं। उदाहरणके लिए मैग्नेशिया और एल्युमीनाका अन्तर उसने बताया और यह भी दिखलाया कि जिप्सम (चिरोड़ी) बेराइट्स और पोटेसियम सल्फेट सल्फ्यूरिक अम्लके क्षार हैं।

१९वीं शताब्दीमें रसायनके क्षेत्रमें तेजीसे प्रगति हुई और अनेक नये विचारों, सिद्धान्तों, कार्य-प्रणालियों (तकनीकों) और उद्योगोंका आविष्कार हुआ। इनमें डाल्टनकी एटमिक थियरी (परमाणुवाद), मेण्डेलीफकी पीरियोडिक टेबल (आवर्त सारणी) और केकुलेके कार्बनिक पदार्थोंकी रचनासे सम्बन्धित विचार काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

१९वीं शताब्दीके आरम्भकालमें हम्फ्री डेवीने रसायनके क्षेत्रमें कई ठोस कार्य किये। सम्पन्न परिवारमें उसका जन्म हुआ था। वह प्रतिभा सम्पन्न युवक था और थोड़ी उम्रमें भी उसने कई अनुसन्धानात्मक कार्य किये। खानोंके अन्दर काममें लाया जानेवाला निरापद दीप (safety lamp) उसीकी सूझ है; इसके लिए आज भी खनिक उसके नामको कृतज्ञतासे स्मरण करते हैं। रसायनके क्षेत्रमें भी उसके कार्य इतने ही महत्त्वपूर्ण थे। १८०० ईसवीमें वोल्टाने वोल्टीय सेलका निर्माण कर विद्युतको संचारित किया था। डेवीके उर्वर मस्तिष्कने इस खोजके महत्त्वको समझा और विद्युत एवं रसायनोंके पारस्परिक संबंधोंका पता लगानेके लिए उसने अनेक रसायनोंमें विद्युतको पारित किया। कास्टिक सोडा और पोटासको गर्मकर उसने द्रव बनाया और उस द्रवमें विद्युत् पारित करके पोटेसियम और सोडियम धातुएँ प्राप्त कीं। उसके बाद उसने स्ट्रान्शियम, मेग्नेशियम और बोरोनको अपने-अपने क्षारोंमेंसे पृथक् किया। आक्सिम्युरियाटिक अम्लके नामसे परिचित एक गैसके बारेमें डेवीने यह पता लगाया कि वह एक मूलतत्त्व है और उसने उसका नाम क्लोरिन रखा। आयोडिनके गुणोंकी जाँच-पड़ताल भी उसने की थी। डेवीने फेराडेको अपना सहायक नियुक्त किया था। फेराडे बहुत गरीब था और बचपनमें एक जिल्दसाजके यहाँ नौकरी करता था। लगनशील फेराडेको एक बार डेवीके भाषण सुननेका अवसर मिला तो उसने भाषणोंको लिख लिया और उनकी जिल्द बनाकर डेवीको इस अनुनयके साथ भेजा कि वह उसे अपनी प्रयोगशालामें नौकर रखनेकी कृपा करें। डेवीने उसे अपने सहायकके रूपमें नौकर रख लिया। इस तरह फेराडेको अपने उज्ज्वल कार्योंको आरम्भ करनेका मनचाहा अवसर मिला।
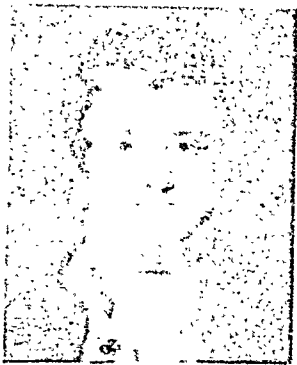
सर हम्फ्री डेवी (१७७८–१८२५)

माइकेल फेराडे (१७९१–१८६७)

१८५०में डाल्टनने अपनी 'एटमिक थियरी' अर्थात् परमाणुवादको प्रतिपादित किया और रसायनके क्षेत्रमें काफी तेज़ीसे प्रगति होने लगी। डाल्टनका जन्म एक साधारण परिवारमें हुआ था; गाँवकी पाठशालामें पढ़ाई पूरी कर उसे छोटी उम्रमें ही शिक्षक बन जाना पड़ा था। वह जीवनभर शिक्षक बना रहा। विज्ञानके कई क्षेत्रोंमें उसने कार्य किया। वर्णान्धता (colour blindness), वायु-विज्ञान, भौतिकी और

रसायनके क्षेत्रमें उसने जो कार्य किये वे अत्यन्त प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन उसकी ख्याति तो मुख्य रूपसे उसकी 'एटमिक थियरी'के कारण है। परमाणुका विचार बहुत पुरातन है।

जान डाल्टन (१७६६–१८४४)

डिमोक्रिटसने (ई० पू० ४६०-३७०) यह मत प्रतिपादित किया था कि किसी भी वस्तुका छोटा-से-छोटा अदृश्य कण, जो और विभाजित नहीं किया जा सके, एटम (a=not; tom=to divide) है। डाल्टनके परमाणुवादके अनुसार 'एटम' घन, आकार और भारवाले कण हैं। एक मूलतत्त्वके परमाणु एक ही प्रकारके (गुणोंवाले) और एक ही भारके होते हैं; लेकिन भिन्न-भिन्न मूलतत्त्वोंके परमाणु भिन्न-भिन्न भारवाले होते हैं और वे निश्चित मात्रामें दूसरे परमाणुओंसे संयोजित होते हैं। एक मूलतत्त्वके परमाणु यदि दूसरे मूलतत्त्वके परमाणुओंसे भिन्न-भिन्न अनुपातमें संयोजित होकर भिन्न-भिन्न यौगिकोंकी रचना करें तो प्रत्येक यौगिकमें संयोजित अन्य पदार्थके परमाणु १ : २ : ३ : ४में दिखाये जा सकनेकी तरह निश्चित अनुपातमें होते हैं। मतलब यह कि दो या अधिक मूलतत्त्वोंके परमाणु सरल गुणित अनुपातमें संयोजित होते हैं; और इस तरहके यौगिकोंके परमाणु संयुक्त या मिश्रित परमाणु कहलाते हैं। किसी यौगिकके सब संयुक्त परमाणु समान होते हैं। परमाणुओंको न नष्ट किया जा सकता है, न उत्पन्न। डाल्टनने विभिन्न मूलतत्त्वोंके जो परमाणुभार निकाले थे, वे कालान्तरमें और अधिक प्रयोगोंके उपरान्त गलत साबित हुए और उसके 'परमाणुवाद'में भी आगे चलकर बहुत परिवर्तन हो गए। परन्तु उसके इस सिद्धान्तने रासायनिक क्रियाओं और रासायनिक विश्लेषणोंको अधिक अच्छे ढंगसे समझनेका मार्ग प्रशस्त किया।

उन्हीं दिनों एक और उल्लेखनीय वैज्ञानिक गैसों पर शोध-खोज कर रहा था। उसका नाम गे-लुसाक है। उसके अनुसन्धानोंसे डाल्टनके परमाणुवादको और भी बल मिला। गे-लुसाकने संयोजित होनेवाली गैसोंके आयतनके नियम (Law of Combining Volume of Gases)की खोज की थी। अपने परीक्षणोंके दौरान गे-लुसाकने पाया कि जब हाइड्रोजन और आक्सीजनका संयोग होता है तो दो आयतन हाइड्रोजन और एक आयतन आक्सीजनके अनुपातमें संयोजन होकर दो आयतन भाप बनती है।

गे-लुसाक (१७७८–१८५०)

इसे यों भी कह सकते हैं कि दो आयतन हाइड्रोजन और एक आयतन आक्सीजनके संयोगसे दो आयतन भाप बनती है।

हाइड्रोजन	+	आक्सीजन	=	पानी (वाष्प)
२ आयतन		१ आयतन		२ आयतन

इसी प्रकार

कार्बन मोनोआक्साइड	+	आक्सीजन	=	कार्बन डाइआक्साइड
२ आयतन		१ आयतन		२ आयतन
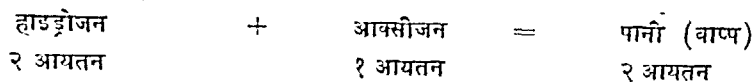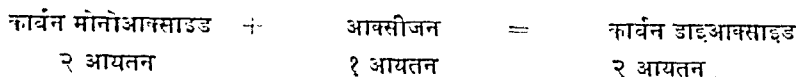
इस प्रकारके और भी कुछ परीक्षण उसने किये थे। इन सब प्रयोगोंके द्वारा गे-लुसाक इस निर्णय पर पहुँचा कि जब गैसोंमें रासायनिक क्रिया होती है तो उस क्रियाके दौरान संयुक्त (संयोजित) होनेवाली या क्रियाके परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली गैसोंके आयतनका पारस्परिक अनुपात सादी संख्या (१ : १; १ : २; १ : ३; २ : ३ आदि)के द्वारा दर्शाया जा सकता है।

गे-लुसाकके नियमके अनुसार समान आयतन वाली गैसोंमें एक ही ताप और दाब होने पर समान अनुपातमें संयोजित होनेवाले कण रहते हैं। इस नियमके अनुसार नीचे बताये गए अनुपातमें यौगिक मिलना चाहिए, लेकिन मिल नहीं पाता—

(१) हाइड्रोजन	+	आक्सीजन	=	पानी (वाष्प) मिलना चाहिए
२ आयतन		१ आयतन		१ आयतन
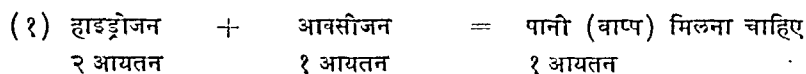
लेकिन प्रयोगमें २ आयतन वाष्प मिलती है।

इसी प्रकार

(२) नाइट्रोजन	+	हाइड्रोजन	=	ऐमोनिया गैस (मिलनी चाहिए)
१ आयतन		३ आयतन		१ आयतन
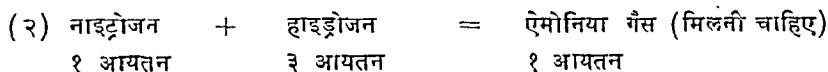
लेकिन प्रयोगमें २ आयतन ऐमोनिया मिलती है और हाइड्रोजन क्लोराइड गैसकी बनावटमें

(३) हाइड्रोजन	+	क्लोरिन	=	हाइड्रोजन क्लोराइड
१ आयतन		१ आयतन		२ आयतन
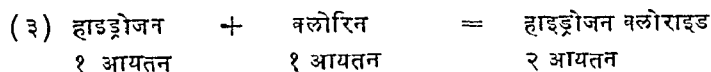
मिलती है। तो क्या हाइड्रोजन और क्लोरिनके आधे-आधे परमाणु संयोजित होकर १ परमाणु हाइड्रोजन क्लोराइड बनाते हैं? और क्या परमाणु विभाज्य है? इस समस्याका समाधान एवोगैड्रोने १८११ ई०में किया।

एवोगैड्रोकी परिकल्पनाके अनुसार पदार्थका सबसे छोटा कण तो परमाणु ही है। लेकिन वह स्वतन्त्र रूपसे रह नहीं सकता, दो या दोसे अधिक परमाणुओंके वृन्द (समूह)के रूपमें रहता है। ऐसे वृन्दको अणु (Molecule) कहते हैं। हाइड्रोजन, आक्सीजन और क्लोरिनके अणु दो-दो परमाणुओंके बने होते हैं। रासायनिक संयोगके समय उस अणुके परमाणु पृथक् होकर रासायनिक क्रियामें भाग लेते हैं। इस परिकल्पनाके आधार पर रासायनिक प्रयोगोंके परिणामोंको

(रासायनिक संयोगोंको) आसानीसे समझाया जा सकता है। लेकिन एवोगैड्रोके इस सिद्धान्तकी ओर उसके समकालीन वैज्ञानिकोंने कोई ध्यान नहीं दिया। यहाँ तक कि डाल्टनने भी उसकी उपेक्षा की जबकि एवोगैड्रोकी परिकल्पनाने उसके परमाणु सिद्धान्तकी जड़को और भी मजबूत ही किया था। ठेठ १८६० ई०में स्टेनिस्लाव केनिजरोने इस ओर वैज्ञानिकोंका ध्यान आकर्षित किया; तब तक रसायनज्ञ अंधेरेमें ही भटकते रहे। आज तो एवोगैड्रोकी परिकल्पना सर्वमान्य सिद्धान्त बन चुकी है।

बर्ज़ीलियस बचपनमें ही माता-पिताके मर जानेसे अनाथ हो गया था। सगे-सम्बन्धियोंकी कृपासे वह किसी तरह अपनी शिक्षा पूरी कर सका। लेकिन शिक्षा समाप्त होनेके पहले ही शिक्षकोंसे उसका बिगाड़ हो गया और वह बड़ी कठिनाईसे परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ। जीवनके उषाकालके इन कटु अनुभवोंने उसके स्वभाव पर गहरा प्रभाव डाला। पाठशालाके विद्यार्थी जीवनसे ही वह

बर्ज़ीलियसका एक पत्र

रासायनिक प्रयोगोंमें तल्लीन रहा करता था। शिक्षाकी समाप्तिके बाद वह स्टाकहोमके मेडिकल कालेजमें नौकर हो गया और अन्तमें वहीं प्राध्यापक भी बना। डाल्टन और रीक्टर (Richter) के कार्योंसे वह बहुत प्रभावित हुआ था, लेकिन जानता था कि जबतक विश्लेषण की पद्धतियाँ ठीक ढंगसे निर्धारित नहीं की जाती, इन सिद्धान्तोंको व्यापक समर्थन नहीं मिल सकता। स्वयं उसने इस दिशामें बहुत काम किया और लगभग १० वर्षोंकी अवधिमें ४३ मूलतत्त्वोंके सब मिला-कर दो हजार यौगिक बनाए और उन्हें शुद्ध करके, उनका विश्लेषण करके उनके संयोजित होनेके अनुपात निश्चित किये। इन प्रयोगोंके आधार पर उसने यह अनुमान प्रतिपादित किया कि समान दाब तथा ताप पर समान आयतनकी विभिन्न गैसोंमें परमाणुओंकी संख्या एक ही होती है।

---

१. उस समय तक तत्त्वों और यौगिकों, दोनों हीके सबसे छोटे कणके लिए 'परमाणु' शब्द-का ही प्रयोग किया जाता था। 'अणुओं'के बारेमें लोग जानते नहीं थे।

उसके द्वारा निकाले हुए कुछ परमाणुभार पूरी एक शताब्दीके बाद भी विशेषज्ञों द्वारा निकाले हुए परमाणुभारोंसे हूबहू मिलते हैं। अशुद्ध रसायनों, घरेलू साधनों और रसोईघर जैसी छोटी-सी प्रयोगशालाके सहारे उसने इतना सब काम किया और अपने प्रयोगों तथा अनुसन्धानोंके परिणामोंको तात्कालिक पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित करता रहा। रसायनशास्त्रकी एक पाठ्य-पुस्तक भी उसने प्रकाशित की थी, जिसके कई संस्करण हुए और यूरोपकी कई भाषाओंमें उसके अनुवाद भी। १९वीं शताब्दीके रसायन पर उसकी गहरी छाप है।

१९वीं शताब्दीके आरम्भमें कार्बनिक पदार्थोंके रसायनका विकास नहीं हुआ था। कार्बनिक पदार्थोंका प्राणजन्य और वानस्पतिक ऐसे दो भागोंमें विभाजन किया जाता था। बहुतसे कार्बनिक पदार्थ जाने-पहचाने थे। शराब, सिरका, कपूर, नील, चीनी, गोंद, रक्त, मूत्र इत्यादिके वर्णन, विशेषरूपसे चिकित्साशास्त्रकी दृष्टिसे, इक्की-दुक्की पुस्तकोंमें देखनेको मिल जाया करते थे। कार्बन और हाइड्रोजन-के अतिरिक्त कुछ कार्बनिक पदार्थोंमें आक्सीजन, नाइट्रोजन और गन्धक जैसे अन्यान्य मूलतत्त्व भी होते हैं, यह जान-कारी लोगोंको थी। लेकिन इन पदार्थोंको प्रयोगशालामें बनाया नहीं जा सकता, क्योंकि कार्बनिक पदार्थोंको बनानेके लिए एक महत्त्वपूर्ण जैवशक्ति (Vital force) आवश्यक होती है, ऐसी मान्यता प्रचलित थी। १८२८में वोहलरने ऐमोनियम साइनेट नामक अकार्बनिक पदार्थको गर्म करके मूत्रसे प्राप्त होनेवाला कार्बनिक पदार्थ यूरिया बनाया। इस प्रयोगसे जैवशक्तिवाले सिद्धान्तको जबर्दस्त धक्का पहुँचा।

फ्रेडरिक वोहलर (१८००-१८८२)

वोहलर (१८००-१८८२), लिबिग (१८०३-१८७३) और ड्यूमा (१८००-१८८४) उस समयके कार्बनिक रसायनके धुरन्धर विद्वान थे। वोहलरने विश्लेषणके क्षेत्रमें बर्ज़ीलियससे शिक्षा पाई थी। साइनेट और यूरिक अम्ल पर उसने बहुत-सा काम किया था। अकार्बनिक रसायनके क्षेत्रमें उसने १८२७में ऐल्युमीनियमकी खोज की थी। शिक्षकके रूपमें उसकी बहुत अच्छी ख्याति थी और देश-विदेशके विद्यार्थी उससे शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आते थे।

लिबिग भी उच्चकोटिका शिक्षक था और उसकी प्रयोगशालाका पाठ्यक्रम आदर्श माना जाता था। वह अपने विद्यार्थियोंको तरह-तरहके विश्लेषण—जैसे कि गुणदर्शी और परिमाणमापी विश्लेषण सिखाता और कार्बनिक पदार्थ बनानेकी शिक्षा भी देता था। पहले उसने शुद्ध कार्बनिक रसायनके क्षेत्रमें काम किया था; परन्तु बादमें खाद्यपदार्थों, खेती-बाड़ी और शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology) में उसकी अभिरुचि हो गई थी। कार्बनिक

जस्टस वान लिबिग (१८०३-१८७३)

लिबिगकी सुप्रसिद्ध प्रयोगशाला ई० स०१८४२

इस प्रयोगशालामें उसके शिष्य क्लेर, डा० विल, डा० वारेनट्रेप, शेरर और हॉफमैन आदि काम करते दिखाई देते हैं।

कार्बनिक पदार्थोंका विश्लेपण करनेके लिए लिबिग द्वारा प्रयुक्त उपकरण

लवाशियेके प्रयोग संवंधी उपकरण

पदार्थोके विश्लेषणमे जो पद्धति आज काममें लाई जा रही है, उसकी खोज लिबिगने ही की थी। स्वभावका वह अत्यन्त उग्र था और अक्सर वाद-विवादमे उलझ जाया करता था।

जे० बी० ए० ड्युमा(१८००-१८२८)

ड्युमाकी रुचि बचपनमे ही विज्ञानकी ओर थी और छोटी उम्रमे ही उसने शरीरके क्रिया-कलापोंके क्षेत्रमे प्रयोग आरम्भ कर दिये थे। गाइटर (कण्ठमाला) रोगमे आयोडिनकी उपयोगिता, शरीरके स्रावोंका विश्लेषण, लाल रुधिर कणिकाओंका कार्य, डिजिटैलिसका शरीर पर प्रभाव इत्यादि प्रश्नो पर उसने काफी काम किया था। २३ वर्षकी उम्रमे वह पेरिसमे शिक्षक नियुक्त हुआ। कार्बनिक पदार्थोंमें नाइट्रोजनका अनुपात निश्चित करनेकी जो पद्धति आज प्रचलित है, उसकी खोजका श्रेय ड्युमाको ही है। वाष्पघनता मालूम करनेकी रीति उसने खोजी थी और कार्बनिक पदार्थोंमें प्रतिस्थापनका अध्ययन उसने किया था।

१९वी सदीके पूर्वार्द्धमे मूलतत्त्वके परमाणुओके भारके बारेमे वैज्ञानिक आपसमे एकमत नही थे। कुछ मूलतत्त्वोंके तुल्याक भारो (equivalent weights)की जानकारी अवश्य थी, परन्तु सामान्यतः रसायनज्ञ एवोगैड्रोके सिद्धान्तकी ओरसे उदासीन ही रहे। द्रव्यके अणुभार निश्चित न होनेके कारण उनके अणुसूत्र (molecular formula) भी निश्चित नही हो पाए थे। एक ही पदार्थका भिन्न-भिन्न ढंगसे वर्णन किया जाता था। बर्ज़ीलियसकी ड्युअलिस्टिक थियरी और ड्युमाकी टाइप थियरी प्रचलित थी, लेकिन दोनोसे ही अणुसंरचना पर कोई प्रकाश नही पड़ता था। १८५३मे वोहलरने बर्ज़ीलियसको लिखा था कि "कार्बनिक रसायन प्राचीन-कालके किसी घने जंगलकी तरह था, अनोखी चीज़ोसे भरा पूरा, डरावनी और सीमातीत झाड़ी, जिसमेंसे निकलनेका कोई मार्ग नही था और जिसमें घुसते भी डर लगता था।" १८५८-में दो युवक रसायनज्ञोंने स्वतन्त्र ढंगसे कार्बनके परमाणुओंको जोड़नेकी मार्गदर्शक पद्धतिका आविष्कार कर इस जंगलमेंसे बाहर निकलनेका रास्ता दिखाया। ये दोनों रसायनज्ञ थे केकुले (१८२९-१८९६) और टामस कूपर (१७५९-१८४१)।

केकुले लिबिगका शिष्य था और लिबिगके भाषणो एवं रसायनके विषयने उसे मोहित कर लिया था। मूलरूपसे तो वह स्थापत्यकला (architecture) का विद्यार्थी था, परन्तु मकानोकी रचनाकी अपेक्षा कार्बनिक अणुओंकी संरचनामें उसकी रुचि बढ़ती गई ओर वह कार्बनिक रसायनके क्षेत्रमें काम करनेकेलिए चला आया।

कार्बनिक पदार्थोंकी रचनाके सम्बन्धमे उन दिनों तरह-तरहके विचार प्रचलित थे। लवाशियेने अकार्बनिक अम्लोके अपने सिद्धान्तको कार्बनिक अम्लो पर घटित करनेका असफल प्रयत्न किया था। उसकी ऐसी मान्यता थी कि कार्बनिक अम्ल संयुक्त मूलक (combined radicals)में आक्साइड होते है। बर्ज़ीलियसने अपनी 'ड्युअलिस्टिक थियरी' प्रतिपादित की थी। उसके अनुसार जलरहित अम्लका सूत्र, उसके क्षारके सूत्रोंमेंसे बेस (भस्म या समाक्षार)का भाग

निकालकर लिखा जा सकता है। उदाहरणके लिए कैलिसयम सल्फेट $Ca\ SO_4$में SO_3 अम्ल है। इसी प्रकार कैल्सियम एसेटेट $C_4H_6O_4\ Ca$मेंसे CaO निकाल देनेसे अम्लका भाग $C_4H_8O_4$ होना चाहिए, लेकिन एसेटिक अम्लका अणुसूत्र $C_4H_6O_4$ ज्ञात हुआ। कुछ लोग इस सूत्रकी गणना $C=6, O=8$के आधार पर तो कुछ लोग $C=6, O=16$के आधार पर करते थे। ड्युमाने अपनी 'इथरीन थियरी' प्रचारित की थी। उसने यह अनुमान प्रतिपादित किया कि मद्य (ऐलकोहल)से संकलित सभी पदार्थ इथाइलिन (C_2H_4) से बने होते हैं। उसके बाद लिविगने अपनी 'एसेटाइल थियरी' प्रकाशित की। इन सभी विचारोंका 'रेडिकल थियरी'के अन्तर्गत वर्णन किया जाता है।

ड्युमाने ही सबसे पहले कार्वनिक पदार्थों पर क्लोरिन और ब्रोमिनकी प्रतिस्थापन अभिक्रियाएँ (Substitution reactions) की थीं; और एक या दो हाइड्रोजनको क्लोरिन अथवा ब्रोमिनसे प्रतिस्थापित किया था। एसेटिक अम्लमें क्लोरिनको पारित करनेसे ट्राय क्लोरोएसेटिक अम्ल प्राप्त हुआ था, जिसके गुण एसेटिक अम्लके समान ही थे। ड्यूमाने इसके बाद अपनी 'टाइप थियरी' (प्रकार-सिद्धान्त) प्रचारित की। इस सिद्धान्तके अनुसार जिन रासायनिक पदार्थोंके गुण एक-जैसे होते हैं, यथा क्लोरोफार्म और ब्रोमाफार्म उन्हें रासायनिक प्रकार (chemical types) और बाकी सभी, जैसे कि मिथेन, फार्मिक अम्ल, क्लोरोफार्म और 'कार्वन क्लोराइड'को यांत्रिक-प्रकार (mechanical type)के अन्तर्गत ग्रथित किया गया था।

१८५२में गेरहार्डने अपनी नई 'टाइप थियरी' प्रकाशित की। इस सिद्धान्तके अनुसार यौगिकोंको नीचे बताये अनुसार विविध टाइपोंमें विभक्त किया गया था:

$$\left.\begin{matrix} H \\ H \end{matrix}\right\} \quad \left.\begin{matrix} C_2H_5 \\ H \end{matrix}\right\} \quad \left.\begin{matrix} H \\ Cl \end{matrix}\right\} \quad \left.\begin{matrix} H \\ H \end{matrix}\right\} \quad O \left.\begin{matrix} C_2H_5 \\ H \end{matrix}\right\} \quad \left.\begin{matrix} H \\ OH \\ H \end{matrix}\right\} N \quad \left.\begin{matrix} C_2H_5 \\ H \\ H \end{matrix}\right\} M$$
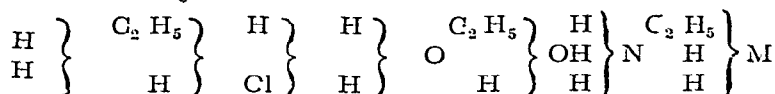
यह सिद्धान्त कार्वनिक पदार्थोंके वर्गीकरणके लिए तो ठीक था, परन्तु कार्वनिक पदार्थोंकी रचनाको समझनेके लिए उपयोगी नहीं था। लगभग इसी समय फ्रैंकलैण्ड (१८२५-१८९९)ने प्रत्येक परमाणुकी दूसरे परमाणु अथवा परमाणुओंसे संयोजित होनेकी शक्तिको दिग्दर्शित करनेवाले 'वेलेन्सी' (संयोजकता) शब्दको प्रचलित किया। केकुलेने इसी संयोजकताके सिद्धान्तको आधार बनाकर अपने विचारोंको विकसित किया और बताया कि कार्वनकी संयोजकता ४ है और कार्वनके परमाणु कार्वनिक पदार्थोंमें एक दूसरेसे जुड़े रहते हैं। कूपरने भी इन्हीं दिनों ठीक इससे मिलते-जुलते विचार व्यक्त किये और कार्वनिक पदार्थोंको लेखाचित्रीय सूत्रों (graphic formula) द्वारा दिग्दर्शित करना आरम्भ किया। आज भी हम ग्राफीय सूत्रोंके ही द्वारा कार्वनिक पदार्थोंको पहचानते हैं। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं:

```
     H                                      H    O
     |                                      |   //
 H - C - H          H - C = O           H - C - C
     |                  |                   |    \
     H                  H                   H     OH
```
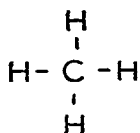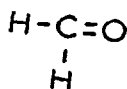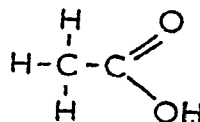
मिथेन — फार्माल्डिहाइड — एसेटिक अम्ल

१८६५में केकुलेने अपनी एक और महत्त्वपूर्ण खोज प्रकाशित की। उसने प्रमाणित किया कि एरोमेटिक (वेनजीन वर्गीय) वर्गके कार्वनिक पदार्थोंकी रचना मिथेन, इथेन, ऐलकोहल,

एसेटिक अम्ल आदिसे भिन्न प्रकारकी है। एरोमेटिक वर्गका मूलपदार्थ बेनज़ीन ६ कार्बन और ६ हाइड्रोजनका बना होता है (C_6H_6)। उसमें ६ कार्बन सीधी पंक्तिमें नहीं बल्कि षट्कोणके आकारमें उपस्थित होते हैं और प्रत्येक कार्बनके परमाणुओंकी ४ संयोजकता १ हाइड्रोजन, १ अन्य

१८६१में प्रकाशित अपनी पुस्तकमें केकुले द्वारा प्रदर्शित कार्बनिक पदार्थके सूत्र

कार्बन और शेष २ एक अन्य कार्बनके साथ जुड़ी रहती है। जहाँ दो कार्बन एक पंक्तिसे जुड़े होते हैं उसे एकल बन्ध (single bond) और जहाँ दो पंक्तियोंसे जुड़े होते हैं उसे द्विबन्ध (double bond) कहते हैं।

इस पदार्थके एक या एकाधिक हाइड्रोजनके स्थान पर अन्य कोई परमाणु अथवा 'समूह' (group) प्रतिस्थापनके द्वारा प्रविष्ट किया जा सकता है। इस विषयकी अधिक जानकारी कार्बनिक रसायनकी भूमिका नामक अध्यायमें दी गई है।

केकुलेने कार्बनिक रसायनके क्षेत्रमें और भी काफी काम किया है। लेकिन उसके बेनजीन सिद्धान्तकी तुलनामें वह अधिक महत्त्वका नहीं है।

जे० एच० वेंटहाफ (१८५२-१९११)   ऑगस्ट केकुले (१८२९-१८९६)

आगे चलकर कार्बनिक पदार्थोंकी रचनाके सम्बन्धमें अधिक निश्चयात्मक ढंगसे जाँच-पड़ताल हुई और लवेल तथा वेण्टहाफके कार्योंसे अनेक अनुत्तरित प्रश्नोंके उत्तर मिले। ऐसे प्रश्नोंमें एक प्रकाश-सक्रियता (optical activity)का प्रश्न भी था। कुछ पदार्थों, यथा लैक्टिक अम्ल, टार्टरिक अम्ल, ग्लुकोज आदिमें टुरमालिन स्फटिकमेंसे (निकल प्रिज्म=निकल समपार्श्वमेंसे) पारित की हुई प्रकाश किरणोंको दाईं अथवा बाईं ओर मोड़नेकी शक्ति होती है। लुई पाश्चर नामक फ्रान्सिसी वैज्ञानिकने ऐमोनियम टार्टरेटके दो प्रकारके स्फटिकोंको पृथक् किया और उसने देखा कि एक प्रकारके स्फटिकके विलयन (घोल, द्रावण) मेंसे प्रकाशको पारित करने पर ध्रुवित प्रकाश (polerised light) दाहिनी ओर तथा दूसरे प्रकारके विलयनमेंसे पारित करनेपर ध्रुवित प्रकाश बाईं ओर मुड़ जाता है। और भी कई कार्बनिक पदार्थोंमें प्रकाश-सक्रियताका यह गुण पाया जाता है।

हाफमैन द्वारा बनाये हुए कार्बनिक पदार्थोंके नमूने
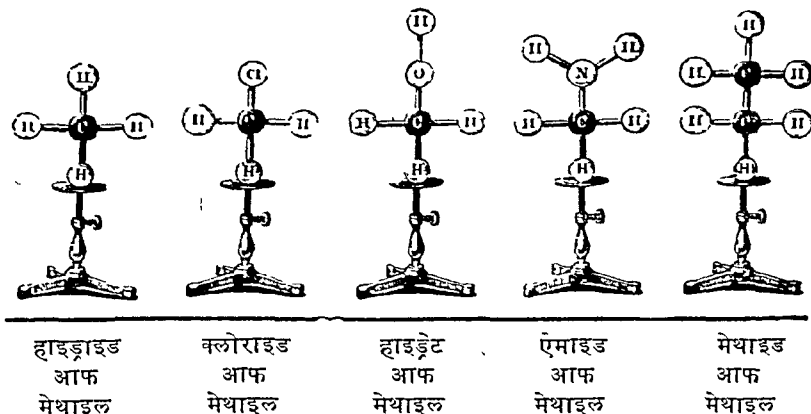
लवेल और वेण्टहाफके कार्योंसे इसका कारण समझमें आ गया। इन दोनों अन्वेषकोंने स्वतन्त्र रूपसे अपने अनुमानोंको १८७४में प्रकाशित किया था। उन्होंने बताया कि कार्बनकी चार संयोजकता एक ही स्तर पर नही होती बल्कि अवकाश (दिक्)में चारों ओर फैली रहती हैं और उनके छोरोंको यदि जोड़ दिया जाए तो समभुजकोणीय चतुष्फलक (regular tetrahedron) बन जाता है। अब यदि इस कार्बन परमाणुकी चार संयोजकता चार भिन्न परमाणुओं अथवा अणुसमूहसे जुडी हों तो वह कार्बन असमान (unsymmetrical) होता है और उसकी दो संरचनाएँ सम्भव होती है—जिनका सम्बन्ध बिम्ब-प्रतिबिम्बात्मक (वस्तु और दर्पणमें उसके प्रतिबिम्बकी तरह) होता है। आगेकी आकृतियोंमें लैक्टिक अम्लकी दो संरचनाएँ दिखाई गई हैं।

१९वी शताब्दीमें अनेक रासायनिक उद्योग प्रारम्भ हुए, जिनमें कृत्रिम (संश्लिष्ट) रंगोंका उद्योग सबसे उल्लेखनीय है। आजसे एक शताब्दी पहले केवल दर्जनभर वानस्पतिक, प्राणिज और खनिज रंगोंका उपयोग किया जाता था। १८५७में विलियम पर्किन नामक एक सत्रह वर्षीय किशोरने स्कूलकी छुट्टियोंमें अपने घरकी प्रयोगशालामें कुनैन बनानेका बीड़ा उठाया। उसने ऐनेलिन नामक पदार्थ पर पोटेसियम डाइक्रोमेट और सल्फ्यूरिक अम्लकी क्रियाकी तो सफेद कुनैन

लैक्टिक अम्लकी
दो संरचनाएं

के बदले एक काला चिकना पदार्थ प्राप्त हुआ; उसमें ऐल्कोहल (मद्य) मिलानेसे एक सुन्दर जामुनी (बैंगनी) रंगका घोल तैयार हो गया, जो रेशमकी रंगाई कर सकता था। यह था सर्वप्रथम संश्लिष्ट रंग 'मोव'। उसके बाद १८५७में पर्किनने कृत्रिम रंगोंका उद्योग आरम्भ किया और आज तो यह उद्योग बहुत प्रगति कर गया है। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके लिए आज भिन्न-भिन्न रंग उपलब्ध हैं। इन रंगोंको बनानेके लिए आवश्यक रसायन डामर (अलकतरा, कोल्तार)से प्राप्त किये जाते थे, इसलिए इन्हें डामरके रंग भी कहा जाता था।

रंग, ओषधियाँ, विस्फोटक, फोटोग्राफीय रसायन आदि वस्तुएं बड़े पैमाने पर बनानेके लिए मूल रसायनोंकी जरूरत थी और इसलिए उन्हें प्राप्त करनेकी खोज शुरू हुई। धातुएँ, खासतौर पर लोहा और इस्पात बनानेके लिए कोयलेका आसवन कर कोक प्राप्त किया जाता था। कोयलेके आसवनके दौरान कोयलेकी गैस मिलती थी, जिसका उपयोग शहरोंमें रोशनी और ईंधनके लिए किया जाने लगा। आसवनके दौरान उपलब्ध होनेवाला डामर कार्बनिक पदार्थोंमें सबसे समृद्ध प्रतीत हुआ, इसलिए बड़े पैमाने पर उसका आसवन कर और उसमेंसे अनेक क्रियाओं-प्रक्रियाओंके द्वारा बेनज़ीन, टाल्युईन, ज़ाइलीन, फीनोल, ऐनेलिन, क्विनालीन, क्रेसोल, नैफ्थैलीन, ऐन्थासिन इत्यादि रसायनोंका उत्पादन १९वीं शताब्दीमें आरम्भ हुआ।

```
                                 C{ O...OH
                                   { H'
 C{O...OH      C{ .. OH           :             C{ O ...O  }C
  {H'           { ...H'           C...H'         { H'   H' }
                :                 :             :          :
                C   ..H'          C...H'        C...H'  H'  C

   a              b                 c               d

                                                          Acide salicylique
                                                          C{ C ..H'
                                                           { C...H
 C{O...OH      C{ O...OH        C{O...OH        C{O...OH
  {O'           { O'             {H'             {O'        C{ C...H
  {H                             :               :           { C. .O...OH
               C. .H'           C{H'            C{O'
                                 {O...OH         {O...OH    C{ O'
                                                             { O. OH
   e              f.               g               h            i
```

कार्बनिक रसायनके कूपर द्वारा निर्धारित सूत्र: (१८५८) (a) ऐलकोहल; (b) इथिल ऐलकोहल; (c) प्रोपाइल ऐलकोहल; (d) इथिल ईथर; (e) फार्मिक अम्ल; (f) एसेटिक अम्ल; (g) इथिलीन ग्लाइकोल; (h) आक्सेलिक अम्ल; (i) सेलिसिलिक अम्ल।

४ : मूलतत्त्वोंका वर्गीकरण और आवर्त-सारणी

१८६० तक अनेक मूलतत्त्वोंके परमाणुभार निश्चित हो गए थे। इस दिशामें बर्ज़ीलियसने सराहनीय प्रगति की थी। उसके बाद बेल्जियन रसायनज्ञ स्टासने शुद्ध रसायनोंका उपयोग कर अत्यन्त सावधानीसे परमाणुभारका पता लगाया। इन दिनों रसायनज्ञ विभिन्न मूलतत्त्वोंके पारस्परिक सम्बन्धोंका पता लगाकर उनका वर्गीकरण करनेमें लगे हुए थे। १८३९में डोबराइनरने यह पता लगाया कि समान गुणोंवाले मूलतत्त्वोंको तीन-तीनके समूहमें रखा जा सकता है। इन त्रिपुटियोंके परमाणुभार या तो एक जैसे होते हैं या त्रिपुटीके बीचके मूलतत्त्वका परमाणुभार दूसरे दो परमाणुभारका लगभग मध्यमान होता है। नीचे इस तरहकी कुछ त्रिपुटियाँ दी जा रही हैं; कोष्ठकमें उनके परमाणुभार दिये गए हैं:

१. लोहा (५५.८५), कोबाल्ट (५८.९४) और निकल (५८.६९);

२. क्लोरिन (३५.५), ब्रोमिन (८०) और आयोडिन (१२७);

३. कैल्सियम (४०), स्ट्रॉन्शियम (८७) और बेरियम (१३७);

४. लिथियम (७), सोडियम (२३) और पोटासियम (३८)।

लेकिन सभी मूलतत्त्वोंको इस प्रकार तीन-तीनके समूहमें रखा नहीं जा सकता, इसलिए यह प्रयत्न अधूरा ही रहा। उसके बाद मूलतत्त्वोंके वर्गीकरणके और भी कई असफल प्रयत्न किये गए। इंग्लैण्डमें न्यूलैण्ड्सने मूलतत्त्वोंको उनके परमाणुभारके अनुसार क्रमबद्ध करके क्रमांक दिये। अपने इस प्रयत्नमें उसने यह पाया कि हर आठवाँ मूलतत्त्व गुणोंकी दृष्टिसे पहलेसे मिलता है। इस प्रकार संगीतके सप्तककी तरह मूलतत्त्वोंके गुणोंका पुनरावर्तन होता है। न्यूलैण्ड्सने इसे अष्टक नियम (law of octaves) नाम दिया। इस योजनाके अनुसार समान गुणोंवाले मूलतत्त्व एक साथ आते हैं। उदाहरणार्थ लिथियम, सोडियम और पोटासियम; बेरिलियम और मैग्नेशियम; बोरोन और ऐल्युमिनियम आदि। आगे चलकर इस पद्धतिमें भी कई खामियाँ दिखाई दीं, इसलिए इसका परित्याग किया गया। लेकिन न्यूलैण्ड्सके कार्यने यह तो साबित कर ही दिया कि अनेक मूलतत्त्वोंके बीच समानताके अंश हैं और उनमें आवर्तन पाया जाता है। उसके बाद लोथर मायरने इस क्षेत्रमें उल्लेखनीय प्रगति की।

लोद्रव पार्श्वनाथ जिन मंदिर (आदि)

लोथर मायर (१८३०-१८९५) म्युनिगनमें प्राध्यापक था। वह उच्चकोटिका शिक्षक ओर लेखक था। 'रसायनके आधुनिक सिद्धान्त' नामक उसका ग्रन्थ अनेक वर्षो तक रसायनका प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहा। लोथर मायरने परमाणु आयतन ओर परमाणुभार दोनोंका ही चित्रालेख आलेखित किया। यह लोथर मायरका परमाणु आयतन चित्रालेखा (curve) कहलाता है। पृष्ट ४८ पर दिये गए चित्रालेखमें समान गुणवाले भिन्न-भिन्न मूलतत्त्व समान स्थान (analogous positions) ग्रहण किये हुए हे।

लोथर मायर (१८३०–१८९५)

मूलतत्त्वोंका जो वर्गीकरण ओर आवर्त-सारणी आजकल प्रचलित हे उसका श्रेय रूसी रसायनज्ञ मेण्डलीफको हे। मेण्डलीफ (१८३४-१९०७) का जन्म साइवेरियाके टोवोल्स्क गाँवमें हुआ था। कमजोर स्वास्थ्य, गरीवी ओर पढ़नेमें विशेष रुचि न होनेके कारण वह सामान्य कोटिका विद्यार्थी समझा जाता था। लेकिन पेत्रोग्राद (अव लेनिनग्राद) की शिक्षक-प्रशिक्षण सस्थामें प्रवेश लेनेके वादसे उसका बौद्धिक विकास हुआ ओर उसने अपनी गवेषणाओंके परिणाम

EXPERIMENT IN THE SISTEM OF ELEMENTS
Based on Their Atomic Weights and
Chemical Similarities

			Ti = 50	Zr = 90	? = 180
			V = 51	Nb = 94	Ta = 182
			Cr = 52	Mo = 96	W = 186
			Mn = 55	Rh = 104.4	Pt = 197.4
			Fe = 56	Ru = 104.4	Ir = 198
		Ni	Co = 59	Pd = 106.6	Os = 199
H = 1			Cu = 63.4	Ag = 108	Hg = 200
	Be = 9.4	Mg = 24	Zn = 65.2	Cd = 112	
	B = 11	Al = 27.4	? = 68	Ur = 116	Au = 197?
	C = 12	Si = 28	? = 70	Sn = 118	
	N = 14	P = 31	As = 75	Sb = 122	Bi = 210?
	O = 16	S = 32	Se = 79.4	Te = 128?	
	F = 19	Cl = 35.5	Br = 80	J = 127	
Li = 7	Na = 23	K = 39	Rb = 85.4	Cs = 133	Tl = 204
		Ca = 40	Sr = 87.6	Ba = 137	Pb = 207
		? = 45	Ce = 92		
		?Er = 56	La = 94		
		?Yt = 60	Di = 95		
		?In = 75.6	Th = 118?		

D. Mendeleyev

मेण्डलीफका वर्गीकरण

मेण्डलीफ (१८३४–१९०७)

प्रकाशित करना प्रारम्भ किये। १८६९में उसने मूलतत्त्वोंके वर्गीकरण पर पहला लेख ओर १८७१में इस विषय पर अपने समग्र विचारोंको प्रकाशित किया। अपनी आवर्त सारणी (Periodic

Table) में उसने परमाणुओंको उनके भारके अनुसार इस क्रमसे रखा कि समान गुणोंवाले मूलतत्त्व एक-दूसरेके नीचे रहें। इस सारणीमें किसी एक मूलतत्त्वके स्थानके आधार पर हम उसके गुणोंको बता सकते हैं। मेण्डलीफने लिखा है : "जब मैंने कम-से-कम परमाणुभार वाले मूलतत्त्वोंसे आरम्भ किया और उन्हें उत्तरोत्तर बढ़ते हुए परमाणुभारके क्रमसे रखा तो मुझे पता चला कि मूलतत्त्वोंके गुणोंमें एक प्रकारका आवर्तन होता है। इसलिए यदि मूलतत्त्वोंको परमाणुभारके अनुसार क्रमबद्ध किया जाए तो नियमित रूपसे समान गुणोंवाले तत्त्वोंका पुनरावर्तन होता है।" मेण्डलीफकी आवर्त-सारणी ऊर्ध्वाधर (vertical) और क्षैतिज (horizontol) रेखाओंसे बने चौखटोंमें बँटी हुई है। खड़े चौखटे वर्ग या समूह (groups) और आड़े चौखटे आवर्त (periods) कहलाते हैं। कुछ वर्गोंके 'अ' और 'ब' ऐसे दो भाग किये गए हैं। एक वर्गमें 'अ' अथवा 'ब'के नीचे आनेवाले मूलतत्त्वोंके गुण एक जैसे होते हैं, परन्तु 'अ' और 'ब' वर्गके मूलतत्त्वोंके गुणोंमें अन्तर होता है। हर आवर्तके मूलतत्त्वोंके गुण क्रमशः बदलते जाते हैं।

किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्तका महत्त्व और विशेषता केवल इस बातमें नहीं है कि उससे प्रचलित जानकारीको समझा जा सके, बल्कि इसमें है कि उस सिद्धान्तसे अब तक प्रकाशमें न आई हुई वस्तुओंको खोजनेमें सहायता मिले और खोजी जानेवाली वस्तुओंके गुणों इत्यादिकी भविष्यवाणी की जा सके। इस भविष्यवाणीके सच होने पर ही उस सिद्धान्तका समर्थन किया जाता है। मेण्डलीफकी आवर्त-सारणीमें कुछ जगहें खाली रह गई थीं। वे रिक्त स्थान जिन वर्गोंमें हों, उनके ऊपर और नीचे आनेवाले मूलतत्त्वोंके गुण क्या हों आदिका अपने सिद्धान्तके आधार पर विचार कर मेण्डलीफने रिक्त स्थानवाले जो मूलतत्त्व तबतक खोजे नहीं जा सके थे, उनके भी परमाणुभार और गुणोंके बारेमें भविष्यवाणी की थी। जो मूलतत्त्व तबतक खोजे नहीं जा सके थे उन्हें उसने एकबोरोन, एकअल्युमीनियम और एकसिलिकोन नाम दिये थे। वर्षों बाद उनकी खोज हुई और आज वे स्कैंडियम, गेलियम और जर्मेनियमके नामसे जाने जाते हैं। उनके गुणोंके सम्बन्धमें मेण्डलीफकी भविष्यवाणी सच साबित हुई।

मेण्डलीफके वर्गीकरण (आवर्त-सारणी) में कुछ दोष भी थे। उदाहरणके लिए गुणोंके आधार पर टेलुरियमको, जिसका परमाणुभार १२७.५ है, १२६.९ परमाणुभारवाले आयोडिनसे पहले छठवें समूहमें रखना पड़ता है। जब हीलियम, आर्गन, नियोन आदि निष्क्रिय गैसोंकी खोज हुई तो यह समस्या उठ खड़ी हुई कि उन्हें कहाँ रखा जाए; उनकी संयोजकता शून्य होनेके कारण उनके लिए एक नया शून्य वर्ग बनाना पड़ा और ३९.९ परमाणुभारवाले आर्गनको उसके गुणोंके आधार पर ३९.१ परमाणुभारवाले पोटैसियमके पहले रखना पड़ा। और विरल मृदु मूलतत्त्वों (rare earths) के पन्द्रह सदस्योंको बेरिलियम और हाफनियमके बीच एक ही स्थान (चौखटे) में रखना पड़ता है।

२०वीं शताब्दीमें परमाणु-रचना-सम्बन्धी जो गवेषणाएँ हुईं, उससे इस आवर्त-सारणीमें यह संशोधन हुआ कि परमाणुभारका कोई महत्त्व नहीं रह गया और मूलतत्त्वोंके गुण उनकी परमाणु-संख्या (क्रमांक) पर निर्भर माने जाने लगे। परमाणुभारके बदले परमाणु-संख्या लेनेसे कुछ त्रुटियोंका निराकरण हो जाता है। आगे चलकर इस वर्गीकरणमें परिवर्तन होगा या नहीं, यह आज बताना सम्भव नहीं है। परिवर्तन अगर हो तब भी इस सारणीने इस पृथ्वी पर उपलब्ध

अनेक मूलतत्त्वों और उनके असंख्य यौगिकोंका विधिवत वर्गीकरण कर अव्यवस्थाकी स्थितिमें जो व्यवस्था लानेका महान प्रयास किया, उसके लिए इसका (सारणी) महत्त्व बना रहेगा।

१९वीं शताब्दीमें अनेक रासायनिक उद्योगोंकी नींव रखी गई, जिनमेंसे कुछ उद्योगोंका उल्लेख अगले अध्यायोंमें किया गया है।
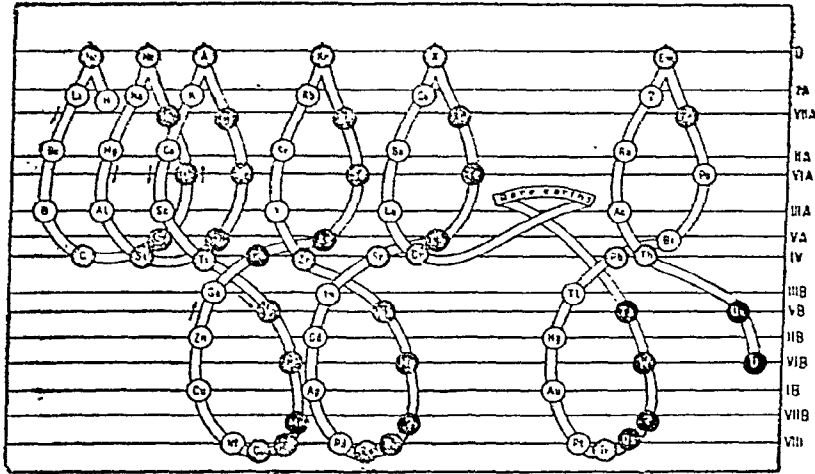
फ्रेडरिक सोडीकी आवर्त-सारणीकी रूपरेखा

[अनुप्रस्थ रेखाओंमें समान गुणोंवाले परमाणु, श्वेत गोलकोंमें धातुएँ, काली बिन्दियोंमें अर्ध धातुएँ और भूरे वर्तुलोंमें निष्क्रिय मूलतत्व दिखाए गए हैं। नोबेल गैस और ऐम्फोटेरिक आक्साइड सबसे ऊपर की रेखामें दिखाए गए हैं]

फ्रेडरिक सोडी
(१८७७–१९५६)

D. I. MENDELEYEV'S PERIODIC

PERIODS	SERIES	ELEMENT: I	II	III	IV	V
1	I	H 1, 1.0080 (1)				
2	II	Li 3, 6.940 (1 2)	Be 4, 9.013 (2 2)	B 5, 10.82 (3 2)	C 6, 12 011 (4 2)	N 7, 14.008 (5 2)
3	III	Na 11, 22.991 (1 8 2)	Mg 12, 24.32 (2 8 2)	Al 13, 26.98 (3 8 2)	Si 14, 28 09 (4 8 2)	P 15, 30.975 (5 8 2)
4	IV	K 19, 39.100 (1 8 8 2)	Ca 20, 40 08 (2 8 8 2)	Sc 21, 44.96 (2 9 8 2)	Ti 22, 47.90 (2 10 8 2)	V 23, 50.95 (2 11 8 2)
	V	Cu 29, 63.54 ([illegible])	Zn 30, 65 38 (2 18 8 2)	Ga 31, 69.72 (3 18 8 2)	Ge 32, 72.60 (4 18 8 2)	As 33, 74.91 (5 18 8 2)
5	VI	Rb 37, 85.48 (1 8 18 8 2)	Sr 38, 87.63 (2 8 18 8 2)	Y 39, 88.92 (2 9 18 8 2)	Zr 40, 91 22 (2 10 18 8 2)	Nb 41, 92 91 (1 12 18 8 2)
	VII	Ag 47, 107 880 ([illegible])	Cd 48, 112.41 (2 18 18 8 2)	In 49, 114 76 (3 18 18 8 2)	Sn 50, 118.70 (4 18 18 8 2)	Sb 51, 121.76 (5 18 18 8 2)
6	VIII	Cs 55, 132.91 (1 8 18 18 8 2)	Ba 56, 137 36 (2 8 18 18 8 2)	La ☆ 57, 138.92 (2 9 18 18 8 2)	Hf 72, 178.6 (2 10 32 18 8 2)	Ta 73, 180.95 (2 11 32 18 8 2)
	IX	Au 79, 197 0 (1 18 32 18 8 2)	Hg 80, 200 61 (2 18 32 18 8 2)	Tl 81, 204.39 (3 18 32 18 8 2)	Pb 82, 207 21 (4 18 32 18 8 2)	Bi 83, 209.00 (5 18 32 18 8 2)
7	X	Fr 87, [223] (1 8 18 32 18 8 2)	Ra 88, 226 05 (2 8 18 32 18 8 2)	Ac ☆☆ 89, 227 (2 9 18 32 18 8 2)	(Th)	(Pa)

☆ LANTHA

Ce 58, 140.13 (2 8 20 18 8 2)	Pr 59, 140.92 (2 8 21 18 8 2)	Nd 60, 144.27 (2 8 22 18 8 2)	Pm 61, [145] (2 8 23 18 8 2)	Sm 62, 150.43 (2 8 24 18 8 2)	Eu 63, 152 0 (2 8 25 18 8 2)	Gd 64, 156.9 (2 9 25 18 8 2)

☆☆ ACTI

Th 90, 232.05 (2 10 18 32 18 8 2)	Pa 91, 231 (2 9 20 32 18 8 2)	U 92, 238.07 (2 9 21 32 18 8 2)	Np 93, [237] (2 8 23 32 18 8 2)	Pu 94, [242] (2 8 24 32 18 8 2)	Am 95, [243] (2 8 25 32 18 8 2)	Cm 96, [245] (2 9 25 32 18 8 2)

Figures in square brackets are mass numbers of stablest isotopes

TABLE OF ELEMENTS

GROUPS

VI	VII	VIII			0
	(H)				He 2; 4.003; 2
8 O; 16; 6 2	9 F; 19.00; 7 2				Ne 10; 20.183; 8 2
16 S; 32.066; 6 8 2	17 Cl; 35.457; 7 8 2				Ar 18; 39.944; 8 8 2
Cr 24; 52.01; 1 13 8 2	Mn 25; 54.94; 2 13 8 2	Fe 26; 55.85; 2 14 8 2	Co 27; 58.94; 2 15 8 2	Ni 28; 58.69; 2 16 8 2	
34 Se; 78.96; 6 18 8 2	35 Br; 79.916; 7 18 8 2				Kr 36; 83.80; 8 18 8 2
Mo 42; 95.95; 1 13 18 8 2	Tc 43; (99); 2 13 18 8 2	Ru 44; 101.1; 1 15 18 8 2	Rh 45; 102.91; 1 16 18 8 2	Pd 46; 106.7; 0 18 18 8 2	
52 Te; 127.61; 6 18 18 8 2	53 I; 126.91; 7 18 18 8 2				Xe 54; 131.3; 8 18 18 8 2
74 W; 183.92; 2 12 32 18 8 2	75 Re; 186.31; 2 13 32 18 8 2	76 Os; 190.2; 2 14 32 18 8 2	77 Ir; 192.2; 2 15 32 18 8 2	78 Pt; 195.23; 1 17 32 18 8 2	
84 Po; 210; 6 18 32 18 8 2	85 At; [210]; 7 18 32 18 8 2				86 Rn; 222; 8 18 32 18 8 2
(U)					

NIDES

65 Tb	66 Dy	67 Ho	68 Er	69 Tu	70 Yb	71 Lu
158.93	162.46	164.94	167.2	168.94	173.04	174.99
2 8 27 18 8 2	2 8 28 18 8 2	2 8 29 18 8 2	2 8 30 18 8 2	2 8 31 18 8 2	2 8 32 18 8 2	2 9 32 18 8 2

NIDES

97 Bk	98 Cf	99 En	100 Fm	101 Mv
[245]	[248]	[253]	[255]	[256]
2 8 27 32 18 8 2	2 8 28 32 18 8 2	2 8 29 32 18 8 2	2 8 30 32 18 8 2	2 8 31 32 18 8 2

Atomic number — Electron layers — Atomic weight — Symbol

सबसे अधिक स्थायी समस्थानिकों (isotopes) की परमाणु-संख्या कोष्ठकोंमें दिखाई गई है।

बीसवीं शताब्दीमें अनेक नये विचार प्रवर्तित हुए, जिनके द्वारा कार्बनिक पदार्थोंकी रचना, उनकी रासायनिक क्रियाओं और उनके गुणों आदिके सम्बन्धमें और भी अधिक जानकारी मिली। इनमें इलेक्ट्रॉनवाद (Electronic Theory), अणुकक्षावाद (Molecular orbits Theory) आदिका समावेश है। बीसवीं शताब्दीके इस वैज्ञानिक विकास पर इस ग्रन्थके अन्तिम भागमें दृग्पात किया जाएगा।

खंड : २

महान दानी, स्वदेशाभिमानी, दूरदर्शी,
साहसी उद्योगपति

जमसेदजी नसरवानजी ताता

[१८३५–१९०४]

जीते-जागते स्मारक

⊙ ताता हाइड्रोइलेक्ट्रिक वर्क्स
[ताता जलविद्युत् प्रतिष्ठान]

⊙ जमशेदपुरका लोह नगर

⊙ नेशनल मेटेलर्जिकल लेबोरेटरी
[राष्ट्रीय धातुकर्मक प्रयोगशाला]

⊙ बंगलोर : इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ सायन्सेज़
[भारतीय विज्ञान परिषद्]

तथा अनेक संस्थाएँ और न्यास (ट्रस्ट)

५ : धातु-रसायन

धातु और अधातु

मनुष्यका पहला रासायनिक हथियार था अग्नि। ठण्डसे अपने शरीरकी रक्षा करनेके लिए मनुष्य आग जलाता था। हिंसक प्राणियोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए मनुष्य अग्नि और हथियारोंका उपयोग प्रागैतिहासिक कालसे करता आया है। आरम्भमें उसने लकड़ी और हड्डीके हथियार बनाए। उसके बाद पाषाण युगमें औजार बनानेके लिए उसने पत्थरका उपयोग किया। लगभग सात हजार वर्ष पहलेकी यह बात है।

फिर जैसे-जैसे सभ्यताका विकास होता गया उसने मिट्टीकी ईंटें और बरतन बनाना शुरू किया। आरम्भमें इन चीज़ोंको पकानेके लिए वह सूर्यकी गर्मीका उपयोग करता था। उसके बाद तो मिट्टी पकानेके लिए भी वह अग्निका उपयोग करने लगा। इस तरह मिट्टीको पकाते हुए ही उसे एक दिन अकस्मात् धातु मिल गई। फिर तो धातुओंका उपयोग हथियार बनानेमें किया जाने लगा। कुछ धातुएँ तो प्रकृतिसे ही शुद्ध रूपमें मिल जाती थीं; इसलिए उनमें उसे रासायनिक दृष्टिसे विशेष कुछ करना नहीं होता था। ऐसी धातुओंमें सोना, चाँदी और ताँबा मुख्य थीं। कभी-कभी तारोंके टूटनेसे बहुत थोड़ी मात्रामें शुद्ध लोहा भी मिल जाया करता था। इन धातुओंने मनुष्यका ध्यान आकर्षित किया, परन्तु उस समयके जन-समाजमें पत्थरके हथियारोंका ही उपयोग होता रहा।

ताँबेकी कच्ची धातुको उस समयका मनुष्य पत्थर ही समझता था। पत्थरकी तरह उसने उसके औजार बनाना शुरू किया, तब उसे उनके गुणोंका पता चला। पत्थरको धारदार बनानेकी क्रियामें कितने ही पत्थर टूट जाते तब किसी एक पत्थरमें काम लायक धार बन पाती थी। लेकिन यह नई जातिका पत्थर टूटता नही था। जितना ही पीटा जाता चपटा होकर फैलता जाता था। इससे बने हथियार ज्यादा समय तक चलते थे। धार बोथरी हो जाने पर घिसनेसे धार भी बन सकती थी। इसके परिणामस्वरूप पाषाणयुगका अन्त और ताम्रयुग का प्रारम्भ हुआ।

कहीं-कहीं ताँबा और राँगा (वंग) कच्ची धातुके रूपमें पास-पास मिल जाते थे। इन कच्ची धातुओंसे अग्निके ताप द्वारा ताँबा निकालनेके प्रयत्नमें आकस्मिक रूपसे काँसेका आविष्कार हुआ। काँसा ताँबेसे भी कड़ा था; वह कटता नहीं था और उसकी धार भी अच्छी बनती थी। इसलिए कांस्ययुग शुरू हुआ। यह ईसा पूर्व ५०००की बात है।

ईसा पूर्व ३००० वर्ष पहले रांगेकी खोज हुई। मृदुधातु होनेके कारण इसका स्वतन्त्र उपयोग नहीं हो सकता था; परन्तु कमोबेश मात्रामें ताँबेके साथ मिलानेसे काँसा बनता था, और काँसेके ज्यादा अच्छे और ज्यादा अच्छी तरह औजार बनाये जा सकते थे।

क्रमशः लोहेके खनिजसे लोहा बनानेका ज्ञान मनुष्यने अर्जित किया। उसमें निहित पेचीदा रासायनिक क्रियाएँ ज्यादा अच्छी तरह समझमें आती गई। धीरे-धीरे लोहेका सिक्का जमने लगा। मनुष्य कांस्ययुगसे लोहयुगमें आया। लोहेके हथियारों और औजारोंका प्रचलन बढ़ने लगा। आज भी अफ्रीकाकी कुछ नीग्रो (हब्शी) जातियाँ पुराने ढंगसे अपने उपयोग लायक लोहा बना लेती हैं। उस पुरातन कालमें भी भारतमें लोहा बनानेकी कला उच्चकोटि तक विकसित हुई थी। दिल्लीके समीप कुतुबमीनारके पास साढ़े छह टनका लोहस्तम्भ इसकी सजीव साक्षीके रूपमें आज भी खड़ा है।

हमारे आधुनिक जीवनमें लोहेका प्रमुख स्थान है। हमारे उद्योगोंका विकास और समृद्धि लोहे पर ही निर्भर है।

धातु	ग्रह	चिह्न
सोना	सूर्य	☉
चांदी	चन्द्र	☽
ताम्र	शुक्र	♀
लोह	मंगल	♂
सीसा	शनि	♄
रांगा	गुरु	♃
पारद	बुध	☿

प्राचीनकालमें केवल सात धातुओंकी जानकारी थी। उस कालके कीमियागरोंकी ऐसी मान्यता थी कि इन धातुओंपर ग्रहोंका असर होता है। इसलिए ग्रहोंके नाम उन धातुओंसे जोड़े जाते थे; यथा सोनेको सूर्य, चाँदीको चन्द्र, ताँबेको शुक्रके साथ आदि-आदि। रसायनशास्त्रमें उस कालमें प्रत्येक धातुको भी ग्रहका सांकेतिक चिह्न अथवा संकेत प्रदान किया जाता था।

उन प्राचीन नामोंके अवशेष आज भी विद्यमान हैं। सिल्वर नाइट्रेटको आज भी ल्युनर कॉस्टिक कहा जाता है (लैटिन भाषामें चन्द्रको ल्युना कहते हैं)। इन पुराने नामोंमेंसे पारेके लिए मरक्युरी (बुध ग्रहका नाम) शब्द अभी भी प्रचलित है।

समयके साथ धातुओंको गलानेकी कला भी वैज्ञानिक ढंगसे प्रगति करती गई। रसायन-वेत्ता रसायन-सम्बन्धी सिद्धान्तोंका बराबर विस्तार करते जा रहे थे। प्राचीन दार्शनिकों और चिन्तकोंके द्वारा स्थापित और निर्धारित मर्यादाएँ प्रयोगोंके द्वारा टूटती जाती थीं। पदार्थोंके सरलतम रूपको खोजनेके प्रयत्न हो रहे थे। इन प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप मूलतत्त्व (elements) अस्तित्वमें आये। पाँच महाभूतोंके सिद्धान्तका अन्त हुआ।

शुरू-शुरूमें चूना और लवण मूलतत्त्व माने गए; लेकिन १८०७ ईसवीमें विद्युतकी सहायतासे चूनेमेंसे कैल्सियम और लवणमेंसे सोडियम पृथक् किये गए। पानीको भी मूलतत्त्व

समझा जाता था; लेकिन वह आक्सीजन और हाइड्रोजनका यौगिक साबित हुआ। इस प्रकार मूलतत्त्वोंकी संख्या क्रमशः बढ़ती गई।

इन मूलतत्त्वोंके अनेकविध संयोगोंसे हजारों पदार्थोंके अस्तित्वमें आनेकी मान्यता प्रचलित हुई। प्रत्येक मूलतत्त्व अपने परमाणुओंका बना होता है। इन परमाणुओंको अविनाशी और अविभाज्य माना जाता था। लेकिन मेरी क्यूरी द्वारा आविष्कृत रेडियमने इस मान्यता पर उल्कापात किया। रेडियम और उसके जैसे अन्य मूलतत्त्व स्वयं टूटते रहते हैं और उनसे दूसरे मूलतत्त्व पैदा होते हैं। यह प्रक्रिया अपने आप चलती रहती है। उसमें ऊष्मा या अन्य किसी प्रकारकी रासायनिक क्रियाकी सहायताकी आवश्यकता नहीं होती। इससे यह विकट समस्या उठ खड़ी हुई कि रेडियमको मूलतत्त्व माना जाए अथवा नहीं? यदि उसे मूलतत्त्व मानें तो मूलतत्त्वकी प्रचलित परिभाषामें परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

विश्वकी रचनामें कुल मिलाकर ९२ मूलतत्त्व हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मूलतत्त्व प्रयोगशालामें भी बनाये गए हैं। लेकिन वे अस्थायी हैं, और एक खास मुद्दतके बाद टूट जाते हैं। रसायनज्ञ मूलतत्त्वोंके दो विभाग करते हैं: एक धातु और दूसरा अधातु। यह विभागीकरण पूरी तरह शास्त्रीय (वैज्ञानिक) नहीं केवल सुविधाजनक है।

अब हम यह समझनेका प्रयत्न करेंगे कि धातुएँ किसे कहते हैं। हथौड़ेसे पीटे जाने पर पद्दर बनाने योग्य घातवर्ध्य (malleable), तार खींचे जाने योग्य तन्य (ductile), साफ करने पर सतह चमकीली हो जानेवाले पदार्थोंकी गणना धातुओंमें की जाती है। मोटे तौर पर वे ऊष्मा और विद्युतकी सुसंवाहक होती हैं। ये गुण धातुओंकी पहचानके लिए पर्याप्त हैं, परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे सन्तोषजनक नहीं। ताँबा, लोहा, राँगा, सोना, चाँदी, जस्ता और निकल आदि मूलतत्त्वोंको धातुके रूपमें इसी प्रकार पहचाना जाता था और आज भी पहचाना जाता है।

साधारण तापपर धातुएँ ठोस अवस्थामें रहती हैं; केवल पारा अपवाद है—वह द्रव है। प्राचीनकालमें पारेको धातु नहीं माना जाता था; उसे रस कहा जाता था।

किस मूलतत्त्वको धातु और किसे अधातु कहा जाए, यह एक टेढ़ा सवाल था। रसायनज्ञोंने इसका एक हल खोज निकाला। जिस मूलतत्त्वका आक्साइड पानीमें घुलकर अम्ल प्रदान करे वह अधातु; और जिसके आक्साइड पानीमें घुलकर बेस-अल्कली (क्षार): बनाएँ वे धातुएँ। अम्ल किसे कहा जाए और क्षार (अल्कली) किसे कहा जाए, इसका निर्णय करनेके लिए लिटमस नामक एक बैंगनी रंगकी वनस्पतिके रसका उपयोग किया जाता था—आज भी किया जाता है। अम्लके विलयनमें लिटमस लाल हो जाता है और अल्कली (क्षार)के विलयनमें नीला। इस प्रकार धातु और अधातुका निर्णय करनेका काम लिटमस एक हद तक करता है; लेकिन अविलेय आक्साइडके बारेमें क्या किया जाए?

फिर इसमें—अम्ल और क्षारकी ऊपर दी हुई व्याख्यामें—अपवाद तो हैं ही। पानी हाइड्रोजनका आक्साइड है, परन्तु लिटमसवाली कसौटी उसपर लागू नहीं होती। अम्ल-क्षारके परीक्षणमें पानी अपवाद है।

जमीनके अन्दरसे खोदकर निकाली हुई मिट्टी अम्लीय है या क्षारीय इसका निर्णय लिटमसके द्वारा किया जा सकता है। क्षारका गुण प्रदर्शित करनेवाली मिट्टी क्षारीय मृत्तिका

(alkaline earth) कहलाती है। इस मिट्टीसे किसी मूलतत्त्वको पृथक् किया जाए तो ऊपर बताई हुई परिभाषाके अनुसार उसे धातु कहना होगा, चाहे वह न तो घातवर्ध्य (कुट्य), न चमकीली और न तन्य—तारकसमें तार खींचे जाने योग्य—ही हो।

अधातुओंमें सामान्यतः धातुओंकी तरह चमक (चमकीलापन) नहीं होती; उन्हें गढ़ा नहीं जा सकता; वे कठोर (कड़ी) नहीं होतीं; उनका आपेक्षिक घनत्व धातुओंकी तुलनामें कम होता है; वे ऊष्मा संवाहक नहीं होतीं और विद्युत संवाहकताका गुण उनमें नामको ही होता है—यद्यपि इसमें कुछ अपवाद भी हैं। आयोडिन और ग्रेफाइट अधातुएँ हैं, फिर भी उनमें चमकीलापन होता है। ग्रेफाइट तो विद्युत संवाहक भी है। इसके विपरीत धातुओंमें धातुई चमक—धातुद्युति होती है; उन्हें पीटकर चद्दरें (पतरे) बनाई जा सकती हैं। परन्तु एण्टिमनी (सुरमेकी धातु) और विस्मथ धातुएँ होते हुए भी उनको पीटकर चद्दरें नहीं बनाई जा सकतीं, पीटनेसे वे भुरभुरी होकर चूर्ण बन जाती हैं। धातुएँ कठोर होती हैं, इसलिए उनके तार खींचे जा सकते हैं—तारके रूपमें भी वे टूटतीं नहीं।

फिर कुछ धातुएँ वजनमें बिलकुल हल्की होती हैं। सोडियम, पोटेसियम, मेग्नेसियम, केलसियम और एल्युमीनियम धातुओंका घनत्व कम होनेसे वे वजनमें हल्की होती हैं। परन्तु सबसे हलकी धातु तो लिथियम है। उसका आपेक्षिक घनत्व केवल ०.५३ है। धातुएँ सामान्यतः ऊष्मा-संवाहक होती हैं।

यह तो हुई भौतिक गुणोंकी बात। रासायनिक गुणोंकी दृष्टिसे धातुओं और अधातुओंको एक-दूसरेसे भिन्न करनेवाली चार बातें हैं:

(१) अधातुओंको हवा या आक्सीजनमें जलानेसे उनके आक्साइड अम्लीय गुण प्रदर्शित करते हैं। परन्तु पानी, कार्बन, डाइआक्साइड और नाइट्रस आक्साइड—जैसे कुछ यौगिकोंका लिटमस पर कोई असर नहीं होता। मतलब यह कि उनके गुण न तो क्षारीय होते हैं और न अम्लीय ही। धातुओंको इस तरह जलानेसे जो आक्साइड प्राप्त होते हैं वे बेसिक (समाक्षारीय) गुण प्रदर्शित करते हैं। परन्तु जस्ता (जिंक) और एल्युमीनियमके आक्साइड उभयधर्मी होनेके कारण अम्लीय और समाक्षारीय दोनों ही गुण प्रदर्शित करते हैं। क्रोमियम और मैंगेनीज धातुओंके आक्साइडों (जिनमें धातुकी संयोजकता ६ और ७के बराबर है) में CrO_3 और Mn_2O_7 अम्लीय गुण होते है।

(२) फ्लोरिन, क्लोरिन, ब्रोमिन, आयोडिन हेलोजन कहलाते हैं। इनके यौगिकोंको हेलाइड कहते हैं। इस प्रकारकी अधातुओंके हेलोजन-यौगिकोंका पानीमें पूरी तरह विघटन होता है। केवल कार्बन-टेट्राक्लोराइडका पानीमें विघटन नहीं होता। धातुओंके हेलोजन-यौगिकोंका पानीमें विघटन हुए बिना ही विगलन हो जाता है। कुछ धातुओंके हेलोजन-यौगिकोंका (एण्टीमनी, विस्मथ, रांगा) पानीके साथ सीमित अंशमें प्रतिवर्ती विघटन होता है। यथा, विस्मथ क्लोराइडमें पानी डालनेसे सफेद अवक्षेप (precipitate) पैदा होता है।

$$BiCl_3 + H_2O \rightleftharpoons BiOCl\downarrow + 2HCl$$

पानी डालने पर दाहिनी ओरकी क्रिया और HCl मिलाने पर बायीं ओरकी क्रिया होती है।

(३) धातुओंके यौगिकोंके किसी विलयनको लें और उसमें विद्युत इलेक्ट्रोड (विद्युदग्र)को रखकर विद्युत पारित करें तो उस विलयनका विद्युत् विश्लेपण (विच्छेदन) होता है। घोलमें आयनके रूपमें रहनेवाला धातुका अंश ऋणाग्रकी ओर आकर्षित होता है और अधातुका अंश धनाग्रकी ओर आकर्षित होता है। इसीलिए धातुएं इलेक्ट्रो-पाजिटिव अर्थात् विद्युत्-धनात्मक (+) और अधातुएं इलेक्ट्रो-निगेटिव अर्थात् विद्युत्-ऋणीय (–) कहलाती हैं।

(४) अधातुएं जटिल लवण (complex salts) प्रदान नहीं करतीं; परन्तु अपवाद इनमें भी हैं। बोरोन (बोरिक अम्लका मूलतत्त्व) और सिलिकोन (बालूका मूलतत्त्व) KBF_4, K_2SiF_6 जैसे जटिल लवण बनाती हैं। इसके विपरीत धातुएं जटिल लवण प्रदान करती हैं, जिनमें धातुका विद्युत्-आवेश कभी धनात्मक तो कभी ऋणात्मक होता है। उदाहरणार्थ कोबाल्ट धातु कोबाल्ट-एमाइन्स प्रदान करती हैं, जिसमें $[CO(NH_3)_6]^{---}$ ऋणात्मक विद्युत् आवेश दिखाता है।

$$4\ CO(OH)\ NO_3 + 28\ NH_4OH + O_2 = 4[Co\ (NH_3)_6]^{+++}(OH)_3 + 4NH + NO_2 + 22H_2O$$
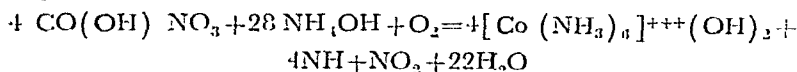
पोटेसियम फेरोसाइनाइडमें फेरोसाइनाइड $[Fe\ (CN)_6]$ आयन ऋणात्मक विद्युत् आवेश दिखाता है। इस प्रकार रसायनज्ञोंने धातु और अधातुके अन्तरको स्पष्ट करनेके लिए कई प्रयत्न किये, परन्तु उनकी हर व्याख्या और परिभाषामें कोई-न-कोई अपवाद निकल ही आया। इसलिए धातु और अधातुकी स्पष्ट और निर्णयात्मक परिभाषा संभव नहीं हो पाती थी। परन्तु आधुनिक इलेक्ट्रॉन वादके सुस्थापित हो जानेके बाद धातु और अधातुकी परिभाषाएँ भी बदल गई।

जिन मूलतत्त्वोंके परमाणुओंमें बाह्य इलेक्ट्रॉनोंकी संख्या १, २, ३ होती है उन सभी मूल-तत्त्वोंको धातु माना जाता है। उनका अधातुतत्त्वोंसे संयोग होने पर विद्युत् विलयनमें अपनेसे संयोग करनेवाले परमाणुओंको वे अपने इलेक्ट्रॉन दे देते हैं और धनात्मक विद्युत् आवेश धारण करते हैं। उदाहरणार्थ, सोडियम धातु अपना एक इलेक्ट्रॉन क्लोरिनको देती है इसलिए सोडियम धनात्मक आयन (Na^+) बनती है; और क्लोरिन एक इलेक्ट्रॉन मिलनेसे ऋणात्मक आवेश धारण करती है अर्थात् क्लोरिन ऋणात्मक आयन (Cl^-) क्लोराइड बन जाती है। पानीमें विगलित नमक ($NaCl$) Na^+ और Cl^- आयन देता है।

अधातु वह है जिसके परमाणुके बाह्य इलेक्ट्रॉन ५, ६, ७ होते हैं और वह संयोग करने वाली धातुके परमाणुसे शेप इलेक्ट्रॉन लेकर अपने बाह्य वर्तुलमें आठ इलेक्ट्रॉनोंकी संख्या पूरी करती है।

इस दृष्टिसे देखने पर भी धातु-अधातुका भेद पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाता। जिन मूलतत्त्वोंके बाह्य इलेक्ट्रॉनोंकी संख्या चार हो उनका क्या किया जाए?

इस शताब्दीमें कुछ धातुओंके कार्बधात्विक यौगिक (organometalic compounds) बनाये गए हैं। इन्हें धातुकार्बनिक-यौगिक भी कहते हैं। कई धातु-कार्बनिक-यौगिक पिछले कुछ वर्षोंसे दवाइयों, खेती-बाड़ीके क्षेत्रमें फसलों और पौधोंको हानि पहुँचानेवाले जीव-जन्तुओं एवं फफूंदों (फुंगस)के जन्तुनाशक पदार्थों, उद्योगों तथा कलाओंमें एवं पेट्रोलमें 'एण्टिनोक' पदार्थके

रूपमें इस्तेमाल किये जाने लगे हैं। इतना ही नहीं, ऊष्मा और रसायन अवरोधक रबरके उत्पादनमें और मकानोंमें पानीके पसीजनेको रोकनेके लिए ईंटों पर परत लगानेमें भी उनकी उपयोगिता और महत्त्व प्रमाणित हो चुके हैं। धातु-कार्बनिक-यौगिक प्रकृति प्रदत्त नहीं हैं। इनके पेड़ नहीं होते; प्रशिक्षित, बुद्धिमान, उत्साही अन्वेषकों-अनुसन्धानकर्ताओंके अथक परिश्रमके परिणामस्वरूप ये उपलब्ध किये जा सके हैं।

धातु-शोधनकी सामान्य विधियाँ

खनिज पृथ्वीके गर्भसे कच्ची धातुओं (orcs)के रूपमें निकाले जाते हैं। इनके साथ मिट्टी, बालू और अन्य विजातीय पदार्थ लिपटे हुए होते हैं। इसलिए खनिजोंमेंसे धातु निकालनेके लिए सबसे पहले उनसे लिपटे हुए विजातीय पदार्थोंको अलग कर खनिजोंको साफ करना पड़ता है। इससे अयस्क (ore)में धातुके अनुपातका संकेन्द्रण या सान्द्रण (concentration) होता है। विजातीय पदार्थोंसे उपयोगी खनिजको पृथक् करना 'धातुक-सँवार' अथवा 'अयस्क-प्रसाधन' (ore dressing) कहलाता है।

खनिज यदि ढोंकोंके रूपमें हुआ तो उसका चूर्ण करनेके लिए उसे दलित्रों (crushers)में पीसा जाता है। फिर उस चूर्णको पानीमें निथारकर उसमें मिली हुई मिट्टी, बालू आदि अपद्रव्योंको निकाल दिया जाता है।

कई बार अयस्क दो-तीन भिन्न-भिन्न खनिजोंके मिश्रणके रूपमें प्राप्त होते हैं। उनका आपेक्षिक घनत्व भिन्न-भिन्न होनेके कारण घनत्वके अन्तरोंका उपयोग कर उन्हें एक-दूसरेसे पृथक् (विलग) किया जाता है।

ग्रेफाइटमें फेल्सपार (घनत्व : २.५७), अभ्रक (घनत्व : २.८५) और क्वार्ट्ज (घनत्व २.६५) होता है। उन्हें विलग करनेके लिए बेनज़िन (घनत्व : ०.८७९) और मिथिलिन-आयोडाइड (घनत्व : ३.३३)के मिश्रणका उपयोग किया जाता है। इसमें ग्रेनाइटका चूर्ण डालनेसे फेल्सपार उसमें तैरता है, लेकिन अभ्रक और क्वार्ट्ज भारी होनेके कारण पेंदीमें बैठ जाते हैं।

तेल उत्प्लावन विधि
[१. घूमनेवाला पंखा, २. हवा, ३. अनुपयोगी कचरा, ४. फेन, ५. संकेन्द्रित कच्ची धातु]

कई बार द्रवके पृष्ठ तनाव (surface tension)के अन्तरका उपयोग भी रसायनज्ञ कर लेते हैं। जस्तका खनिज जिंकब्लेण्ड और साथमें मिले हुए बालूके कचरेवाले चूर्णको पानीकी सतह पर छिटका जाए तो बालू तुरत गीलित

73877

रूपमें इस्तेमाल किये जाने लगे हैं। इतना ही नहीं, ऊष्मा और रसायन अवरोधक रबरके उत्पादनमें और मकानोंमें पानीके पसीजनेको रोकनेके लिए ईंटों पर परत लगानेमें भी उनकी उपयोगिता और महत्त्व प्रमाणित हो चुके हैं। धातु-कार्बनिक-यौगिक प्रकृति प्रदत्त नहीं हैं। इनके पेड़ नहीं होते; प्रशिक्षित, बुद्धिमान, उत्साही अन्वेषकों-अनुसन्धानकर्ताओंके अथक परिश्रमके परिणामस्वरूप ये उपलब्ध किये जा सके हैं।

धातु-शोधनकी सामान्य विधियाँ

खनिज पृथ्वीके गर्भसे कच्ची धातुओं (ores)के रूपमें निकाले जाते हैं। इनके साथ मिट्टी, बालू और अन्य विजातीय पदार्थ लिपटे हुए होते हैं। इसलिए खनिजोंमेंसे धातु निकालनेके लिए सबसे पहले उनसे लिपटे हुए विजातीय पदार्थोंको अलग कर खनिजोंको साफ करना पड़ता है। इससे अयस्क (ore)में धातुके अनुपातका संकेन्द्रण या सान्द्रण (concentration) होता है। विजातीय पदार्थोंसे उपयोगी खनिजको पृथक् करना 'धातुक-सँवार' अथवा 'अयस्क-प्रसाधन' (ore dressing) कहलाता है।

खनिज यदि ढोंकोंके रूपमें हुआ तो उसका चूर्ण करनेके लिए उसे दलित्रों (crushers) में पीसा जाता है। फिर उस चूर्णको पानीमें निथारकर उसमें मिली हुई मिट्टी, बालू आदि अपद्रव्योंको निकाल दिया जाता है।

कई बार अयस्क दो-तीन भिन्न-भिन्न खनिजोंके मिश्रणके रूपमें प्राप्त होते हैं। उनका आपेक्षिक घनत्व भिन्न-भिन्न होनेके कारण घनत्वके अन्तरोंका उपयोग कर उन्हें एक-दूसरेसे पृथक् (विलग) किया जाता है।

ग्रेफाइटमें फेल्स्पार (घनत्व : २.५७), अभ्रक (घनत्व : २.८५) और क्वार्ट्ज़ (घनत्व २.६५) होता है। उन्हें विलग करनेके लिए वेनज़िन (घनत्व : ०.८७९) और मिथिलिन-आयोडाइड (घनत्व : ३.३३)के मिश्रणका उपयोग किया जाता है। इसमें ग्रेनाइटका चूर्ण डालनेसे फेल्स्पार उसमें तैरता है, लेकिन अभ्रक और क्वार्ट्ज भारी होनेके कारण पेंदीमें बैठ जाते हैं।

तेल उत्प्लावन विधि
[१. घूमनेवाला पंखा, २. हवा, ३. अनुपयोगी कचरा, ४. फेन, ५. संकेन्द्रित कच्ची धातु]

कई बार द्रवके पृष्ठ तनाव (surface tension)के अन्तरका उपयोग भी रसायनज्ञ कर लेते हैं। जस्तका खनिज जिंकब्लेण्ड और मायमें मिले हुए बालूके कचरेवाले चूर्णको पानीकी सतह पर छिटका जाए तो बालू तुरत गीलित

73877

होकर नीचे बैठ जाती है। जिंक ब्लेण्ड पानीमे गीला नही होता और इसलिए पानीसे भारी होते हुए भी सतह पर तैरता रहता है। जिंक ब्लेण्ड और सीसेके खनिज गेलिनाका भी इसी प्रकार पृथक्करण किया जा सकता है। इसमे पानीके साथ-साथ कई बार न्यूनाधिक मात्रामे तेलका भी उपयोग किया जाता है, इसलिए इसे तेल उत्प्लावन विधि (oil floatation method) कहते हैं। कुछ विशेष तैलीय पदार्थोको पानीमे डालकर वायुकी सहायतासे फेन उठाया जाता है। कुछ खनिजोके कण तेल-आवरित हो जाते है और फेनके साथ ऊपर आ जाते हैं, शेष अपद्रव्य और अशुद्धियाँ पानी द्वारा गीलित होकर नीचे बैठ जाती हैं। चुम्बकका उपयोग करके भी खनिजोको पृथक् किया जा सकता है। रांगे (वंग)का खनिज टिनस्टोन (घनत्व ६.४से ७.१) और टंग्स्टन धातुका खनिज वोल्फ्राम (घनत्व : ७.१ से ७.९) मिश्रित रूपमे निकलते हैं। दोनोका घनत्व लगभग एक-जैसा है इसलिए उन्हे तेल उत्प्लावन विधिमे विलग नही किया जा सकता। परन्तु टिनस्टोन पर चुम्बकका प्रभाव नही होता, वह अचुम्बकीय है। और वोल्फ्राम चुम्बकीय है, इसलिए इस खनिज-मिश्रणके चूर्णको चुम्बकीय वेलन पर घूमने वाले पट्टे पर गिराया जाता है। टिनस्टोन तो सीधा गिरता है परन्तु वोल्फ्राम चुम्बककी ओर आकर्षित होनेके कारण उसका ढेर अलग लगता जाता है। इसे इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक अथवा चुम्बकीय विधि कहा जाता है। इस क्रियाके बाद धातु-शोधनका काम आगे बढता है। धातु-शोधनकी कुछ सामान्य विधियोको भी देख लिया जाए।
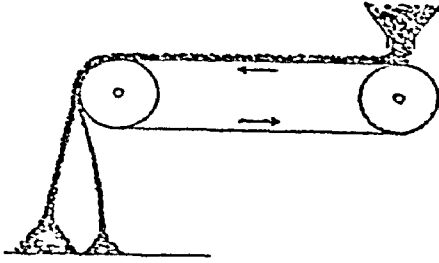
चुम्बकीय पद्धति

स्वर्ण और प्लेटिनम प्रकृतिमे अपनी धातु अवस्थामे—आदि धातुके रूपमे प्राप्त होनेवाली धातुएँ है। ताम्र, रजत और पारा-जैसी कुछ धातुएँ भी यदा-कदा असयुक्त अवस्थामे (आदि धातुके रूपमे) मिल जाती हैं। बाकीकी सभी धातुएँ सामान्यत. आक्साइडो और सल्फाइडो अथवा कार्बोनेटो और सल्फेटोके रूपमे प्राप्त होती है।

खनिजोमेसे धातु निकालनेकी विधिको धातु-शोधन कहते है।

प्रकृत तांबा, सोना और प्लेटिनम धातुएँ महीन कणोके रूपमे प्राप्त होनेसे उन्हे अन्य पदार्थोसे विलग करना-भर रह जाता है। इसलिए इसमे किसी विशेष प्रकारकी रासायनिक क्रियाकी आवश्यकता नही होती।

धातुओको उनके आक्साइडोमेसे शुद्ध स्वरूपमे प्राप्त करनेके लिए उनका अपचयन या अवकरण करना होता है। अवकरणका अर्थ है उनमेसे आक्सीजनको अलग करना। इस क्रियाके लिए आक्सीजनको आसानीसे ग्रहण कर सके, ऐसे पदार्थोके साथ उन खनिजोको गरम किया जाता है। जस्ता, लोहा, मैंगेनीज, सीसा, तांबा आदि धातुओके आक्साइड कोयलेसे सयोग करके कार्बन डाइ-आक्साइड बन जाते हैं और खनिजोसे धातु पृथक् हो जाती है। इस क्रियामे तेजी लानेके लिए कभी-कभी सुहागा, चूना आदि गालक (flux) मिलानेकी जरूरत होती है। टंग्स्टन और मैंगेनीजसे अधिक अणुभारवाली धातुओका आक्सीन्यूनीकरण करनेमे कोयला काम नही देता, इसलिए उन्हे

खूब गर्म करके उनमें हाइड्रोजन पारित किया जाता है। हाइड्रोजन धातु-आक्साइडके आक्सीजनसे संयोग करके वाष्पके रूपमें पानी बन जाता है और धातुएँ पृथक् हो जाती हैं।

क्रोमियम, मैंगेनीज़, माल्डिडेनम, वेनेडियम आदि कुछ धातुओंका आक्सीन्यूनीकरण न तो कार्बनसे हो पाता है और न हाइड्रोजनसे ही। ऐसी धातुओंके शोधनके लिए उनके खनिजोंको एल्यूमीनियमके चूर्णके साथ तपाया जाता है। इस विधि को स्मिटकी तापोपचार विधि (Thermite Process) कहते हैं। कभी-कभी एल्युमीनियमके चूर्णके बदले मैग्नेसियम या मिचमेटल (mischmetal) का भी उपयोग किया जाता है।

जहाँ अत्यधिक तापकी आवश्यकता होती है वहाँ विद्युत् भट्ठियोंका उपयोग किया जाता है।

सल्फाइडके रूपमें प्राप्त होनेवाली कच्ची धातुका हवामें भर्जन—सिकाव (roasting) करनेसे सल्फर यानी गन्धक हवाकी आक्सीजनसे संयोग करके धातुको पृथक् कर देता है। इसके अतिरिक्त अनेक खनिजोंका पानी या अन्य किसी द्रव या किसी अन्य पदार्थके रूपमें आवश्यक ताप पर विलयन बनाकर उसमें विद्युत् पारित करनेसे विद्युत् विश्लेषण (विच्छेदन) के द्वारा शुद्ध धातु प्राप्त की जाती है। सोडियम, पोटेसियम, एल्युमीनियम और अन्य कई धातुओंके क्लोराइडमेंसे विद्युत् विश्लेषणके ही द्वारा धातुओंका निस्सारण (extraction) किया जाता है।

कुछ धातुओंके निस्सारणके लिए विशिष्ट विधियाँ काममें लानी पड़ती हैं। निकलको विशुद्ध रूपमें प्राप्त करनेके लिए कार्बन मोनो आक्साइड गैसके साथ उसका संयोग करनेसे निकल कार्बोनिक नामक द्रव बनता है, जिसका ऊष्माके द्वारा विघटन करनेसे शुद्ध निकल तैयार हो जाता है। यह विधि मॉण्डकी विधिके नामसे विख्यात है।

इस प्रकार रसायनज्ञोंने धातु-शोधनकी कई भिन्न-भिन्न विधियाँ विकसित की हैं। उद्योगोंमें उनका समुचित उपयोग किया जाता है और विश्वकी धातु-सम्बन्धी माँगको पूरा किया जाता है।

धातु-कर्मकी अभिनव विधियाँ

धातुओंका शोधन कर लेने मात्रसे उससे बननेवाली चीजें तैयार नहीं हो जातीं। विविध प्रकारके उपयोगके अनुसार धातु पर अनेक प्रकारकी क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। एक छोटीसी आल-

धातु-कर्मकी विस्फोटक विधि
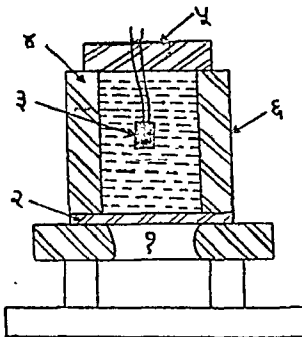
[१. ठप्पा (डाई); २. धातुकी चादर (प्लेट); ३. पानी से भरी हुई पोलिथिलिनकी थैलीमें विस्फोट पदार्थ; ४, ५, ६. धातुके वजनी निपिण्ड (ब्लाक)।

पीन बनानेमें ही कई प्रक्रियाएँ अपनानी पड़ती हैं। तार बनाना, एक-जैसे टुकड़े करना, छोर दबाकर

मत्था बनाना, नोक तैयार करना, पालिश करना आदि। छोटे-बड़े यन्त्रोके पुर्जे बनानेमे कही पर छेद करना पड़ता है और किसी हिस्सेकी ढलाई भी करनी पड़ती है।

कुछ धातुएं सख्त होती है। उन पर काम करनेके लिए उनसे भी सख्त धातुओंके ओजारोकी जरूरत होती है। ऐसी सख्त धातुओके बने औजार बार-बार घिस जाते है। कुछ मिश्र धातुएँ इतनी कड़ी होती है कि उन पर काम करना बहुत ही मुश्किल और खर्चीला होता है। कामके दौरान उत्पन्न होनेवाली गर्मीके कारण ऐसी मिश्र धातुओ के गठनमे ढीलापन आ जाता है, जिससे नई-नई परेशानियाँ खड़ी हो जाती है और समय भी बहुत अधिक लग जाता है।

इन सब कठिनाइयोंके कारण वैज्ञानिकोको धातु-कर्मके लिए नई-नई विधियाँ आयोजित करनी पड़ती है अथवा पुराने जमानेकी भूली हुई विधियोको पुनर्जीवित करना पड़ता है। फिर धातुओको आकार प्रदान करनेके लिए पराश्रव्य (कर्णातीत) तरगो, लासर किरणो, इलेक्ट्रॉन किरणो आदि आधुनिक आविष्कारोका भी उचित उपयोग किया जाता है।

धातुकर्मकी नवीनतम विधियोमे विस्फोटक पदार्थोका उपयोग, चूर्ण (पाउडर) विधि और विद्युत्-रासायनिक (इलेक्ट्रो-केमिकल) मशीनिर्याग प्रमुख है।

यान्त्रिक सामग्रियोमे कुछ स्थानो पर रिवेट लगानेके लिए विस्फोटक पदार्थोका उपयोग किया जाता है। मजबूत टकीमे पानी या तेलकी सतह पर ठीक तरहसे जमाकर रखी हुई धातुकी चादरके ऊपर ठप्पे या साचे (डाई)को रख कर उचित प्रकारके विस्फोटकका प्रस्फोट करनेसे टकीके अन्दरके द्रव पर एक-सा दबाव पड़ता है और उस दबावके कारण धातुकी चादर साँचेमे अच्छी तरह दबकर साँचेके अनुरूप आकृति ग्रहण कर लेती है। यह विधि अभी अपने आरम्भिक रूपमे है, परन्तु दिनोदिन विकसित होती जा रही है।

चूर्ण-धातु कर्मसे धातुओके चूर्णसे धातुकी छोटी-बड़ी चीजे बनाई जाती है। इस विधिमे धातु-का चूर्ण बनाकर उसे यथावश्यक आकृतिमे ठोस धातुमे बदलना होता है। प्रचलित विधियोमे इस नई विधिने खूब ध्यान आकर्षित किया है और लोगोकी रुचिके साथ-साथ दिनोदिन इसका प्रचलन भी बढ़ता जाता है। यह कहा जा सकता है कि समयके साथ चूर्ण-धातु शोधन-विधि बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाएगी।

विस्फोटक विधिसे बनाई हुई धातुकी चीजे

वैसे धातुओके चूर्ण या चूरेसे धातु बनानेकी विधि बहुत पुराने समयसे चली आती है। दक्षिण अमेरीकाकी इन्का सभ्यताके समयके बने हुए सोने-चाँदीके बहुतसे आभूषण मिले है। प्रकृतिमे मिलनेवाले प्लेटिनम धातुके चूर्णसे धातु बनानेके लिए १८वी सदीके अन्तमे यूरोपमे
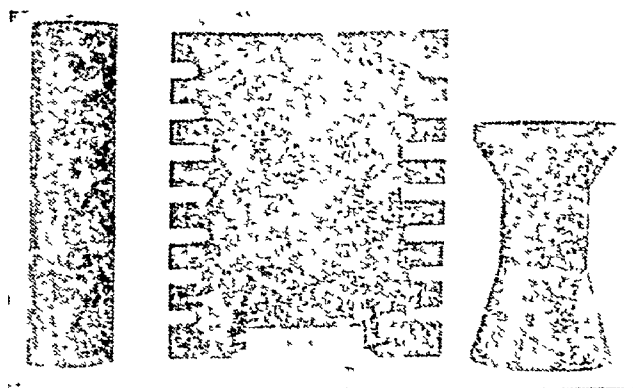
चूर्ण-धातुशोधन-विधि काममें लाई जाती थी। इस विधिसे थोड़ी मात्रामें कुछ किलोग्रामके धातुके नमूने बनाये जा सकते हैं। वैसे १६०० वर्ष पूर्व दिल्लीमें कुतुबमीनारके समीप निर्मित लौहस्तम्भ (६-७ टन वजनका) लोहेके चूर्णसे ही बनाया गया था।

चूर्ण-धातुशोध विधिका पहला आधुनिक प्रयोग बिजलीके लट्टूमें काम आनेवाले धातुके महीन तार बनानेमें किया गया। ऑस्मियम धातुके चूर्णसे पहले-पहल इस धातुका महीन तार बनाया गया। इसी प्रकार टंग्स्टन, वेनेडियम, जिर्कोनियम, टैण्टालम और अन्य धातुओं पर भी चूर्ण-धातुशोधकी यह विधि लागू की गई। इनमें भी सबसे पहले टैण्टालम धातुका महीन तार बनाया गया था। इसके बाद कुलीजने यह खोज की कि टंग्स्टनके चूर्णसे बनाई हुई टंग्स्टन धातुको एक खास ताप पर गर्म करें तो ठण्डे होने पर सामान्य ताप पर भी उसके तार खींचे जा सकते हैं। इस प्रकार वह अपनी तन्यताको बनाये रखती है, इसीलिए इस धातुका उपयोग किया गया।

सहज ही प्रश्न उठता है कि धातुका चूर्ण बनानेकी आवश्यकता ही क्या है? धातुको गलाकर उससे चीजें बनानेकी प्रचलित विधिसे इसमें क्या विशेषता है?

टंग्स्टन जैसी कुछ धातुओंको गलाकर द्रव बनानेके लिए अत्यन्त ऊँचे तापकी जरूरत होती है, लेकिन उनका चूर्ण बहुत आसानीसे बनाया जा सकता है। फिर चूर्णके रूपमें उपयोग करनेसे अपव्यय भी नहीं होता; आवश्यकतानुसार ही उपयोग होता है। और इस विधिसे धातुकी तैयार चीजें आसानीसे बनाई जा सकती हैं।
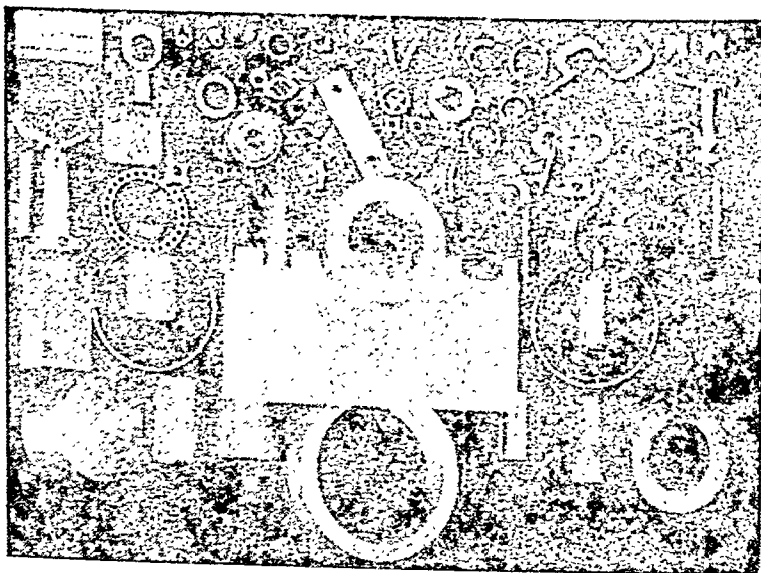
चूर्ण विधिसे बने यांत्रिक पुर्जे

इस विधिमें धातुको पीसकर या विद्युत्-विश्लेषण विधिसे उसका चूर्ण बनाया जाता है। धातुके इस चूर्णको मनचाहे साँचेमें खूब जोरका दाब दिया जाता है। दाबके कारण चूर्ण आपसमें सिमट

और चिपककर साँचेके आकारकी पूरी चीज बन जाती है। उसे सख्त बनानेके लिए भट्ठीमें तपाया जाता है। धातुके गलनांकसे कुछ ही कम ताप तक गर्म करनेसे उस वस्तुका चूर्ण आपसमे मजबूतीसे चिपककर पूरी वस्तु बन जाती हे।

१९३० ईसवीमें व्लाडीमीर गुस्सेफने एक खास प्रकारकी विधिको पेटेंट (एकस्व) करवाया, जो धातु कर्मकी इलेक्ट्रोकेमिकल (विद्युत्-रासायनिक) मशीनिर्यरिंग विधिके नामसे प्रख्यात है। संक्षेपमें इसे ई० सी० एम० कहते हैं। विद्युत्-विश्लेषणके द्वारा धातुओं पर मुलम्मा (कलई चढ़ाना) किया जाता है; उसीसे मिलती-जुलती यह विधि है। इसमें भी द्रव विद्युत्-विलयन (घोल), धनाग्र (ऐनोड) और ऋणाग्र (कैथोड) होते हैं। सामान्यतः विद्युत् विलयनमें विद्युत् पारित करनेसे धनाग्र पर रखी हुई धातुका क्षरण (छीजन) होकर विद्युत्-विलयनमें आता है और विद्युत्-विलयनमेंसे धातुका अवक्षेपण ऋणाग्र पर होता है। परन्तु ई० सी० एम० विधिमें मुलम्मा चढ़ाना नहीं होता; उलटे, इस बातकी सावधानी रखना पड़ती है कि कहीं ऋणाग्र पर अवक्षेपण न होने लगे। धनाग्र पर रखी हुई धातुके टुकड़ेके स्थान-विशेषसे ही धातु विद्युत्-विलयनमें आये, यह सावधानी भी रखनी पड़ती है। ऋणाग्रके रूपमें रखे हुए औजारके ठीक अनुरूप ही आकार-प्रकार, गड़हा, कटाव और छेद आदि धनाग्र पर उभरना चाहिए और ऋणाग्रकी तरह प्रयुक्त औजार पर अवक्षेपण न होकर उसे यथावत् रहना चाहिए। साथ ही, इस विधिमें विद्युत्के बहुत तेज और उच्च आवेशकी जरूरत पड़ती है, जिससे काफ़ी उच्च ताप पैदा होता है और उस तापके कारण विद्युत्-विलयनका वाष्पायन हो

ई० सी० एम० विधिसे किया जानेवाला धातु कर्म
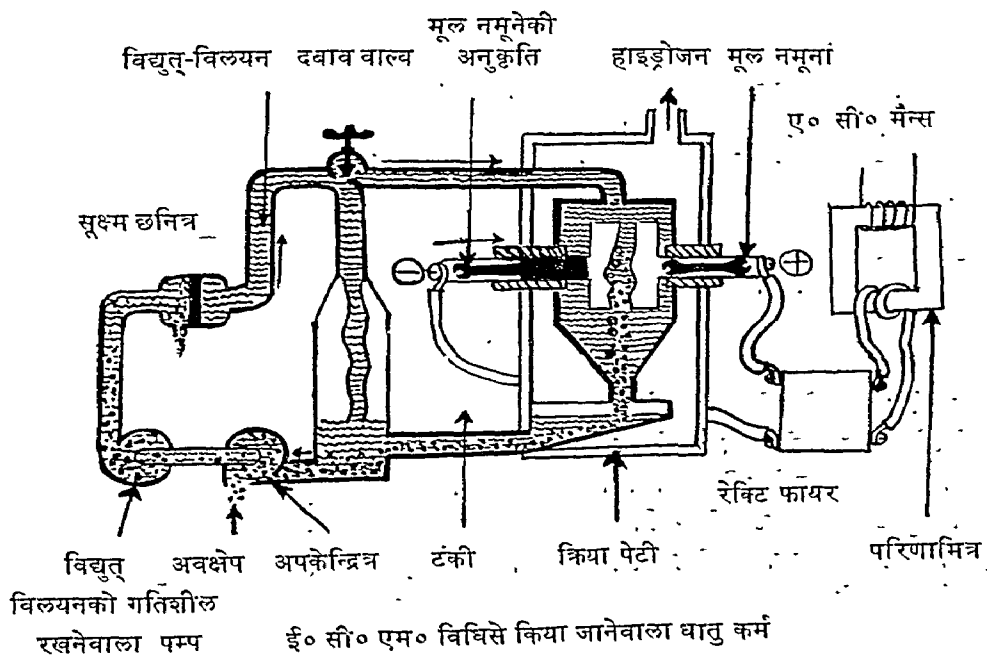
जाता है। फिर इस क्रियाके दौरान उत्पन्न होनेवाली गैसे भी सरल रीतिसे चल रही रासायनिक क्रियामें कठिनाइयाँ पैदा कर देती हैं। इन कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए दो बुनियादी परिवर्तन

आवश्यक हैं। एक तो ई० सी० एम०में विद्युत्-विश्लेष्यको सतत गतिशील रखना चाहिए; और दूसरे, उसे खूब तेज़ीसे यांत्रिक छनित्रसे छान लेना चाहिए। इससे क्रियामें रुकावट डालनेवाले पदार्थ दूर हो जाएँगे और विद्युत्-विश्लेष्यके लगातार घूमते रहनेसे उच्च विद्युत् आवेशसे उत्पन्न होनेवाली गर्मी छँट जाएगी।

विद्युदग्रोंके बीच बढ़ती हुई दूरीकी समस्या ऋणाग्रको धीरे-धीरे धनाग्रकी ओर बढ़ाते रहनेसे हल हो जाती है। इससे दोनोंके बीचका फासला हमेशा एक-जैसा बना रहता है और क्रिया भी निरन्तर चालू रहती है।

धातुकी अन्तिम आकृति ऋणाग्रकी आकृति और धनाग्र एवं ऋणाग्रके बीचके अन्तर पर निर्भर करती है। धनाग्र और ऋणाग्रके बीचके अन्तरको अत्यन्त परिशुद्धतासे नियन्त्रणमें रखना पड़ता है। यदि वे तेज़ीसे एक-दूसरेके समीप आ जाते हैं तो विद्युत्-चाप (arc) उत्पन्न होनेका भय रहता है, जिससे मूल्यवान उपकरण नष्ट हो जाते हैं। यदि अन्तर बढ़ता गया तो औज़ार निर्धारित आकार-प्रकार ग्रहण नहीं कर पाता। इसलिए द्रवचालित पद्धतिसे बराबर उसका नियन्त्रण किया जाता है। ऋणाग्र और धनाग्रके फासलेमें ज़रा-सा भी फर्क पड़नेसे विद्युत्-विश्लेष्यके दबावमें अन्तर आ जाता है, जिससे द्रवचालित नियन्त्रणकी त्रुटि फौरन पकड़में आ जाती है।

इस प्रकार ई० सी० एम० विधि द्वारा एक ही प्रक्रियामें धातुको मनचाहा आकार प्रदान किया जा सकता है। प्रचलित विधिके विपरीत इस विधिमें औजार और धातुके बीच सीधा सम्पर्क न होनेसे औज़ार घिसता नहीं है, केवल फोटोग्राफकी निगेटिव फिल्मका काम करता है। इसमें धातुकी कठोरता (कड़ेपन)का कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि न तो छीलने, न काटने और न ही छेदनेकी ज़रूरत होती है। फुर्ती, कार्यविधिकी सरलता और परिशुद्धताके कारण मशीनके पुर्ज़ोंको समग्र रूपमें तैयार करनेमें ई० सी० एम०की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।

लेकिन इससे यह मान बैठना कि ई० सी० एम० धातुशोधनकी सभी प्रचलित विधियोंका स्थान ले लेगी, गलत होगा। इस पद्धतिकी भी अपनी कुछ सीमाएँ हैं। बहुत बड़े आकारकी चीज़ें इस विधिसे बनाना मुश्किल है। इसलिए ई० सी० एम० और सभी प्रचलित विधियाँ विविध व्यावहारिक उपयोगोंकी दृष्टिसे अपना-अपना योगदान करती रहेंगी।

स्वर्ण, रजत, प्लेटिनम

स्वर्ण, रजत और प्लेटिनम—ये तीनों कीमती धातुएँ हैं। इनका उपयोग सिक्के तथा गहने बनाने और वैज्ञानिक क्षेत्रमें होता है। ये तीनों प्रकृतिमें अधिकांशतः स्वतन्त्र अवस्थामें प्राप्त होती हैं। ये तीनों धातुएँ अन्य धातुओंके मिश्रणमें भी दिखाई देती हैं। स्वर्णको धातुओंका राजा कहा जाता है। रासायनिक दृष्टिसे अत्यन्त उदासीन-अक्रियाशील होनेके कारण इसे जंग नहीं लगता और लम्बे समय तक इसकी चमक और आभामें कोई अन्तर नहीं आता। इसीलिए रसायनमें इसे 'श्रेष्ठ धातु' कहा जाता है। अपनी लुभावनी चमक, स्वाभाविक सुन्दरता और गढ़नमें सरलताके कारण इसने आदि-मानवका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया होगा और शोभा एवं शृंगारकी वस्तुएँ बनानेमें इसका उपयोग होने लगा होगा। काहिराके संग्रहालयमें रखे हुए सुन्दर गहने, चूड़ियों, कड़ों, अँगूठियों आदिसे पता चलता है कि शृंगारिक वस्तुओंके रूपमें सोनेका उपयोग ई० पू० ३००० में मिस्रवासियोंको ज्ञात था।

स्वर्ण यों तो प्रकृतिमें अत्यन्त व्यापक रूपसे फैला हुआ है, लेकिन विशेष रूपसे दक्षिण अफ्रीका (ट्रान्सवाल), रूस, अमरीका और कैनाडामें अधिक मात्रामें पाया जाता है। भारतमें मैसूर और कोलारकी सोनेकी खानें प्रसिद्ध हैं। पुराने समयमें, वर्षाकालमें, वारिशसे धुली हुई ज़मीनमेंसे कुछ लोग[1] मिट्टी छान-निथारकर सोनेकी किरचें इकट्ठी किया करते थे। लेकिन श्रमकी दृष्टिसे इसमें लाभ वहुत कम होता है, इसलिए अव तो अधिकांश सोनेकी शिलाओंमेंसे ही सोना निकाला जाता है। कोलारमें स्वर्ण चकमकके साथ उसके चूर्णरूपमें मिला हुआ निकलता है। यह स्वर्णमय चकमक पृथ्वीके गर्भमें ठेठ आठ हज़ार फुट नीचेसे निकाला जाता है।

स्वर्ण वजनमें भारी होनेके कारण इस स्वर्णमय चकमकको कूट-पीटकर वनाया हुआ चूरा पानीके प्रवाहमें धोनेसे मिट्टी इत्यादि वह जाते हैं और सोना नीचे रह जाता है। इस क्रियाके दौरान उसमें पारा डाला जाता है और सोनेका पारेके साथ पारद मिश्रण वनता है, जिसे इकट्ठा कर सोनेको शुद्ध कर लिया जाता है। वहुत ही अल्प मात्रामें जो सोना धोवनके साथ चला जाता है उसे भी धोवनमें पोटेसियम सायनाइड नामक रसायन मिलाकर, क्योंकि सोना सायनाइडसे संयोजित हो जाता है, और फिर जस्तेसे पृथक् करके शुद्ध कर लिया जाता है।

सोनेकी शुद्धता—विशुद्धि, 'फाइननेस'—हजारके हिसावसे आँकी जाती है। उदाहरणके लिए ८०० 'फाइन' सोनेमें ८ भाग स्वर्ण और २ भाग अन्य धातुएँ रहती हैं। 'वल्ल', 'वाल' या 'वानी'के द्वारा भी सोनेकी शुद्धता दिग्दर्शित की जाती है। सोलहवल्लुँ, सोलहवाल या सोलह-वानी सोनेका मतलव एकदम शुद्ध सोना होता है। वारह वानी या वारह वाल (वल्लुँ) सोनेका यह मतलव हुआ कि उसमें चार वानी या वाल (वल्लुँ) अन्य धातुका मिश्रण है। कहीं-कहीं सोनेकी शुद्धताको व्यक्त करनेके लिए 'टंच'का भी उपयोग किया जाता है। सौ टंचका सोना शत प्रतिशत शुद्ध होता है। गुणवत्ताकी दृष्टिसे २४ 'कैरेट'का सोना शुद्ध माना जाता है। इसलिए १००० 'फाइननेस' = १६ 'वानी' (वाल—वल्लुँ) = १०० टंच = २४ कैरेट यानी एकदम शुद्ध सोना हुआ।

रजत—गहने वनाने और गढ़ाईकी दृष्टिसे रजत (चांदी) सोनेसे दूसरे क्रम पर आता है। ई० पू० ४००० वर्ष पहलेके वने चाँदीके गहने खाल्डियाकी शाही कब्रमेंसे मिले हैं। कुछ देशोंमें चांदीको सोनेसे भी कीमती समझा जाता है।

प्रकृतिमें रजत स्वतन्त्र धातुके रूपमें और अन्य धातुओंके मिश्रणके रूपमें भी मिलता है। अफ्रीकाकी सोनेकी खानोंसे जो स्वर्ण निकलता है, उसमें लगभग १० प्रतिशत रजत संयुक्त धातुके रूपमें रहता है। दुनियामें निकाला जानेवाला आधेसे अधिक रजत चाँदीकी खानोंमेंसे नहीं, वल्कि सीसे, जस्ते और ताँवेके खनिजोंमेंसे उन-उन धातुओंको निकाल चुकनेके वाद वाकी वचे अपद्रव्योंसे प्राप्त किया जाता है। यह अन्दाज़ लगाया गया है कि इस प्रकार निकाला जाने वाला रजत चाँदीकी खानोंसे निकाले जानेवाले रजतकी कुल मात्रासे कहीं अधिक होता है। दुनिया-भरमें मेक्सिकोमें सवसे अधिक रजत निकलता है। उसके वाद अमरीकाका नम्वर आता है। भारतमें कहीं भी रजत नहीं निकलता। वर्मामें अवश्य चाँदीकी खानें हैं।

गहनों और सिक्कोंके अतिरिक्त चाँदीके विश्व-उत्पादनका चतुर्थांश कला-कारीगरी और

---

१. इन लोगोंको न्यारिया, धूलिये, धूलधोवने अथवा धूलागर कहा जाता था।

उद्योगोंमें काम आता है। सिने-उद्योगके विकासके वाद फोटोग्राफीमें चाँदीके उपयोगमें वहुत वृद्धि हुई है। अमरीकामें सरकारी कोष-विभाग (ट्रेज़री)के वाद चाँदीका सर्वाधिक उपयोग कोडककी फिल्में वनानेवाली रसायनशाला (लेवोरेटरी) ही करती है। चाँदीके विविध क्षार, दवाओंके रूपमें भी काम आते हैं—खासतौर पर सिल्वर नाइट्रेट। एक करोड़ भाग पानीमें केवल एक ही भाग रजत हो तो भी उस पानीके सव कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, ऐसा दावा किया जाता है। सम्पन्न हिन्दू परिवारोंमें चाँदीके वरतनसे पानी पीनेकी प्रथा सम्भवतः इसी विश्वास पर आधारित होनी चाहिए। प्रशीतकों (रेफ्रिजरेटरों), विमानों आदिके लेप (Coating)में रजत-रेणुका उपयोग होता है। दाँत भरनेके लिए भी चाँदी काम आती है। सादे काँच-सा दीखने-वाला शीशा (दर्पण, आरसी) वनानेके लिए चाँदीका उपयोग किया जाता है। चाँदी विद्युतकी सुसंवाहक है इसलिए विजलीके वहुतसे उपकरण वनानेमें भी उसका उपयोग होता है।

XXXIII. 1. I take the freedom to inclose to you an account of a semi-metal called *Platina di Pinto*; which, so far as I know, hath not been taken notice of by any writer on minerals. Mr *Hill*, who is one of the most modern, makes no mention of it. Presuming therefore that the subject is new, I request the favour of you to lay this account before the *R. S.* to be by them read and published, if they think it deserving those honours. I should sooner have published this account, but waited, in hopes of finding leisure to make further experiments on this body with sulphureous and other cements; also with Mercury, and several corrosive *menstrua*. But these experiments I shall now defer, until I learn how the above is received. The experiments which I have related were several of them made by a friend, whose exactness in performing them, and veracity in relating them, I can rely on: however, for greater certainty, I shall myself repeat them.

Several Papers concerning a new Semi Metal, called Platina; *communicated to the* Royal Society *by Mr* Wm. Watson, F. R. S. N°. 496 p. 584 [illegible] &c. 1750. *Read* Dec 13. 1750. *Extract of a letter from* Will. Brownrigg. *M. D. F. R. S. to* Wm Watson, *F. R. S. Dated* Whitehaven, Dec. 5, 1750.

प्लेटिनमकी खोज

प्लेटिनम—हिन्दी रसायनशास्त्रमें प्लेटिनमके लिए 'श्वेतस्वर्ण' शब्दका प्रयोग किया जाता है। गर्मी अथवा सर्दीमें, शुद्ध या अशुद्ध हवाके वातावरणमें प्लेटिनम पर किसी प्रकारका कोई असर नहीं होता।

१७३८ ईसवीमें कोलम्वियाके निक्षेपोंमेंसे यह स्वर्णके साथ मिला और इसे स्वर्णसे पृथक किया गया। १९वीं सदीके अन्त तक कोलम्वियाकी खानें ही दुनियाको प्लेटिनमकी आपूर्ति करती थीं।

रूस (युराल प्रदेश), कैलिफोर्निया, व्राज़ील, वोर्नियो और आस्ट्रेलियामें भी प्लेटिनमके निक्षेप हैं। पूरी एक शताव्दी तक रूसने प्लेटिनमकी माँगकी लगभग ९६ प्रतिशत और शेष ४ प्रतिशत पूर्ति कोलम्वियाकी खानोंने की थी। अव कैनाडाकी निकलकी खानें सारी दुनियाकी प्लेटिनम सम्वन्धी माँगको पूरा करती हैं।

पैलेडियम, आस्मियम, इरीडियम, रुथेनियम और रेडियम—इन पाँच धातुओंके साथ प्लेटिनम मिलता है। इनके अतिरिक्त सोना और लोहा भी उसके साथ रहता है। ये धातुएँ महीन कणों या रवोंके रूपमें मिलती हैं।

प्राकृतिक प्लेटिनमको पारेके साथ मिलाकर पहले उसमेंसे सोना निकाल लिया जाता है। फिर हाइड्रोक्लोरिक और नाइट्रिक अम्लोंके मिश्रण (ऐक्वा रेजिया—अम्ल राज)में छाना

जाता है। इस क्रियासे आस्मियम और इरीडियम पृथक् हो जाते हैं। अब प्लेटिनम अपने क्षार क्लोराइडके रूपमें रह जाता है। इस क्षारको गर्म करनेसे प्लेटिनम धातु पृथक् हो जाती है, जिससे शुद्ध प्लेटिनम बनाया जाता है। प्लेटिनमको कार्बन और फास्फोरसके साथ गर्म करनेसे वह भंगुर हो जाता है। प्लेटिनमका खास उपयोग आभूषणोंमें (३६ प्रतिशत), दाँतके काममें (२३ प्रतिशत), बिजलीके उद्योगमें (२२ प्रतिशत) और रसायनिक उद्योगोंमें (१४ प्रतिशत) तथा फुटकर कार्योंमें (५ प्रतिशत) होता है।

प्लेटिनम और काँचका प्रसार-गुणांक (coefficient of expansion) लगभग एक ही जैसा होनेके कारण गर्म काँचमें प्लेटिनमको बिठानेके बाद ठण्डे हो जाने पर काँचके टूटने अथवा कमजोर पड़नेका भय नहीं रह जाता। बिजलीके लट्टूमें लगनेवाले महीन तार पहले प्लेटिनमके बनाये जाते थे, लेकिन बहुत कीमती होनेके कारण उसका उपयोग बन्द करना पड़ा। अब निकल-लोहेकी मिश्र धातु 'प्लेटिनाइट'का उपयोग किया जाता है। इसमें ४२ या ४६ प्रतिशत निकल और शेष लोहा रहता है।

यूरेनियम, रेडियम और जर्मेनियम

विनाशक परमाणु बम बनानेमें काम आनेवाले यूरेनियमका नाम सभी जानते हैं। परमाणु-भारके आरोही क्रममें ९२ मूलतत्त्वोंमें यूरेनियमका परमाणुभार सबसे अधिक (२३८.०७) है।

रासायनिक दृष्टिसे वह टंग्स्टनसे मिलता है। यूरेनियमके क्षारोंका उपयोग मुख्यतः रंगीन काँच बनानेमें किया जाता है। गजवल्ली (कान्तिसार लोहा) बनाते समय थोड़ा-सा यूरेनियम

एण्टोइन हेनरी बैकवेरल (१८५२–१९०८)
[यूरेनियमकी रेडियधर्मिताका आविष्कारक]

मेरी क्यूरी (१८६७–१९३५)
[रेडियमकी आविष्कर्त्री]

मिलानेसे जो फेरो-यूरेनियम तैयार हुआ, उसके गुणोंके अध्ययनने विज्ञानके इतिहासमें एक नया अध्याय ही शुरू कर दिया। १८९६ ई०में बैकवेरलने यह खोज की कि यूरेनियम और उसके

क्षारोंमें विशिष्ट प्रकारकी किरणोंके विकिरणका अद्भुत गुण होता है। फोटोग्राफिक प्लेटको काले कागजसे सुरक्षित रूपमें ढँककर यूरेनियम अथवा उसके क्षारोंके पास रख देनेसे उसपर चित्र लेने-जैसा प्रभाव होता है। अगर उसके पास विद्युद्दर्शी (electro-scope) रखा हो तो उसमेंसे विद्युत्-आवेश चला जाता है। थोरियम, रेडियम और पोलोनियममें भी ऐसे ही गुण होते हैं। ऐसे पदार्थोंको रेडियो-एक्टिव (radio-active) अर्थात् रेडियधर्मी अथवा विकिरण-शील कहा जाता है। उनके परमाणुओंसे खास प्रकारकी किरणें निकलती हैं।

बैकवेरलकी खोजके बाद मादाम मेरी क्यूरीने यह खोजकी कि यूरेनियमका खनिज (पिचब्लैण्ड) शुद्ध किये हुए यूरेनियमसे भी अधिक रेडियधर्मी होता है, इसलिए उसमें कोई अज्ञात विकिरणशील तत्त्व होना चाहिए। तीन-चार साल तक अनवरत शोध-खोज करनेके बाद उन्होंने उसमेंसे जिस मूलतत्त्वको पृथक किया वह रेडियम नामसे जाना जाता है।

रेडियम—रेडियम प्राप्त करनेका साधन भी यूरेनियमका खनिज पिचब्लैण्ड ही है। उसमेंसे ३० लाख भाग यूरेनियमके अनुपातमें केवल एक भाग रेडियम निकाला जा सकता है। पहले तो बेल्जियम अधिकृत अफ्रीकाकी खानें दुनियाको यूरेनियमकी आपूर्ति करती थीं। परन्तु १९३०में कैनाडामें ग्रेट बेर लेककी प्रसिद्ध खानोंका पता चला। अमरीकाके पश्चिमी हिस्सेमें भी यूरेनियमके खनिज मिलते हैं। चेकोस्लोवाकियाके खनिजोंसे यूरेनियम बहुत कम मात्रामें प्राप्त होता है। भारतमें भी यूरेनियमके निक्षेप बिहारमें मिले हैं।

वैज्ञानिक शोध-खोजमें रेडियम बहुत ही महत्त्वपूर्ण साबित हुआ है। परमाणुके अविभाज्य और अविनाशी होनेकी पुरानी मान्यता अब खत्म हो गई है और उसके स्थान पर यह बात मानी जाने लगी है कि परमाणुकी संरचनामें इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन कण होते हैं। इतना ही नहीं, यह भी प्रमाणित हो चुका है कि इन कणोंकी संख्यामें परिवर्तन करनेसे नये मूल तत्त्वोंके परमाणु बनाये जा सकते हैं।

रेडियमके चिकित्सा-सम्बन्धी उपयोग—कैन्सर और अन्य रोगोंकी रेडियम-चिकित्सा तो प्रायः सभीको मालूम है। रेडियममेंसे क्ष-किरणोंके समान गुणोंवाली गामा किरणें उत्सर्जित होती रहती हैं उन्हीं किरणोंमें उपर्युक्त बीमारियोंको मिटानेके गुण हैं।

लेकिन शुद्ध रेडियमको निकाल पाना बहुत ही मुश्किल है। आज सारी दुनियामें केवल ५००से १००० ग्राम रेडियम होगा। रातके समय देखे जा सकनेवाले घड़ियोंके डायलोंके अंकोंमें ज़िंक सल्फेटके साथ न्यूनातिन्यून मात्रामें रेडियमका मिश्रण किया रहता है। शुद्ध रेडियमकी द्युति नीलाभ होती है। अंधेरे कमरेमें रेडियमके प्रकाशमें चीजें जगमगाने लगती हैं। रेडियमकी खोजके दौरान मादाम क्यूरीको पिचब्लैण्डमेंसे एक और रेडियधर्मी मूलतत्त्व प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपनी मातृभूमि पोलैण्डके सम्मानमें उसका नाम पोलोनियम रखा। खनिजमेंसे रेडियम निकालनेके बाद जो अंश बचा रहता है उसमेंसे ओक्टिनियम निकलता है। वह भी रेडियधर्मी होता है और उसका अपने आप रूपान्तर होता रहता है; अन्तमें वह सीसा बनकर सीसेके ही रूपमें स्थिर हो जाता है। रेडियधर्मी मूलतत्त्वोंकी खोज विज्ञानके इतिहासमें मीलके एक पत्थरकी तरह है। इससे हमारे ज्ञानमें प्रचुर वृद्धि हुई और नये क्षेत्र विकसित हुए। कई पुरानी मान्यताओं-को सांघातिक चोट लगी और बहुतसे प्रयोगसिद्ध परिणाम प्राप्त हुए।

परमाणु बम बनानेमें दो मूलतत्त्व काममें आते हैं।

(१) यूरेनियम—२३५ (U–२३५) और

(२) प्लुटोनियम—यूरेनियम–२३८को तोड़कर बनाया हुआ एक कृत्रिम मूलतत्त्व।

प्राकृत यूरेनियम U–२३८ है। यूरेनियमका यह प्रकार परमाणु बमके लिए अनुपयुक्त है। इसके अणु टूटते नहीं हैं। खानिजमें यूरेनियमका यह प्रकार (U–२३८) लगभग ९९.३ प्रतिशत होता है। परमाणु बममें टूट सकने योग्य केवल ०.७ प्रतिशत U–२३५ होता है। लेकिन मज़ेकी बात यह है कि U–२३८ पर न्युट्रॉनकी बौछार करनेसे प्लुटोनियम बनता है। प्लुटोनियम विखण्डनीय है और U–२३५के समान नाभिकीय ईंधन (nuclar fuel)के रूपमें इसका उपयोग किया जा सकता है। यूरेनियम और रेडियम परमाणुयुगकी महत्त्वपूर्ण धातुएँ हैं।

जर्मेनियम—पचास वर्ष पहले वैज्ञानिक जगत् जर्मेनियम धातुसे सर्वथा अपरिचित था; फिर सामान्य जनताको उसकी जानकारी हो ही कैसे सकती थी! १८७१में महान रूसी वैज्ञानिक मेण्डलीफने मूलतत्त्वोंकी आवर्त-सारणीके चौथे समूहमें एक नये मूलतत्त्वकी भविष्यवाणी की थी। उस समय तक वह धातु खोजी नहीं जा सकी थी, इसलिए उसका स्थान खाली था और उसका नाम 'एकिसलिकोन' रखा गया था। १८८६में आर्जिरोडाइट नामक विरल खनिज पदार्थमें-से जर्मन वैज्ञानिक सी० ए० विंकलरने इस धातुका पता लगाया और इसके सारे गुण मेण्डलीफके
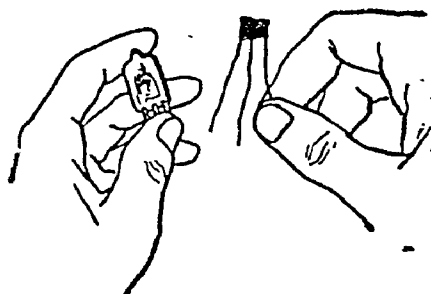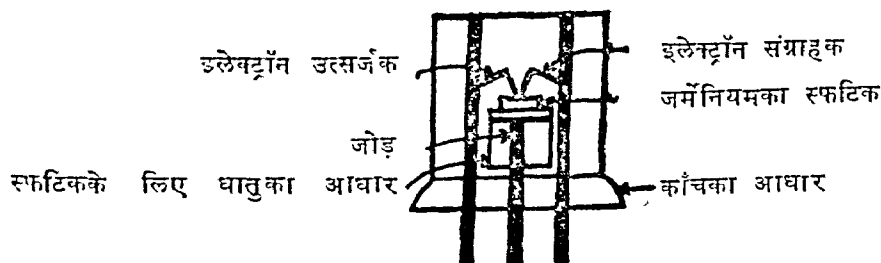
छोटे-से-छोटा वाल्व और ट्रांजिस्टर

'एकिसलिकोन'से मिलते थे। इस धातुका नाम जर्मेनियम (जर्मनीके सम्मानमें) रखा गया। अभी तक ऐसा कोई खनिज नहीं मिला है जिसमें जर्मेनियम धातु प्रचुर मात्रामें रहती हो। विविध खनिजोंमें उसका अस्तित्व थोड़े-थोड़े अनुपातमें रहता है। कोयलेकी गैस बनानेवाले कारखानोंकी चिमनियोंके धुएँमेंसे इस धातुको निकाला जाता है। जर्मेनियम धातुकी मात्रामें

वृद्धि होने तक धुएँको संघनित किया जाता है। फिर जर्मेनियमको उसके क्लोराइडके रूपमें पृथक् कर उसका पानीके द्वारा विच्छेदन करनेसे जर्मेनियम डाइआक्साइड वनती है; इसे हाइड्रोजन गैसमें गर्म करनेसे जर्मेनियम धातु निकल आती है।

धातुएँ सामान्यतः विद्युत्-सुसंवाहक होती हैं। परन्तु जर्मेनियम इस मामलेमें अद्वितीय है। वह विद्युत्का अर्ध-संवाहक (semi conductor) है। इस अद्वितीय गुणके कारण उसके कई व्यावहारिक उपयोग निकल आए हैं। उदाहरणार्थ, विद्युत्की उच्च वोल्टताको धारण कर सकने वाले एकदिशकारियों (rectifiers) और विद्युत्के प्रवाहको उच्च शक्ति सम्पन्न करने वाले त्रयग्र (triode) वाल्वोंके निर्माणमें इसका उपयोग किया जाता है। ट्रांज़िस्टर रेडियोमें प्रयुक्त होनेवाले ट्रांज़िस्टर्स मुख्यतः जर्मेनियमके ही वनाये जाते हैं। इन महत्त्वपूर्ण उपयोगोंके अतिरिक्त जर्मेनियमका इस्तेमाल दाँतके चौखटे वनानेमें भी किया जाता है। यों इस विरल धातुने वर्तमान युगमें अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

लोहा और इस्पात

हम लोग लोहयुगमें जी रहे हैं। विश्वकी समस्त धातुओंमें लोहेका अंश ९० प्रतिशत है। आज किसी भी देशकी प्रगतिका मापदण्ड उसका इस्पातका उत्पादन है। लोहेका मुख्य खनिज
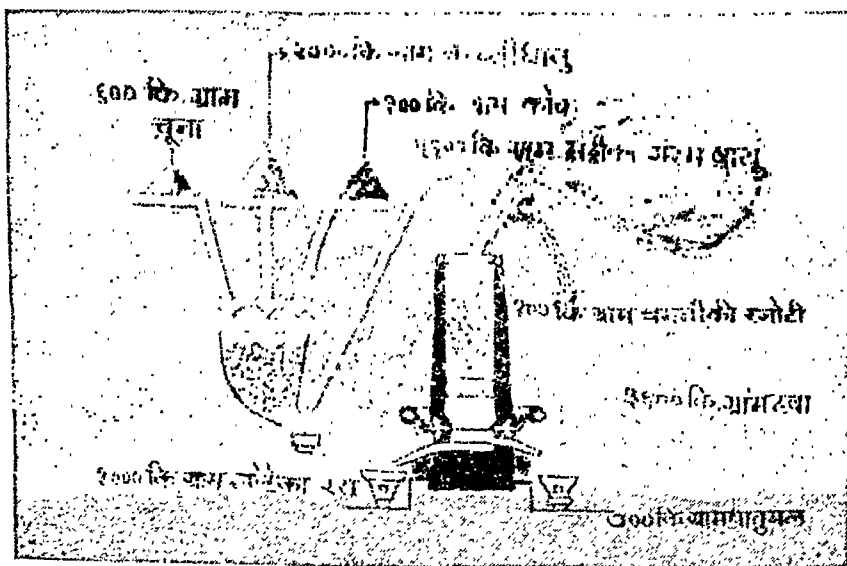
१००० किलोग्राम 'पिग आयर्न'में प्रयुक्त होनेवाला कच्चा माल

हेमेटाइट (Fe_2O_3) है; यदि शुद्ध हुआ तो उसमें ७० प्रतिशत लोहा होता है। जल संयुक्त हेमेटाइटको लिमोनाइट कहते हैं। शुद्ध लिमोनाइटमें ६० प्रतिशत लोहा रहता है। मैग्नेटाइट

और सिडेराइट भी लोहेके खनिज हैं, परन्तु मैग्नेटाइट (Fe_3O_4) काफी मात्रामें उपलब्ध नहीं होता और सिडेराइट ($FeCO_3$) खनिजमें लोहेका अनुपात बहुत कम होनेसे उसका विशेष उपयोग नही किया जाता। लोहेके खनिजोंमें पाये जानेवाले सामान्य अपद्रव्य बालू, टिटेनियम, फास्फोरस, गन्धक आदि है। जिस खनिजमें ये अपद्रव्य जितने ही कम होंगे वह उतना ही अच्छा और कीमती समझा जाता है। स्वीडनमें मिलनेवाले लोह खनिजमें फॉस्फोरस और गन्धक लगभग होता ही नहीं; इसलिए वहाँका लोहा और इस्पात बहुत उच्चकोटिके समझे जाते है और इसीलिए उनकी इतनी माँग और प्रतिष्ठा है। अमरीकाके लेक सुपीरियर जिलेमें प्राप्त लोह खनिजोंमें ६८ प्रतिशत लोहा होता है। हेमेटाइटमें लोहा अपने आक्साइडके रूपमें होता है। लोहेको आक्सिजनसे पृथक् करनेके लिए कोयलेको उसके खनिजके साथ मिलाकर काफी ऊँचे तापमान पर गर्म किया जाता था। इस क्रियाके मूल आविष्कारकका आज तक पता नही चल पाया। अब तो बड़े पैमाने पर लोहेका शोधन हेमेटाइटको कोयलेके साथ मिलाकर धमन या वात भट्ठी (blast furnace) में किया जाता है।

धमन भट्ठी बहुत (१०० फुट या इससे भी अधिक) ऊँची होती है और उसके अन्दरका हिस्सा लगभग अण्डाकार होता है। उच्चतापके कारण भट्ठीको कोई हानि न पहुँचे इसलिए उसके निर्माणमें अग्निरोधक ईंटोंका उपयोग किया जाता है। भट्ठीमें आग जलानेके बाद जब भट्ठी गर्म हो जाती है तो उसमें ऊपरसे हेमेटाइट, खनिज कोयला (कोक) और चूना पत्थर (calcium carbonate) के मिश्रणका भरण (charge) किया जाता है और नीचेसे पंपोंके द्वारा गरम हवाके झोंके (blasts) अन्दर भेजे जाते हैं। इससे अन्दरका ताप बहुत ऊँचा हो जाता है; कोक जलने लगता है और कोकके लाल अंगारोंकी उपस्थितिके कारण कार्बन मोनोआक्साइड ($CO_2+C=2CO$) बनती है।

तप्त भरणके ढेरेमेंसे होकर यह गैस ऊपर आती है और इसके अपचायक (अवकारक reducing agent) होनेके कारण खनिजका आक्सिजनसे संयोग होकर लोहा पृथक् हो जाता है। भट्ठीकी तेज गर्मीमे लोहा पिघल जाता है और भट्ठीके तलमें इकट्ठा होता है। साथ ही चूना पत्थरसे बना चूना ($CaCO_3=CaO+CO_2$) खनिजमें मिले हुए बालू आदि अन्य अपद्रव्योंसे संयोजित होकर काँच-जैसे पदार्थकी तरह दिखाई देनेवाले धातुमल (slag) को अलग कर देता है। यह धातुमल भी भट्ठीके तलमें इकट्ठा होता है, मगर पिघले हुए लोहेसे हलका होनेके कारण लोहेके द्रव पर तैरता रहता है और समय-समय पर मलछिद्रोंसे बाहर निकाल दिया जाता है। पिघले हुए लोहेको साँचोमे भरा जाता है। ठण्डा होकर वह जम जाता है (संघनित हो जाता है) और 'पिग आयर्न' या कच्चा लोहा बनता है। इसमें २·२से ४·५ प्रतिशत तक कार्बनके अतिरिक्त सिलिकोन, मैंगेनीज, सल्फर और फॉस्फोरस रहता है। धातुमल (slag) का उपयोग पोर्टलैण्ड सीमेण्ट बनानेमें किया जाता है। पोर्टलैण्ड सीमेण्ट वस्तुतः कैल्सियम सिलिकेट और कैल्सियम एल्युमिनेटका मिश्रण है। भट्ठीके शीर्षभाग (charging arrangement) से प्रचुर मात्रामें कार्बन मोनोआक्साइड गैस निकलती है; जिसका उपयोग हवाके झोकों (blast) को गर्म करनेमें और इंजिनोंको चलानेके लिए ईंधनकी तरह किया जाता है।

उद्योगोंमें कभी विशुद्ध लोहेका उपयोग नहीं किया जाता, उसमें हमेशा अन्य पदार्थ न्यूनाधिक मात्रामें मिले होते हैं।

लोहेके तीन मुख्य प्रकार हैं:

(१) ढलवाँ (या बीड़का) लोहा (cast iron);

(२) पिटवाँ लोहा (wrought iron); और

(३) इस्पात—गजवल्ली-कान्तिसार फौलाद (steel)

धमन भट्ठीमें जो 'पिग आयर्न' या कच्चा लोहा बनता है वह वस्तुतः ढलवाँ अथवा बीड़का लोहा है। उसमें २·५ प्रतिशत कार्बन ग्रेफाइटके रूपमें रहता है। 'पिग आयर्न'को फिर गलाकर उसमें कार्बन, सिलिकोन और फास्फोरसका अनुपात इस तरह कर दिया जाता है कि जिस कामके लिए उपयोगमें लाना हो वह उसके उपयुक्त हो जाए। इस लोहेके रस (द्रव)से ढलाई करके बरसातके पानीकी निकासी करनेवाले नलके (pipe), स्टोव आदि बनाये जा सकते हैं। यह लोहा कठोर परन्तु भंगुर किस्मका होता है।

इस्पात बनानेकी बेसेमर विधि

धुरी पर झुके हुए परिवर्तित्रमेंसे कोठीमें द्रव इस्पात उँडेला जा रहा है।
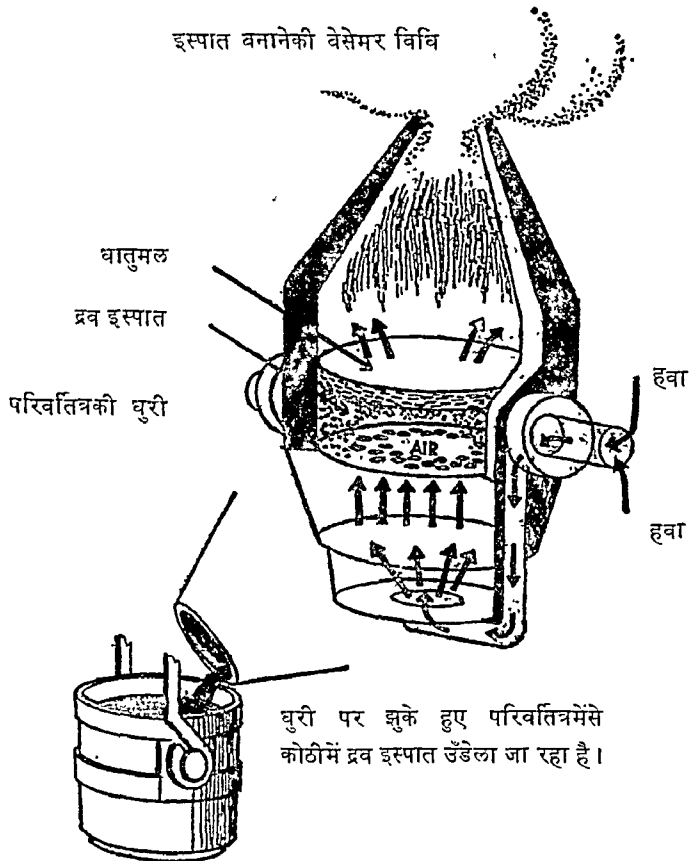
साधारण 'कास्ट आयर्न' पर मन्द हाइड्रोक्लोरिक और सल्फ्युरिक अम्लोंकी क्रिया शीघ्रतासे होती है। १२-१९ प्रतिशत सिलिकोनवाला कास्ट आयर्न अम्लसह (acid proof) होता है, इसलिए उसमें सिलिकोनकी मात्रा बढ़ाकर उसे अम्लसह बनाया जाता है। 'तान्तीरन', 'ड्युरीन', 'आयर्न द', 'नर्की' आदि नामोंसे प्रख्यात लोहेकी जातियोंमें सल्फ्युरिक अम्लका वाष्पायन करनेके लिए विशिष्ट प्रकारके बरतन बनानेके काम आती हैं। लेकिन इन जातियोंका लोहा अत्यधिक भंगुर होता है।

उद्योगमें काम आनेवाले लोहेकी विभिन्न जातियोंमें पिटवाँ लोहा सर्वाधिक शुद्ध होता है। पिग आयर्नको हेमेटाइटके साथ मिलाकर उस मिश्रणको भट्ठीमें तपानेसे पिटवाँ लोहा (wrought iron) बनता है। हेमेटाइट कार्बन, सिलिकोन और फास्फोरस तथा सल्फरका आक्सीकरण (अपचयन) करता है। पिटवाँ लोहा मृदु और तन्तुमय गठनवाला होनेके साथ-साथ कठोर भी होता है और उसे आसानीसे गढ़ा भी जा सकता है। लोह खनिजमें फॉस्फोरसकी उपस्थिति होनेकी दशामें भट्ठीमें मैग्नेसाइट ($MgO+CaO$)का अस्तर लगाना पड़ता है जिससे फॉस्फोरसका आक्सीकरण होकर फास्फेट बनता और समाक्षारीय धातुमल (basic slag) प्राप्त होता है। यह धातुमल कृषिमें खादके रूपमें काम आता है।

ऊपर बताई गई लोहेकी दोनों जातियोंकी अपेक्षा इस्पात (steel) अधिक मजबूत होता है। उसे उच्च तापमान पर गर्म करके पानी या तेलमें बुझाकर 'पानी चढ़ाया' (tempering) जाता है। इस्पात पर चढ़ाया हुआ 'पानी' उसकी गठन पर नहीं अपितु उसे गर्म किये जाने वाले ताप और बुझान-पर (ठण्डा किये जानेकी रफ्तार) पर निर्भर करता है।

उस्तरोंकी ब्लेडें बनानेके लिए उसे २३०° से० तक गर्म करना पड़ता है। इस ताप पर इस्पातका रंग घासके जैसा साधारण पीला हो जाता है। २५५° से० ताप पर उसका रंग भूरा-पीला हो जाता है। इस तरहका इस्पात चाकू, छुरियाँ और यंत्रोंकी धुरियाँ बनानेके काम आता है। इस्पातको २७७° से० ताप पर गर्म करके कर्तनोपकरण (कटलरी सामान) बनाये जाते हैं। घड़ियोंकी कमानियाँ और उच्चकोटिकी तलवारें बनानेमें काम आनेवाला इस्पात चमकीले नीले रंगका होता है। बढ़ईके औजार बनानेके लिए तो उसे और भी उच्चताप (२९०°-से ३१६° से० तक) पर 'पानी' चढ़ानेकी जरूरत होती है। उद्योगोंके लिए कई प्रकारका इस्पात बनाया जाता है; लेकिन वे सब लोहे और कार्बनकी मिश्र धातुएँ होती हैं; उनमें कार्बनका अनुपात ०.१से ०.२ प्रतिशत और वह भी सिमेण्टाइट (Fe_3C) यौगिकके रूपमें रहता है।

प्राचीनकालमें लोहेको कोयलेके अंगारों पर गर्म करके और पीट-पीटकर इस्पात बनाया जाता था। बड़े पैमाने पर इस्पात बनानेकी दो विभिन्न विधियाँ १८५५में हेनरी बेसेमर और १८६४में सिमेन्स एवं पार्करने विकसित कीं, जो क्रमशः बेसेमर और खुली चुल्ली भट्ठी (open hearth) विधियोंके नामसे जानी जाती हैं। आजकल सर्वत्र बेसेमर विधिका ही उपयोग होता है।

बेसेमर विधिमें खास प्रकारकी कोठी या नाशपातीके आकारके एक पात्रका उपयोग किया जाता है, जिसे बेसेमर परिवर्तित्र कहते हैं। उसमें धमन भट्ठीमें पिघला हुआ द्रव लोहा भरा जाता है और फिर उसमें यांत्रिक धौंकनीसे हवाके जोरदार झोंके प्रवाहित किये जाते हैं। खुली चुल्ली

भट्ठीमें द्रव लोहेमें कच्चा हेमेटाइट मिलाया जाता है। गर्म हवाके प्रभावसे द्रव लोहेमें विद्यमान अतिरिक्त कार्बन जल जाता है और गन्धक तथा फास्फोरस जैसे अपद्रव्योंका आक्सीकरण

इस्पात बनानेकी खुली भट्ठी
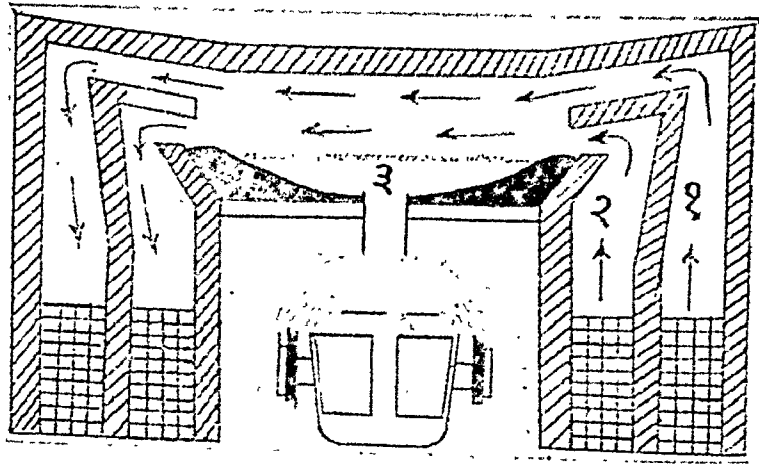
होकर ये धातुमल बनते तथा उच्चकोटिका इस्पात प्राप्त होता है। उच्चकोटिका इस्पात बनानेके लिए उसे शून्यावकाशमें भट्ठीमें गलाया जाता है। इससे सामान्य विधिसे बनाये जाने वाले इस्पातमें जो गैसें रह जाती हैं वे निकल जाती हैं और साथ ही कई अशुद्धियाँ भी दूर हो जाती हैं।

लोहेमें अन्य पदार्थोंको मिलाकर जो इस्पात तैयार किया जाता है उसके गुणोंमें होनेवाले परिवर्तनोंके प्रभावके बारेमें धातु-कोविदोंने काफी अनुसन्धान करके मानव जातिकी सेवामें विशिष्ट गुणोंवाले कई नये-नये इस्पात प्रस्तुत किये हैं। इस्पातमें क्रोमियम मिलानेसे उसकी कठोरतामें वृद्धि होती है। इस्पातमें दो प्रतिशत क्रोमियम मिलानेसे क्रोमस्टील बनता है। इसका उपयोग इस्पातके टायर, कठोरीकृत छर्रे (बाल बेयरिंग), रेतियाँ, पत्थर फोड़नेकी मशीनें, कवच जैसी अनेक वस्तुएँ बनानेमें किया जाता है। क्रोमस्टीलमें थोड़ा-सा निकल मिला देनेसे उसकी स्थिति स्थापकतामें वृद्धि होती है।

निष्कलंक अथवा निष्कलुप (stainless) इस्पातमें १२से १५ प्रतिशत क्रोमियम रहता है। इससे उसकी चमक बनी रहती और जंग नहीं लगता। १८ प्रतिशत क्रोमियम और लगभग ८ प्रतिशत निकलकी मिलावटवाला इस्पात 'स्टेब्राइट' कहलाता है। उसपर समुद्री जलका संक्षारक प्रभाव नहीं होता। वह अम्लसह भी होता है। रसायनोंका उत्पादन करनेवाले उद्योगों एवं घरेलू उपयोगके लिए बनाई जानेवाली वस्तुओंमें इसका खूब इस्तेमाल होता है। निष्कलंक इस्पातकी एक जाति ४४६के नामसे जानी जाती है; उसमें एक प्रतिशत इट्रियम होता है। १३५०° से०के बराबर उच्चताप पर भी ४४६ निष्कलंक इस्पात पर आक्सीजनका असर नहीं होता और उसे पीटकर पतरे बनाये जा सकते हैं।

१. वैगनमें कच्ची धातु खाली करता हुआ ऊँटड़ा (क्रेन)। २. कच्ची धातु रखनेका अहाता। ३. कच्ची धातुको ले जानेवाला ट्रान्सपोर्टर। ४. कच्ची धातु, कोक, चूना रखनेका अहाता। ५. कोक, कच्ची धातु, चूनाभरी कोठियाँ (पात्र)। ६. कोक भट्ठीमें कोककी कोठी ले जारही ट्राली। ७. आठ नम्बरकी ट्रालीमें माल खाली करती हुई कोठी। ८. तोला हुआ माल ले जारही ट्राली। ९. मालको ऊपर ले जानेवाले यांत्रिक उपकरणोंका कक्ष। १०. कोक, चूना और कच्ची धातुओंकी ट्रालीको खींचनेवाले रस्से। ११. ट्रालीमेंसे माल भरी हुई कोठी भट्ठीके मुंहके पास। १२. ट्रालीको संतुलित रखनेवाला सन्तुलक। १३. ट्रालीमेंसे लटकाया हुआ घंटाकार ढक्कन। १४. घंटाकार ढक्कनसे होती हुई कोठी भट्ठीके अन्दर प्रवेश करती है। १५. उसके जोरसे भट्ठीका ढक्कन नीचे ढकेला जाता है और कोठीका माल भट्ठीमें भरा जाता है। १६. मालका भरण होनेके वाद भट्ठीका ढक्कन यथावत करनेवाला लीवर। १७. मालका भरण होनेके वाद ऊपर आनेवाली गैसोंमें आर्द्रता ऑर कार्वन डाइआक्साइड खिंच आती हैं। १८. कच्ची धातुमेंसे आक्सीजन विलग होती है; लोहा कार्वनका अवशोषण करता है। १९. विगलित द्रव लोह निथरता है; धातुमल उसके ऊपर तैरता है। २०. धातुमल भट्ठीके वाहर खाली होता है। २१. धातुमलको द्रवलोहमें मिलनेसे रोकनेवाली युक्ति। २२. कोठीमें खाली होता हुआ द्रवलोह। २३. खाली होता हुआ धातुमल। २४. कोठीमेंसे द्रवलोह साँचेमें उँड़ेला जाता है। २५. साँचेके यन्त्रका वाहक-पट्टा, जो भरे हुए साँचेको ले जाता है और भरे जानेवाले खाली साँचेको वहाँ ले आता है। २६. साँचे-में ढले हुए लोहेके इनगाट (ingot) वाहर आते हैं। २७. गर्म द्रवलोहको इस्पात वनानेवाले परिवर्तित्रमें ले जानेवाली ट्राली। २८. धमन भट्ठीके शीर्षसे निकलनेवाली गैसोंका वहन करने-वाली नली। २९-३०. गरम गैसोंमेंसे महीन रेणुका अवशोषण करनेवाले यन्त्र। ३१-३२-३३-३४. गैस यान्त्रिक रीतिसे घुलकर शुद्ध होती है। ३५. गैस भरी जानेवाली टंकी। ३६. गैस ले जानेवाली नली। ३७. गैस द्वारा चलनेवाला वाष्पित्र (stern boiler)। ३८. वाष्पित्रकी भापसे चलनेवाली टरवाइन। ३९. टरवाइनसे विद्युतका उत्पादन करनेवाला संयंत्र। ४०. टरवाइन द्वारा भट्ठीमें फूंकी जाती हवा। ४१. काउपर स्टोवमें हवाको गर्म करनेके लिए जानेवाली नलियाँ। ४२. काउपर स्टोवमें जानेवाली गर्म गैसें। ४३. ब्लास्ट स्टोवमें गरम होनेवाली हवा। ४४. गैसोंसे गर्म हो रहा काउपर स्टोव। म्यू-चिमनीमें गैसोंको वहा ले जानेवाली नली। ४६. हवाको गर्म होने पर धमन भट्ठीमें ले जानेवाली मुख्य नली। ४७. धमन भट्ठीमें खुलनेवाले मुख्य नलीके दहाने।

इस्पातमें निकल मिलानेसे उसकी कठोरता और स्थिति स्थापकतामें वृद्धि होती है; इसलिए निकल मिश्रित इस्पात कवच, नोदकघुरीदण्ड (propeller shaft) आदि बनानेके काम आता है। निकलकी मात्रा बढ़ा देनेसे विशिष्ट गुणोंवाला अत्यन्त उपयोगी इस्पात तैयार होता है। ३६ प्रतिशत निकल और केवल ०.२–०.५ प्रतिशत कार्बनवाला इस्पात 'इन्वार' कहलाता है। इसका ऊष्मा प्रसरणांक बहुत न्यून होनेसे यह मापक उपकरण, सर्वेक्षरकी पट्टी, वैज्ञानिक प्रयोगोंमें काम आनेवाले परिशुद्ध उपकरण, घड़ियोंके लोलक आदि बनानेके काममें लिया जाता है। इस्पातकी एक ऐसी ही अन्य मिश्र धातु 'ऐलिन्वार' घड़ियोंकी कमानियाँ बनानेके काम आती है। ४६ प्रतिशत निकलवाले इस्पात 'प्लैटिनाइट' और काँचका प्रसरणांक एक समान होनेके कारण बिजलीके उपकरणोंमें काँचके साथ उसके तारको जोड़कर मुहर किया जा सकता है। ५३.८ प्रतिशत लोहा, ८९ प्रतिशत निकल, १७ प्रतिशत कोबाल्ट और ०.२ प्रतिशत मैंगेनीज़ वाली मिश्र धातुका प्रसरणांक नहींके बराबर अर्थात् ४×१०^{-६} होता है।

सभी प्रकारके इस्पातमें अल्पमात्रामें मैंगेनीज़ रहता है। लेकिन यदि उसका अनुपात ९.१४ प्रतिशत कर दिया जाए तो वह इस्पात अत्यन्त कठोर और मजबूत हो जाता है। इसका उपयोग रेलकी पटरियोंकी सन्धि (cross over), न टूटनेवाली चोर-प्रूफ तिजौरियों और सैनिकोंके शिरस्त्राण बनानेमें किया जाता है। यह इस्पात चुम्बकीय गुणविहीन (निश्चुम्बकीय) होता है।

क्रोमस्टीलमें टंगस्टन अथवा मालिब्डीनमकी मिलावट करनेसे जो मिश्र धातु बनती है। वह तपाकर लाल कर दिये जाने पर भी अपनी कठोरताको सुरक्षित रखती है। इस जातिके इस्पातका उपयोग अभियांत्रिक कामोंमें किया जाता है।

लोहेकी आर्द्रता अथवा आर्द्रहवामें रखनेसे उसका आक्सिकरण होता है, जिसे बोलचालकी भाषामें 'ज़ंग' अथवा 'मोरचा' लगना कहते हैं। ज़ंग लगनेसे बचानेके लिए लोहेको रंग दिया जाता है। इसके अलावा उसे जस्तीकृत (galvanised) अथवा कलईकृत (tinplating) करके भी जंग लगनेसे बचाया जाता है। लोहे और इस्पातके संक्षारणका विषय धातुकीमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

लोहेको जस्तीकृत करनेके लिए जस्तेकी आवश्यकता होती है। लेकिन हमारे देशमें जस्ते-की बड़ी कमी है, इसलिए जमशेदपुरकी राष्ट्रीय धातुकर्मक रसायनशाला (National Metallurgical Labortory) ने जस्तेके स्थान पर एल्युमिनियमका उपयोग करके 'एल्युमिनिकृत (aluminized) लोहा' तैयार किया जाता है, जो बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ है। आर्द्र हवामें लोहा ज़ंग खाकर संक्षारित होता है जिससे उसकी सतह पर ललछोंहा भूरा पदार्थ पपड़ीके रूपमें जम जाता है; इस पदार्थमें मुख्यरूपसे जलयुक्त फेरिक आक्साइड रहता है।

लोहे और अन्य धातुओंके संक्षारणकी प्रक्रियाको जानने-समझनेके लिए कई अनुसन्धान किये गए और आज भी किये जा रहे हैं। संक्षारण धातुकी जाति, उसकी विशुद्धता और अन्य बातों पर निर्भर है। संक्षारणके लिए आर्द्रताका होना आवश्यक माना जाता है। कुछ अनुसन्धानकर्ता कार्बन डाइआक्साइड गैसकी उपस्थितिको भी आवश्यक मानते हैं। ताज़ा लगी हुई ज़ंगमें फेरस

भारतमें ब्रिटिश राज्यके आगमनके समय
लोहेकी भट्ठी—सलेम (तमिलनाडु)
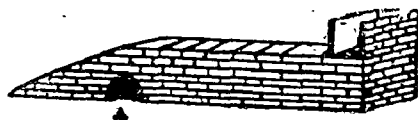
सौराष्ट्र (तत्कालीन काठियावाड़) में
स्थानीय लोह-उद्योग

इस्पातमें निकल मिलानेसे उसकी कठोरता और स्थिति स्थापकतामें वृद्धि होती है; इसलिए निकल मिश्रित इस्पात कवच, नोदकधुरीदण्ड (propeller shath) आदि बनानेके काम आता है। निकलकी मात्रा बढ़ा देनेसे विशिष्ट गुणोंवाला अत्यन्त उपयोगी इस्पात तैयार होता है। ३६ प्रतिशत निकल और केवल ०·२–०·५ प्रतिशत कार्बनवाला इस्पात 'इन्वार' कहलाता है। इसका ऊष्मा प्रसरणांक बहुत न्यून होनेसे यह मापक उपकरण, सर्वेक्षरकी पट्टी, वैज्ञानिक प्रयोगोंमें काम आनेवाले परिशुद्ध उपकरण, घड़ियोंके लोलक आदि बनानेके काममें लिया जाता है। इस्पातकी एक ऐसी ही अन्य मिश्र धातु 'ऐलिन्वार' घड़ियोंकी कमानियाँ बनानेके काम आती है। ४६ प्रतिशत निकलवाले इस्पात 'प्लैटिनाइट' और काँचका प्रसरणांक एक समान होनेके कारण बिजलीके उपकरणोंमें काँचके साथ उसके तारको जोड़कर मुहर किया जा सकता है। ५३·८ प्रतिशत लोहा, ८९ प्रतिशत निकल, १७ प्रतिशत कोबाल्ट और ०·२ प्रतिशत मैंगेनीज वाली मिश्र धातुका प्रसरणांक नहींके बराबर अर्थात् ४×१०^{-८} होता है।

सभी प्रकारके इस्पातमें अल्पमात्रामें मैंगेनीज रहता है। लेकिन यदि उसका अनुपात ९·१४ प्रतिशत कर दिया जाए तो वह इस्पात अत्यन्त कठोर और मजबूत हो जाता है। इसका उपयोग रेलकी पटरियोंकी सन्धि (cross over), न टूटनेवाली चोर-प्रूफ तिजौरियों और सैनिकोंके शिरस्त्राण बनानेमें किया जाता है। यह इस्पात चुम्बकीय गुणविहीन (निश्चुम्बकीय) होता है।

क्रोमस्टीलमें टंगस्टन अथवा मालिब्डीनमकी मिलावट करनेसे जो मिश्र धातु बनती है। वह तपाकर लाल कर दिये जाने पर भी अपनी कठोरताको सुरक्षित रखती है। इस जातिके इस्पातका उपयोग अभियांत्रिक कामोंमें किया जाता है।

लोहेकी आर्द्रता अथवा आर्द्रहवामें रखनेसे उसका आक्सिकरण होता है, जिसे बोलचालकी भाषामें 'जंग' अथवा 'मोरचा' लगना कहते हैं। जंग लगनेसे बचानेके लिए लोहेको रंग दिया जाता है। इसके अलावा उसे जस्तीकृत (galvanised) अथवा कलईकृत (tinplating) करके भी जंग लगनेसे बचाया जाता है। लोहे और इस्पातके संक्षारणका विषय धातुकीमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

लोहेको जस्तीकृत करनेके लिए जस्तेकी आवश्यकता होती है। लेकिन हमारे देशमें जस्तेकी बड़ी कमी है, इसलिए जमशेदपुरकी राष्ट्रीय धातुकर्मक रसायनशाला (National Metallurgical Labortory) ने जस्तेके स्थान पर एल्युमिनियमका उपयोग करके 'एल्युमिनिकृत (aluminized) लोहा' तैयार किया जाता है, जो बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ है। आर्द्र हवामें लोहा जंग खाकर संक्षारित होता है जिससे उसकी सतह पर ललछौंहा भूरा पदार्थ पपड़ीके रूपमें जम जाता है; इस पदार्थमें मुख्यरूपसे जलयुक्त फेरिक आक्साइड रहता है।

लोहे और अन्य धातुओंके संक्षारणकी प्रक्रियाको जानने-समझनेके लिए कई अनुसन्धान किये गए और आज भी किये जा रहे हैं। संक्षारण धातुकी जाति, उसकी विशुद्धता और अन्य बातों पर निर्भर है। संक्षारणके लिए आर्द्रताका होना आवश्यक माना जाता है। कुछ अनुसन्धानकर्ता कार्बन डाइआक्साइड गैसकी उपस्थितिको भी आवश्यक मानते हैं। ताजा लगी हुई जंगमें फेरस

हाइड्रोआक्साइड और डाइआक्साइड कार्बोनेटका होना पाया गया है, इससे पता चलता है कि संक्षारणकी आरम्भिक अवस्थामें ये यौगिक बनते होंगे।

१८६७ ई०में क्रैस काल्वर्ट और १८८८ ई०में ब्राउनने निम्न समीकरण लोहेकी जंगके बारेमें बनाये थे :

Fe	$+H_2O$	$+CO_2$	$= FeCO_3$	$+H_2$
लोहा	आर्द्रता	कार्बन डाइआक्साइड	फेरस कार्बोनेट	हाइड्रोजन

$$4FeCO_3 + 6H_2O + O_2 = 4Fe(OH)_3 + 4CO_2$$
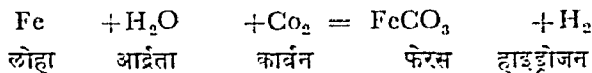
फेरिक हाइड्रो आक्साइड

१९०६ ई०में मूडीने यह प्रतिपादित किया कि हवा और आर्द्रताके अभावमें लोहेको ज़ंग नहीं लगता। पहले कार्बन डाइआक्साइडकी उपस्थितिमें लोहेसे फेरस बाइकार्बोनेट बनता है, जिसका आक्सीकरण होनेसे कार्बन डाइआक्साइड बनता है। पानीको उबालकर उसमें पिघला हुआ कार्बन डाइआक्साइड और आक्सीजन पारित किया जाए अथवा पानीमें अल्कलीकी मिलावटसे फेरिक हाइड्रो आक्साइड दूर होता है और उसकी विलेयता भी घटती है। परिणामस्वरूप लोहे पर ज़ंग लगनेकी क्रियाका अवरोधन होता है।

१९१० ई०में लेम्बर्टने यह पता लगाया कि आसुत (distilled) जलमें लोहेको ज़ंग नहीं लगता। बेनार्डके सिद्धान्तके अनुसार ज़ंग लगना या संक्षारण वैद्युत् रासायनिक क्रिया है।

नीलाथूथाके विलयनमें लोहेकी सलाखोंको रखनेसे लोहेका सल्फेट बनता है। ताँबेकी बहुत महीन रज निकलती है, जिसे अवक्षेपण कहते हैं। परन्तु कई बार लोहा अक्रियाशील भी हो जाता है और वह ताँबेका अवक्षेपण नहीं कर सकता। लोहेको धुएँदार नाइट्रिक अम्ल, क्लोरिक अम्ल, क्रोमिक अम्ल अथवा हाइड्रोजन पेरोक्साइडमें डुबानेसे उसकी क्रियाशीलताका निवारण होता और वह अक्रियाशील हो जाता है। अर्थात् तनु अम्लके विलयनमें वह अविलेय रहता है और इसलिए तनु अम्लमेंसे हाइड्रोजन निकल नहीं पाता; और नीलाथूथाके विलयनमेंसे ताँबेका अवक्षेपण नहीं होता। इस घटनाको लोहेकी अक्रियाशीलता कहा जाता है।

१९३७ ई०में पेरीअर और हमीलीओ सेग्रेने मालिब्डिनम धातुपर साइक्लोट्रोनमें न्यूट्रोनकी बौछार कर परिवर्जन किया और एक नया मूलतत्त्व बनाया। इस कृत्रिम मूलतत्त्वको, बनानेकी विधि (टेकनिक)के उपलक्ष्यमें, टेकनिशियम नाम दिया गया। अभिक्रियक (reactor) में यूरेनियमका विखण्डन करने पर उसके कूड़ेमेंसे भी ६ प्रतिशतके लगभग टेकनिशियम प्राप्त होता है। इस कृत्रिम मूलतत्त्वमें दो विशिष्ट गुण होते हैं : एक तो यह संक्षारणको रोकनेवाला प्रबल कारक है और दूसरे रेडिय-धर्मी यानी विकिरणशील भी है।

संक्षारणका अवरोधन दो तरहसे किया जा सकता है—एक तो धातु और उसके चारों ओरके वातावरणके साथ होनेवाली रासायनिक क्रियाको रोककर; उदाहरणके लिए एल्युमिनियम अपनी ही सतह पर रन्ध्रहीन पटल या झिल्ली बनाकर संक्षारणका अवरोधन करता है। कुछ कृत्रिम संक्षारण-अवरोधक भी इसी प्रकारका काम करते हैं। दूसरी विधि है धातुकी सतहको रासायनिक ढंगसे बदलकर उसे अक्रियाशील कर देना; उदाहरणार्थ पोटेसियम डाइक्रोमेटके विलियनमें लोहा जबतक

रहेगा उसे जंग नहीं लगेगी। पता चला है कि टेकनिशियम भी यही काम करता है। उसके क्षार पर टेक्नेटके विलयनमें रखनेसे लोहेको जंग नहीं लगता। र्‍हेनियम भी टेकनिशियमके ही जैसा है, परन्तु रेडियवर्मी न होनेके कारण वह संक्षारक-अवरोधनकी क्रिया नहीं करता।

हमारे देशमें श्री जमशेदजी नसरवानजी ताताने ताता आयर्न एण्ड स्टील कम्पनी १९११-१२में स्थापित कर लोह-उद्योगकी नीव रखी। यह कारखाना बिहार राज्यके अन्तर्गत जमशेदपुर नामक स्थान पर है। १९२२में इंडियन आयर्न एण्ड स्टील कम्पनी, १९३३में मैसूरमें भद्रावतीका लोहेका कारखाना, १९३६में इण्डियन आयर्न और वंगाल आयर्नका संयुक्त कारखाना—ये सब हमारे देशके लोह उद्योगकी प्रगतिके आधुनिक सीमाचिन्ह हैं। स्वतंत्र होनेके बादके कालमें पंचवर्षीय योजनाओंके अन्तर्गत रूरकेला, दुर्गापुर और भिलाईके कारखानोंका निर्माण हुआ है, जो विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।

लोहेतर धातुएँ

लोहेतर धातुओंका अर्थ तो होता है लोहेके अतिरिक्त शेष सभी धातुएँ, परन्तु सामान्यतः ताँबा, एल्युमीनियम, सीसा, जस्ता, राँगा, निकल और मैग्नेशियम धातुओं तथा इनके विविध मिश्रणोंसे बनाई हुई मिश्रधातुओंको ही लोहेतर धातु कहा जाता है।

ताँबा—सबसे पहले ताँबे को लें। प्राचीन कालसे मनुष्य इसका उपयोग करता आ रहा है। एक जमाना था जब राजस्थानकी (खेतड़ी) भरी-पूरी खानोंसे खूब ताँबा निकाला जाता था। लेकिन आज तो विदेशोंसे आपातित ताँबा प्रचुर मात्रामें इस्तेमाल किया जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षोंसे बिहारका इण्डियन कापर कारपोरेशन काफी सफलतासे ताँबा बना रहा है। ईसा पूर्व १००० से ५०० तकके ब्राह्मण ग्रन्थोंमें ताँबेका वर्णन 'लोहित धातु'के नामसे किया गया है। अथर्ववेदमें 'ताँबेकी छुरी'का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः ताँबेकी छुरीका उपयोग यज्ञमें किया जाता रहा होगा। ताँबेके खनिजोंका वर्णन करते हुए उन्हें वजनमें भारी, रंगमें लाल, हरे या मटमैले बताया गया है। पुरातनकालका यह वर्णन ताँबेके आधुनिक खनिज मेलेचाइट, पाइराइटीज और रेड कॉपर पर अक्षरशः लागू होता है।

ताँबेके खनिज—क्यू प्राइट (कॉपर आक्साइड) और मेलेचाइट (कॉपर कार्बोनेट)को कोयलेके साथ तपानेसे ताँबे को पृथक् किया जा सकता है। लेकिन इन खनिजोंका उपयोग सीमित है। क्योंकि ताँबा गंधकसे बड़ी जल्दी और सरलतासे संयोग करता है इसलिए प्रकृतिमें गन्धकित (सल्फाइड) ताम्रखनिज प्रचुर मात्रामें मिलते हैं और ताँबेका निस्सारण करनेके लिए अधिकांश इन्हीं खनिजोंका उपयोग किया जाता है। ऐसे खनिजोंमें यदि डेढ़ या दो प्रतिशत ताँबा हो तब भी उनमेंसे ताँबेका शोधन आर्थिक दृष्टिसे लाभदायी होता है। इन गन्धकित खनिजोंमें पाइराइटीज़, कॉपर ग्लान्स आदिके नाम गिनाये जा सकते हैं। फिर इसके साथ गन्धकित लोह भी मिलता है और थोड़े अनुपातमें संखिया, सीसा और राँगा भी रहता है। ऐसे जटिल मिश्रणसे शुद्ध ताँबा प्राप्त करनेका काम काफी कठिनाइयोंसे भरा होता है।

खनिजमेंसे ताँबेका शोधन करनेके लिए सबसे पहले खनिजका हवामें निस्तापन (calcine) किया जाता है। इस क्रियासे अतिरिक्त गन्धक और डायाक्सॉइड गैसके रूपमें पृथक् हो जाते

हैं। संखिया भी अपने आक्साइडके रूपमें पृथक् हो जाता है। लोहेके सल्फाइड अपने आक्साइडों-के रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। परन्तु आमतौर पर ताँबेके सल्फाइडमें कोई परिवर्तन नहीं होता।
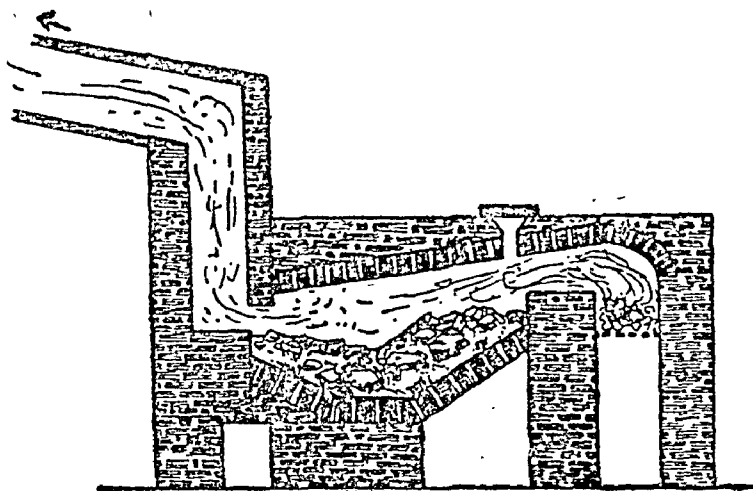
परावर्तन भट्ठी

उसके बाद लोहका अंश पृथक् करनेके लिए उसे परावर्तन भट्ठी (reverberatory furnace)-में बालूके साथ गलाया जाता है। यह क्रिया दो बार करनेसे ७०-८० प्रतिशत ताँबेवाला कॉपर-सल्फाइड बनाया जा सकता है। इस कॉपर सल्फाइडसे ताँबेको पृथक् करनेके लिए उसका हवामें निस्तापन किया जाता है। इस ताँबेको 'फफोलेदार ताँबा' (blister copper) कहते हैं, क्योंकि इस क्रियामें द्रव ताँबेमेंसे सल्फर डाइआक्साइड गैस निकलनेसे उसकी सतह पर फफोले-से दिखाई देने लगते हैं। इस ताँबेमें भी लगभग ३ प्रतिशत अपद्रव्य रहते हैं, जिन्हें विद्युत् विश्लेषण विधिसे पृथक् कर ताँबेको शुद्ध किया जाता है।

अब ताँबेके शोधनमें बिजलीका उपयोग किया जाने लगा है। सल्फ्युरिक अम्ल बनानेके लिए सल्फर डॉइआक्साइड निकालनेके बाद बचे हुए पाइराइटीज़के मलका इस विधिसे उपयोग करके उसमेंसे ताँबा निकाला जाता है। इस विद्युत् विधिसे ताँबा सरलतासे निकल आता है और वह एकदम शुद्ध भी होता है। सैद्धान्तिक दृष्टिसे ताँबेका इस विधिसे शोधन सरल दिखाई देता है, लेकिन प्रत्यक्ष करनेमें कठिनाइयाँ आती हैं और इसलिए ताँबेका शोधन खासी उलझनवाला काम समझा जाता है।

विद्युत्के इस युगमें ताँबेका मुख्य उपयोग बिजलीके तार और रस्सियाँ बनानेमें किया जाता है। ताँबा विद्युत्का सुसंवाहक है। लेकिन बिजलीके उद्योगके लिए ताँबेका परिष्करण बड़ी साव-धानीसे करना पड़ता है। इस कार्यके लिए ताँबेके क्षारका विलयन बनाकर विद्युत् विश्लेषण विधि-से उसका परिष्करण किया जाता है। इस विधिसे उसमें जो अत्यन्त अल्प मात्रामें स्वर्ण-रजत होता है वह भी पृथक् हो जाता है। अमरीकाकी कम्पनियाँ इस प्रकार हजारों औंस सोना और

चाँदी पैदा करती हैं। ताँबा लोहेके समान ज़ंग नहीं खाता, इसलिए उद्योगोंमें इसका प्रचुरतासे उपयोग किया जाता है।

शुद्ध ताँबेका महीन चूर्ण (रेणु) बनानेके लिए नीलाथोथाके विलयनमें जस्तेके टुकड़े रख दिये जाते हैं। जस्ता नीलाथोथाके विलयनमें घुल जाता है और नीलाथोथामेंसे ताँबा पृथक् होकर महीन रेणुके रूपमें विलयनके तलमें बैठ जाता है। इस चूर्णको पानी तथा अलकोहलमें धोकर निर्वात बरतनमें गर्म कर सुखानेसे शुद्ध ताँबेका चूर्ण प्राप्त होता है।

नीलाथोथा ताँबेका सल्फेट है। नीलाथोथा बनानेके कई कारखाने हमारे देशमें थे। औषधियोंमें इसका उपयोग होता रहा है। खेती-बाड़ीमें लगनेवाली बोर्डो मिश्रण नामक जहरीली औषधिमें आज भी इसका उपयोग किया जाता है।

ताँबेके वरकको जस्तेका धुआँ देनेसे उसका रंग सोने-जैसा चमकीला हो जाता है। ऐसे वरकको डचगोल्ड कहते हैं और वे सस्ते वरकका काम देते हैं।

ताँबेका सबसे अधिक उपयोग उसकी मिश्र धातुएँ बनानेमें किया जाता है। ताँबेकी मिश्र-धातुओंमें पीतल और काँसेका उपयोग तो पुरातन कालसे चला आता है। इधर ताँबेकी कई नई-नई मिश्र धातुएँ भिन्न-भिन्न उपयोगोंमें आ रही हैं, जिनमें गनमेटल, बेलमेटल, मोनेलमेटल, जर्मन-सिल्वर, मुंजमेटल, मेंगनिन आदिका नाम उल्लेखनीय है।

ताँबेमें २·५ प्रतिशत बेरिलियम धातुका मिश्रण करनेसे उस मिश्रधातुकी तार खींचे जानेकी क्षमतामें छहगुना वृद्धि हो जाती है। ताँबेमें ७ प्रतिशत एल्युमीनियम मिलानेसे सुनहरे रंगकी 'एल्यूमीनियम ब्रॉन्ज़' मिश्रधातु बनती है, जिसका उपयोग इमीटेशन गोल्डकी डिब्बियाँ, गहने और साज-शृंगारकी चीज़ें बनानेमें किया जाता है। यह बात इस सच्चाईको प्रमाणित करती है कि 'सब चमकनेवाली चीज़ें सोना नहीं होतीं'।

५४ प्रतिशत ताँबा, ४५ प्रतिशत निकल और १ प्रतिशत मैंगेनीज़वाली मिश्रधातु 'सिलवराइड' कहलाती है। वह चाँदी-जैसी दिखाई देती है। अब तो जहाज़ोंमें पीतलकी नलियोंके स्थान पर ७६ प्रतिशत ताँबा, २२ प्रतिशत जस्ता, २ प्रतिशत एल्युमीनियम और ०·४ प्रतिशत संखिया (आर्सेनिक) वाली मिश्रधातुकी नलियोंका उपयोग किया जाता है। ये अधिक समय तक चलती हैं और इनका संक्षारण भी कम होता है।

निकल—निकल अर्थात् खोटा ताँबा। निकलका खनिज ताँबेके खनिजसे हूबहू मिलता है। इस खनिजसे ताँबा निकालनेके जर्मन-खनिजोंके सारे प्रयत्न जब विफल हो गए तो उन्होंने इसे 'कुफर निकल' (खोटा ताँबा) का व्यंग्यपूर्ण नाम दिया। संस्कृतमें भी निकलको 'पिशाचताम्र' कहा जाता है। निकल धातुका सबसे पहले १७५१ ई०में उसके खनिजमेंसे निस्सारण किया गया। उसके बाद दशाब्दियों तक कोई प्रगति नहीं हुई। १७७४ ई०में बर्गमानने निकलके गुणोंका पता लगानेकी दिशामें काफी काम किया। ई० पू० २३५ वर्षके पुराने सिक्कोंमें निकलका पता चलता है और चीनमें इससे भी पुराने समयमें निकल धातुका उपयोग किये जानेकी बात प्रकाशमें आई है।

निकलके खनिजमें निकलके अतिरिक्त लोहा, कोबाल्ट, गन्धक, संखिया आदि होते हैं। खनिजसे निकल धातु निकालनेकी प्रक्रिया बड़ी ही जटिल है। इसके लिए कई क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। निकल धातुके शोधनमें कार्बन मोनोआक्साइड गैसका उपयोग किया जाता है, जो निकलसे

संयोग करके निकल कार्वोनिल वनाती है। इसे गर्म करनेसे शुद्ध निकल पृथक् होता है। इस विधिको मॉण्ड विधि कहते हैं।

निकलके वर्तमान विश्व-उत्पादनका ८० प्रतिशतसे भी अधिक कैनाडाके ओण्टारियो राज्यके सडवरी जिलेकी खानोंसे आता है। लगभग ये सभी खानें कैनाडाकी इण्टरनेशनल निकल कम्पनीके स्वत्वाधिकारमें हैं। नार्वे, रूस और फिनलैण्डमें भी निकलके निक्षेप हैं। लेकिन अभीतकके उत्पादन-में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण नहीं है। वर्मामें सीसा और जस्ता-चांदीके खनिजोंमें न्यून मात्रामें निकल मिलता है। मुख्य धातुओंके निस्सारणके बाद बचे हुए धातुमलको जर्मनी भेज दिया जाता है।

सामान्य मनुष्यकी निकल सम्बन्धी जानकारी निकल-प्लेटिंग और सिक्कोंकी ढलाईमें लगने-वाली धातु तक ही सीमित है। परन्तु इन कामोंमें तो कुल निकल-उत्पादनका केवल १० प्रतिशत ही खर्च होता है। पच्चीस देशोंमें विशुद्ध निकल सिक्के ढालनेमें काम आता है, लेकिन इसका औद्यो-गिक उपयोग तो और भी महत्त्वपूर्ण है। मिश्र धातुओंमें निकलकी मिलावटसे अभूतपूर्व और अन-मोल गुणोंकी सृष्टि होती है। मिश्रधातुओंमें १से लेकर ९० प्रतिशत तकके अनुपातमें निकलका उपयोग किया जाता है।

इस समय निकलका विश्व-उत्पादन १ लाख २५ हजार टनसे भी अधिक है। उसमेंसे ६० प्रतिशत निकलका उपयोग लोहेकी मिश्र धातुएँ वनानेमें किया जाता है। २४ प्रतिशत निकलकी मिलावट करनेसे लोहा निश्चुम्बकीय हो जाता है और ३२ प्रतिशत मिलावट वाली मिश्रधातु विद्युत्-की प्रवल प्रतिरोधक होती है। निकल, लोहा और क्रोमियमकी मिश्रधातु निक्रोम विद्युत् तापकों और अतिशय उच्च ताप पर चलनेवाली विद्युत् भट्ठियोंकी वनावटमें काम आती है। निकलका महीन चूर्ण वनस्पति घी वनानेमें उत्प्रेरककी तरह इस्तेमाल किया जाता है।

निकलमें जिस प्रकारके विविध उपयोगी गुणोंका एकीकरण हुआ है वह किसी दूसरी धातुमें दिखाई नहीं देता। निकलमें जंग न लगनेका अद्भुत गुण है। झलाई (welding) करने या खोल (casing) चढ़ानेमें उपयोग करने पर भी इसके गुणोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। अत्यधिक उच्च ताप पर भी इसकी यह शक्ति वनी रहती है। अतिशय मृदु-खाद्य-पदार्थ, पेय, दवाइयों इत्यादिको सड़ने और क्षरणसे वचानेके लिए निकलके अस्तर लगे वेप्टनों (packing) का उपयोग किया जाता है। टेलीविजन, राडार, रेडियो, तार-टेलीफोन और इसी तरहके अन्य उपयोगी उप-करणोंको वनानेमें विद्युत-प्रतिरोधक गुणोंके कारण इसका खूब उपयोग किया जाता है।

हमारे देशमें निकलका विदेशोंसे आयात होता है। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए जमशेद-पुरकी राष्ट्रीय धातु-कर्मक रसायनशालाने प्रयत्न प्रारम्भ किये और निष्कलंक इस्पात वनानेमें निकल आवश्यक होते हुए भी विना निकलका निष्कलंक इस्पात तैयार किया है, जिसमें देशमें उपलब्ध क्रोमियम, मैंगेनीज, नाइट्रोजन, एल्युमीनियम और ताँवेका उपयोग किया गया है। इस रसायन-शालाने विना निकलकी कुछ मिश्र धातुएँ भी वनानेमें सफलता प्राप्त की है।

कोवाल्ट—कोवाल्टको निकलका भाई ही समझना चाहिए। इसके खनिज भी ताँवेकी खनिजसे मिलते हैं। इसका निस्तापन करनेसे लहसुन-जैसी तीव्र गन्ध निकलती है। इसके खनिज-को ताँवेका खनिज मानकर उसमेंसे ताँवा निकालनेके सारे प्रयत्न विफल हो जाने पर इसे 'खोटा खनिज' (कोवाल्ट) नाम दे दिया गया।

वैसे कोबाल्ट यूनानी भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'ऊधमी भूत'। इसके खनिजमेंसे प्राप्त होनेवाली धातुको शायद इसीलिए कोबाल्ट कहा गया। संस्कृतमें इसके लिए 'भांड रंजन मृत्तिका' शब्दका प्रयोग हुआ है। पंजाबमें इसे 'रीत' कहते हैं, जो संस्कृत 'रीति' शब्दसे आया होना चाहिए। हिन्दीमें इसके लिए 'सैत—सेरत' शब्द है, जो संस्कृतके 'सैक्त' शब्दका अपभ्रंश प्रतीत होता है। इस धातुका खनिज काली बालू-जैसा होता है। भारतीय रसायनशास्त्रके लेखक डॉ० देसाईका कहना है कि कोबाल्टके लिए प्रयुक्त संस्कृत शब्द बहुत ही सार्थक हैं। गुजरात के विद्वान् श्री बापालाल ग० वैद्यका मत भी इनसे मिलता है। कोबाल्टके खनिजका निस्तापन कर बालू और पोटेसियम कार्बोनेटके साथ गर्म करनेसे सुन्दर नीले रंगका काँच बनता था, जिसके बारेमें कहा जाता था कि यह उसमें विद्यमान संखियाके धातुमलका परिणाम है। परन्तु १७३५ ई०में ब्राण्डुटने यह बताया कि इस खनिजमें कोई नई धातु है जिसके कारण क्षार नीला रंग प्रदान करता है। १७८० ई०में वर्गमानने उस धातुको कोबाल्टके रूपमें प्राप्त किया।

अन्य धातुओंका निस्सारण करते समय कोबाल्ट उनके उपद्रव्यके रूपमें प्राप्त होता है। आजसे लगभग तीस वर्ष पहले ओण्टारियोमें कोबाल्ट शहरके निकटस्थ चाँदीकी खानोंसे चाँदी निकालनेके बाद कोबाल्ट निकाला जाता था। अब कोबाल्टका मुख्य प्राप्तिस्थान उत्तर रोडेशिया और बेल्जियन कांगोमें कटांगाकी ताँबेकी खानें है। इनके अतिरिक्त फ्रेंच मोरक्कोकी सोनेकी खानों और बरमाकी निकलकी खानोंसे भी उपोद्पादके रूपमें निकाला जाता है।

अभी तक इस धातुका उपयोग रंगीन काँच, तामचीनी (एनैमल), और काँचिका (ग्लेज) बनानेमें होता था, लेकिन इधर नई-नई मिश्रधातुएँ बनानेमें इसका महत्त्वपूर्ण उपयोग किया जाने लगा है। ३५ प्रतिशत कोबाल्टवाला इस्पात मेग्नेटोमें स्थायी लोह-चुम्बक बनानेके काम आता है। हजामतके सेफ्टीरेजरकी पत्तियाँ (ब्लेड) बनानेमें भी कोबाल्ट वाले इस्पातका इस्तेमाल होता है। नई धातुओंमें कोबाल्टने बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

हमारे देशमें, राजस्थानमें, जयपुरके समीप खेतड़ीकी ताँबेकी खानोंमें कोबाल्टके खनिज पाये जाते हैं। त्रावणकोरकी मैंगेनीज़ और गन्धकित पदार्थोंकी खानोंमें कोबाल्ट अल्पमात्रामें प्राप्त होता है। एक यह धातु और दूसरी निकल हमारे देशमें आवश्यक मात्रामें प्राप्त नहीं होतीं।

क्रोमियम—क्रोमियमका उपयोग अनेक मिश्रधातुओंके बनानेमें किया जाता है। अन्य धातुओं पर मुलम्मा चढ़ाने (plating)में इसका खूब उपयोग होता है। क्रोमाइट खनिज भारतमें अनेक स्थानों पर प्रचुर मात्रामें निकलता है। बलूचिस्तान और मैसूरकी खानोंसे निकाला जानेवाला क्रोमाइट उच्च कोटिका होता है। पहले भारतका यह कच्चा घन हजारों टनोंके हिसाबसे विदेश भेजा जाता और वहाँसे तैयार बाइक्रोमेट आयात किया जाता था। लेकिन अब हमारे ही देशमें बाइक्रोमेट बनाया जाने लगा है। क्रोमियम आक्साइडको एल्युमीनियम धातुके साथ मिलाकर थर्माइट विधिसे क्रोमियम धातु बनाई जाती है। इस विधिसे दूसरी किसी भी रीतिसे प्राप्त न की जा सकनेवाली धातुओंको प्राप्त करना सरल हो गया है। क्रोमियम धातु निकलसे भी अधिक कठोर है और अपने वातावरणसे अप्रभावित रहनेके गुणके कारण इसे जंग नहीं लगता और न संक्षारण ही होता है। क्रोमियम और मैंगेनीज़का उपयोग इस्पात बनानेमें खूब किया जाता है।

धातुओंको उनके आक्साइडसे पृथक् करनेकी विशिष्ट पद्धति थर्माइट विधि कहलाती है। इस विधिमें एल्युमीनियमके चूर्णको धातुके आक्साइडकी बुकनीके साथ कुठालीमें रखकर उसके ऊपर सोडियम पेरोक्साइड और एल्युमीनियम चूर्णोंका मिश्रण छिड़का जाता है और तब विद्युत् पलीते (fuse) अथवा मैग्नेशियमसे जलाया जाता है। इससे काफी उच्च ताप पैदा होता है; एल्युमीनियमका आक्साइड बनता है और मूल आक्साइडसे धातु पृथक् हो जाती है।

मैंगनीज़—हमारे प्राचीन आयुर्वेद ग्रन्थोंमें लोहेके अनेक प्रकारोंका वर्णन किया गया है, जिनमें मैंगनीज धातुका वर्णन भी मिलता है। मैंगनीज़का मुख्य खनिज पाइरोल्युसाइट है। संस्कृतमें इसे कृष्णपाषाण—काला पत्थर कहा गया है। इसका दूसरा नाम 'अयस्कान्ति' भी है। लोहेसे समानता होनेके ही कारण इसे यह नाम दिया गया है और इसमेंसे निकलनेवाली धातुको लोहेका ही एक प्रकार मान लिया गया है।

कांच बनाते समय उसकी हरे रंगकी झाईको दूर करनेके लिए उसमें अल्पमात्रा में पाइरोल्यु-साइट मिला देते हैं। पाइरोल्युसाइट कोयलेकी तरह काला होनेके कारण कई लोभी व्यापारी उसमें कोयलेकी बुकनी मिला देते हैं। ऐसा विश्वासघात अनुचित होनेके साथ-साथ खतरनाक भी है; क्योंकि पाइरोल्युसाइटको गर्म करनेसे आक्सीजन गैस निकलती है और गर्म कोयला उसके संयोगसे जल उठता है; परिणाम-स्वरूप विस्फोट होनेका खतरा पैदा हो जाता है।

१७४० ई०में जे० एच० पोट्टनायक रसायन-वेत्ताने यह प्रमाणित किया कि पाइरोल्यु-साइटसे बने क्षार लोहेके इसी प्रकारके क्षारोंसे भिन्न होते हैं। इसके बाद १८८२ ई०में सर आर० हडफील्डने मैंगनीज़-इस्पातकी खोज की। लोहेकी मिश्र-धातुओंका प्रारम्भ तबसे होता है। इस इस्पातको हडफील्डके अनुसन्धानकी स्मृतिमें हडफील्ड इस्पात कहा जाता है।

मैंगनीज़का मुख्य उपयोग लोहा और इस्पात बनानेमें धातु-शोधनके लिए किया जाता है। शुद्ध मैंगनीज़ धातुको गर्म करनेसे उसमें लोह चुम्बकत्व गुण आ जाता है। ५५ प्रतिशत तांबा, १५ प्रतिशत एल्युमीनियम और ३० प्रतिशत मैंगनीज़वाली मिश्रधातुमें लोह चुम्बकीय गुण होता है।

विश्वकी मैंगनीज, खनिज सम्बन्धी आवश्यकताको रूस (काकेशस प्रदेश) और भारत पूरा करते हैं। ब्राजिल, पश्चिम अफ्रीका और स्पेनमें भी यह खनिज मिलता है।

गुजरातमें पावागढ़के पास शिवराजपुरमें मैंगनीजकी खानें हैं। मध्यप्रदेशमें झाबुआ जिला, दक्षिण भारतमें विशाखापट्टनम् और सन्डूरमें तथा मैसूर राज्यमें भी यह खनिज मिलता है। ब्राउ-नाइट, हाउसमेनाइट, सिलोमोलेइम, मैंगनाइट और रोडोकोसाइट—ये मैंगनीज़के अन्य खनिज हैं, परन्तु उद्योगकी दृष्टिसे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं है।

पोटेसियम पर मेगनेटसे तो कई लोग परिचित होंगे। कुएँका पानी दूषित होने पर कीटाणुओं-का नाश करनेके लिए कुएँमें डाले जानेवाले और साँपके काटने पर सर्पदंश पर रखे जानेवाले इस पदार्थको देहाती लोग भी 'लाल दवा'के नामसे बहुत अच्छी तरह जानते हैं। पाइरोल्युसाइटको कास्टिक सोडा या पोटाशके साथ मिलाकर हवा मिलती रहे इस प्रकार गर्म करनेसे-सारा मिश्रण एक रस होकर हरे रंगका पदार्थ बनता है, जिसमें पानी डालकर हवामें रखने या क्लोरिन गैस पारित करनेसे लाल रंगका विलयन तैयार होता है। इसी विलयनसे पोटेसियम परमेगनेट प्राप्त किया

जाता है। इसके अतिरिक्त मैंगनीजका उपयोग रंगरोगन, वार्निश और स्याही बनानेमे भी होता है। इसका औषधीय गुण शामक, रक्तवर्द्धक और आर्तवप्रद है। फोड़े-फुन्सी और रक्तविकारोंमे मैंगनीजके इंजेक्शन लगाये जाते हैं। पाइरोल्युमाइटसे वैद्य लोग अयस्कान्ति भस्म बनाते हे।

सीसा—सीसा (lead) पुरानी धातुओंमे है। ई० पू० तीन हजार वर्ष पुरानी सीसेकी वस्तुएँ पुरातात्त्विक अवशेषोंमें मिली हैं। पुराने ग्रन्थोंमे भी सीसेके विभिन्न उपयोगोंके सम्बन्धमे उल्लेख मिलते हैं। परन्तु उस जमानेमे सीसा और राँगामे भेद नही किया जाता था, दोनोंको एक ही धातु समझा जाता था। राँगेको 'सफेद सीसा' कहा जाता था। सीसा भी राँगे-जैसी ही मृदु धातु है। उसे सरलतासे मनचाहा आकार दिया जा सकता है। बेबिलोनके हैंगिंग गार्डनमे पौधोंको सीसेके गमलोंमे उगाया जाता था। रोमन लोग सीसेका उपयोग नल बनानेमे करते थे।

भूगर्भमे सीसेकी खान, दक्षिण मिसौरी (संयुक्त राज्य अमरीका)

सीसा प्रकृतिमे स्वतन्त्र धातुके रूपमे उपलब्ध नही होता। लेकिन इसके खनिज सर्वत्र फैले हुए हे। सीसेका मुख्य खनिज गैलिना (galena) कहलाता हे। यह सीसे और गन्धकका यौगिक और काले रंगका चमकदार पदार्थ होता हे। स्पेन, अमरीका आदि देशोंमे प्रचुर मात्रामे पाया जाता हे। बरमामे सीसा-खनिजकी विशाल खाने हे। इसके सिवाय अन्य खनिजोंमे इसके कार्बो-नेट, सल्फेट आदि यौगिक थोडी मात्रामे उपलब्ध होते है। हमारे देशमे सीसेके खनिज अधिक मात्रा-मे नही मिलते। शिमला, मदरास और राजस्थान आदि प्रदेशोंमे बहुत कम मात्रामे इस धातुके खनिज मिलते ह। धातुका निस्सारण करनेके लिए गैलिनाको भट्ठीमे तपानेसे गन्धक पृथक् होता और जलकर सल्फर डाइ-आक्साइड बनता हे, जिसका उपयोग गन्धकका अम्ल बनानेमे किया जाता हे। सीसा धातुके रूपमे द्रवस्थितिमे भट्ठीके तलमे इकट्ठा होता हे। बादमे इसे शुद्ध कर लिया जाता हे।

सीसेके खनिजमे बहुत कम मात्रामे चाँदी भी रहती हे। दुनियाकी अधिकांश चाँदी इसी खनिजसे निकाली जाती है। इसके अतिरिक्त सीसेके खनिजमे सामान्यत. जस्तेका खनिज—जिंक

ल्वैण्ट भी होता है। इसे स्फालेराइट कहते हैं। इस प्रकार सीसेकी खानवालेको सीसेके साथ-साथ अधिक कीमती धातुएं उपोत्पादके रूपमें मिलती हैं।

सीसेके खनिजसे धातु निकालनेवाले कारखानोंमें चांदी और अन्य धातुएं निकालनेका प्रबन्ध भी होता है। इससे उन्हें सीसेसे होनेवाली आयके अतिरिक्त और भी प्रचुर लाभ होता है। लेकिन उनका यह लाभ सीसा-खनिजमें विद्यमान अन्य धातुओंके अनुपात पर निर्भर करता है। चाँदीयुक्त सीसेको 'आर्जेन्टी फेरस लेड' कहते हैं। सीसेके तार नहीं खींचे जा सकते। वह ३१६° सें० ताप पर पिघल जाता है। पानीमें सीसा थोड़ी मात्रामें विलेय है। लम्बे समय तक इस प्रकारका पानी पीनेसे अनेक तरह की बीमारियाँ हो जाती हैं। सीसेका जहर धीरे-धीरे शरीरमें फैलता है। मसूढ़ों-के किनारों पर नीली रेखा शरीरमें सीसेका जहर फैलनेकी निशानी है। पहले पानी ले जाने वाले नलोंको बनानेमें सीसेका उपयोग किया जाता था, परन्तु पानीमें सीसेके विषैले प्रभावके कारण इस काममें उसका उपयोग बन्द कर दिया गया।

बेरिंगके उपयुक्त फ्रारी धातु (frary metal) सीसेमें दो प्रतिशत बेरियम धातु और एक प्रतिशत कैल्सियम मिलाकर बनाई जाती है। छपाईके टाइप बनानेके लिए जो सीसा काममें लाया जाता है उसमें एण्टीमनी धातु मिली होती है। मोटरमें इस्तेमाल किये जानेवाले पेट्रोलमें सीसेका कार्बनिक यौगिक—टेट्राइथाइल लेड (TEL) मिलाया जाता है। वह प्रत्याघात (anti-knock)की तरह काम करता है। सीसे और राँगेकी मिश्रधातुका उपयोग टाँका लगानेके मसाले (solder)के रूपमें किया जाता है।

सिन्दूर अथवा लाल सीसा सीसेकी भस्म है। सीसेके यौगिकोंका विविध औद्योगिक उपयोग उदाहरणके लिए कपड़ोंकी रँगाई और छपाई, औषधियाँ बनाने, रंग-रोगन तैयार करने, काँच-को कड़ा करने, मिट्टीके बर्तनोंको काँचित करने, रबरको वल्कनाइज़ करने आदिमें किया जाता है।

मुरदासंख (litharge) सीसेका आक्साइड है। इसका उपयोग आयुर्वेदमें बिगड़े हुए फोड़ों आदि त्वचा रोगोंमें मरहमके रूपमें किया जाता है। मुरदा-संख और चूनेको मिलानेसे जो काला रंग बनता है वह खिजाबके रूपमें सफेद बालोंको काला करनेके काम आता है।

सीसेकी एक विशेषता यह है कि वह सल्फ्यूरिक अम्लमें घुलता नहीं, इसलिए सल्फ्यूरिक-अम्लके उत्पादनके लिए 'सीसकक्ष' (lead chamber) बनानेमें इसका उपयोग किया जाता है।

राँगा—राँगे या वंगकी जानकारी मनुष्यको बहुत पुरातनकालसे है। पहले ताँबेकी मिश्र-धातु काँसा बनानेमें इसका उपयोग किया जाता था। पूरे कांस्ययुगमें ताँबे और राँगेका बहुत महत्त्व रहा। अब तो पीतलके बरतनों पर कलई करने-भरका महत्त्व रह गया है। और वह भी निष्कलंक (स्टेनलेस) इस्पात एवं एल्युमीनियमके बने बरतनोंके प्रचलनसे क्रमशः कम होता जा रहा है। इसका महत्त्वपूर्ण उपयोग छोटे-बड़े डिब्बे बनानेमें काम आनेवाली 'टिनप्लेट' अर्थात् लोहेकी चादर या पतरे पर मुलम्मा चढ़ानेमें किया जाता रहा।

राँगे (tin)का प्रमुख खनिज टिनस्टोन या कासिटेराइट मलाया और बरमा एवं नाइ-जीरिया और दक्षिण अफ्रीकामें आता है। साफ किये हुए खनिजको 'काला टिन' कहते हैं, उसे कोयलेके साथ मिलाकर परावर्त्तन भट्ठीमें गर्म करनेसे टिन पृथक् हो जाता है।

$$SnO_2 + 2C = Sn + 2CO$$
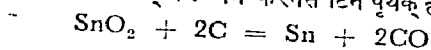
इस टिनको विगलन (liquation) विधिसे शुद्ध किया जाता है। अर्थात् परावर्त्तन भट्ठीमें अशुद्ध धातुको गर्म करनेसे शुद्ध धातु विगलित होकर पृथक् हो जाती है और अपद्रव्यों वाला धातुमल (ताँबा, लोहा, संखिया आदिकी मिश्रधातु). पीछे रह जाता है। आयुर्वेदमें राँगेकी भस्मको वंगभस्म कहते हैं और उसका उपयोग रक्तविकारसे होनेवाले फोड़े-फुन्सियोंकी चिकित्सामें किया जाता है।

हमारे देशमें कलई किये हुए पतरोंकी खपत लगभग तीन लाख टन है। १९७०-७१में यह खपत बढ़कर पाँच लाख टनके करीब हो जाएगी। कलई करनेके लिए राँगा विदेशोंसे आयात किया जाता है और बिना कलई किये पतरोंसे हमारा काम चल भी नहीं सकता। टिन-प्लेट के छोटे-बड़े डिब्बोंकी माँग और खपत बढ़ती ही जाती है। खाद्य पदार्थ, फल आदि पैक करनेके लिए टिन प्लेटके जो डिब्बे बनाये जाते हैं उनमें कतरन बहुत निकलती है। इन कतरनों और मिट्टीके तेल, घी, खानेके तेल आदिके काममें आए हुए, काले पड़े हुए, फूटे हुए और अधकचरी कलई उतरे हुए डिब्बोंकी कलई यदि उतार ली जाए तो काफी कीमती विदेशी मुद्राकी बचत हो सकती है। इस प्रकार डेढ़से दो करोड़ रुपयेके राँगेकी बचत हो जाएगी और कुल मिलाकर ५०,०००से ७५,०००टन वजनकी कतरनों और रद्दी मालको अभिसंस्करित करना पड़ेगा, जो मिल सकता है।

पतरों पर चढ़ी कलई उतारनेके लिए विदेशोंमें क्षार-रासायनिक, (Alkali-Chemical) विधि उपयोगमें लाई जाती है। इसमें गर्म कास्टिक सोडेके विलयनमें किसी अवकरणीय (osidising) पदार्थकी उपस्थितिमें पतरोंका रद्दी माल डाला जाता है। पतरों परका राँगा विलयन-में घुल जाता है और सोडियम स्टेनेट नामक पदार्थ प्राप्त होता है। इस पदार्थके विलयनका विद्युत विश्लेषण करनेसे राँगा निकल आता है।

भारतमें केन्द्रीय विद्युत रासायनिक शोध प्रतिष्ठान (Centrel Electro-Chemical Research Institute) काराईकुडीमें कलई किये हुए राँगेको उतारनेकी एक अम्ल-रासायनिक (acid-chemical) विधि खोजी गई है। इसमें खनिज अम्लके विलयनमें रद्दी माल (scrap) डाला जाता है। राँगा उतरकर नीले लौंदोंके रूपमें विलयनमें तैरने लगता है। इस विधिसे ८०से ८५ प्रतिशत राँगा टिनप्लेटकी कतरनों और रद्दीमालसे पुनः प्राप्त किया जा सकता है। यह विधि सरल और सस्ती भी है।

जस्ता—जस्ते (zinc)के सम्बन्धमें पुराने उल्लेख बहुत मिलते हैं। ई०पू० ६५०के असी-रियाई पुरातात्त्विक अवशेषोंमें प्राप्त शिलालेखोंमें जस्तेके खनिजका उल्लेख मिला है। ताँबेसे पीतल बनानेके लिए इसी खनिजका उपयोग किया जाता था। लाल रंगके ताँबेसे, जस्तेकी सहायतासे, पीले रंगका पीतल बनता था इसलिए कुछ भोले कीमियागर जस्तेके खनिजको पारस पत्थर कहने लगे थे।

जस्तेको एक स्वतन्त्र धातुके रूपमें अपना निराला अस्तित्व १६९५ ई०में प्राप्त हुआ। इसके खनिजसे धातु निकालनेका काम १७३०में जाकर शुरू हुआ। पुराने जमानेकी रासायनिक शब्दावलीमें जस्तेके लिए 'स्पेल्टर' शब्दका प्रयोग किया जाता था। अशुद्ध जस्तेको आज भी 'स्पेल्टर' कहते हैं।

भारतमें जस्तेके खनिज कहीं भी नहीं हैं। राजस्थानमें ताँवेकी खानें जब चालू थीं तो काँसा अवश्य बनाया जाता था, परन्तु पीतल बनानेका कोई उल्लेख नहीं मिलता। बरमामें जस्तेके खनिज प्रचुर मात्रामें उपलब्ध हैं। खनिजसे धातु निकालनेकी विधि सरल है। खनिजका खुलेमें निस्तापन करनेसे जस्तेका आक्साइड बनता है, उसे कोयलेकी बुकनीके साथ मिलाकर गर्म करनेसे जस्ता पृथक् हो जाता है। पिछली दो-एक दशाब्दियोंसे विद्युत् द्वारा जस्ता निकालनेकी विधि
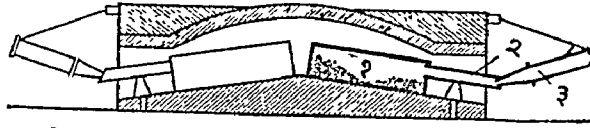
जस्ता पकानेकी भट्ठी [१. जस्तेकी कच्ची धातु २. जस्त ३. जस्तेका चूर्ण]

अधिकाधिक प्रचलित होती जा रही है। जस्तेके आक्साइडका सल्फ्यूरिक अम्लमें विलेपन कर उसमें विद्युत् पारित करनेसे जस्ता पृथक् होता है। विद्युत्-विश्लेपण विधिसे यह लाभ है कि एकदम विशुद्ध जस्ता प्राप्त होता है। जस्तेके स्फटिक षट्कोणी प्रिज्म (prism) आकारके होते हैं। जस्ता ४२०° सें० तापमान पर विगलित होता और ९०७° सें० पर उबलने लगता है। जस्तेके बरतनमें पानी भरकर रखनेसे जस्ता पानीमें घुलता है। हमारे दैनन्दिन उपयोगकी अनेक वस्तुओंमें जस्तेका उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

कम अनुपातवाली जस्तेकी मिश्र धातुओंमें गिल्डिंग मेटल (३·८ प्रतिशत जस्ता), तोम्बाक (१० से १८ प्रतिशत जस्ता) और पिञ्चबेक (७ से ११ प्रतिशत जस्ता) का उपयोग किया जाता है। जस्ता मुख्यतः लोहेके पतरों (चादरों) पर मुलम्मा चढ़ाने (जस्तीकृत करने) और पानीके नलोंको जस्तीकृत करनेके काम आता है।

जैव-रासायनिक क्रियाओंमें जस्ता कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता हो, ऐसा नहीं प्रतीत होता। फिर भी यहाँ यह उल्लेखनीय है कि साँप के विषमें ०·११ से ०·५६ प्रतिशत जस्तेके संयुक्त पदार्थ होते हैं।

मैग्नेशियम और एल्युमीनियम

आधुनिक युगमें धातुओंमें इस्पात और गजवल्ली (कान्तिसार) पहले नम्बर पर हैं। अब मैग्नेशियम और एल्युमीनियम धातुएँ बड़ी तेजीसे इस्पातका स्थान ले रही हैं। इनकी मिश्र धातुएँ वजनमें हलकी होनेके साथ-साथ इस्पात जैसी मजबूत और अन्य अपेक्षित गुणोंवाली भी होती हैं। जर्मनी, हालैण्ड और अमरीकामें तो पिछले पचीस बरसोंमें मैग्नेशियमसे बनाई गई मिश्र धातुओंका प्रचलन खूब ही बढ़ गया है। इस्पातके स्थानापन्नके रूपमें मैग्नेशियम और एल्युमीनियमकी उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है।

मैग्नेशियम—मैग्नेशियम एल्युमीनियमसे भी हलकी धातु है। वायुयानोंके अवयव (parts) बनाने और आधुनिक युद्ध संचालनमें इसका खूब उपयोग किया जाता है। मैग्नेशियममें जरकोनियम और थोरियम-जैसी विरल धातु मिलाकर जो मिश्रधातु बनाई जाती है उसका उपयोग युद्धकालीन अग्नि बमोंमें किया जाता है। तीसेक बरस पहले इस धातुका बहुत ही कम उपयोग होता था।

मैग्नेशियम धातु अपने यौगिकोंके रूपमें पृथ्वीकी सतहपर सर्वत्र बिखरी हुई मिलती है। इसके खनिजोंमें मैग्नेसाइट, डोलोमाइट और कार्नालाइट औद्योगिक दृष्टिसे उपयोगी हैं। ऊष्मा द्वारा घुलाये हुए मैग्नेशियम क्लोराइडमें विद्युत् पारित करनेसे यह धातु पृथक् होती है। कैनाडामें आविष्कृत एक नई विधिके अनुसार डोलोमाइट और लौहयुक्त सिलिकोनका मिश्रण भट्ठीमें पैक करके गर्म करनेसे मैग्नेशियम अपने वाष्पीय रूपमें पृथक् होकर भट्ठीके मुंह पर जमा हो जाता है। इस विधिका सबसे बड़ा लाभ यह है कि मैग्नेशियमके कम अनुपातवाले अशुद्ध खनिजोंसे भी मैग्नेशियमका निस्सारण किया जा सकता है। हलकी होते हुए भी मैग्नेशियम धातु खूब मजबूत होती है। फिर इसे जंग नहीं लगता। तीन प्रतिशत नमकके विलयनमें छह वर्ष तक रखने पर भी केवल ऊपरी (बाहरी) सतह पर थोड़ा-सा मोरचा दिखाई देता है। मैग्नेशियमका उपयोग युद्धके समय अग्नि बम बनाने और शान्तिके समय बैटरी और ड्राईसेल बनानेमें जस्तेके स्थान पर किया जाने लगा है।

बिजलीकी और अन्य भट्ठियाँ बनानेके लिए काममें ली जानेवाली ईंटें मैग्नेसाइट खनिजोंसे तैयार की जाती हैं। ये ईंटें काफी तेज़ गर्मी सह सकती हैं। साधारण ईंटें गर्मी लगते ही भुरभुरी होकर बिखर जाती हैं। तेज आँच सहनेवाली उष्णतारोधक ईंटोंको 'ऊष्मासह' या 'रिफ्रेक्टरी' ईंटें कहते हैं। मैग्नेसाइटकी अपेक्षा प्रकृतिमें, डोलोमाइट अधिक तादादमें मिलता है। निर्माणकार्योंमें पत्थरके स्थान पर इसका उपयोग एक सर्वविदित तथ्य है।

मैग्नेशियमकी निम्न मिश्रधातुओंका उद्योगमें प्रचुर उपयोग किया जाता है:

मैग्नेलियम—१० प्रतिशत मैग्नेशियम+९० प्रतिशत एल्युमीनियम।

ड्युरेल्युमिन—९४·४ प्रतिशत एल्युमीनियम+०·९५ प्रतिशत मैग्नेशियम+४·५ प्रतिशत ताँबा+०·७६ प्रतिशत मैंगनीज़ (इसे ५२० डिग्री पानी पिलानेसे इसकी कठोरता खूब बढ़ जाती है)।

एल्युमीनियम—एल्युमीनियम उन धातुओंमें है जो सर्वत्र मिलती हैं। पृथ्वीके गर्भसे मिलनेवाले सर्वव्यापी मूलतत्त्वोंमें पहले दो आक्सीजन और सिलिकोनके बाद तीसरा नम्बर एल्युमीनियमका ही है। मिट्टी, स्लेट, अभ्रक आदि उपयोगी खनिजोंमे एल्युमीनियम अपने सिलिकेट रूपमें रहता है। फिटकरीको रोमन भाषामें ऐल्युमेन कहते हैं। इसपरसे ऐल्युमेनका तत्त्व एल्युमीनियम—यह नाम इस धातुका रखा गया।

पृथ्वीकी परतोंमें प्रचुर परिमाणमें विद्यमान एल्युमीनियम खनिजोंसे धातु निकालनेकी विधिकी खोज हुए मुश्किलसे सौ बरस हुए होंगे। १८२५में जर्मन वैज्ञानिक वोहलरने इस धातुको पृथक् करनेमें सफलता प्राप्त की। १८७८में फ्रान्समें एल्युमीनियमके निस्सारणका उद्योग आरम्भ हुआ। उस समय इसकी कीमत तीन हजार रुपए प्रति किलोग्रामसे भी अधिक थी, वह घटकर ८० रुपए तक हो गई। एल्युमीनियम क्लोराइडको सोडियम धातुके साथ गर्म करके इस धातुको निकाला जाता था। १८८३ ई०में अमरीकामें ओबर्लिन कालेजके एक प्राध्यापक अपने विद्यार्थियोंके सामने एल्युमीनियमकी रासायनिक व्याख्या कर रहे थे। भाषणका समापन करते हुए उन्होंने कहा! "यदि आप लोगोंमेंसे कोई इस धातुको सस्ते तरीकेसे बड़े पैमाने पर तैयार कर सके तो धनका ढेर लग जाएगा।" उस कक्षाके विद्यार्थियोंमें से चार्ल्स मार्टिन

किया जाने लगा है। हमारे देशमे एल्युमीनियमका प्रचलन करनेवाले मद्रासके इजीनियरिंग कालेजके प्राध्यापक सर एल्फ्रेड चेटर्टन थे। उन्होने १८९८ मे मद्रासके आर्ट स्कूलमे बरतन और

एल्युमीनियमकी मिश्र धातुको संक्षारण और जंगसे बचानेके लिए उसपर शुद्ध एल्युमीनियमकी परत चढाई जाती है।

अन्य चीजे बनानेका कारखाना शुरू किया, १९०० मे इण्डियन एल्युमीनियम कम्पनीने चेटर्टनसे यह काम ले लिया।

एल्युमीनियम आक्साइडके विद्युत्-विश्लेषण द्वारा एल्युमीनियम-उत्पादन
[१. कार्बनके अस्तरवाला डिब्बा, २. कार्बनकी छडे, ३. विगलित क्रायोलाइटमे घुला हुआ एल्युमीनियम आक्साइड, ४. विगलित एल्युमीनियमका द्रव]

एल्युमीनियमके उद्योगमे बाक्साइट और सस्ती बिजलीकी विशेष रूपसे आवश्यकता होती है। हमारे देशमे कई स्थानो पर बाक्साइट सुलभ है। ताता, मैसूर ओर अन्य कम्पनियाँ

हालने इस कामको करनेका बीड़ा उठाया। तीन वर्षके घनघोर मेहनत के बाद, जिसके महान् रसायनज्ञ जो नहीं कर सके थे उसे इस युवक छात्रने सम्पन्न कर दिखाया। उसने एल्युमीनियमके गलित आक्साइड (एल्युमीनियम आक्साइड) से विद्युत्-विश्लेषण द्वारा एल्युमीनियम धातुको पृथक् किया। बाक्साइटमें अनेक अशुद्धियाँ (अपद्रव्य) होती हैं। धातु शोधनके लिए काममें लानेसे पहले उससे शुद्ध एल्युमीनियम आक्साइड (एल्युमिना) बनाना पड़ता है।

इसके लिए बाक्साइटको गर्मीमें सोडेके साथ अंगारों-जैसा लाल होने तक निस्तापित करनेसे उसमेंका एल्युमीनियम आक्साइड सोडियम एल्युमिनेटमें रूपान्तर होता है। यह क्षार पानीमें विलेय है इसलिए अपद्रव्योंसे इसका निस्यन्दन कर लिया जाता है। इस विलयनमें कार्बन डाइआक्साइड गैस पारित करनेसे शुद्ध एल्युमीनियम हाइड्राक्साइडका पृथक्करण होता है। इस हाइड्राक्साइडको गर्म करनेसे पानी निकल जाता है और शुद्ध आक्साइड बनता है। इसको गर्म क्रायोलाइटमें विलेयकर कार्बनके विद्युदग्रका उपयोग करते हुए विद्युत् विश्लेषण करनेसे एल्युमीनियम धातु पृथक् हो जाती है।

चार्ल्स मार्टिन हॉल (१८६३-१९१४)

एल्युमीनियम सामान्यतः मृदु और हल्की धातु होते हुए भी उसकी मिश्र धातुएँ इस्पात जैसी कठोर, रांगे-जैसी चमकदार, जस्ते-जैसी टिकाऊ और तांबे-जैसी विद्युत संवाहक होती हैं। तांबेमें ४·११ प्रतिशत एल्युमीनियम मिलानेसे एल्युमीनियम ब्राञ्ज नामक एक नये प्रकारका कांसा बनाया जाता है, जिसमें रांगा नामको भी नहीं होता।

एल्युमीनियमकी उपयोगी मिश्रधातुओंमें मैग्नेशियम और ड्युरेल्युमिनका उल्लेख तो पीछे किया जा चुका है। वायुयानके विभिन्न अवयवोंके निर्माणमें इन मिश्रधातुओंका उपयोग किया जाता है। एल्युमीनियम पर कई रसायनों और गैसोंका प्रभाव नहीं होता इसलिए मद्यके आसवन और पेट्रोलियमके परिष्करणमें एल्युमीनियमके बरतनों और उपकरणोंका उपयोग किया जाता है। साधारणकोटिके उपयोगोंमें सिगरेट, चाकलेट, मिठाई आदिको लपेटनेके लिए एल्युमीनियम-की पतली पत्तियाँ अधिकाधिक काम में ली जाने लगी हैं। भारतमें तांबा बहुत कम मात्रामें निकलता है। उसे विदेशोंसे आयात करना पड़ता है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए तारके रस्से, डाइनेमो और मोटरकी कुंडलियों (coils) आदिमें एल्युमीनियमके तारका उपयोग आरम्भ किया गया है। रॉकेटमें ठोस ईंधनके रूपमें एल्युमीनियमके चूर्णका उपयोग अन्य ईंधनोंके साथ

किया जाने लगा है। हमारे देशमें एल्युमीनियमका प्रचलन करनेवाले मद्रासके इंजीनियरिंग कालेजके प्राध्यापक सर एल्फ्रेड चेटर्टन थे। उन्होंने १८९८ में मद्रासके आर्ट स्कूलमें बरतन और

एल्युमीनियमकी मिश्र धातुको संक्षारण और जंगसे बचानेके लिए उसपर शुद्ध एल्युमीनियमकी परत चढ़ाई जाती है।

अन्य चीजें बनानेका कारखाना शुरू किया; १९०० में इण्डियन एल्युमीनियम कम्पनीने चेटर्टनसे यह काम ले लिया।

एल्युमीनियम आक्साइडके विद्युत्-विश्लेषण द्वारा एल्युमीनियम-उत्पादन
[१. कार्बनके अस्तरवाला डिब्बा, २. कार्बनकी छड़ें, ३. विगलित कायोलाइटमें घुला हुआ एल्युमीनियम आक्साइड, ४. विगलित एल्युमीनियमका द्रव]

एल्युमीनियमके उद्योगमें बाक्साइट और सस्ती बिजलीकी विशेष रूपसे आवश्यकता होती है। हमारे देशमें कई स्थानों पर बाक्साइट सुलभ है। ताता, मैसूर और अन्य कम्पनियाँ

प्रपातके जलसे सस्ती बिजली पैदा करती है। इसलिए इस दिशामें विकासकी बहुत अच्छी सम्भावनाएँ हैं। स्वाधीनता के बाद हमारे देशमें एल्युमीनियमका निस्सारण करनेवाले कई कारखाने आरम्भ हुए हैं।

एल्युमीनियमके बरतनमें लवण रखनेसे उसमें छेद हो जाते हैं। उन छेदोंको टाँका लगा कर बन्द करना मुश्किल होता है, क्योंकि कि ताँबे-पीतलकी चीजोंकी तरह एल्युमीनियमकी झलाई नहीं की जा सकती। लेकिन दिल्लीकी वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषदके भूतपूर्व निदेशक स्वर्गीय डॉ० शान्तिस्वरूप भटनागर और श्री सुन्दररावने एल्युमीनियममें टाँका लगानेके लिए निम्नलिखित माल खोज निकाला है—सुहागा (Borax) ५१ प्रतिशत, पोटैसियम क्लोराइड २५ प्रतिशत, लवण २५ प्रतिशत, टिटेनियम डाइआक्साइड २·५ प्रतिशत और सोडियम बाइसल्फाइड ११·३ प्रतिशत—इन सभी चीजोंका मिश्रण करके एल्युमीनियमके जोड़ पर रख ६००° सें० ताप पर गर्म करनेसे एल्युमीनियमकी झलाई हो जाती है और टाँका लग जाता है। एल्युमीनियमकी ३·५ मिलीमीटर तककी मोटी चादरके लिए यह माल अच्छा काम देता है। इससे अधिक महीन चादरमें टाँका लगाना मुश्किल होता है और उपर्युक्त माल बेकार हो जाता है।

मोनोजाइट बालू और कुछ विरल धातुएँ

जिसने सिगरेट लाइटर न देखा हो, ऐसा आदमी आज शायद ही कोई निकलेगा। पुराने जमानेमें इस कामके लिए चकमक पत्थरका उपयोग किया जाता था। इसलिए सिगरेट लाइटरमें चिनगारी पैदा करनेवाले पदार्थको चकमक समझनेकी भूल की जाती है। परन्तु वास्तवमें वह एक मिश्रधातु है, जिसमें लोहेके अलावा सीरियम धातु मिली होती है।

सीरियम धातु प्राप्त करनेका मुख्य स्रोत मोनाजाइट नामक एक प्राकृतिक बालू है। साधारण बालूसे यह भिन्न और विशिष्ट प्रकारकी होती है और दुनियामें केवल दो ही स्थानोंमें पाई जाती है। इस बालूमें सीरियमके अतिरिक्त और भी धातुएँ होती हैं। इस बालूका एक विशिष्ट गुण यह है कि वह रेडियधर्मी होती है। इस बालूके बारेमें हमारा देश बड़ा ही भाग्यवान है। त्रावणकोर (केरल) के समुद्र तटपर मोनाजाइट बालूके सघन निक्षेप हैं। इस धातुकी विश्व-माँगका लगभग ९० प्रतिशत अकेला त्रावणकोर पूरा करता है। बाकी ब्राजिल और ईस्ट-इण्डीज द्वीप समूहोंसे आती है। इक्के-दुक्के स्थानोंमें उपलब्ध होनेके ही कारण इस बालूको 'मोनाजाइट' कहते हैं। ग्रीक भाषामें मोनाजाइटका अर्थ है 'अकेला रहना।'

यह बालू लोहेके समान लोह-चुम्बकीय है। इसलिए अन्य पदार्थोंसे इसे पृथक् करनेके लिए लोहचुम्बकीय विधियोंका प्रयोग किया जाता है।

यह बालू कितनी ही विरल धातुओंके फास्फेटोंका मिश्रण है। सीरियमके अतिरिक्त थोरियम, लेन्थानम, प्रेसियोडियम, डाईडीमियम और अन्य उपयोगी विरलधातुएँ प्राप्त करनेका मुख्य स्रोत मोनाजाइट बालू ही है। मेजोथोरियम नामक रेडियधर्मी तत्त्व भी इसीसे निकाला जाता है। डाईडीमियमवाला चश्मा पहननेवालेकी आँखोंको प्रकाश की चकाचौंधसे हानि नहीं पहुँचती इसलिए वेल्डिंग और भट्ठीके आगे काम करनेवाले श्रमिकोंकी आँखोंकी रक्षाके

लिए इस प्रकारके कांचके चश्मोंका उपयोग किया जाता है। गैसबत्ती (पेट्रोमैक्स)के मेण्टल बनानेमें प्रयुक्त होनेवाला थोरियम नाइट्रेट मोनाजाइट बालूका उपयोग करके ही बनाया जाता है। बिजलीके लट्टुओंमें इस्तेमाल किया जानेवाला टंगस्टन धातुका तार भी थोरियमका मिश्रण करके ही बनाया जाता है। मोनाजाइटसे हेलियम गैस निकलती है। (एक ग्राम बालूसे एक घन सेंटीमीटर गैस प्राप्त होती है)।

मोनाजाइट बालूमें निहित रेडियधर्मी तत्त्वोंके कारण परमाणुशक्तिके लिए इसका उपयोग करनेके सम्बन्धमें अनुसन्धान किये जा रहे हैं। इन अनुसन्धानोंने इसका महत्त्व और भी बढ़ा दिया है। युद्ध हो या शान्ति, दोनों ही अवस्थाओंमें इस बालूने वैज्ञानिक जगत्में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

टंगस्टन—टंगस्टन टिटेनियम, टैण्टालम, जिर्कोनियम और वेनेडियम 'विरल धातुएँ' कही जाती हैं। इससे शायद ऐसी धारणा बन सकती है कि ये धातुएँ बहुत कम तादादमें मिलती होंगी और हमारे दैनिक जीवनमें अधिक काम न आती होंगी। लेकिन बात इससे सर्वथा उलटी है। इन धातुओंके खनिज अन्य सुलभ समझी जानेवाली धातुओंसे अधिक मात्रामें मिलते हैं। जिर्को-नियम ताँबेसे दो-तीन गुना और सीसेसे तेरह गुना अधिक निकाला जाता है। गेलियम धातुके खनिज चाँदीकी अपेक्षा डेढ़ सौ गुना अधिक प्राप्त होते हैं।

इन विरल धातुओंका विशेष प्रचलन न होनेका एक कारण तो यह है कि इनके खनिजोंसे धातुएँ सरलता और सस्ती विधियोंसे नहीं निकाली जा सकतीं; और दूसरा कारण यह कि प्रचलित धातुओंके मुकाबले इनके धात्विक गुण कई बार न्यून पड़ते हैं। लेकिन फिर भी कई कामोंमें इनकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। और पुरानी प्रचलित धातुओंके बदले नई धातुएँ विशेष महत्त्व प्राप्त करती जा रही हैं।

टंगस्टनका उपयोगी खनिज वुलफ्राम राँगेके खनिजोंके साथ मिलता है। इसके अलावा शालाइट और फर्बेराइट भी इसके खनिज हैं। वुलफ्रामकी सबसे अधिक उपज चीन और बर्मामें होती है। टंगस्टन धातुका निस्सारण करनेके लिए टंगस्टिक अम्लको कोयलेके साथ मिलाकर हाइड्रोजन गैसमें अंगारेकी तरह लाल तपाया जाता है। टंगस्टनका उपयोग इस्पात उद्योगमें किया जाता है, यह उल्लेख तो पहले हो ही चुका है।

टिटेनियम—१७९० ई०में एक अंगरेज पादरी रेव० विलियम ग्रेगरने इलमेनाइट नामक एक खनिजमें टिटेनियम नामकी धातुके अस्तित्वका पता लगाया। पौने दो सौसे भी अधिक वर्षोंसे ज्ञात यह धातु अन्य धातुओंकी तुलनामें अभी तक अधिक उपयोगी साबित नहीं हो सकी थी। केवल रसायनशास्त्रके अध्येताओंके अध्ययनके एक विषयके रूपमें बनी रही। परन्तु जेट विमानके इस युगमें यह धातु वैमानिक उद्योगकी मूलधातुका स्थान ग्रहण कर चुकी है। जेट विमानोंको बनानेमें जिन धातुओंका उपयोग किया जाता है उनमें टिटेनियमका स्थान सर्वोपरि और अद्वितीय है।

प्रकृतिमें टिटेनियम प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है। मूलतत्त्वोंमें उसका स्थान नौवाँ और धातुओंमें चौथा है। लौह, एल्युमीनियम और मैग्नेशियमके बाद इसीका नम्बर आता है। १९४७में में टिटेनियमका उत्पादन केवल २ टन था, जो १९५४में बढ़कर ५००० टन तक पहुँच गया।

प्रकृतिमें प्रचुर मात्रामें उपलब्ध इस धातुके मुख्य खनिज रूटाइल और इल्मेनाइट हैं। इल्मेनाइट बिलकुल कोयले-जैसा काला होता है। त्रावणकोरमें यह खूब होता है। दुनियाके देशोंको
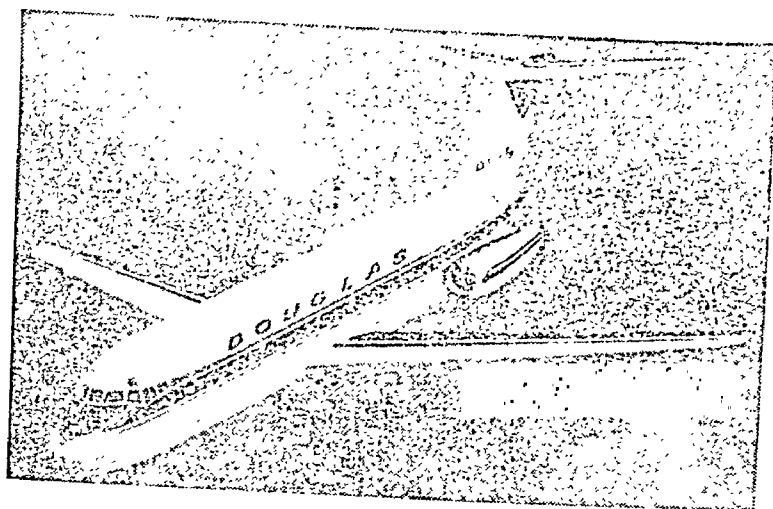
जेट विमानके निर्माणमें टिटेनियम धातु मूल धातुका स्थान ग्रहण कर चुकी है।

लगभग ६८ प्रतिशत इल्मेनाइटकी पूर्ति अकेला त्रावणकोर करता है। उसके बाद नार्वेका नम्बर आता है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस काले पदार्थसे बढ़िया सफेद रंग बनाया जाता है। महाराष्ट्र राज्यके रत्नागिरी जिलेमें इल्मेनाइटका खनिज मिला है, जिसमें २७ से ७५ प्रतिशत तक इल्मेनाइट होनेका पता चला है।

रूटाइल आस्ट्रेलियामें प्रचुर मात्रामें होता है। उससे न्यून मात्रामें ब्राज़िल, अमरीका और नार्वे आदि देशोंमें पाया जाता है। रूटाइल सफेद पदार्थ है। चीनी मिट्टीके बरतनोंपर एनैमल चढ़ानेमें इसका खूब उपयोग किया जाता है। नकली दाँतों (बत्तीसी) पर प्रकृत रंगकी पालिश चढ़ानेमें भी इसका उपयोग होता है।

खनिजोंसे टिटेनियम धातुका निस्सारण करनेके लिए खनिजोंको साफ करके उनमें विद्यमान टिटेनियम डाइआक्साइडको सान्द्रित किया जाता है; फिर उसे कार्बनके साथ बिजलीकी भट्ठीमें गर्म करनेसे कार्बन युक्त टिटेनियम बनता है। शुद्ध धातु बनानेके लिए डाइआक्साइडको कैल्सियम धातुके साथ गर्म किया जाता है।

यह हुई एक विधि। एक और भी विधि प्रचलित है। उसमें पहले टिटेनियम डाइआक्साइड-से टिटेनियम क्लोराइड तैयार किया जाता है। इस क्लोराइडको मैग्नेशियम धातुके साथ गर्म करनेसे टिटेनियमका धातु रूपमें पृथक्करण होता है। इधर कुछ दिनोंसे मैग्नेशियमके स्थानपर सोडियम धातुका उपयोग करनेकी विधि प्रचलित हुई है। इस विधिसे टिटेनियम धातुका 'स्पंज' तैयार होता है, जिसे भट्ठीमें गर्म करके टिटेनियम धातुके ढोंके बनाये जाते हैं।

टिटेनियम एल्युमीनियमसे केवल डेढ़ गुना भारी है। मजबूतीमें वह निष्कलंक स्टीलके समान होता है। न तो उसे जंग लगता है और न उसका संक्षारण ही होता है। एक ओर उसमें लोहेके तो दूसरी ओर एल्युमीनियम-जैसी हल्की धातुके भी गुण होते हैं। टिटेनियमकी मिश्र धातुएँ इस्पात-जैसी दृढ़ परन्तु उससे केवल आधे घनत्ववाली होती हैं। टिटेनियमका द्रवांक इस्पातमें २००° सें० अधिक यानी १७२०° सें० है। उपर्युक्त गुणोंके कारण वायुयानोंके निर्माणमें उसका उपयोग बराबर बढ़ता जा रहा है।

अभी तक 'टिटेनियम स्पंज' के उत्पादन पर अमरीका और जापान का एकाधिकार था। दोनों देशोंने अपना उत्पादन खूब बढ़ा लिया है। अब कैनाडा भी बाजारमें आया है। और रूस भी इस धातुको बनाने लगा है।

जिरकोनियम—जिरकोनियम टिटेनियमका भाई है। इसपर अम्लका असर नहीं होता इसलिए अम्ल-सह उपकरणोंके निर्माणके लिए वह बहुत उपयोगी है। जिरकोनियम दहनशील-धातु है। यदि समान आयतनके पानीमें न रखा जाए तो जोरकी लपट और भीषण धड़ाकेके साथ यह जल उठता है। अग्नि बम बनानेमें इसका उपयोग किया गया था। परमाणु अभिक्रियक (atom reactor) में यूरेनियम और थोरियम अनिवार्य होते हुए भी उनके इस्तेमालमें यह कठिनाई थी कि अभिक्रियकके उच्चतापके कारण ये धातुएँ कमजोर पड़ जाती थीं। अन्तमें उन्हें जिरकोनियमसे मढ़ कर देखा गया तो काम सरल हो गया।
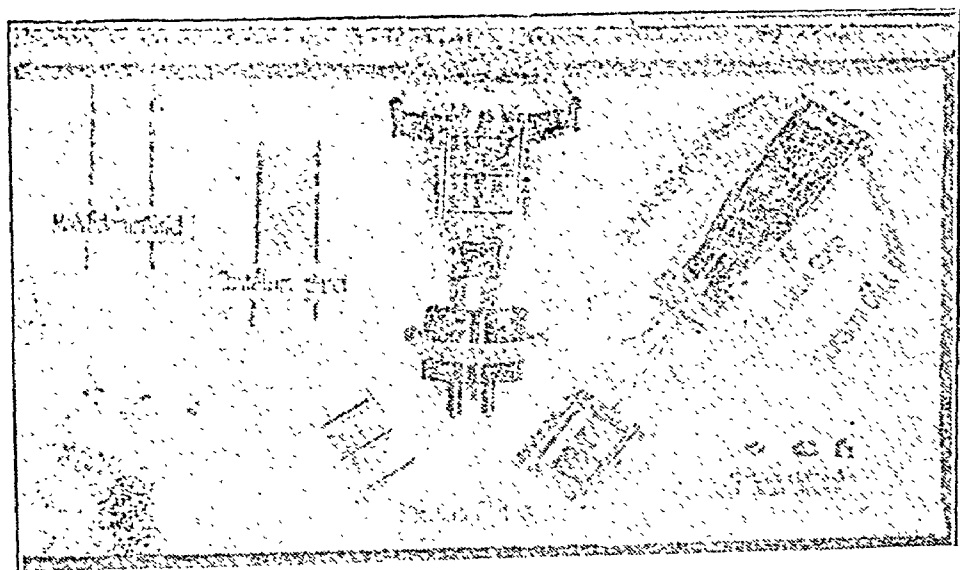
निर्वात ट्यूब (वाल्व) में टेंटालम और मालिब्डिनमका उपयोग

टेंटालम—टेंटालम परमाणु शक्तिके कारखानोंके निर्माणकी धातुके रूपमें उपयोगी सिद्ध हुई है। टेंटालमका शल्य चिकित्सामें भी खूब उपयोग होता है। शरीरके रसों, द्रवों और स्रावोंका

इस पर कोई प्रभाव नहीं होता; इसलिए हड्डियोंके पूरक हिस्सोंके रूपमें और प्लास्टिक सर्जरीमें तारके टाँके लगानेमें इसका उपयोग किया जाता है। बेटरीसे चलनेवाले रेडियोमेटके एक-दिशकारी (rectifier) सेलोंमें भी इसका उपयोग होता है।

टेंटालमका खनिज टेंटालाइट कठोर, काला और भारी होता है। हमारे देशमें मैसूरसे काश्मीर तक इसके स्थानोंमें यह मिलता है। इसके साथ-साथ कोलम्बियम धातुका खनिज कोलम्बाइट भी पाया जाता है।

मालिब्डिनम—मालिब्डिनम धातु निर्माण कार्योंके लिए बहुत उपयोगी है। इससे 'मॉली स्टील' बनाया जाता है। इसके दो उपयोगी खनिजों, मालिब्डिनाइट और वुल्फेनाइटकी पूर्ति मुख्यत. अमरीका द्वारा ही की जाती है। मालिब्डेनाइट ग्रेफाइटसे मिलता-जुलता और उनके साथ ही प्राप्त होता है।

लोहेकी खान—टावर्ग स्मालैण्ड, स्वीडन
[इस खानके लोहेमें सेफस्ट्रामने वैनेडियमकी खोज की थी।]

वैनेडियम—वैनेडियमका धातुके रूपमें उपयोग नहीं किया जाता; विशेष प्रकारके इस्पातको बनानेमें यह काम आता है। पैट्रोनाइट, [illegible], कार्नोटाइट और वैनेडिनाइट इसके महत्त्वपूर्ण खनिज हैं। ये खनिज पेरूमें [illegible] मिलते हैं। इस धातुकी [illegible] अधिकतर पेरूसे ही आता है।

टेल्यूरियम—[illegible] टेल्यूरियम धातु [illegible] है। [illegible] और [illegible] होता है। [illegible] टेल्यूरियमकी [illegible] टेल्यूराइट बनता है और इससे [illegible] धातु [illegible] होता है।

$$H_2TeO_3 + 2SO_2 + H_2O \rightarrow Te + 2H_2SO_4$$

[illegible] और [illegible] धातु [illegible] है। [illegible] धातु
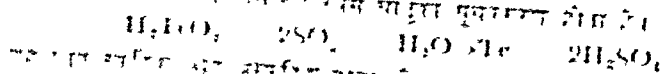
किसी खास काममें नहीं आती थी; परन्तु अब पता चला है कि तापान्तर युग्म (thermo-couple)के लिए यह उपयोगी है।

विस्मथ और टेलुरियम धातुके छोरकी झलाई करके उच्चकोटिका तापान्तर युग्म बनाया जा सकता है। जब उनकी सन्धिको गर्म किया जाता है तो ऊष्मा विद्युत्‌में रूपान्तरित हो जाती है। फिर जब तापान्तर युग्ममें विद्युत् पारित की जाती है तो उसका एक छोर अत्यन्त गर्म हो जाता है और सामनेवाला दूसरा छोर एकदम ठण्डा हो जाता है। इस तरहके तापान्तर युग्मोंका उपयोग करके सर्वथा निःशब्द प्रशीतकोंका विकास किया जा रहा है। उसके अन्दरका कोई पुर्जा हिलने-डोलनेवाला नहीं होता।

बहरे लोग कानोंमें श्रवण-सहाय (hearing aid) लगाते हैं। उसकी बैटरीकी शक्ति कम हो जानेसे बराबर सुनाई नहीं देता, इसलिए बार-बार बैटरी बदलना जरूरी हो जाता है।
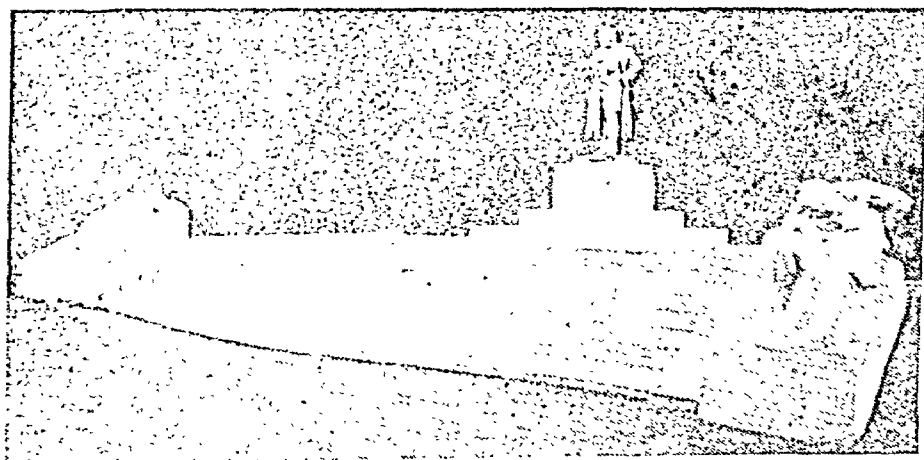
हिडन वर्गमें बन्सनका स्मारक

इस प्रकारके श्रवण-सहायमें तापान्तर युग्मका उपयोग करनेके सम्बन्धमें अनुसन्धान किये जा रहे हैं। शरीरकी सामान्य गर्मीसे यह तापान्तरयुग्म विद्युत् उत्पन्न करेगा और उस विद्युत्‌की सहायतासे श्रवण-सहाय अपना काम करेगा। इस तरह उसको चलानेके लिए किसी बैटरीकी आवश्यकता नहीं रह जाएगी।

रावर्ट विलियम बन्सन

(१८११–१८९९)

रुविडियमके आविष्कारक, जो केकोडिल $As_2(CH_3)_4$ पर प्रयोग करते समय अपनी आँखें गँवा बैठे।

अल्फ्रेड नोबेल (१८३३–१८९६)

वसीयतनामा

मेरी वसूल की जा सकने योग्य बाकी सारी सम्पत्तिकी व्यवस्था निम्नानुसारकी जाए:

मेरी सम्पत्तिके न्यासधारी सारी नक़द रकमको सुरक्षित प्रतिभूतियोंमें लगाएँगे और उसकी एक निधि बनाकर उसके ब्याजसे, पिछले वर्ष जिस किसीने भी मनुष्य जातिको सर्वाधिक लाभ पहुँचानेवाला कार्य किया हो उसे वार्षिक पुरस्कार प्रदान करेंगे। उपर्युक्त ब्याजके बराबर पाँच भाग किये जाएँगे और उनका विभाजन इस प्रकार होगा—भौतिकीके क्षेत्रमें सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार करनेवालेको एक भाग; रसायनके क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान अथवा गवेषणा करनेवाले व्यक्तिको एक भाग; शरीर-क्रिया-विज्ञान और चिकित्साके क्षेत्रमें सबसे महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान करनेवालेको एक भाग; जिस व्यक्तिने साहित्यके क्षेत्रमें आदर्शवादी दृष्टिकोणसे उल्लेखनीय सृजन किया हो उसे एक भाग; और जिस व्यक्तिने विभिन्न देशोंके बीच पारस्परिक भाईचारा कायम करने, स्थायी सेनाकी समाप्ति या संख्या कम करने और शान्ति स्थापित करनेवाले सम्मेलनोंके द्वारा सबसे अधिक या सर्वोत्तम कार्य किया हो उसे एक भाग प्रदान किया जाए।

भौतिकी और रसायनके पुरस्कार स्वीडनकी राजकीय विज्ञान परिषद् (Royal Academy of Sciences) द्वारा, शरीर-क्रिया विज्ञान और चिकित्सा सम्बन्धी पुरस्कार स्टाकहोमकी कैरोलीन मेडिकल इन्स्टीट्यूट द्वारा, साहित्यका पुरस्कार स्टाकहोमकी स्वीडीय साहित्य परिषद् द्वारा और शान्तिके लिए दिया जानेवाला पुरस्कार नार्वेकी संसद (नार्वेजियन स्टार्टिंग) द्वारा निर्वाचित पाँच व्यक्तियोंकी पंच समिति द्वारा दिया जाएगा। मेरी विशेष रूपसे यह इच्छा है कि पुरस्कारोंके वितरणमें प्रत्याशियोंकी राष्ट्रीयता पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया जाए, जिससे सबसे योग्य प्रत्याशी पुरस्कार प्राप्त कर सके, फिर वह चाहे स्केण्डिनेविया-का हो या न भी हो।

पेरिस, नवम्बर २७, १८९५

—अल्फ्रेड बर्नार्ड नोबेल

६ : विस्फोटक पदार्थ

बहुत तेज़ आवाज़के साथ कोई भी पदार्थ टूटता या फूटता है तो कहा जाता है कि 'धमाका हुआ'। ज्वाला या दहनके नामसे पहचानी जानेवाली क्रियामें पदार्थ जलता है, परन्तु आवाज़ नहीं होती और रासायनिक क्रिया एक-जैसी होती रहती है।
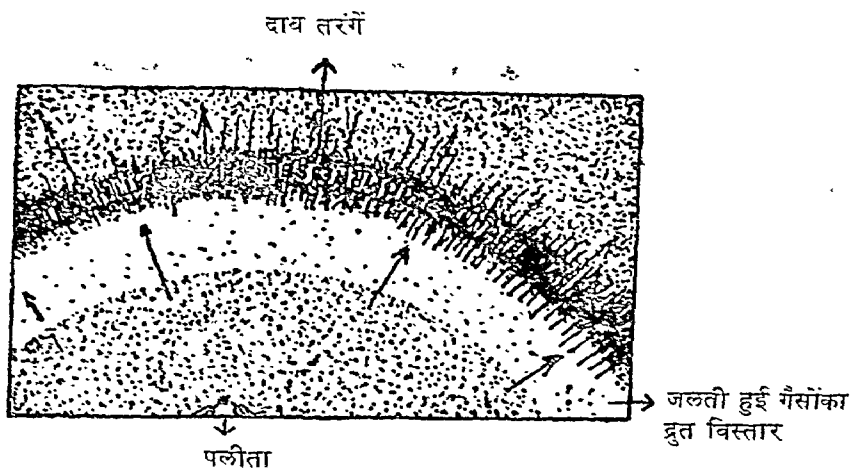
विस्फोटक पदार्थके धमाकेसे उत्पन्न दाव-तरंगें

विस्फोटक पदार्थोंको गर्म करने या फोड़नेसे गैसकी उत्पत्तिके साथ बड़ी तेज़ीसे रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं। उत्पन्न होनेवाली गैसका आयतन बहुत अधिक होनेके कारण वह अत्यधिक दाव पैदा करती है। इस दावके ही कारण भीषण धमाका होता है। यह धमाका हवामें दाव-तरंगें (pressure wave) पैदा कर देता है।

विस्फोटक दो प्रकारके होते हैं। एक प्रकारमें बारूद, नाइट्रोसेल्युलोज जैसे पदार्थोंका समावेश होता है। ये पदार्थ हलकी किस्मके विस्फोटक कहलाते हैं। इन्हें एक सिरे पर जलानेसे आग प्रति सेकण्ड ४०० मीटर लम्बाई तक पहुँच जाती है। इस प्रकारके हलके विस्फोटकोंका कई तरहके कामोंमें और शस्त्रोंकी दूरवर्ती मारके लिए प्रणोदक (propellant) पदार्थोंके रूपमें उपयोग किया जाता है।

भारी विस्फोटकोंकी गिनती दूसरे प्रकारके विस्फोटकोंमें की जाती है। ये ज़बर्दस्त धमाकोंके साथ तेज़ीसे फटते हैं। इनके फटनेसे उत्पन्न होनेवाली दाव-तरंगोंकी गति एक सेकण्ड-

में १००० से ८५०० मीटर जितनी द्रुत होती है। इस कोटिके विस्फोटकोंमें डाइनेमाइट, साइक्लोनाइट, टी-एन-टी-जैसे प्रबल विस्फोटकोंका समावेश होता है। इनसे उत्पन्न गैसोंका आयतन मूल पदार्थसे बीस हजार गुना तक हो जाता है।

बारूद मनुष्य जातिका पहला विस्फोटक माना जाता है, जिसका आविष्कार चीनमें हुआ था। पश्चिमको इससे परिचित करनेका श्रेय अरब लोगोंको है। भारतमें गोला-बारूदका सबसे पहला उपयोग बाबरने इस देशपर अपनी चढ़ाईके समय किया था। सातवीं शताब्दीमें कुस्तुन्तुनियाके निवासियोंने मुसलमानोंसे अपने शहरकी रक्षा करनेमें तेजीसे जलनेवाले एक मिश्रणका उपयोग किया था, जिसे उन दिनों 'यूनानी आग' (Greek Fire) कहा जाता था। तेरहवीं शताब्दीमें मुसलमानोंने अपने जिहादों (crusades) में गन्धक, डामर, नेप्था आदि पदार्थोंका तेजीसे जलनेवाला मिश्रण इस्तेमाल किया था। इतिहासकारोंने उसका वर्णन इन शब्दोंमें किया है: "भयंकर गर्जनके साथ बिजलीकी गतिसे हवामें उड़ता, सूअर-जैसी मोटी पूंछवाला पंखदार जानवर-जैसा दिखाई देता था।"

पहले वास्तविक विस्फोटक बारूदका कब और किसने आविष्कार किया इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता; परन्तु तेरहवीं शताब्दीके एक फ्रान्सीसी पादरी रोजर बेकनको इसके आविष्कारका श्रेय गलतीसे दिया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दीमें विशेषरूपसे अधिकाधिक शक्तिशाली विस्फोटकोंकी खोज, विस्फोटकोंमें निहित क्षमताके विपुल भंडारका अच्छी तरह उपयोग और उसे नियन्त्रणमें रखने तथा शान्ति एवं युद्ध दोनों ही स्थितियोंमें उसका कारगर उपयोग करनेकी दिशामें प्रयत्न किये गए। १३४६ ई० में अंगरेजोंने क्रेसीकी लड़ाईमें जिस बारूदका उपयोग किया था उसकी आजके विस्फोटकोंसे तुलना करने पर हमें इस दिशामें हुई प्रगतिका कुछ अनुमान हो सकता है। कहाँ उस जमानेकी 'घोड़ोंको भड़कानेवाले छोटे-छोटे गोले फेंकनेवाली' तोपें और कहाँ ४८ किलोमीटर तक एक मीट्रिकटन वजनके गोलोंकी मार करने और पूरे-के-पूरे शहरको तबाह कर देनेवाली आधुनिक विशाल तोपें?

बारूद पोटेसियम नाइट्रेट (शोरा-साल्टपिटर : KNO_3), कोयले और गन्धकका मिश्रण है। विस्फोटकके रूपमें उसका कार्य पोटेसियम नाइट्रेटसे पृथक् होनेवाली आक्सीजनकी मददसे गन्धक और कोयलेके द्रुत दहन पर अवलम्बित है।

विभिन्न देशोंके बारूदके मिश्रणमें उसके अवयवों (घटकों)का अनुपात एक-जैसा नहीं होता। थोड़ा-बहुत अन्तर रहता ही है। परन्तु सामान्यतः उसमें ७५ प्रतिशत शोरा, १० प्रतिशत गन्धक और १५ प्रतिशत कोयला होना चाहिए।

वर्तमान कालमें बारूद बनानेकी विधियोंमें काफी सुधार किये गए हैं; परन्तु ये सभी सुधार भौतिक अथवा यान्त्रिक हैं—रासायनिक नहीं। बारूदखानेमें काम आनेवाला बारूद काले रंगका होता है। इस 'काले पाउडर'को बनानेके लिए उसके अवयवोंको महीन पीसकर उनका आपसमें मिश्रण किया जाता है। फिर उस मिश्रणको ताँबे अथवा पीतलकी छलनीसे छाना जाता है। मिश्रण बराबर हो सके इसलिए उसे आर्द्र करके खास प्रकारकी चक्कियोंमें पीसकर रोटियाँ बना ली जाती हैं। इस प्रकार तैयारकी हुई 'रोटियों'के टुकड़े कर उन्हें प्रति वर्ग

इंच ४०० पौण्डका दाब देकर सख्त बनाया जाता है। उसके बाद उन टुकड़ोंको विभिन्न आकारके दाँतोंवाले बेलनोंमेंसे निकालकर महीन दाने बना लिये जाते हैं। फिर इन दानोंको गोल-गोल घूमनेवाले पोले सिलिण्डरमें घुमाकर ग्रेफाइटसे पालिश किया जाता है। पालिश करनेके बाद इस बारूदको ४०° सें० (१०४° फा०) ताप पर हवामें सुखाते हैं। उत्स्फोटन (blasting) विस्फोटकके रूपमें इस बारूदका उपयोग किया जाता है। दोनोंके घनत्व और आयतनके अनुसार उनकी प्रस्फोटकताकी शक्ति न्यूनाधिक होती है। खानोंमें कड़ी परतोंको तोड़ने और आतिशबाजी बनानेमें बारूदका उपयोग किया जाता है। इतना ही नहीं, शेल और टाइमबमके पलीतेकी रिंग (छल्ला) भरनेके लिए और शार्पनेल-जैसे अन्य विस्फोटकोंको फोड़नेके 'चार्ज' (आवेशक)के रूपमें भी उसका उपयोग किया जाता है।

अब तो इस तरहके बारूदसे कहीं शक्तिशाली और सक्षम विस्फोटकोंका आविष्कार हो चुका है।

गन-काटन अथवा बारूदी रूई ऐसा ही एक प्रबल विस्फोटक है। १८४६ ई०में बाल (Basle) विश्वविद्यालयके रसायनशास्त्रके प्राध्यापक क्रिश्चियन शॉन्बिन अपने घर पर एक प्रयोग कर रहे थे। सहसा उनके हाथसे एक बोतल गिर पड़ी। उसमें नाइट्रिक अम्ल और सल्फ्युरिक अम्लका मिश्रण था। वह मिश्रण फर्श पर ढुलक गया। उन्होंने अपनी पत्नीके सूती एप्रनसे उसे पोंछकर उस एप्रनको चिमनीके पास सूखनेके लिए रख दिया। सूखतेमें ही वह एप्रन सहसा जल उठा। सूती एप्रन रूईसे ही तो बना होता है। रासायनिक दृष्टिसे रूईको देखें तो वह सेल्युलोज है। इस प्रकार नाइट्रो-सेल्युलोजका आविष्कार हुआ। नाइट्रो सेल्युलोजमें दोसे चार नाइट्रोसमूह रहने पर उसे पाइरोकिसलिन और छह नाइट्रोसमूह होने पर गनकाटन कहते हैं।

क्रिश्चियन फ्रेडरिक शाम्बिन
[१७९९–१८६८]

इसे बनानेमें रूई और लकड़ीकी लुगदी अथवा घाससे निकाले जानेवाले सेल्युलोजका उपयोग किया जा सकता है। परन्तु विस्फोटक बनानेमें तो रूई निकाल लेनेके बाद बिनौलेसे लिपटे हुए नन्हें रेशोंका ही उपयोग किया जाता है। गन-काटनको सुलगानेसे वह बहुत तेजीसे जलता है, परन्तु उससे धमाका नहीं होता। हाँ, थोड़े मरक्यूरी फुल्मिनेट या लेड एजाइड-जैसे धमाका करनेवाले पदार्थसे धक्का देनेपर उसका तेजीसे विघटन होता और गैसीय पदार्थोंका विशाल आयतन बनता है। इन गैसोंमें नाइट्रोजन, कार्बनके आक्साइड और वाष्प रहता है। ये सभी गैसें रंगहीन होनेके कारण गन-काटनका धमाका होता है, तब धुआँ नहीं निकलता। फिर गन-काटनको गीला भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसीलिए काफी दाब पर दबाकर सख्त किये हुए गन-काटनके चिप्पड़ोंका समुद्री सुरंगों और टारपिडोंमें उपयोग किया जाता है। गन-काटनका विनाशकारी प्रभाव उसके विघटनकी गति पर आधारित है। एक किलोग्राम बारूदको फूटनेमें

१/१०० सेकण्ड लगता है, परन्तु इतने ही वजनके गन-काटनको फूटनेमें सिर्फ १/५०००० सेकण्टका समय लगता है। ऐसे ज्वलनशील विस्फोटकको यदि तोपका गोला दागनेके प्रणोदक पदार्थकी तरह इस्तेमाल किया जाए तो तोप ही फट जाए; इसलिए उसका अति सीमित उपयोग ही किया जा सकता है। लेकिन अत्यधिक विनाशकारी विस्फोटकके रूपमें वह अवश्य वहुत ही मूल्यवान है। धूम्रविहीन विस्फोटक होनेके कारण उसका धूम्रहीन चूर्ण (smokeless powder) वनाया जाता है। गनकाटनको विलेय नाइट्रोकाटनके साथ मिलाकर ईथर (अलकोहल)में गूँधकर गीले आटेकी लोई–जैसा लोचदार कर लिया जाता है। उसके वाद आवश्यक आकार-प्रकारके वेलनमें दवाकर छोटे-छोटे दाने तैयार किये जाते हैं। इसका सवसे पहला उपयोग प्रशियन सेनाने १८६५-में किया था। इस अत्यन्त प्रवल विस्फोटककी विघटन-दरको कम करके, तोपमें प्रणोदककी तरह इस्तेमाल करने योग्य वनानेके लिए डाइफिनाइल एमाइन मिलाया जाता है।

वानस्पतिक तेल या चरवी ग्लिसराइड है। इसलिए वानस्पतिक तेल अथवा चरवीसे वड़े पैमाने पर ग्लिसरीन तैयार किया जा सकता है। पेट्रोलियम परिष्करणशाला (refinery) में भी पेट्रोकेमिकलके रूपमें वड़े पैमानेपर ग्लिसरीन वनाया जा सकता है। नाइट्रिक और सल्फ्यूरिक अम्लोंकी क्रिया द्वारा ग्लिसरीन 'नाइट्रोग्लिसरीन' नामक पदार्थमें परिवर्तित हो जाता है। यह द्रव-पदार्थ अत्यन्त प्रवल विस्फोटक है।

$$\begin{array}{c} CH_2OH \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2OH \\ \text{ग्लिसरीन} \end{array} \xrightarrow[\substack{H_2SO_4 \\ \text{गन्धकाम्ल}}]{\substack{\text{नाइट्रिक अम्ल} \\ 3HONO_2}} {}_{94\%} \begin{array}{l} CH_2-O-NO_2 \\ | \\ CH-O-NO_2 \\ | \\ CH_2-O-NO_2 \\ \text{नाइट्रोग्लिसरीन} \end{array}$$
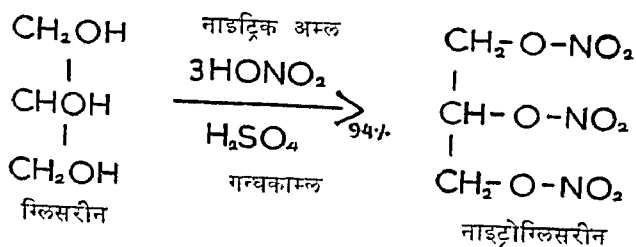
१८४७ ई०में इतालवी रसायनज्ञ सोव्रेरो (१८७३-१८९६)ने इस पदार्थको वनाया था। और उसी समय इसका धमाकेके साथ जो प्रस्फोट हुआ उससे वह मरते-मरते वचा था। इस नाइट्रोग्लिसरीनका उपयोग करना वहुत मुश्किल था। ज़रा-सा जोर पड़ने, धक्का लगने या वरतनके ज़रा-सा टकरा जाने-मात्रसे इसका धमाकेके साथ प्रस्फोट हो जाता था। इसलिए इसे इस तरह रखना पड़ता था कि ज़रा-सा भी धक्का न लगने पाए। एक वार अल्फ्रेड नोवेल (१८३३-१८९६)ने नाइट्रोग्लिसरीनकी वोतलें कीजेलगर मिट्टीमें दवाकर रखी थीं। एक वोतलका द्रव ढुल गया और मिट्टीमें अवशोषित हो गया; परन्तु प्रस्फोट न हुआ। इस घटनाके वाद अल्फ्रेड नोवेलने नाइट्रोग्लिसरीनको कीजेलगर मिट्टीमें मिलाकर रखनेका फैसला किया। ऐसी मिट्टीको प्रस्फोटक पदार्थका धक्का लगने पर ही उसमें मिला हुआ नाइट्रोग्लिसरीन फूटकर धमाका करता था। इस प्रकार नोवेलने डाइनामाइटका आविष्कार कर खूव धन पैदा किया; परन्तु सारे धनका ज्ञानार्जनके हेतु उपयोग किये जानेके लिए एक न्यास वना दिया। आज भी उस न्यासके द्वारा नोवेल पुरस्कार दिये जाते हैं।

डाइनेमाइटका विघटन होने पर नाइट्रोजन, कार्बन डाइआक्साइड, वाष्प और आक्सीजन प्रचुर परिमाणमें निकलती हैं। डाइनेमाइटको फोड़नेके लिए मरक्यूरी फुलमिनेटका उपयोग किया जाता है। डाइनेमाइटसे कहीं प्रबल विस्फोटक ब्लास्टिंग जिलेटीन है। ९२ प्रतिशत नाइट्रो-ग्लिसरीनमें ८ प्रतिशत नाइट्रोकाटन अर्थात् कोलोडीओन मिलाकर ब्लास्टिंग जिलेटीन बनाया जाता है। ब्लास्टिंग जिलेटीनकी खोज भी अल्फ्रेड नोबेलने ही की थी। एक दिन अकस्मात् उसकी अंगुलीसे खून निकल आया। उसने अंगुली पर लगानेके लिए कोलोडीओन मँगवाया। घाव पर लगाते समय सहसा एक विचार उसके मनमें कौंध गया। कोलोडीओन भी नाइट्रोकाटन ही होता है। उसमें नाइट्रोजनका अनुपात डाइनेमाइटसे कम रहता है। लेकिन यदि उसे डाइनेमाइटसे युक्त कर दिया जाए तो? और इस विचारको मूर्तरूप देकर उसने ब्लास्टिंग जिलेटीनकी खोज की। उसमें नाइट्रोग्लिसरीन कीज़ेलगर मिट्टीके साथ नहीं, अपितु एक अन्य प्रस्फोटकके साथ मिला होनेसे विस्फोटकके रूपमें उसकी प्रबलता बहुत ही अधिक हो जाती है।

ब्लास्टिंग जिलेटीनमें पोटेसियम नाइट्रेट, अमोनियम नाइट्रेट, लकड़ीका बुरादा और चाक आदि पदार्थ अलग-अलग अनुपातमें मिलानेसे जेलिग्नाइट नामक पदार्थ बनता है। यह विस्फोटक खानों आदिकी परतोंको तोड़नेमें इस्तेमाल किया जाता है। ब्रिटिश सर्विस पाउडर कॉर्डाइटके नामसे विख्यात है। ६५ प्रतिशत गनकाटन, ३० प्रतिशत नाइट्रोग्लिसरीन और ५ प्रतिशत वेसलीन-को ऐसिटोनके साथ मिलाकर इसे बनाया जाता है। इस मिश्रणको डोरी अथवा रस्सी (chord) के रूपमें द्रव दाब द्वारा मशीनमें निकाला जाता है; इसका कॉर्डाइट (cordite) नाम रखे जानेका यही कारण है।

ऐसिटोनका वाष्पीकरण करके उड़ा देनेसे कॉर्डाइट सींग-जैसा बन जाता है, जिस पर धक्कोंका कोई असर नहीं होता और इसलिए उसे सुरक्षित रखा जा सकता है। दो अत्यधिक प्रबल विस्फोटकोंका जिलेटीकरण कर देनेसे उनसे मनचाहा काम लिया जा सकता है। विस्फोटकोंके विज्ञानमें यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट प्रकारकी खोज मानी जाती है। किसी-न-किसी विधिसे जिलेटीकरण (gelatynize) किया हुआ नाइट्रोकाटन सभी प्रकारके प्रणोदक बारूदोंको बनानेके काममें लाया जाता है।

कोयलेका हवा सहित आसवन करनेसे कितने ही रासायनिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, जिनमें-से कइयोंको विस्फोटक बनाया जा सकता है। इस तरहके विस्फोटक बारूदकी तरह काममें लाये जाते हैं।

फिनोल (कार्बोलिक अम्ल) पर नाइट्रिक और सल्फ्यूरिक अम्लोंके मिश्रणकी क्रिया होनेसे ट्रायनाइट्रो फिनोल उर्फ पिक्रिक अम्ल बनता है। वह कुछ पीला स्फटिकीय पदार्थ होता है, जो रेशम पर पीला रंग चढ़ानेके काम आता है। विस्फोटकके रूपमें उसके भिन्न-भिन्न नाम हैं—मेलि-नाइट, लिड्डाइट, डुनाइट, परटाइट और शिमोसाइट।

अब पिक्रिक अम्लके स्थान पर हाइड्रोकार्बन टोल्युईनसे बना टी-एन-टी० विस्फोटक ज्यादा-तर इस्तेमाल किया जाता है। इसे ट्रायनाइटोल्युईन अथवा संक्षेपमें टी-एन-टी (T. N. T.) अथवा ट्रोटाईल कहते हैं। यह ठोस पदार्थ है और निरापद रूपमें एक जगहसे दूसरी जगह लाया-ले जाया जा सकता है।

इसके ढेर पर गोली दागनेसे भी कोई खास असर नहीं होता। टी-एन-टी का प्रस्फोट पिक्रिक अम्लसे जरा भी निम्न कोटिका नहीं होता। परन्तु उसके कार्बनके परमाणुओंका किसी भी तरह सम्पूर्ण आक्सीकरण न होनेसे टी-एन-टीका प्रस्फोट करने पर काजल-जैसे काले बादल उठते हैं। सम्पूर्ण आक्सीकरण हो सके इसलिए टी-एन-टीमें अमोनियम नाइट्रेट मिलाया जाता है। इस विधि-से बनाया गया पदार्थ ऐमेटोल कहलाता है। उसमें ८० प्रतिशत अमोनियम नाइट्रेट रहता है। यह विस्फोटक प्रथम महायुद्धमें इस्तेमाल किया गया था। टी-एन-टीका द्रवणांक ८१° सें० है और उसे भापमें विगलित किया जा सकता है, जिससे उसके शेल बनाये जा सकें। इस दृष्टिसे यह विस्फोटक अद्भुत गुणसम्पन्न भी है। इसीलिए अन्य कई प्रबल विस्फोटकोंका आविष्कार हो जाने पर भी शेलके रूपमें इसका उपयोग अब भी किया जाता है।

$$C(CH_2-O-NO_2)_4$$
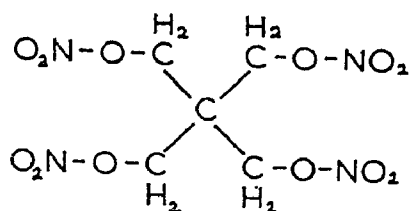
पेण्टा ऐरिथ्रिटोल टेट्रानाइट्रेट (P. E. T. N.)

$$C_6H_2(CH_3)(NO_2)_3$$
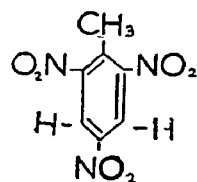
ट्राइनाइट्रोटोल्युईन T. N. T.

टी-एन-टी (T. N. T.) और पी-ई-टी-एन (P. E. T. N.) (पेण्टा ऐरिथ्रिटोल ट्रेटानाइट्रेट)का मिश्रण पेण्टोलाइट कहलाता है।

विगत महायुद्धमें 'ब्लाक बर्स्टर्स'के नामसे प्रसिद्ध बमोंमें भरनेके लिए टी-एन-टी और एल्यु-मीनियम धातुकी महीन बुकनीका उपयोग किया गया था; इस मिश्रणको ट्रिटोनोल कहा जाता है। अभी तक प्रस्फोटक बारूद (bursting charges)की तरह इस्तेमाल किये जाने वाले अन्य सभी विस्फोटकोंमें साइक्लोनाइट (R. D. X.) सर्वोत्कृष्ट है। मिथेनॉल या मिथाइल अलको-हलसे इसे बनाया जाता है।

आज जो अनेक प्रकारके विस्फोटक बनाये जा रहे हैं, वे केवल युद्धमें ही नहीं शान्तिके समय भी अनेक उपयोगी कामोंमें प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणके लिए खानों और सुरंगोंकी खुदाई करनेमें हजारों मजदूरोंका काम इनके द्वारा कुछ ही सेकंडोंमें किया जा सकता है। साथ ही, अनेक प्रकारके अभियान्त्रिक कार्योंमें भी इनका उपयोग किया जाता है। विस्फोटकका नवीनतम उपयोग धातुकर्ममें होने लगा है, जिसके बारेमें पिछले अध्यायमें लिखा जा चुका है। विस्फोटकोंको काममें लाने योग्य बनानेकी विधि खोजे जानेके बादसे उनकी उपयोगितामें बहुत वृद्धि हुई है। अनेक रसाय-नज्ञोंके अथक परिश्रमके परिणामस्वरूप विस्फोटकोंकी अभूतपूर्व सिद्धियाँ हाथ आई हैं।

परिशिष्ट

विस्फोटकों की विशिष्टताएँ और उपयोग

नाम	रासायनिक सूत्र अथवा संरचना	प्रस्फोट का आवेग मीटर/सेकंड	विस्तार का आयतन सी०सी०/१० ग्राम	आघात क्षमता	विशिष्टताएँ और उपयोग
नाइट्रोग्लिसरीन (N.G.)	$C_3H_5(ONO_2)_3$	७४५०	५१५	अति उच्च	तेलीय द्रव, ५०° सें०पर वाष्पशील। नाइट्रोकाटनको प्लास्टिक बनाता है। जिलेटीकरण या कोलोइड करता है। तेलके कुएँ खोदनेमें; डाइनेमाइटका अवयव; दुहरे पाउडरों में।
सीधे डाइनेमाइट	लकड़ीकी लुगदीमें १५ से ६० प्रतिशत N.G. $NaNO_3$ और अम्ल विरोधी पदार्थके साथ	N.G.के अनुपातके अनुसार न्यूनाधिक	N.G.के अनुपातके अनुसार	सामान्यत: निम्न	पनीर-जैसा प्लास्टिक पदार्थ कागजके कारतूसमें भरा हुआ स्फोटक (डिटोनेटर)के द्वारा फोड़ा जा सकता है। जमनेके बाद निकालना भयंकर। गर्मी और घर्षणके प्रभावसे फूटता है। पानी N.G.को स्थानान्तरित करता है। कठोर चट्टानों, शिलाओं, कोयला और अन्य खनिजोंको तोड़नेके लिए। भयंकर विनाश कर सकता है।

ऐमोनिया डाइनेमाइट	ऊपरकी तरह N. G. के खास अंश के बदले $NH_4 NO_3$	९१००-१३००० N.G.के अनुपातके अनुसार बदलता है।	—	सामान्यतः निम्न	इतनी ही विस्फोटक क्षमता वाले सीधे डाइनेमाइटसे सस्ता। नरम शिलाओं, चट्टानों और कठिन जमीनको तोड़नेके लिए उपयुक्त; कोयलेकी खानोंमें कोयलेकी परतोंको तोड़नेमें काम आता है।
जिलेटीन डाइनेमाइट	२.६ प्र०श० कोलोडीओन काटन, लकड़ी की लुगदी या बुरादा, नाइट्रेट आदिके साथ N. G.का मिश्रण	६१०० N. G.के अनुपातके अनुसार बदलता रहता है।]	४१५	निम्न	जेली-जैसा पदार्थ। अति प्रबल विस्फोटक; जलाभेद्य (वाटर प्रूफ)। विशेष विनाशकारी प्रभावके लिए उपयोग किया जाता है। पनडुब्डियोंको उड़ा देता है।
निम्न हिमांक वाले डाइनेमाइट	सीधे डाइनेमाइट या ऐमोनिया डाइनेमाइटके समान परन्तु N. G.के बदले इथिलिन ग्लायकोल डाइनाइट्रेट	—	—	निम्न	०° सें०से नीचे हिमांक; अमरीकाके सभी डाइनेमाइट निम्न हिमांक वाले होते हैं।
ब्लास्टिंग जिलेटीन	N. G. + ७.८ प्रतिशत कोलोडीओन काटन	७८००	५२०	सामान्यतः निम्न	व्यापारिक विस्फोटकोंमें सबसे प्रबल और द्रुत। जलाभेद्य। सुरंगें बनाने, गहरे कुएं खोदने और पनडुब्डियोंके कार्योंमें प्रयुक्त (समुद्रके तलको तोड़नेके लिए)।

नाम	रासायनिक सूत्र अथवा संरचना	प्रस्फोटक का आवेग मीटर/सेकंड	विस्तार का आयतन सी०सी०/ १० ग्राम	आघात क्षमता	विशिष्टताएँ और उपयोग
टी० एन० टी० ट्रायनाइट्रोटोल्युईन	$CH_3C_6H_2(NO_2)_3$	६८००	२६०	निम्न	शेल या ब्लाकके लिए आसानी से पिघाला जा सकता है। (द्रवणांक ८०.३° सें०) स्फोट होनेपर काला धुआँ निकलता है। शेल और बममें चार्जके रूपमें मकान तोड़नेके लिए, और पानी के अन्दर स्फोट करनेके लिए ब्लाक, ढलाईका तापमान कम करनेके लिए मिश्रणमें प्रयुक्त होता है।
सेमेटोल	(१) D. ५० प्रतिशत T.N.T ५० प्रतिशत NH_4NO_3	६३००	३००	निम्न	(१) शेल सरलतासे ढाले जा जा सकते हैं। शेलको फोड़नेके लिए चार्जके रूपमें। द्रवणांक ८५ सें०।
	(२) २० प्रतिशत T.N.T. ८० प्रतिशत $NaNO_3$	५१००	३०० निम्न	निम्न	(२) शेलमें दवाकर भरा जाता है। ये दोनों सफेद धुआँ छोड़ते हैं। T.N.T. के समकक्ष शक्तिवाले बड़े शेलमें T.N.T. के स्थानपर इस्तेमाल किया जा सकता है। ऐसी अमरीकी सैन्य विशेषज्ञोंकी राय।

ऐमोनियम नाइट्रेट मिश्रित विस्फोटक	६० प्रतिशत NH_4NO_3 १५ प्रतिशत T. N. T. १८ प्रतिशत Al ७ प्रतिशत कोयला	आवश्यकतानुसार मिश्रणके अवयवोंमें परिवर्तन किया जाता है। रजकणों-के आकारपर आधारित है।	—	निम्न	प्रणोदक पदार्थके रूपमें कभी-कभी असफल सिद्ध होता है। सरकारी अनुमतिके बिना स्व-तन्त्रतासे उपयोग किये जा सकने वाले विस्फोटकोंमें अतीव लोकप्रिय।
D. N. T. डाइनाइ-ट्रोटोल्यूइन	$CH_3C_6H_3(NO_2)_2$	—	—	”	अन्य प्रबल विस्फोटकोंके साथ मिलानेसे उनके स्फोटक वेग और शक्तिको कम करता है। T. N. T. के साथ इसका २० प्रतिशत मिश्रण चट्टानों आदिको उड़ानेमें प्रयुक्त होता है। ५ प्रतिशत तकका मिश्रण F.H.N. प्रणोदकों और गनकाटनके साथ ६ प्रतिशत मिश्रण हलकी किस्मके बारूदमें इस्तेमाल किया जाता है।
R. D. X. साइक्लोनाइट	सममित (सिमेट्रिकल) ट्रायमेथिलिन ट्रायनाइट्रामाइन	८४००	—	साधारण उच्च	गर्म करने पर २००°से० तापमान-पर विघटन होता है। T. N. T.-से ५० प्रतिशत अधिक प्रबल बम और शेलके चार्जके लिए T. N. T.के साथ मिलाकर इसकी ढलाई की जाती है।
टोर्पेक्स (Torpex)	R. D. X, T N. T. और Al के पाउडर का मिश्रण	—	—	निम्न	अत्यन्त प्रबल पानीके अन्दर इस्तेमाल किये जानेवाले विस्फो-टकके रूपमें पनडुब्बियोंको नष्ट करनेके काम आता है।

नाम	रासायनिक सूत्र अथवा संरचना	प्रस्फोटक का आवेग मीटर।सेकंट	विस्तार का आयतन सी०सी०/१० ग्राम	आघात क्षमता	विशिष्टताएँ और उपयोग
हेक्सोनिट (Hexonit)	N. G. और P. E. T. N. के साथ कम-से-कम १० प्रतिशत R. D. X. का मिश्रण	—	—	निम्न	सबसे प्रबल विस्फोटकोंमेंसे एक।
हैलीट (E. D. N. A.)	इथिलिन डाइनाईट्रामाइन $O_2N.\ NH.\ CH_2$ $CH_2\text{-}NH\text{-}NO_2$	—	—	R D X से न्यून	T. N. T.से अधिक प्रबल परन्तु R. D. Xसे न्यून। R. D X.के हीं समान इस्तेमाल किया जाता है।
पिक्रिक अम्ल २ : ४ : ६ टाइनाइट्राफिनोल	$(OH)\ C_6\ H_2\ (NO_2)_3$	७०००	३००	साधारण उच्च	इसकी ढलाई जोखिम वाली। गर्मियों-के उच्च तापमानमें अस्थायी। तांबे-जैसी धातुओंके संहारक पिक्रेट बनाता है। मरक्यूरी फुल्मिनेटके बदले पलीता लगाने-भरका सीमित उपयोग किया जा सकता है।
ऐमोनियम पिक्रेट (एक्स्प्लोज़िव)	$(NOH_4)\ C_6\ H_2(NO_2)_3$	६५००	२३०	अत्यन्त निम्न	इसका द्रवणांक कम करने वाले अन्य विस्फोटकोंके साथ मिला-कर उपयोग किया जा सकता है। घर्षण और पटके जानेका असर नहीं होता, इसलिए शेलमें ठूँस-ठूँसकर और दबाकर भरा जा सकता है। T. N. T.से कम शक्तिवाला। कवचका भेदन करनेवाले शेलमें काम आता है।

नाइट्रो स्टार्च	स्टार्च के विविध नाइट्रिक ऐसिटेटों का मिश्रण	—	—	निम्न	अत्यन्त सरलतासे जल उठनेवाली सफेद बुकनी। खानोंको तोड़नेमें अन्य विस्फोटकोंके साथ मिलाकर इस्तेमाल किया जाता है।
टेट्रील : ट्राइनाइट्रोफिनाइल मिथाइलनाइट्रामाइन	$(NO_2)_3 C_6 H_2.N.CH_3 NO_2$	७२००	३४०	साधारण उच्च	अत्यन्त प्रबल होनेके कारण इसे अन्य विस्फोटकोंके साथ मिलाकर सहायक चार्जके रूपमें शेलमें भरा जाता है। विमान-विरोधी तोपोंको दागनेमें चार्जके रूपमें।
P. E. T. N. पेंटाइरिथ्रिटोल टेट्रा-नाइट्रेट	$C(CH_2 ONO_2)_4$	८०००	—		अत्यन्त प्रबल विस्फोटकोंमेंसे एक। टेट्रीलकी भाँति सहायक चार्जके रूपमें।
पेंट्रीटोल	T. N. T. और P. E. T. N. का समान भागवाला मिश्रण	—	—	निम्न	अत्यन्त प्रबल बर्स्टिंग चार्जके रूपमें।
मरक्यूरी फुलिमनेट	$Hg(ONC)_2$ १/२ H_2O	३९२०	२१३	फोड़ने वाले के रूप में अति उच्च	चिनगारी या गर्म टाँकीके साथ घिसनेसे बड़ी सरलतासे फूटता है। अन्य विस्फोटकोंके साथ मिलाकर ज्वाला पैदा करनेके काम आता है। औद्योगिक ब्लार्स्टिंगके मुखाग्रमें, शेलके मुखाग्रके फ्यूज़के रूपमें, छोटे कारतूसोंकी टोपियोंमें फोड़नेके लिए फुलिमनेटसे अधिक तापमान चाहिए। अधिक सुरक्षित। प्राइमरों (रंजकों) और फ्यूज़के लिए उपयोगी।

नाम	रासायनिक सूत्र अथवा संरचना	प्रस्फोटका आवेग मीटर/सेकंड	विस्तारका आयतन सी०सी०/१०	आघात क्षमता	विशिष्टताएँ और उपयोग
लेड ऐज़ाइड	$PB(N_3)_2$	५०००	२५०	फुलमिनेट की आधी	
लेड स्टीफनेट	$C_6H(NO_2)_3O_4PB$	—	—	उच्च	लेड ऐजाइडकी अपेक्षा सरलतासे प्रज्वलित किया जा सकता है। रंजकों आदिमें उपयोगी।

प्रणोदित्रों (नोदकों) के रूप में इस्तेमाल किये जाने वाले विस्फोटक

नाम	रासायनिक सूत्र अथवा संरचना	प्रस्फोटका आवेग मीटर/सेकंड	विस्तारका आयतन सी०सी०/१०	आघात क्षमता	विशिष्टताएँ और उपयोग
कोलोइडल नाइट्रोसेल्यूलोज (N.C.) चूर्ण	पाइरो काटन : सेल्यूलोज नाइट्रेट १२% N वाला	सतहके क्षेत्रके अनुसार न्यूनाधिक		निम्न	आर्द्रताग्राही ; दानोंके आकारपर दहन-दरका नियन्त्रण। तेज चमकके साथ निर्धूम ज्वाला निकलती है। अलकोहल-ईथरके साथ इसका जिलेटीकरण होता है।
	गन काटन : सेल्यूलोज नाइट्रेट १३.२ N वाला	—	—	—	तोप, छोटे हथियार और गेल-तमाशोंमें इस्तेमाल किये जाने-वाला बारूद बनानेमें निर्धूम विस्फोटका पाइरोकाटन और गनकाटन मिलाकर १३.१५ प्रतिशत वाला बारूद बनाया जाता है। विद्युत् द्वारा सुलगाये जाने वाले (प्राइमरों) में तांतके रूपमें काम आता है।

कारडाइट	६५ प्रतिशत N C ३० प्रतिशत N. G. ५ प्रतिशत वेसलीन	—	—	निम्न	ऐसिटोन द्वारा जिलेटीकृत। विशाल समुद्री तोपोंके लिए प्रणोदक (इंग्लैण्डमें)।
द्वि समीक्षारीय चूर्ण Doule bace Powder	६०-८०% N. C. ४०.२० N. G.	—	—	—	तेजीसे सुलगता है। तोपके छेदों का संक्षारण करता है। मोर्टर और खेल-तमाशेके वारूदके लिए। प्रणोदक (अमरीकामें इस्तेमाल नहीं होता)।
आल्वा नाइट DINA चूर्ण	डाइ-(२—नाइट्रोआक्सि इथाइल नाइट्रामिन)	—	—	—	समुद्री वारूदमें काम आता है।
राकेट पाउडर (विलायकहीन चूर्ण)	५०% N. G. द्वारा प्लास्टिसाइड नाइट्रो सेल्यूलोज स्थिरता लाने वाले पदार्थ और पोटेसियम क्षार	—	—	—	एक-जैसा जलनेवाला वारूद ४.५ इंच तकके राकेटमें इस्तेमाल किया जाता है।
रासायनिक प्रणोदक	८०-९०%हाइड्रोजनपेरोक्साइड +Ca, Na या K परमेंगनेट पोटास (या पानी वाला)	—	—	—	पेट्रोल ईंधनके आक्सीजनकी की पूर्ति करता है। टरवाइन या या पनडुब्बीके लिए। वी-२ राकेटमें। जेट मोटरोंमें।
	हाइड्रेझीन सल्फेट+ मिथाइल ऐलकोहल	—	—	—	त्वरित दहन। टारपीडो टरवाइन चलानेके लिए।
	सधूम नाइट्रिक अम्ल+एंजामीन	—	—	—	गर्मी और गैस पैदा करता है।
	अम्ल मिश्रण+मोनोइथाइल ऐन्थालीन	—	—	—	वायुयानों के लिए। ऊपर के समान
काला चूर्ण	७५ प्रतिशत KNO_3 या $NaNO_3$ १५ प्रतिशत कोयला १० प्रतिशत गन्धक	४००	५०	प्रकीर्ण निम्न	सस्ता। सधूम ज्वाला। कोयले की खानोंमें ब्लास्टिंग कारतूस। आतिशवाजी और अभ्यासके लिए बम आदि बनानेमें।

७ : रत्न-विज्ञान

हीरा-माणिक आदि मूल्यवान पदार्थ मनुष्यको प्रकृतिकी देन है। ये सब पृथ्वीसे निकलते हैं। परन्तु अन्य खनिजोंकी तुलनामें इन पदार्थोंका रूप अधिक सुन्दर होनेके कारण लोगोंका इनकी ओर अधिक आकर्षण है। इनका रूप-रंग और आकार-प्रकार भी अन्य खनिजोंकी अपेक्षा अधिक रमणीक और आकर्षक होता है। अत्यधिक मूल्यवान होनेके कारण भी ये मनुष्य जातिको अधिक प्रिय लगते हैं। इन सबको सामूहिक रूपसे रत्न कहा जाता है। रत्नोंके दो विभाग किये जा सकते हैं : एक, महारत्न; दूसरे उपरत्न या क्षुद्ररत्न। महारत्न दस हैं : हीरा (diamond), माणिक या लाल (ruby), मोती या मुक्ता (pearl), पुखराज या पुष्पराज (topaz), नीलम या नीलमणि (sapphire), मरकट या पन्ना (emerald), वैदूर्य (beryl), लशुन्य या लस्सुनिया (cat's eye), अक़ीक या गोमेद (agate) और प्रवाल या मूंगा (coral)। उपरत्न छह हैं: बिल्लौरी (fluorspar), सूर्यकान्त (sunstone), चन्द्रकान्त (moonstone), लाजवर्द या लाजावर्त (lapis-lazuli), फ़ीरोजा या पीरोज़ा (turquoise) और स्फटिक या काँचमणि (quartz minerals)।

रत्नोंके सम्बन्धमें अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। ज्योतिष शास्त्रमें रोगोंकी उत्पत्तिका कारण ग्रहोंकी दृष्टि माना ज़ाता है। यदि दृष्टि अच्छी रहे तो रोग नही होते; और हों भी तो अच्छे हो जाते हैं। परन्तु ग्रहोंकी वक्रदृष्टि रोग और दुःखोंका कारण बनती है। वक्रदृष्टि वाले ग्रहोंकी शान्तिके निमित्त ज्योतिष-शास्त्र रत्नोंको धारण और दान करनेकी सलाह देता हैं। ऐसा माना जाता है कि ग्रह-विशेषकी शान्तिके लिए उस ग्रहके खास रत्नको पहन रखनेसे लाभ होता है। माणिक सूर्यका, मोती चन्द्रमाका, पन्ना बुधका, पुखराज गुरुका, हीरा शुक्रका, नीलम शनिका, अक़ीक राहुका, वैदूर्य केतुका—इस प्रकार सात वार और दो राहु-केतु मिलाकर नौ ग्रहोंकी शान्ति-के लिए नौ रत्नोंका उपयोग करनेका सुझाव ज्योतिषी लोग देते हैं। उपरत्नोंका इस तरहके काममें उपयोग नही होता। हीरोंके प्रति मनुष्यका मोह बहुत पुराना है। मनुष्यका कब और कैसे हीरों-से मोह हुआ, यह अब तक एक पहेली ही है। हीरोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ लोगोंकी यह मान्यता है कि हीरे टूटनेवाले तारोंकी बौछारमें पृथ्वी पर आते हैं। संक्षेपमें यह कि हीरा मनुष्यको ईश्वरीय देन है। रत्नोंकी लोकप्रियताके कारणोंकी खोज की जाए तो पता चलेगा कि इन पदार्थोंकी विरल सुन्दरता भी उनमें एक है। रत्नोंका मूल्य उनके प्राकृत स्वरूप पर आधारित नहीं होता; पहलू तराशे जानेके बाद ही उनकी कीमत आँकी जाती है। अगर पहलू कुशलतापूर्वक न तराशे जाएँ तो उनकी कीमत कम हो जाती है।

सच्चा हीरा कोयलेका स्फटिकमय रूपान्तर है। लोहेको खूब गर्म करके और बहुत अधिक दाब पर रखनेसे जो स्थिति पृथ्वीकी सतहके नीचे है (भूगर्भीय स्थिति) कोयले—कार्बनका उसमें विलेय होकर हीरेमें रूपान्तर हो जाता है। रासायनिक विधिसे बनाये गए और खानमेंसे खोदकर निकाले गए हीरेकी उत्पत्तिका ढंग एक ही है। हीरेकी सबसे प्रसिद्ध खानें दक्षिण अफ्रीकामें किम्बर्ली-में हैं। वहाँके हीरे दुनियाभरमें जाते हैं। भारतमें गोल्कुण्डा और पन्नाकी हीरेकी खानें प्रसिद्ध हैं; लेकिन आज उनका महत्त्व अफ्रीकाके आगे बहुत कम हो गया है। आज तो दुनियाकी हीरेकी ९६ प्रतिशत पूर्ति अकेला अफ्रीका करता है। किम्बर्लीने दुनियाको लगभग १० टन हीरा दिया है! हीरोंका साज-सजावटमें, राजा-महाराजाओंके मुकुटोंकी शोभा बढ़ानेमें और धनवानोंके आभूषणोंमें उपयोग किया जाता है। लेकिन इन सामान्य उपयोगोंके अतिरिक्त विज्ञानके आजके युगमें हीरा और भी बहुतसे काम आता है। हीरा सबसे कठोर पदार्थ है। जिस प्रकार बढ़ईका रन्दा लकड़ी-की छीलन उतारता है उसी प्रकार हीरा कठोर वस्तुको छील सकता है। इसलिए कठोर चीजोंको काटनेके लिए हीरेका उद्योगोंमें उपयोग किया जाता है। सिर्फ एक टेण्टेलम नामकी धातु इस मामले-में हीरेसे बढ़कर होती है।

यह तो बताया ही जा चुका है कि पहलू तराशनेके बाद ही हीरेकी कीमत आँकी जाती है। खानमेंसे निकला हुआ हीरा एकदम बदसूरत और कोयले-जैसा दिखाई देता है। उसके पहलू-तराशना भी एक कला है। हालैण्डकी राजधानी एमस्टर्डमके कारीगर इस काममें सबसे कुशल हैं। हीरेको हीरेसे ही काटा जाता है। काले या भूरे रंगके हीरोंको कार्बनाडो कहा जाता है। हीरे-के रूपमें उनका अधिक मूल्य नहीं उठता। लेकिन उनका उपयोग पत्थर काटनेवाले बरमोंकी धार, धातुके तार खींचनेकी डाई आदि बनानेमें किया जाता है। बोर्टका चूर्ण हीरेकी पालिश करने या पहलू तराशनेके काममें लिया जाता है।

प्राकृतिक हीरेके समान बनावटी हीरे बनानेके प्रयत्न १८२०से किये जा रहे हैं। १८९६ ई०में महान फ्रेंच वैज्ञानिक एच० मोइज़ाँने इस दिशामें जो सफलता अर्जित की वह उल्लेखनीय है। इस कार्यके लिए आवश्यक अत्यधिक ऊष्मा प्रदान करनेवाली विद्युत्-भट्ठी बनानेकी विधि उन्होंने खोज निकाली। प्रयोगशालामें हीरा बनानेकी मुख्य समस्या थी कार्बनका हीरेके रूपवाले षट्कोणी स्फटिकोंमें रूपान्तर करना। ग्रेफाइट कार्बनका स्फटीय रूपान्तर है अवश्य, परन्तु हीरे-जैसा नहीं। हीरा बनानेके लिए एकदम शुद्ध कार्बन चाहिए। मोइज़ाँने अपनी विद्युत्-भट्ठीमें अत्यन्त उच्च तापमान पर विगलित लोहमें चीनीसे तैयार किए हुए शुद्ध कार्बनका विलयन कर उस मिश्रणको ठण्डा किया तो लोहकी ऊपरी परतें ठोस हो गई और अन्दरके द्रव लोहको बराबर शिकंजेमें पकड़े रखनेसे काफी मात्रामें दाब उत्पन्न हुआ। परिणाम-स्वरूप उसमें जो कार्बन था वह अत्यन्त सूक्ष्म पारदर्शी
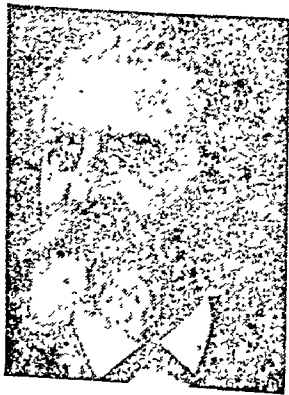
फर्डिनेण्ड फ्रेडरिक हेनरी मोइज़ाँ
(१८५२-१९०७)

हीरेके रूपमें रूपान्तरित हो गया। इसमेंसे हीरेका पृथक्करण करनेके लिए अम्लके द्वारा लोहका विलयन कर अविलेय हीरेको पृथक् कर लिया गया। यह हुई मोइज़ाँ द्वारा हीरा बनानेकी प्रक्रियाकी रूपरेखा। मोइज़ाँ द्वारा बनाया हुआ बड़े-से-बड़ा हीरा ०.७ मिलीमीटरका था। प्रकृतिमें मिलनेवाले बड़े हीरों-जैसे जाज्वल्यमान हीरे अभी तक प्रयोगशालामें बनाये नहीं जा सके हैं।

आजकल बाजारमें कृत्रिम हीरे प्रचुर मात्रामें मिलते हैं। एक प्रकारके जगमगानेवाले (द्युतिमान) काँचसे ये हीरे बनाये जाते हैं। सच्चे और कृत्रिम (इमिटेशन) हीरोंकी पहचानमें रेडियम खूब उपयोगी होता है। रेडियमकी स्थितिमें, अँधेरेमें, सच्चा हीरा फॉस्फ़ोरसकी तरह चमकने लगता है। कृत्रिम हीरेमें यह गुण नहीं होता। वैद्य लोग हीरेकी भस्म बनाते और टानिक-की तरह उसका उपयोग करते हैं। अच्छी प्रकार बनाई हुई हीरेकी भस्म सर्वोत्कृष्ट रसायन समझी जाती है।

एक हीरेको छोड़कर बाकी रत्नोंके मामलेमें विज्ञानने प्रयोगशालामें प्रकृतिका हूबहू अनु-करण कर दिखाया है। नीलम और माणिक बनानेके उद्योग खूब जोरोंसे चल रहे हैं। फ्रान्स, स्वीडेन और जर्मनीमें प्राकृतिक नीलम और माणिकसे हूबहू मिलते-जुलते नग बनाये जाते हैं। द्वितीय महायुद्धके बाद इंग्लैण्डमें भी यह उद्योग विकसित हुआ। माणिक बर्मामें—खासतौर पर मांडलेमें और स्याममें मिलता है। रंग उसका खूब चमकीला—चटक—लाल होता है। इसीसे मिलते हुए आसमानी रंगके रत्न स्याममें निकलते हैं, जो नीलम कहलाते हैं। गहरे नीले रंगके नीलमको शनिका नग या पत्थर भी कहते हैं। माणिकका रंग उसमें विद्यमान क्रोमियमके कारण है। नीलमका रंग टिटेनियमके कारण है। ये पदार्थ खनिज कोरण्डम या घुरुन्द एल्युमीनियम आक्साइडका पारदर्शी रूप हैं।

शुद्ध एल्युमीनियम आक्साइडमें उचित अनुपातमें अन्य आवश्यक पदार्थ मिलाकर विद्युत्-भट्ठीमें अत्यधिक ऊष्मा पर गर्म करके नीलम और माणिक बनाये जा सकते हैं। इन कृत्रिम पदार्थोंका रासायनिक संघटन प्राकृतिक नमूनों-जैसा ही होता है।

पुखराजका रंग सफेद होता है। कोई-कोई पीले रंगका भी होता है। पीले पुखराजको बृहस्पति कहते हैं। इस जातिके रत्न श्रीलंकासे प्राप्त होते हैं।

सुन्दर हरे रंगका पन्ना (मरकत) आपने देखा है? सभी रत्नोंमें पन्ना सर्वाधिक कीमती समझा जाता है। यह पन्ना बेरिलियम नामकी एक विरल धातुके खनिज बेरिलकी जातिका है। पन्नेका हरा रंग उसमें उपस्थित क्रोमियमका आभारी है। बेरिलमें एल्युमीनियम और बालूका बेरिलियमसे संयोजन हुआ है। विज्ञान प्रयोगशालामें पन्ना बनानेमें सफल हो गया है। पन्नाको संस्कृत भाषामें मरकत कहते हैं। महाकवि कालिदासने मेघदूतमें यक्षके घरका वर्णन करते हुए 'मरकत-

शिलावद्ध सोपानमार्गा' कहा है। इससे पता चलता है कि पन्ना वहुत पुरातन कालसे ज्ञात रहा है।

पन्ना रासायनिक शब्दावलीमें वेरिलियम एल्युमीनियम सिलिकेट है। इस पदार्थको स्फटीय वनानेकी एक विधि यह हो सकती है कि अत्यधिक ऊष्मा पर ज्यादा विलेय विलायक इसके लिए खोज निकाला जाए। इस विलयनको ठण्डा करनेसे वह पदार्थ स्फटीय रूपमें पृथक् हो जाता है। पन्ना पानीमें एकदम अविलेय है। इसलिए पानीमें अविलेय पदार्थ वनानेका अनुसन्धान १९१२में जर्मनीमें फ्रांकफुर्ट विश्वविद्यालयके खनिज-विज्ञानके प्राध्यापक नाकेनने आरम्भ किया। विज्ञानकी परिभाषामें जिसे पानीका क्रान्तिक ताप (critical temperature) कहते हैं उस ताप पर पन्ना और उसकी तरहके अन्य अविलेय पदार्थोका विलयन कर उसमेंसे स्फटिकोंको पृथक् करनेमें वे १९२८में सफल हुए। वेरिलियम आक्साइड, एल्युमीनियम और वालूको वरावर आवश्यक अनुपातमें मिलाकर गजवल्लीके वन्द भाप विसंक्रामक (auto clave)में कास्टिक सोडेवाले पानीके साथ ३७०-४०० अंश सेंटिग्रेड ताप पर गर्म किया गया। यह क्रिया थोड़े दिन चालू रखी गई। इस परिस्थितिमें सारे भाप विसंक्रामकमें पानी क्रान्तिक तापके आसपास रहता है। इस विधिसे एक केरेट (०·२ ग्राम) वजनके कृत्रिम पन्ने वे वना सके। आगे चलकर अनेक प्रयोगोंके उपरान्त एक सेंटीमीटर लम्बे और २·३ मिलीमीटर चौड़े पन्ने वनानेमें वे सफल हो गए। इस प्रकार विज्ञानने पन्ने-जैसा कीमती जवाहर भी अपनी प्रयोगशालामें वनाना शुरू कर दिया।

उत्तम मोती गोल, चमकीला और वजनमें भारी होता है। आजकल वाजारमें नकली मोती वहुत मिलने लगे हैं। मोती कैल्सियमका यौगिक है। वढ़िया मोती सौराष्ट्र, ईरान और रामेश्वरम्‌के पास समुद्रमें छिछले पानीके किनारे होते हैं। मोती अपनी सीपमें पकता है। वैद्य मोतीकी भस्म वनाकर शक्तिवर्धक औषधिके रूपमें उसका उपयोग करते हैं।

प्रवाल या मूंगा समुद्रमें रहनेवाले जीवोंके द्वारा पैदा किया जाता है। मूंगोंकी उत्पत्तिका क्रम वड़ा ही रोचक है। मूंगा उत्पन्न करनेवाले जीव कई जातियोंके होते हैं। एक जीवके मर जाने पर उसका जो अवशेष रह जाता है, वही हमारा मूंगा है। ये जीव गोल आकारके होते हैं। इनकी एक मादा एक वारमें करोड़ों अण्डे देती है। ये अण्डे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं और समुद्रके पानीमें पड़े रहते हैं। कुछ समयके वाद अण्डेसे पूर्ण विकसित जीव वनता है। समुद्रके तलमें किसी उपयुक्त स्थानसे वह चिपक कर वैठ जाता है। उसके ऊपर लाखों जीव वैठ जाते हैं और एक-दूसरेको वहुत मजवूतीसे पकड़े रहते हैं। कुछ समयके वाद नीचेवाला जन्तु मर जाता है। लेकिन ऊपरवाले नये-नये जन्तुओंमें वरावर वृद्धि होती रहती है। यह प्रक्रिया निरन्तर चला करती है। परिणामस्वरूप समुद्रमें मूंगेके वड़े-वड़े पहाड़ वन जाते हैं। मृत जन्तुओंकी अस्थियोंका अवशिष्ट भाग ही हमारा मूंगा है। मूंगा पैदा करनेवाले जन्तुओंका रंग सामान्यतः लाली लिये हुए गुलावी होता है; इसीलिए मूंगा आमतौर पर लाल रंगका होता है। मूंगेमें कैल्सियम प्रचुर मात्रामें रहता है। सफेद मूंगे भी होते हैं। प्रवाल भस्म मूंगेसे ही वनाई जाती है, परन्तु सफेद मूंगा

औषधिके काम नहीं आता। काले रंगके मूँगे ईरानकी खाड़ीमें, गुलाबी और लाल रंगके मूँगे भूमध्य-सागरमें होते हैं। भारत और इटलीके निवासी उन्हें पवित्र मानते हैं।

अब क्षुद्र रत्नोंको लिया जाए। फ्लुअरस्पारको हिन्दीमें बिल्लौर नाम दिया गया है। संस्कृतमें इसे वैक्रान्त कहते हैं। दिखनेमें यह हीरे-जैसा लगता है। खूब गर्म करनेसे इसमें चमक आ जाती है; लेकिन अत्यधिक गर्मी पाकर पिघल जाता है। खनिजोंसे धातुशोध करनेमें इसका उपयोग प्रद्रावकों (flux) के रूपमें किया जाता है। तुरमेरीन और वैक्रान्त एक-जैसे प्रतीत होते हैं। वैक्रान्तमें फ्लोरिन होता है; वह कैल्सियम और फ्लोरिनका यौगिक है। तुरमेरीन एल्युमीनियम और बालूका यौगिक है। फ्लुअरस्पार उत्तर भारतमें सर्वत्र मिलता है। सामान्यत: वह स्फटिक पत्थरोंके साथ देखनेमें आता है। गुजरातके सुप्रसिद्ध वैद्य श्री बापालाल भाई अपने 'रस-शास्त्र'में लिखते हैं कि पहले इसका दवाइयोंमें खूब उपयोग किया जाता रहा होगा। ऐसा अनमोल पदार्थ आज सन्देहास्पद हो गया है।

सूर्यकान्त सोडियम, एल्युमीनियम और कैल्सियम धातुओंका बालूके साथ जटिल प्रकार-का यौगिक है। बर्मा, रूस और नार्वेमें यह प्राप्त होता है। वैद्य लोग इसकी भस्म बनाते हैं। चन्द्रकान्त बर्मा और श्रीलंकामें मिलता है।

लाजवर्द या लाजावर्तका संस्कृत नाम राजावर्त है। हिन्दीमें इसे रावट भी कहते हैं, जो इसके गुजराती नाम 'रेवटी'से मिलता-जुलता है। राजस्थानमें अजमेरसे थोड़ी दूर पहाड़ियोंमें-से निकाला जाता है। इसका मुख्य उपयोग रंगमें किया जाता है। इसकी महीन बुकनी मकानोंकी पुताई और घरको सुशोभित करनेके काम आती है। इसका रंग नीलसे मिलता-जुलता होता है, इसलिए इसे 'अल्ट्रामरीन' भी कहा जाता है।

फीरोज़ा या पीरोज़ाका रंग नीला अथवा हरिताभ-नीला होता है। यह ईरानमें मिलता है। यह रत्न बहुत दीप्तिमान नहीं होता। गर्मियोंमें इसका रंग धूसर हो जाता है।

स्फटिक पहलूवाली सिकता (बालू)के रूपान्तरण हैं। अपने रंगोंके लिए वे अपने अन्दर विद्यमान कतिपय धातुओंके अंशोंके आभारी हैं। शुद्ध स्फटिकको अंग्रेजीमें 'रॉक क्रिस्टल' (rock-crystle) कहते हैं। प्रकृतिमें स्फटिकके नाना विध रूप मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त कुरुविन्द (कोरण्डम corundum)के पत्थर भी होते हैं, जो एमरी पत्थरोंकी कोटिमें आते हैं। कुरुविन्दको कहीं-कहीं बोलचालकी भाषामें कुरंज अथवा करंजका पत्थर भी कहते हैं। यह लाल रंगका बहुत ही कठोर पत्थर होता है। कुरुविन्दकी पारदर्शक और

रंगीन जातियाँ रत्नोंकी तरह इस्तेमाल की जाती हैं। अपारदर्शक कुरुविन्द अपनी कठोरताके कारण कड़ी चीजोंको काटनेके लिए अपघर्षक (abrasives) की तरह काम आते हैं।
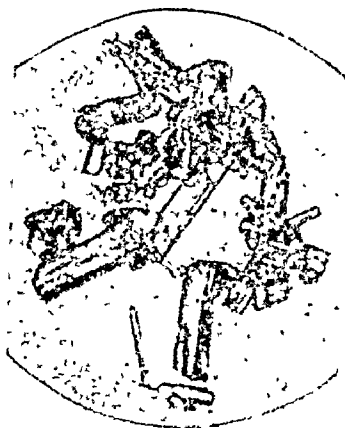
एक ही स्फटिक—भिन्न-भिन्न प्रकाशमें

खंड : ३
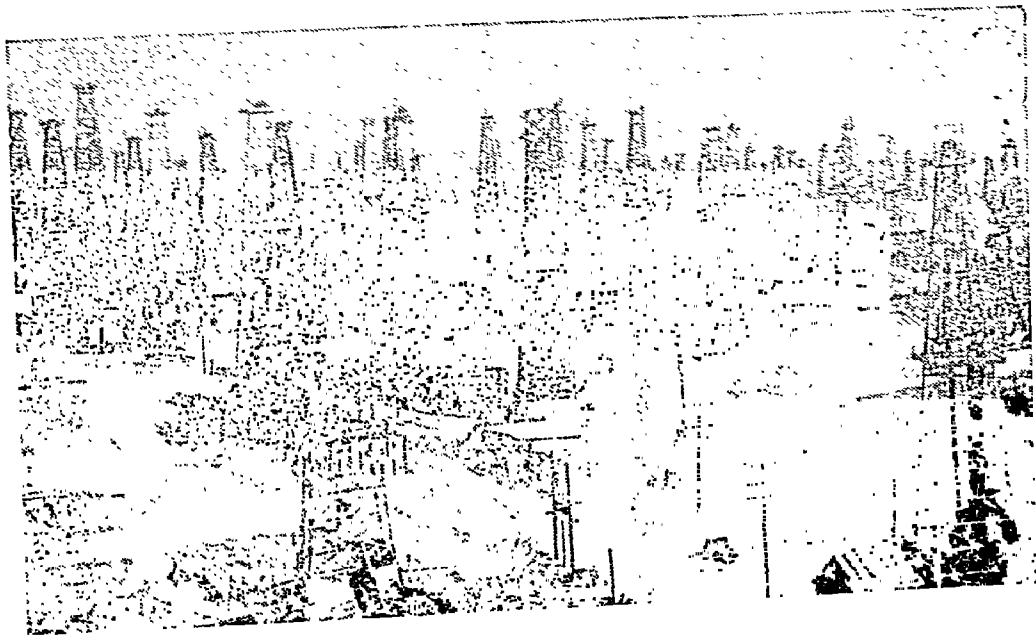
डेरिकका जंगल (केलिफोर्निया)

रब अल-खाली (साऊदी अरब) में तेलकी खोज—भूकम्प-लेखीय सर्वेक्षण

८ : कार्बनिक रसायनकी भूमिका

इतना तो हम जानते ही हैं कि प्रत्येक द्रव्य परमाणुओं और उनके अणुओंसे बना होता है।
परमाणुओंके अन्दर प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलैक्ट्रॉन-रूपी विद्युत्कण होते हैं। परमाणुकी आन्तरिक
रचना बहुत-कुछ हमारे सौर-मण्डलसे मिलती-जुलती है। परमाणुमें एक केन्द्र (नाभिक—
nucleus) रूपी सूर्यके चारों ओर भिन्न-भिन्न कक्षाओंमें परिभ्रमण करते हुए ग्रहरूपी इलैक्ट्रॉन
होते हैं। परमाणुकी यदि सौर-मण्डलके रूपमें कल्पना करें तो उसके मध्य भागकी निकटस्थ कक्षा
पर उसके इर्द-गिर्द घूमते हुए इलैक्ट्रॉनकी सूर्यसे ३६ लाख मीलकी दूरी पर स्थित प्लूटो ग्रहसे तुलना
की जा सकती है। परमाणुके केन्द्रमें प्रोटॉन और न्यूट्रॉनका बना हुआ नाभिक (न्यूक्लीऑन)
अवस्थित रहता है। प्रोटॉनमें केवल धन विद्युत् रहती है, जबकि न्यूट्रॉनमें धन और ऋण
(positive and negative) दोनों ही समान मात्रामें रहती हैं। ग्रहोंके रूपमें घूमते हुए
इलैक्ट्रॉनोंमें ऋण विद्युत् रहती है, जिसकी मात्रा प्रोटॉनकी धन विद्युत्के बराबर होती है।
इसलिए कोई भी अखण्डित परमाणु विद्युत्-भारवाला नहीं होता। लेकिन यदि इन दोनोंमेंसे
किसी एक प्रकारकी विद्युत्को पृथक् कर दिया जाए तो शक्ति अथवा ऊर्जा उत्पन्न होती है। पर-
माणु ऊर्जा अथवा परमाणु शक्तिका रहस्य विद्युत्के इस पृथक्करणमें निहित है।

सभी मूलतत्त्वोंमें हाइड्रोजन सबसे हलका है। हाइड्रोजनके एक परमाणुमें १ प्रोटॉन केन्द्रकमें
और उसके आसपास १ इलैक्ट्रॉन घूमता रहता है। हाइड्रोजनका अन्तर्राष्ट्रीय संकेत H (एच)
है। रसायन शास्त्रमें प्रत्येक मूलतत्वके लिए निश्चित संकेतका उपयोग किया जाता है। उदाहरणके
लिए आक्सीजनका संकेत O (ओ), नाइट्रोजनका N (एन) और कार्बनका C (सी) है। भिन्न-
भिन्न मूलतत्त्वोंके परमाणुओंके आयतन और गुणोंमें भी भिन्नता होती है। पदार्थोंके अणुओंमें भिन्न-
भिन्न प्रकारके परमाणुओंका अस्तित्व हो सकता है; उदाहरणके लिए पानीके अणुमें दो हाइड्रोजनके
और एक आक्सीजनका परमाणु होते हैं। संकेतोंके द्वारा 'पानी'के अणुको निम्न प्रकारसे प्रदर्शित
किया जा सकता है :

$$H—O—H \text{ अथवा } H_2O$$
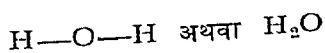
पानीको इसीलिए हाइड्रोजन और आक्सीजनका यौगिक (compound) कहा जाता है।

परमाणुकी बाह्यतम कक्षाके इलैक्ट्रॉनके विनिमयके परिणामस्वरूप अर्थात् परमाणुके
द्वारा बाह्यतम कक्षाके इलैक्ट्रॉनोंका त्याग अथवा ग्रहण करने पर संयोग अथवा संयोजन होता
है। इसे सह-संयोजकता (co-valency) कहते हैं; और एक मूलतत्त्वका दूसरे मूलतत्त्वके
साथ रासायनिक संयोग उत्पन्न करनेकी शक्ति (क्षमता) संयोजकता (valency) कहलाती

है। इस संयोजकताकी कल्पना यदि हम भुजाओंके रूपमें करें तो विषयको समझनेमें सरलता होगी। कार्बनकी संयोजकता चार है, इसलिए उसके साथ हाइड्रोजनका संयोग निम्न प्रकार होगा :

$$\begin{array}{c} H \\ | \\ H-C-H \\ | \\ H \end{array} \qquad \text{अथवा} \qquad CH_4$$
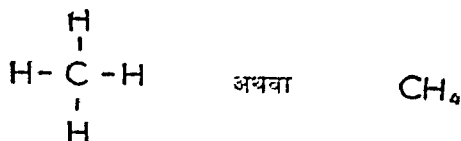
यह पदार्थ मेथैन अथवा आर्द्र गैस है, जो खनिज तेल अथवा कोयलेकी खानोंमें प्राप्त होने वाली गैसमें रहता है।

कार्बनिक यौगिकों (रासायनिक पदार्थों)को प्रदर्शित करनेके लिए विभिन्न परमाणुओंकी पारस्परिक संयोजकता 'इलैक्ट्रॉनके एक जोड़के लिए एक रेखा'के रूपमें दिखाई जाती है। इस रेखा-को संयोजकताका बन्ध (valency bond) कहते हैं। एकबन्ध (single bond) एक रेखाके द्वारा, दो बन्ध (double bond) दो रेखाओंके द्वारा और तीन बन्ध (triple bond) तीन रेखाओंके द्वारा, निम्नानुसार दिखाया जाता है :

$$C-C \qquad C=C \qquad C\equiv C$$
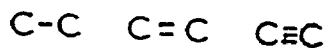
एक बन्ध   दो बन्ध   तीन बन्ध

इस बातको याद रखना चाहिए कि कार्बनका परमाणु 'चतुर्भुज' (चार संयोजकतावाला) होनेके कारण एक संयोजकतावाले हाइड्रोजनके चार परमाणुओंसे सन्धि (संयोग) कर सकता है। नीचेके चित्रमें नाइट्रोजन और आक्सीजनके संकेतोंके साथ उनकी संयोजकता रेखाके द्वारा दिखाई गई है :

मेथैनका सूत्र CH_4 है, यह हम देख आए हैं। इस गैसके चार हाइड्रोजन परमाणुओंमेंसे एकके स्थान पर क्लोरिनका प्रतिस्थापन करनेसे CH_3Cl पदार्थ बनता है। यह पदार्थ मेथाइल क्लोराइड कहलाता है। इस गैसका उपयोग प्रशीतकों (रैफ्रिजेरेटरों)में ठण्डक उत्पन्न करनेके लिए किया जाता है। मेथैनके दो हाइड्रोजन परमाणुओंके स्थान पर क्लोरिनके दो परमाणुओंका प्रतिस्थापन करनेसे CH_2Cl_2 बनता है। इसे मेथिलीन डाइ-क्लोराइड कहते हैं। यदि हाइड्रोजनके तीन परमाणुओंको हटाकर क्लोरिनके तीन परमाणुओंका प्रतिस्थापन किया जाए तो $CHCl_3$ पदार्थ मिलता है, जिसे क्लोरोफार्म कहते हैं और जिसका उपयोग आपरेशन करनेसे पहले रोगीको बेहोश करनेमें किया जाता है। इस प्रकार मामूली मेथैन गैससे इतने उपयोगी पदार्थ बन सकते है। अब हम मेथैन-जैसे कुछ पदार्थोंको लेकर उनकी सूत्र-रचना और नामकरणकी विधिको समझने-का प्रयत्न करेंगे।
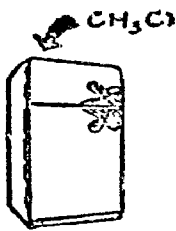
मेथाइल क्लोराइड
(प्रशीतकर)
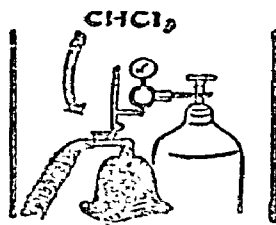
क्लोरोफार्म
(निश्चेतक)

कार्बन टेट्राक्लोराइड
(अग्निरोधक एवं दाग मिटाने-
के लिए काममें आनेवाला द्रव)

CH_4	मेथेन	C_4H_{10}	ब्यूटेन
C_2H_6	एथेन	C_5H_{12}	पेण्टेन
C_3H_8	प्रोपेन	C_6H_{14}	हेक्सेन

CH_4में से एक Hका क्लोरिन द्वारा विस्थापन करनेसे CH_3Cl बनता है। इसे मेथाइल क्लोराइड कहते हैं; यह हम देख आये हैं। इसमें CH_3 अणु समूह अथवा मूलक (radical)-की तरह आचरण करता है और मेथाइल मूलक (रेडिकल) कहलाता है। इसे और इसके-जैसी अन्य इकाइयोंको मूलक कहते हैं। इस तरहके अणुसमूहको संक्षेपमें लिखनेके लिए रोमन वर्णमाला-के R (आर) अक्षरका उपयोग किया जाता है।

अब हम कुछ मूलकों (रेडिकलों) का परिचय प्राप्त करेंगे।
एथेनसे C_2H_5, प्रोपेनसे C_3H_7 और ब्यूटेनसे C_4H_9 आदि रेडिकल प्राप्त होते हैं। ये सब क्रमशः एथिल, प्रोपिल, ब्यूटिल आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं।

मेथेनमेंसे हाइड्रोजनके दो अणु कम करनेसे जो रेडिकल बनता है वह मेथिलीन कहलाता है। इसी प्रकार C_2H_4 एथिलीन, C_3H_8 प्रोपिलीन, C_4H_8 ब्यूटिलीन नामोंसे पुकारे जाते हैं।

जिस रेडिकल (मूलक) के अन्तमें OH जुड़ता है उसे ऐलकोहल कहते हैं। जैसे कि CH_3OH मेथाइल ऐलकोहल, C_2H_5OH एथिल ऐलकोहल, C_3H_7OH प्रोपिल ऐलकोहल आदि। नामकरणकी आधुनिक पद्धतिके अनुसार जिस हाइड्रोकार्बनसे ऐलकोहल बनता है उसमें 'ol' लगाकर ऐलकोहल-का नाम दे दिया जाता है। इसीलिए मेथाइल ऐलकोहलको मिथेनॉल, एथिल ऐलकोहलको एथेनॉल और उसके बाद प्रोपेनॉल आदि कहा जाता है।

मेथेन, एथेन, प्रोपेन आदि हाइड्रोकार्बनके पूरे समूहको सूचित करनेके लिए सामान्य सूत्र है— C_nH_{2n+2} इस सूत्रमें Nके स्थान पर १, २, ३ आदि अंक रखनेसे जुदे-जुदे हाइड्रो-कार्बनके सूत्र बनते हैं। इस प्रकारके यौगिकोंको ऐलकोहल या पैरैफिन कहते हैं। हाइड्रोकार्बन-के कतिपय अन्य वर्गोंकी एक तालिका इस आगामी अन्तमें दी गई है।

पैरैफिन अथवा ऐलकाइन पदार्थ

इस श्रेणीका सामान्य सूत्र C_nH_{2n+2} है। इसमें प्रथम CH_4—मेथेन है, जो मुख्यतः प्राकृतिक गैसमें रहता है। इसमें एक हाइड्रोजनके स्थान पर CH_3—मेथाइल समूह रखनेसे श्रेणीका दूसरा पदार्थ C_3H_6—एथेन होता है। इसी तरह एथेनसे तीसरा पदार्थ प्रोपेन C_3H_8, प्रोपेनसे

रसायनकी झाँकी :: १९९

चौथा पदार्थ ब्यूटेन C_4H_{10} आदि क्रमानुसार इस श्रेणीके पदार्थ रहते हैं। अगर किसी रासायनिक पदार्थमें परमाणुओंकी संख्या एक-जैसी हो, परन्तु उनकी आन्तरिक संरचनामें भिन्नता रहे तो ऐसे रासायनिक पदार्थोंको क्रमशः प्रकृत (normal) और सम (iso) कहा जाता है। उदाहरणार्थ

$CH_3CH_2CH_2CH_3$ ⟶ $CH_3CH_3CH_3$ (| CH)

प्रकृत ब्यूटेन
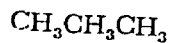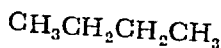
सम ब्यूटेन
(आइसो ब्यूटेन)

जैसे-जैसे अणुका विस्तार होता जाता है उसके समावयवों (isomer)की संख्या भी बढ़ती जाती है। ब्यूटेनके ऊपर दिखलाये अनुसार दो समावयव हैं; आक्टेनके १८ और ट्रायडिकेनके तो ८०२ समावयव होते हैं।

इस श्रेणीके प्रत्येक पदार्थके नामके अन्तमें 'ane' प्रत्यय लगता है। नामके अन्तमें 'yl' प्रत्यय जुड़ा होनेसे उस पदार्थके प्रकृत होनेका पता चलता है। ऐलकाइन पदार्थसे एक हाइड्रोजन परमाणु हटा दिया जाए तो शेष भागके नामके पीछे 'आइल' (yl) लगाकर बोला जाता है, जैसे कि :

$—CH_3$ मेथाइल
$—C_4H_7$ ब्यूटाइल
$—C_nH_{2+1}$ ऐलकाइल (ऐलकाइन परसे ऐलकाइल सामान्यत:)
$—CH—CH_3$ (| CH_3) आइसो प्रोपाइल
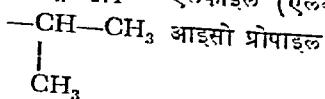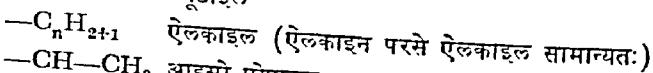
विवृत शृंखलावाले असंतृप्त हाइड्रोकार्बन

इस श्रेणीमें आनेवाले पदार्थ ओलेफीन, डाइओलेफीन और एसिटिलीन प्रकारके हाइड्रोकार्बन हैं। ओलेफीन अथवा ऐलकाइन वर्गके पदार्थोंका नामकरण ईन (-ene) अथवा ईलीन (-ylene) प्रत्यय लगाकर किया जाता है, यथा एथिलीन (ethylene) और प्रोपिलीन (propylene)। डाइओलेफीनके नामोंके अन्तमें डाईन (-diene) प्रत्यय लगता है; उदाहरणार्थ ब्यूटेडाईन (butadiene)। ओलेफीनमें कार्बनके परमाणु एक द्विबन्ध, डाइओलेफीनमें दो द्विबन्ध और एसिटिलीनमें एक त्रिबन्ध होता है। परमाणुओंके अन्दर इलेक्ट्रॉनोंके विनिमयके कारण ये बन्ध (bonds) अस्तित्वमें आते हैं और इनके परिणामस्वरूप एक मूलतत्त्वका दूसरे मूलतत्त्वके साथ रासायनिक संयोग सम्भव होता है।

ऐलिचक्रिक—नैफ्थीन अथवा चक्र-पैरैफिन
(Alicyclic-Naphthene or Cycloparaffin)

इन पदार्थोंकी सामान्य संरचना दिखलानेके लिए C_nH_{2n} सूत्रका प्रयोग किया जाता है। पैरैफिनकी तरह ये पदार्थ संतृप्त हाइड्रोकार्बन हैं, लेकिन प्रत्येक अणुमें कार्बनके परमाणु

विवृत श्रृंखलाके स्थान पर वलयाकार जुड़े रहते हैं। इसीलिए इन पदार्थोंको चक्रीय-चक्र-पैरैफिन कहा जाता है। इनमेंसे कुछेकके नाम इस प्रकार हैं: चक्र-प्रोपेन (साइक्लो प्रोपेन), चक्र-ब्यूटेन (साइक्लो ब्यूटेन), चक्र-हेक्सेन (साइक्लो हेक्सेन) आदि।

सुरभित (aromatic) हाइड्रोकार्बन

कार्बनके परमाणु सीधी (विवृत) श्रृंखलामें और वलयाकार भी जुड़ सकते हैं। सीधी श्रृंखलामें जुड़नेवाले पदार्थोंकी चर्चा हम ऊपर कर आए हैं। अब हम वलयाकार जुड़नेवाले बेनज़िन जैसे रासायनिक पदार्थोंकी चर्चा करेंगे।

ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन श्रेणीके अधिकांश पदार्थ सुगन्धित होनेके कारण सुरभित अथवा सौरभीय पदार्थ कहलाते हैं। इनके नामके अन्तमें 'ईन' (-ene) प्रत्यय लगता है। बेनज़िन, टोल्युईन, ज़ाइलीन, नैफ्थेलीन, एन्थ्रेसीन आदि पदार्थ सुरभित कोटिके हैं और भूगर्भसे निकाले जानेवाले पेट्रोलियममें पाये जाते हैं।

कोलतार अथवा तारकोल या कोयलेके डामरसे बेनज़िन नामक द्रव पदार्थ निकलता है। यह छह कार्बन और छह हाइड्रोजन परमाणुओंका बना होता है—वैज्ञानिकोंको इस तथ्यका पता तो चल गया, लेकिन इसके सूत्रको श्रृंखलाके रूपमें प्रदर्शित नहीं किया जा सकता था, इसलिए वैज्ञानिक बड़ी कठिनाई में पड़ गए। अन्तमें जर्मन रसायनज्ञ केक्युलेने बेनज़िनके सूत्रको नीचे लिखे ढंगसे निर्धारित किया:

H
C
HC CH
HC CH
C
H
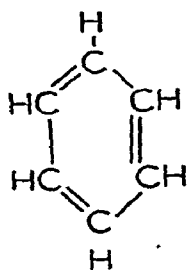
बेनज़िनका सूत्र

इस सूत्रको केवल इस ⬡ रूपमें भी प्रदर्शित किया जाता है।

अभी तक हमने बेनज़िन और नैफ्थेलीन-जैसे चक्रीय पदार्थोंका अध्ययन किया। इन सबमें कार्बन परमाणु एक दूसरेसे जुड़े रहते हैं। इस प्रकारके यौगिक समचक्रीय (homocyclic) कहलाते हैं। कार्बन परमाणुओंके साथ नाइट्रोजन, गन्धक या आक्सीजन-जैसे अन्य मूलतत्त्व भी यदि चक्रकी रचनामें भाग लें तो इस तरहके यौगिकोंको विषमचक्रीय (heterocyclic) कहते हैं। क्लोरोफिल, हेमोग्लोबिन, कई तरहके वानस्पतिक रंग, ऐलकालायड आदि इसी प्रकारके विषमचक्रीय यौगिक हैं। यहाँ यह तथ्य विशेष रूपसे उल्लेखनीय है कि कार्बन पदार्थोंकी कुल संख्याका पिचहत्तर प्रतिशत विषमचक्रीय होता है।

हाइड्रोकार्बनोंकी रासायनिक क्रियाएँ

ताप और दाव पर आधारित अनेक रासायनिक क्रियाएँ हाइड्रोकार्बन पर की जा सकती हैं, जिनमेंसे प्रमुख इस प्रकार हैं:

(१) पोलिमेराइजेशन (बहुलीकरण) : दो असंतृप्त अणुओंके बीच होनेवाली रासायनिक क्रियाको पोलिमेराइजेशन कहते हैं। इस क्रियाके द्वारा दो अणु आपसमें संयुक्त होकर एक बड़ा असंतृप्त अणु बनाते हैं; उदाहरणार्थ:

$$C_4H_8 + C_4H_8 \longrightarrow C_8H_{16}$$
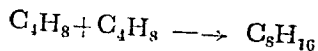
(२) ऐल्काइलेशन (ऐल्काइलीकरण) : ओलेफ़ीन और आइसोपैरैफिनकी पारस्परिक क्रियाके परिणामस्वरूप एक बड़ी शाखावाला पैरैफिन पदार्थ उत्पन्न होता है; उदाहरणार्थ:

$$C_4H_8 + C_4H_{10} \longrightarrow C_8H_{18}$$
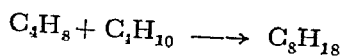
(३) हाइड्रोजिनेशन (हाइड्रोजनीकरण) : इस क्रियामें असंतृप्त हाइड्रोकार्बन और हाइड्रोजन गैसके संयोगसे पैरैफ़िन उत्पन्न होता है; उदाहरणार्थ:

$$C_8H_{16} + H_2 \longrightarrow C_8H_{18}$$
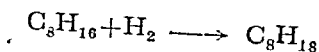
(४) डी-हाइड्रोजिनेशन (डी-हाइड्रोजनीकरण) : इस क्रियाके द्वारा पदार्थमेंसे हाइड्रोजनके परमाणुओंका अवस्थापन होता है; उदाहरणार्थ:

$$C_4H_{10} \longrightarrow C_4H_8 + H_2$$
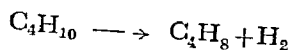
(५) ऐरोमेटाइज़ेशन (सुरभितकरण) : इस रासायनिक क्रिया द्वारा विवृत शृंखलामें जुड़े पदार्थोंसे वलयाकार पदार्थ बनाये जाते है, जिसके परिणामस्वरूप हाइड्रोजनके परमाणुओंका अवस्थापन होता है; उदाहरणार्थ :

$$C_7H_{16} \longrightarrow C_6H_5CH_3 + 4H_2$$
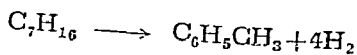
(६) क्रैकिंग (भंजन) : इस क्रियामें बड़े अणु टूटकर छोटे अणुओंमें रूपान्तरित होते है। पैरैफ़िन हाइड्रोकार्बन पर क्रैकिंगकी क्रिया करनेसे उसमेंसे पैरैफ़िन और ओलेफ़ीन वर्गके पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है; उदाहरणार्थ:

$$C_{16}H_{34} \longrightarrow C_8H_{18} + C_8H_{16}$$
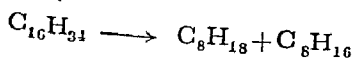
इस क्रियाके द्वारा उपोत्पादके रूपमें अन्य पदार्थ भी मिलते हैं, जिनमें कार्बन और ऊपर (१)से (५) तक वर्णित क्रियाओंसे उद्भवित पदार्थ प्राप्त होते है। तापमान, दवाव और समयके नियन्त्रण-के द्वारा कई भिन्न-भिन्न क्रियाएँ की जा सकती है। उत्प्रेरकों (Catalysius)की सहायतासे ये क्रियाएँ सुगम हो जाती है। इस प्रकारकी क्रियाओंको उत्प्रेरकीय भंजन (catalytic cracking) कहते हैं। उच्च तापमान पर केवल गर्मीके सहारे किये जानेवाले भंजनको ऊष्मीय

भंजन (thurmal cracking) कहते है। इस प्रकारकी भंजन क्रियामें ताप १०००° फा० तक होता है और दाब प्रति वर्ग इंच पर १००० पौण्ड तक रखना पड़ता है।

(७) आइसो मेटाइजेशन (समावयवीकरण अथवा स्वरूपान्तरण) : इस क्रियामें अणुओंकी संरचना ही बदल जाती है :

$$CH_3.CH_2.CH_2CH_2.CH_3 \longrightarrow CH_3CH_2CH<^{CH_3}_{CH_3}$$
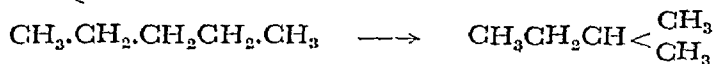
प्रकृत (नार्मल) पेण्टेन — सम (आइसो) पेण्टेन

(८) रिफार्मिग (पुनर्गठन) : इस क्रियामें एक पदार्थको उसके समावयव (isomer) अथवा विवृत श्रृंखलावाले पदार्थको चक्रीयस्वरूपमें परिवर्तित किया जाता है।

सजात श्रेणी (homologous series)

नाम	सामान्य सूत्र n-कोई संख्या $R=C_nH_{2n-1}$	प्रकार अथवा क्रियाशील भाग
ऐलकाइन अथवा पैरैफ़िन	C_nH_{2n+2}	तृप्त विवृत श्रृंखला
ऐलकाइन्स अथवा ओलेफ़िनो	C_nH_{2n}	विवृत श्रृंखला १ द्विबन्धन
ऐलकाडिएन्स अथवा डाइओलेफ़िनो	C_nH_{2n-2}	,, ,, २ ,,
ऐलकिन्स अथवा एसिटिलीन्स साइक्लोऐलकिन्स	C_nH_{2n-2}	,, ,, १ त्रिवंधन चक्रीय (साइकिलक)
साइक्लो पैरैफ़िन अथवा नैफ़थीन्स	C_nH_{2n}	तृप्त (सेचुरेटेड)
साइक्लो ओलेफ़िन्स	C_nH_{2n-1}	चक्रीय (साइकिलक) तृप्त
ऐरोमेटिक्स (सुरभित)	C_nH_{2n-6}	
ऐलकोहल	R—OH	—OH (हाइड्रोक्सिल) रेडिकल
ईथर	R—O—R′	—O— रेडिकल
एसिड	$R-\overset{\overset{O}{\parallel}}{C}-OH$	—COOH (कार्बोक्सिल) रेडिकल
कीटोन	$R-\overset{\overset{O}{\parallel}}{C}-R'$	—CO— (कार्बोनिल)
ऐल्डीहाइड	$R-\overset{\overset{H}{\mid}}{C}=O$	—CHO
ऐमाइन	RR′′R′′′N	≡N
मरकैप्टन	R—S—H	—SH
क्लोराइड	R—Cl	—Cl

९ : स्निग्ध द्रव्य

घृत अथवा घीका उल्लेख ऋग्वेदमें भी मिलता है:

मित्रं हुवे पूतदक्षं, वरुणं चऽरिशादसं।
धियं घृता चीं साधन्ता॥

[ऋग्वेद, १-२-७]

पवित्र और दक्ष मित्रदेवको और शत्रुओंका भक्षण करनेवाले वरुणदेवको—घी झरती हुई उज्ज्वल वुद्धि धारण करनेवाले (इन दोनों)को आमन्त्रित करता हूँ।

ऋग्वेदका समय ई० पू० २००० वर्ष माना जाता है, इसलिए घी आदि स्निग्ध द्रव्योंका परिचय मनुष्यको वेदकालसे रहा होगा, यह ऊपरके उद्धरणसे प्रमाणित होता है। श्रीमद्भागवतमें भी श्रीकृष्णकी वाललीलामें माखनचोरीका सरस वर्णन किया गया है। सबसे पहले इन स्निग्ध द्रव्योंका ज्ञान मनुष्यको कब और कैसे हुआ, इसका इतिहास भूतकालके गर्भमें विलीन हो चुका है। परन्तु इन पदार्थोंका उपयोग पुरातनकालसे खाद्यके रूपमें, यज्ञादि धार्मिक कृत्योंमें, प्रकाशके हेतु दीपक जलानेमें, शारीरिक अंग रागों और प्रसाधन (शृंगार) सामग्रियों आदिमें होता आया है, इस वातको निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

ईसाके एक हजार वर्ष पूर्व मिस्र देशमें पुरानी कब्रोंको खोदकर मिट्टीके जो वरतन निकाले गए उनमें तैलीय पदार्थसे भरा हुआ एक वरतन भी मिला था। सार्टनकृत "विज्ञानके इतिहासकी भूमिका" (Introductian to the History of Seience) नामक ग्रन्थसे पता चलता है कि यूनानी और हिब्रू संस्कृतियोंके दौरान, जिनका कार्यकाल ईसा पूर्व ९वीं और १८वीं सदीसे लेकर ठेठ मध्ययुग तक फैला हुआ है, तेलका उपयोग कला, उद्योग-धन्धों और औषधियों आदिमें किया जाता था। रोमन कालमें चर्वी (वसा) और मोमसे वनी मोमवत्तियोंके चलनका उल्लेख इतिहासकारोंने किया है। रोमन विद्वान प्लीनी (२७-७९ ई०)ने तेलसे बनाये हुए साबुनका वर्णन किया है। इस आशयके कई उल्लेख मिलते हैं कि चित्रांकनकी ऐनकोस्टिक नामक एक शैलीमें मिस्री ममीके आच्छादनके ऊपर बनाये गए चित्रोंमें मोममें घुले हुए रंगोंका उपयोग किया जाता था; तथा टेम्पेरा शैलीके चित्रांकनमें मोम, पानी और अण्डेकी जर्दीके मिश्रणका उपयोग किया जाता था। थियोफिलिस प्रेसविटर (१२वीं शताब्दी) नामक एक कलाकारने तैलीय रंगोंको वनाने और उनका उपयोग करनेकी विधिके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी और उसमें रंग तथा वार्निश वनानेके अनुपात भी दिये थे। और यह तथ्य तो प्रायः सभी-को ज्ञात है कि जब समुद्रमें तूफान उठता था तो विक्षुब्ध लहरोंको शान्त करनेके लिए यूनानी

नाविक लहरों पर तेल उंड़ेल दिया करते थे। १२वी सदीमें भारतीय गणितज्ञ भास्कराचार्यने तेल-पानीके पृष्ठ-तनाव (Surface tension)को नापा था। निकटके भूतकाल पर नजर डालें तो पता चलता है कि तेल-सम्बन्धी विज्ञानका विकास ई० स० १७७९से होने लगा। इसी वर्ष स्वीडनके रसायनज्ञ शीलेने जैतूनके तेल और सिन्दूरको एक साथ तपाकर उसमेंसे ग्लिसरीनको पृथक् किया था। लेकिन एम० ई० शेवरूल (M. E. Cheverul)को तेल और वसा (चर्बी)के रसायनशास्त्रका जनक माना जाता है। १८१३से १८२३के बीचके वर्षोंमें उन्होंने जो शोध-खोज और अध्ययन किया उससे यह बात सिद्ध हुई कि ये पदार्थ कार्वनिक अम्ल तथा ग्लिसरीन (अथवा ग्लिसरोल)के 'एस्टर' (estar) है। ब्यूटिरिक, वेलेरिक, कैप्रोइक, कैप्रिक, स्टिरिक आदि वसाम्लों (fatty acids)को उन्होने तेल-चर्बीमेंसे पृथक् किया। ये १०३ वर्षकी लम्बी आयु तक जीवित रहे और १८८९में जब इनका स्वर्गवास हुआ तो कार्वनिक रसायनका विषय काफी विकसित हो चुका था। १८५४में वर्थलोट नामक रसायनज्ञने यह सावित कर दिखाया कि ग्लिसरीन ट्राइहाइड्रिक ऐलकोहल है। प्राकृतिक तेलोंके सम्बन्धमें यह अनुमान कि वे ट्राइग्लिसराइड यौगिक है, आगे चलकर सच सावित हुआ। उन्नीसवी शताब्दीके उत्तरार्धमें तेलके पृथक्करणकी दिशामें अच्छी प्रगति हुई। इस समय तक विभिन्न देशोंमें विविध प्रकारके तिलहनोंको पीसकर तेलके उत्पादनका उद्योग वड़े पैमाने पर विकसित हो चुका था।
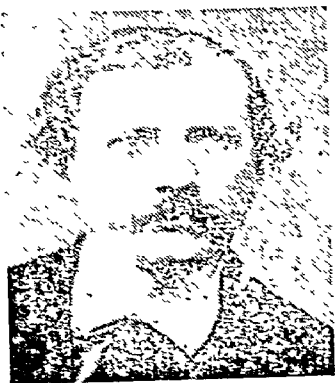
मार्सेलिन वर्थलोट
(१८२७–१९०७)

आधुनिक कालमें इस विषयके प्रमुख अध्येताओं और अन्वेषकोंमें टी० पी० हिल्डीच, टी० मूर, जे० वी० ब्राउन प्रभृति वैज्ञानिकों एवं उनके सहयोगियोंका नामोल्लेख किया जा सकता है। तेलकी औद्योगिकी (टेक्नोलॉजी)के विकासके साथ-साथ उस पर आधारित अनेक कारखानों-की स्थापना हुई (उदाहरणके लिए खाद्य-सामग्री, सावुन, रंग और वार्निश आदि)।

रसायनशास्त्रमें तैलीय पदार्थोंकी गणना 'लिपाइड' वर्गमें की जाती है। जैव (सेन्द्रिय-organic) पदार्थ तीन प्रमुख भागोंमें वांटे गए है, उनमें लिपाइड्ज़ (lipids)का एक वर्ग है (दूसरे दो कार्वोहाइड्रेट और प्रोटीनके वर्ग है)। लिपाइड्ज वर्गके पदार्थोंके मुख्य लक्षण दो है : (१) वे मुख्यतः वसाम्लके एस्टर अथवा तज्जन्य पदार्थ है; और (२) पानीमें अघुलनशील (अविलेय) है। लेकिन वेनजिन अथवा ईथर-जैसे विलायकोंमें घुल जाते है। सादे लिपाइड ऐलकोहल तथा अम्लके संयोगसे उद्भवित एस्टर हैं। तेल, चर्वी तथा मोम ऐसे ही सादे लिपाइड है। लेकिन फास्फोलिपाइड, ग्लायकोलिपाइड आदि संकीर्ण (जटिल) लिपाइड है। कितने ही वसाम्ल, प्रोटीन, हाइड्रोकार्वन, केरोटिनोइड सादे तथा संकीर्ण लिपाइडोंसे उद्भवित पदार्थ हैं।

इन तेलोंकी गणना खनिज तेलों अथवा सगन्ध वाष्पी तेलों (essential oils)के वर्गमें अलग की जानी चाहिए। खनिज तेल हाइड्रोकार्वन वर्गके है और सगन्ध तैल टर्पिन वर्गके।

विविध प्रकारके तेलोंको एक-दूसरेसे पृथक् करनेमें उनमें जो वसाम्ल रहता है उसकी एक खास मात्राका उपयोग किया जाता है। वसाम्लमें द्वितीय अनुक्रमके कार्बनके परमाणु होते हैं। पामिटिक और स्टिरिक अम्ल संतृप्त अम्ल हैं, जबकि ओलिक और लिनोलिक असंतृप्त अम्ल होते हैं। मनुष्यके शरीरकी ५७ प्रतिशत चर्बीमें असंतृप्त ओलिक और लिनोलिक अम्ल होते हैं और पामिटिक और स्टिरिक अम्ल केवल ३२ प्रतिशत। मकई अथवा मक्काका तेल वानस्पतिक सादे लिपाइडका अच्छा उदाहरण है। उसमें ८० प्रतिशत लिनोलिक और ओलिक अम्ल रहता है और बहुत कम अनुपातमें अन्य वसाम्ल भी पाये जाते हैं। एरण्डी (castor)में ८०से ९० प्रतिशत रिसिनोलिक अम्ल होता है, जो ओलिक अम्लमेंसे हाइड्रॉक्सी अम्लके रूपमें निकला हुआ है। मक्खनमें मुख्यतः ब्यूटिरिक अम्ल है। प्रमुख वसाम्लोंकी सूची इस अध्यायके अन्तमें दी गई है।

चर्बी और तेलमें जो अन्तर है उसे ठीकसे समझ लेना आवश्यक है। साधारण ताप पर चर्बी (वसा) ठोस (घन) अवस्थामें रहती है, जबकि तेल द्रव (तरल)। दोनोंमें यही मुख्य अन्तर है। यह स्थिति भौतिक है तथा ताप, रासायनिक असंतृप्तता और अणुओंकी ज्यामितीय (भौमितिक) संरचना एवं वसाम्लोंकी अणु-शृंखलाकी लम्बाई (chain length) पर आधारित है। वसाम्लोंका गलनांक अणुभार पर आधारित है। अणुभार जितना ही अधिक होगा गलनांक उतना ही उच्च होगा। गलनांक अधिकांशमें रासायनिक असंतृप्तता पर निर्भर करता है। चर्बीकी अपेक्षा तेलोंमें रासायनिक असंतृप्तताकी मात्रा अधिक होती है।

विविध प्रकारके लिपाइडोंको आसवनके द्वारा एक-दूसरेसे पृथक् नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनके क्वथनांक एक-दूसरेके बहुत निकट होते हैं। फिर उबालनेसे उनकी रासायनिक संरचना भी भंग हो जाती है। सादे लिपाइडोंको पृथक् करनेके लिए उनके विलेय गुणोंका उपयोग किया जाता है। पेट्रोलियम, ईथर, बेनजिन, हेक्सेन, कार्बन टेट्राक्लोराइड आदि विलायकोंमें उनका निस्सारण (solvant extraction) करके उन्हें विशुद्ध रूपमें प्राप्त किया जाता हे।

तेल अथवा चर्बीको जब कास्टिक सोडेके विलयनमें गरम किया जाता है तो उससे क्षार और ग्लिसरोल प्राप्त होते हैं। इस क्रियाको 'सेपोनिफिकेशन' अथवा साबुनीकरण (साबुन बनानेकी क्रिया) कहते हैं; इससे होनेवाला उत्पाद तेल अथवा चर्बीका क्षार (साल्ट) है। सेपोनिफिकेशनकी क्रियासे प्राकृतिक तेल अथवा चर्बीका रूपान्तर ऐसे पदार्थमें होता है जो पानीमें विलेय है। लेकिन इस क्रियाके उपरान्त भी दो-एक प्रतिशत भाग अविलेय रह जाता है, जो 'स्टेरोल'-का अंश हो सकता है (उदाहरणार्थ कोलेस्टेरोल) अथवा हाइड्रोकार्बन पदार्थ या रंगका भी कोई अंश हो सकता है।

तेल या चर्बी पर की जानेवाली अन्य रासायनिक क्रिया 'हाइड्रोलिसिस' (hydrolysis) है। इस क्रियामें भाप, प्रकिण्व (enzyme) अथवा उत्प्रेरक (catalyst)का उपयोग किया जाता है। इस क्रियासे तेलकी दुर्गन्ध, खटवास (rancidity) और खास प्रकारके जीवाणुओं (bacterias)का नाश होता है।

लिपाइड पानीकी अपेक्षा हलके होते हैं। उनमें विटामिन 'ए', 'डी', 'ई' और 'के' विलेय हो सकते हैं। जैतूनके तेलका हरा रंग उसमें घुले हुए क्लोरोफिलके कारण है।

तेल रंगोंके उत्तम वाहक हो सकते हैं। जल्दी सूखनेवाले तैलीय रंग बनानेके लिए तेल पर
आक्सीकरण (oxidation) की क्रिया की जाती है। इस क्रियासे अणुओंका संघनन होकर
पदार्थ गाढ़ा हो जाता है और तब वह बड़ी जल्दी सूखता है।
हाइड्रोजनीकरण (hydrogenation) नामक क्रियाका उपयोग तेलको घीसे मिलता-
जुलता पदार्थ, जिसे 'वनस्पति' कहा जाता है, बनानेमें किया जाता है। तेल उद्योगमें इस क्रियाका
आजकल विशाल पैमाने पर उपयोग होने लगा है और तेल-सम्बन्धी यह औद्योगिकी बहुत विकसित
भी हुई है।
१९०१में विल्हेल्म नोर्मान नामक जर्मन रसायनज्ञने यह खोज की कि गरम किये हुए ओलिक
अम्लमें निकलकी बुकनीकी उपस्थितिमें हाइड्रोजन गैस पारित करनेसे ओलिक अम्ल जम जाता है
और उससे स्टिरिक अम्ल बनता है। इस खोजका उपयोग अन्ततः वनस्पति तेलोंको जमाकर 'घी'
बनानेमें किया जाने लगा। और इस प्रकार हाइड्रोजनीकरणकी रासायनिक क्रियाके द्वारा मूँगफली,
सोयाबीन, बिनौले आदि प्रमुख वानस्पतिक तेलोंसे घीके जैसा पदार्थ बनानेका उद्योग आजके विश्वमें
इतना विकसित और उन्नत हो गया है कि उसके व्यापारसे प्रतिवर्ष अरबों रुपए मूल्यका उत्पादन
होने लगा है।
उद्योगमें इस क्रियाको नीचे लिखे अनुसार किया जाता है:
निकलकी अत्यन्त महीन बुकनीको बहुत थोड़ी मात्रामें १२०-५०० अंश सें० तापमान
तक गरम किये हुए तेलके अन्दर छोड़ दिया जाता है। इस क्रियाके लिए निर्धारित बरतन ऊँची टंकीके
समान होता है और उसमें इस मिश्रणको पम्पकी सहायतासे ऊपरसे नीचेकी ओर चलाया जाता
है। इस मिश्रणको खूब हिलता हुआ रखनेके लिए खास तरहके यांत्रिक उपकरण काममें लाये
जाते हैं। फिर इसमें हाइड्रोजन गैस पारित की जाती है। निकलकी बुकनीका अनुपात तेलकी
कुल मात्राका केवल आधा या एक प्रतिशत होता है। निकलका उपयोग, इस क्रियामें, केवल
उत्प्रेरकके रूपमें ही किया जाता है। क्रियाके अन्तमें निकलको पुनः प्राप्त कर उसका फिरसे उपयोग
कर लिया जाता है। इस क्रियाके दौरान काफी गरमी उत्पन्न होती है। तेलकी गन्ध मिटानेके
लिए उसमें कार्बन डाइआक्साइड पारित की जाती है। इस प्रकार उपचारित तेल ठण्डा होने पर
घीकी तरह जम जाता है। खाद्य तेलका शारीरिक ताप पर तरल रूपमें रहना आवश्यक है,
इसलिए 'हाइड्रोजनीकरण'की क्रिया इस तथ्यको ध्यानमें रखकर केवल उतने ही अनुपातमें की
जाती है। इस क्रियामें रासायनिक असंतृप्तता कुछ अंशोंमें संतृप्त हो जाती है। उदाहरणके
लिए ग्लिसेरोट्राइओलिएट नामक तरल पदार्थका हाइड्रोजनीकरण करनेसे वह ग्लिसेरोट्राइस्टियरेट
नामक ठोस पदार्थ बन जाता है।
वनस्पतिके फल, बीज तथा गूदे (गर्भ)में, यहाँ तक कि मूल, पत्तों और टहनियोंमें भी
तेल रहता है। अधिकांश अनाजोंके अंकुरके अन्दरूनी हिस्सोंमें तेल रहता है। तिलहनोंके दानोंमें
तो वह प्रचुर मात्रामें होता ही है। तेलको तैलीय पदार्थोंसे मुक्त करनेके लिए पीसना, दबाना,
कुचलना, कुरेदना अथवा विलायकों द्वारा निस्सारित करना आदि कई विधियोंका अवलम्बन
किया जाता है। तेलको शुद्ध करनेके लिए उसे ऊँचे बरतनोंमें भरकर कूड़े अथवा 'गाद'को नीचे
बिठा देनेकी एक क्रिया की जाती है। इसके लिए सबसे पहले तेलको गरम किया जाता है। फिर

कास्टिक अथवा धोनेके सोडेके विलयनको उसमें मिलाकर ठण्डा करनेसे मुक्त अवस्थामें रहनेवाले वसाम्ल साबुनके रूपमें पेंदेमें बैठ जाते हैं। तेलको रंगहीन बनानेके लिए कोयला, सक्रियित मृत्तिका (activated earth) मुलतानी मिट्टी (fuller's earth) आदि अवशोषकोंका उपयोग किया जाता है। अखाद्य तेलोंको शुद्ध करनेके लिए रासायनिक विरंजकोंका भी उपयोग किया जा सकता है। तेलको निर्गन्ध करनेके लिए उसे टावर (मीनार)-जैसी ऊँची टंकियोंमें भरकर ऊपरसे नीचे बूँद-बूँद टपकाते और टंकियोंको उत्तरोत्तर अधिक ताप पर रखते हुए उसके (तेलके) अन्दरकी समस्त गैसें निकाल दी जाती हैं। तेल ज्यों-ज्यों नीचे उतरता जाता है वह गरम भापसे संसर्गित होता हुआ निर्गन्ध होता जाता है। उसमेंसे संतृप्त ग्लिसराइडोंको दूर करनेके लिए 'विण्टराइज़िंग' नामक क्रिया की जाती है। बिनौलेके तेल-जैसे कतिपय खाद्य तेल, सर्दियोंमें, उनमें रहनेवाले संतृप्त ग्लिसराइडोंके अस्तित्वके कारण गाढ़े और गंदले हो जाते हैं। इस 'गंदलेपन'-को दूर कर उन्हें स्वच्छ और पारदर्शक बनाना आवश्यक होता है। यह काम 'विण्टराइजिंग' नामक विशिष्ट क्रियाके द्वारा किया जाता है। इस क्रियामें तेलोंको धीमे-धीमे शीतलता देकर ठण्डा किया जाता है, जिससे उनमें रहनेवाले ग्लिसराइड भी ठण्डे होकर स्फटिक बन जाते हैं। फिर इन तेलोंको छानकर उन्हें शुद्ध, स्वच्छ और पारदर्शक बना लिया जाता है। वास्तवमें यह क्रिया परिष्करण (refining)की ही एक विधि है। परिष्करणकी क्रियाको सर्वांगपूर्ण और सम्पूर्ण बनानेके लिए 'हाइड्रोलिसिस'की ऊपर बताई हुई क्रियाका उपयोग भी किया जाता है। इस क्रियासे विभिन्न लम्बाईकी अणु शृंखलावाले जो वसाम्ल प्राप्त होते हैं उन्हें प्रभाजी (विभागीय) स्फटिकीकरण (fractional crystallisation)के द्वारा अलग कर लिया जाता है।

तेल पर सल्फ्यूरिक अम्लकी क्रिया करके 'टर्की रेड आइल' बनाया जाता है। यह पानीमें विलेय है और सूती कपड़ा मिलोंमें कपड़ा धोने और रंगनेके काम आता है। इस क्रियाको 'स्लफोनिक प्रवेशन' (सल्फोनेशन sulphonation) कहते हैं। धुलाईके आधुनिक पदार्थोंके निर्माण (प्रक्षालक अथवा अपमार्जक – डिटरजेण्ट – उद्योग)में इस क्रियाका खूब उपयोग किया जाता है।

प्रमुख वानस्पतिक तेलोंमें जैतून (olive)का तेल, तीसी या अलसी (linseed)का तेल, बिनौले (cotton seed)का तेल, गरी या नारियल (coconut)का तेल, महुएका तेल, सरसोंका तेल, रेंडी या एरेण्ड (castor)का तेल, तिलका तेल, मूँगफलीका तेल आदिके नाम गिनाये जा सकते है। इन सब तेलोंको निकालनेकी विधि लगभग एक ही जैसी है। इनके बीजोंको पेरा जाता है। पहला घान उत्तम होता है। दूसरे घान विलायकों द्वारा निस्सारणकी विधि काममें लाकर निकाले जाते हैं। अन्तिम घानोंका तेल अखाद्य होता है, इसलिए उसे साबुन आदि औद्योगिक वस्तुएँ बनानेके काममें लाया जाता है। अलसीके तेलका उपयोग मुख्यतः रंगोंके वाहकके रूपमें होता है। वह जल्दी सूख सके, इसके लिए उसपर एक खास प्रकारकी रासायनिक क्रिया की जाती है। इस विधिसे तैयार किये हुए तेलको बेल तेल कहते हैं।

तेलमें की जानेवाली मिलावटकी जाँचके लिए कुछ विधियाँ काममें लाई जाती हैं, जिनमें 'क्रोमेटोग्राफी'की विश्लेषण पद्धति सबसे आधुनिक है। एक पुरानी पद्धति तेलमें सल्फ्यूरिक अम्ल छोड़कर उससे उत्पन्न होनेवाली गर्मीको नापना भी है। साबुनीकरण (saponification) विधिमें पोटैसियम हाइड्रोआक्साइड मिलानेसे जो साबुन बनता है उसका वजन कर लिया जाता

है। खनिज तेलोंका साबुन नहीं बनता इसलिए इस विधि द्वारा खाद्य तेलोंमें खनिज तेलोंकी मिलावट फौरन पकड़ ली जाती है।

अब प्राणिज तेलों और चर्बीकी चर्चा भी कर ली जाए। सबसे पहले तो ह्वेल (तिमिंगिल) मछलीके तेलको लें। एक साधारण मोटी ह्वेल मछलीसे १००से २०० पीपे तक तेल प्राप्त होता है। ह्वेलकी चर्बीके टुकड़े करके और उन्हें तपाकर तेल निकाला जाता है। इस तेलका हाइड्रोजनीकरण करके उसकी चर्बी भी बनाई जाती है। मछलीका एक और प्रकारका तेल कॉडलिवर आइल कॉड नामक मछलीके यकृत (जिगर liver)को भापमें गर्म करके और विशेष प्रकारके बरतनोंमें उबालकर निकाला जाता है। इस तेलका महत्त्व इसमें पाये जानेवाली विटामिन 'ए' और 'डी'के कारण है। इसका हल्की किस्मका तेल चमड़ेको नर्म करनेके काम आता है। अन्य मछलियोंके, उदाहरणार्थ हेलिबट, शार्क, ट्युना आदिके तेलोंका भी उपयोग किया जाता है। ये तेल भी कॉडलिवर आइलकी ही तरह निकाले जाते हैं।
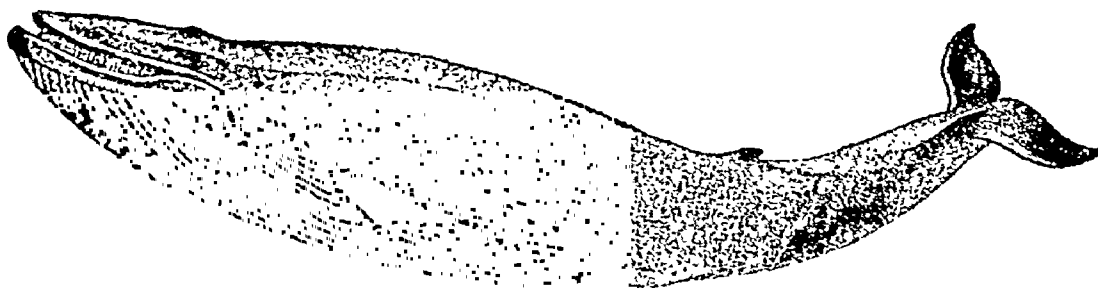
नील ह्वेल : लम्बाई ९० फुट; वजन १२० टन; तेल १२० पीपे; यकृतका वजन १ टन; क्रीम ३ टन; पेटके अवयव ३·५ टन

प्राणिज चर्बी प्रचुर मात्रामें सूअरसे प्राप्त होती है। सूअरके शरीरसे कच्ची चर्बीको निकाल लिया जाता है; फिर उसे पानीके साथ दाब देकर गर्म करके लोहेकी कड़ाहियोंमें तैयार किया जाता है। इसे बड़े पैमाने पर तैयार करनेके लिए यांत्रिक साज-सरंजामकी आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा भापका ५० पौण्ड तकका दाब दिया जा सके।

इसके अतिरिक्त मटनटैलो (बकरीकी चर्बी), बीफ टैलो (गाय-भैंसकी चर्बी), भेड़की चर्बी आदि भी निकाली जाती हैं। इस टैलो या गौवसाका उपयोग साबुन बनाने तथा वस्त्रोद्योगमें सूतको माँड़ी चढ़ानेमें किया जाता है।

प्राणिज चर्बी युक्त पदार्थमें मक्खन सबसे महत्त्वपूर्ण है। दूधको अपकेन्द्रित (centrifuge) में डालकर घुमानेसे मलाई अलग हो जाती है। मलाईको पानी तथा नमकके साथ बिलोनेसे 'टेबल बटर' (खानेका मक्खन) बनता है। मक्खनमें ८० प्रतिशत वसा (fat) और शेष पानी

होता है। इसे तो सभी जानते हैं कि मक्खनको ठीकसे गर्म करने पर पानी उड़ जाता और उसका घी बन जाता है। परन्तु घी अथवा मक्खनके स्थानापन्न 'मार्गारिन' 'गेन्टेड-स्प्रिन्ट' (महीन दानेदार मक्खनिया) दूध और वनस्पति तेलसे बनाया जाता है। उसमें विटामिन 'ए' और 'डी' मिलाये जाते हैं और वसाका अनुपात ८० प्रतिशत रखा जाता है। उसमें २ या ३ प्रतिशत लवण, दूधके चर्बी रहित पदार्थ १ प्रतिशत और १६ प्रतिशत पानी रहता है। अन्य सत (essence) और रंग भी उसमें आवश्यक मात्रामें मिलाये जा सकते हैं।

मोम (wax) भी तैलीय पदार्थ है। यह स्पर्म नामक ह्वेलके मस्तककी खोखलमेंसे निकाला जाता है। यह ठोस होता है और दवाइयों तथा मोमबत्ती बनानेके उद्योगमें काम आता है। 'स्पर्मसिटी' नामसे विख्यात यह पदार्थ 'सेटिलपामिटेट' नामक कार्बनिक (organic) एस्टर है। इसके विपरीत 'कारनोबा वैक्स' नामक मोम दक्षिण अमरीकाके एक देश ब्राजीलमें उगनेवाले ताड़ वृक्षके पत्तोंसे निकाला जाता है। इन पत्तोंको इकट्ठा करके घिसनेसे उनके अन्दरका मोम बाहर आ जाता है। इस मोमका गलनांक काफी ऊँचा—१०५° सें० है। वार्निश, जूतापालिश, कार्बन पेपर आदि चीजें बनानेमें इस मोमका उपयोग किया जाता है। यह मोम सब मोमोंसे अधिक कड़ा होता है। परन्तु जिस मोमबत्तीको हम जलाते हैं वह प्रायः मधुमक्खियोंके उस मोम (bee wax)की बनी होती हैं, जिसे मधुमक्खियाँ अपने छत्तोंमें तैयार करती हैं। लेकिन अब तो मोमबत्तियाँ भी खनिज तेलसे प्राप्त होनेवाले मोमसे बनने लगी हैं।

मोम 'मोनोहाइड्रिक ऐलकोहल'का एस्टर है (जब कि तेल और चर्बी ट्राइहाइड्रिक ऐलकोहलके एस्टर हैं—इस अन्तरको अच्छी तरह ध्यानमें रखना चाहिए)। मोमका मूल्य उसमें रहनेवाले ऐलकोहलकी मात्रापर निर्भर करता है।

लाखको भी मोमका एक प्रकार ही माना जाता है। यह एक तरहके जन्तुओंसे पैदा होती है। इसका मूल प्राप्तिस्थान भारत और चीन है। लाखका गलनांक ८०° सें० है और इसका उपयोग विद्युत्-उद्योगोंमें तारपर विसंवाहक (insulation) अस्तर लगानेमें किया जाता है।

एशियाई देशोंमें उत्पन्न होनेवाला 'जापान वैक्स' नामक मोम वस्त्रोद्योगमें खूब इस्तेमाल किया जाता है। यह एक फलसे निकाला जाता है। रबर, साबुन और अंगरागों (cosmetics) आदिमें इसका उपयोग किया जाता है। जापानमें इसका वार्षिक उत्पादन ६ हजार टन और चीनमें इसका आधा है। क्यूबामें गन्नेसे भी मोम निकाला जाता है। वह पीलापन लिये हुए और भंगुर होता है।

सारणी–१ : कुछ महत्वपूर्ण वसाम्ल

१	२	३	४	५
कार्वनके अणुओंकी संख्या	चालू नाम (प्रचलित) अम्ल	शास्त्रीय नाम अम्ल	रासायनिक सूत्र	गलनांक °सें०
४	n-ब्यूटिरिक	ब्यूटेनोइक	$CH_3(CH_2)_2 \cdot COOH$	–८
६	n-केप्रोइक	हेक्सेनोइक	$CH_3(CH_2)_4 \cdot COOH$	–२
८	n-केप्रिलिक	ऑक्टोनोइक	$CH_3(CH_2)_6 \cdot COOH$	१६
१०	n-केप्रिक	डेकानोइक	$CH_3(CH_2)_8 \cdot COOH$	३१
१२	लॉरिक	डोडेकानोइक	$CH_3(CH_2)_{10} \cdot COOH$	४४
१४	मिरिस्टिक	टेट्राडेकानोइक	$CH_3(CH_2)_{12} \cdot COOH$	५४
१६	पामिटिक	हेक्साडेकानोइक	$CH_3(CH_2)_{14} \cdot COOH$	६३
१८	स्टिरिक	ऑक्टाडेकानोइक	$CH_3(CH_2)_{16} \cdot COOH$	७०
२०	एरेचिडिक	आइकासेनोइक	$CH_3(CH_2)_{18} \cdot COOH$	७७
१८	ओलिक	सिस-ओक्टाडेसीनोइक	$CH_3(CH_2)_7CH{=}CH(CH_2)_7COOH$	१६
१८	लिनोलिक	सिस-सि–९-१२ ओक्टाडीकेडायोनिक	$CH_3(CH_2)_4 \cdot CH{=}CHCH_2CH{=}CH(CH_2)_7COOH$	–९

सारणी–२ : सामान्य प्राणिज अथवा वानस्पतिक चर्बी-तेलोंमें पाये जानेवाले वसाम्लोंका अनुपात प्रतिशतमें

मूल	पामिटिक	स्टिरिक	अन्य (संतृप्त)	कुल संतृप्त	ओलिक	लिनोलिक	अन्य असंतृप्त	कुल असंतृप्त	सन्दर्भ
बीफ (गाय)	२९	२०	१	५०	४६	२	२	५०	Fats and Fatty Acid Year book Agriculture USDA, 19
पॉर्क (पालतू सूअर)	२२	१४	२	३८	४४	९	९	६२	
चिकन (मुर्ग)	२६	७	१	३४	४७	८	११	६६	
मछलीका तेल	१६	३	६	२५	१६	४	५५	७५	
अण्डे	२६	७	१	३४	४०	२१	५	६६	
मूंगफलीका तेल	८	६	५	१९	५०	३१	०	८१	
अलसीका तेल	७	३	०	१०	२२	१८	५०	९०	
जैतूनका तेल	९	२	१	१२	८०	८	०	८८	
सेफ्फ्लावर तेल[1]	३	४	१	८	१५	७६	१	९२	
वनैलेसूअरकेपेटकीचर्वी	३२	८	०	४०	४८	११	१	६०	
मक्खन	२७	१२	२०	५९	३५	३	३	४१	
मार्गारिन	२२	३	२	२७	६०	९	४	७३	

१. कुसुम या करड़ाका तेल।

रसायन विज्ञानके कुछ ज्योतिर्धर
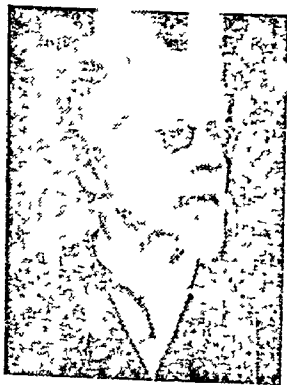
आर्थर रुडोल्फ हेज
(१८५७–१९३५)
जिन्होने डायाजो-ऐजो यौगिकोमे C–N, प्रकाशके अवशोपणके आवार पर पदार्थकी सरचना निश्चित करनेकी दिशामे और थायोफिन तथा वेनजिन, थायोजोन और पायरिडिन–जैसे पदार्थोमे रासायनिक अनुहरण (chemical mimicry)के सम्वन्वमे उल्लेखनीय कार्य किया।

थेलियमके अन्वेपक विलियम क्रूक्स
(१८३२–१८९९)
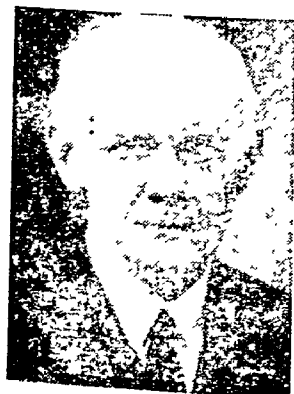
नेविल विन्सेण्ट सिजविक
(१८७३–१९५२)
'को-आर्डिनेशन कम्पाउण्ड्स आफ वोर' तथा 'केमिकल एलिमेण्ट्स एण्ड देर कम्पाउण्ड्स'के लेखक; ख्यातनामा विज्ञान शिक्षक।

१० : पेट्रोलियम

पेट्रोलियमकी उत्पत्ति

पृथ्वी पर पेट्रोलियमकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंने कई तरहके मत प्रतिपादित किये हैं, जिनमें सबसे विश्वसनीय मान्यता यह है कि पेट्रोलियम सजीव पदार्थोंसे (जान्तव और वानस्पतिक स्रोतोंसे) बनता है। अर्थात् पेट्रोलियमका मूल जैव (organic) यानी कार्बनिक पदार्थ हैं। इस मान्यताके अनुसार पेट्रोलियमका मूलस्रोत वृक्ष और वनस्पति हैं। इनसे जो कोयला बना उस पर पत्तों अथवा वृक्षकी अश्मीभूत (fossil) आकृतियोंको अंकित देखा जा सकता है। वही कोयला अन्तमें पेट्रोलियममें रूपान्तरित हुआ। इसके अलावा, आजसे करोड़ों वर्ष पहले फोरामिनाफेरा आदि जो अनगिनत सूक्ष्मातिसूक्ष्म समुद्री जीव थे और डाइएटम-जैसी सामुद्रिक वनस्पतियाँ थीं; उनका अवशेष भी पेट्रोलियम है। जब इन समुद्री जीवों और वनस्पतियों-का विनाश हुआ तो उनके शव समुद्रमें गिरनेवाली नदियोंके पानीके साथ बहकर आई हुई काली मिट्टी और कीचड़की परतोंके नीचे दबते चले गए; और जीवाणुओं (बेक्टिरीया)के प्रभावके कारण उनका प्रेट्रोलियममें रूपान्तरण हो गया। दलदली भूमिमें इस तरहके परिवर्तनसे प्राकृतिक अथवा आर्द्रगैस (methane-marsh gas) उत्पन्न होती है। पेट्रोलियमके कुओंमें भी यह गैस पाई जाती है। उसके बादकी अवधिमें समुद्री प्राणियोंके मृत शरीरोंसे भरपूर तेलवाली काली मिट्टी पर नई-नई परतें बराबर चढ़ती चली गई, और दाबके परिणामस्वरूप नीचेके तैलीय स्तरोंमें सख्त पपड़े (shale) बने। फिर इन परतों पर नदियोंके पानीका सतत बहाव होते रहनेसे पपड़ोंका मुलायम पत्थरोंमें कायान्तरण हुआ, जो पोले और छेदवाले होनेके कारण छिद्रल या सरन्ध्र शैल कहलाए। भूगर्भमें तेल इन्हीं शैलोंमें कैद रहता है। ऊपरके वजनके कारण जहाँ दाबकी मात्रा कम हो जाती है उस जगह तेल रिसकर ऊपर आ जाता है; और बूंद-बूंद रिसकर ऊपर आता हुआ तेल कालान्तरमें मोटी धारा बनकर पानीसे हलका होनेके कारण पानीकी सतह पर तेलके स्तर बना लेता है। इस तरह भूगर्भमें सरन्ध्र शैलोंके अन्दर पेट्रोलियम संग्रहित होता रहता है। पेट्रोलियमकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित यह मान्यता वैज्ञानिक आधार लिये हुए है।

पानी अथवा शैलकी अपेक्षा तेलका घनत्व कम होनेके कारण यदि किसी प्रकारका अवरोध न हो तो तेलकी प्रवृत्ति ऊपर उठनेकी होती है। अपनी इस स्वभावगत विशेषताके कारण तेल नीचेसे बाहरी सतह तक कितना ऊपर उठ सकता है इसका सही-सही अन्दाज लगा पाना मुश्किल ही है। परन्तु तेलके भूगर्भीय भण्डारोंकी सीमाओं, शैलोंकी सरन्ध्रता और गठन तथा भूगर्भीय

१० : पेट्रोलियम

पेट्रोलियमकी उत्पत्ति

पृथ्वी पर पेट्रोलियमकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंने कई तरहके मत प्रतिपादित किये हैं, जिनमें सबसे विश्वसनीय मान्यता यह है कि पेट्रोलियम सजीव पदार्थोंसे (जान्तव और वानस्पतिक स्रोतोंसे) बनता है। अर्थात् पेट्रोलियमका मूल जैव (organic) यानी कार्बनिक पदार्थ है। इस मान्यताके अनुसार पेट्रोलियमका मूलस्रोत वृक्ष और वनस्पति हैं। इनसे जो कोयला बना उस पर पत्तों अथवा वृक्षकी अश्मीभूत (fossil) आकृतियोंको अंकित देखा जा सकता है। वही कोयला अन्तमें पेट्रोलियममें रूपान्तरित हुआ। इसके अलावा, आजसे करोड़ों वर्ष पहले फोरामिनाफेरा आदि जो अनगिनत सूक्ष्मातिसूक्ष्म समुद्री जीव थे और डाइएटम-जैसी सामुद्रिक वनस्पतियाँ थीं; उनका अवशेष भी पेट्रोलियम है। जब इन समुद्री जीवों और वनस्पतियों-का विनाश हुआ तो उनके शव समुद्रमें गिरनेवाली नदियोंके पानीके साथ बहकर आई हुई काली मिट्टी और कीचड़की परतोंके नीचे दबते चले गए; और जीवाणुओं (बेक्टिरीया)के प्रभावके कारण उनका प्रेट्रोलियममें रूपान्तरण हो गया। दलदली भूमिमें इस तरहके परिवर्तनसे प्राकृतिक अथवा आर्द्रगैस (methane-marsh gas) उत्पन्न होती है। पेट्रोलियमके कुओंमें भी यह गैस पाई जाती है। उसके बादकी अवधिमें समुद्री प्राणियोंके मृत शरीरोंसे भरपूर तेलवाली काली मिट्टी पर नई-नई परतें बराबर चढ़ती चली गई, और दाबके परिणामस्वरूप नीचेके तैलीय स्तरोंमें सख्त पपड़े (shale) बने। फिर इन परतों पर नदियोंके पानीका सतत बहाव होते रहनेसे पपड़ोंका मुलायम पत्थरोंमें कायान्तरण हुआ, जो पोले और छेदवाले होनेके कारण छिद्रल या सरन्ध्र शैल कहलाए। भूगर्भमें तेल इन्हीं शैलोंमें कैद रहता है। ऊपरके वजनके कारण जहाँ दाबकी मात्रा कम हो जाती है उस जगह तेल रिसकर ऊपर आ जाता है; और बूंद-बूंद रिसकर ऊपर आता हुआ तेल कालान्तरमें मोटी धारा बनकर पानीसे हलका होनेके कारण पानीकी सतह पर तेलके स्तर बना लेता है। इस तरह भूगर्भमें सरन्ध्र शैलोंके अन्दर पेट्रोलियम संग्रहित होता रहता है। पेट्रोलियमकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित यह मान्यता वैज्ञानिक आधार लिये हुए है।

पानी अथवा शैलकी अपेक्षा तेलका घनत्व कम होनेके कारण यदि किसी प्रकारका अवरोध न हो तो तेलकी प्रवृत्ति ऊपर उठनेकी होती है। अपनी इस स्वभावगत विशेषताके कारण तेल नीचेसे बाहरी सतह तक कितना ऊपर उठ सकता है इसका सही-सही अन्दाज लगा पाना मुश्किल ही है। परन्तु तेलके भूगर्भीय भण्डारोंकी सीमाओं, शैलोंकी सरन्ध्रता और गठन तथा भूगर्भीय

मध्यपूर्वमें किये गए पुरातात्त्विक उत्खननसे पता चलता है कि वहाँके ईसापूर्व ६००० वर्ष पुराने नगरोंकी दीवारोंकी ईंटोंकी जुड़ाई इसी काले रंगके तारकोलसे की गई थीं। कृष्ण सागरके पूर्वी किनारे पर बाकूके समीप और इराकके समृद्ध तेल क्षेत्रोंका पता उन्नीसवी शताब्दीमें चला। अमरीकामें टाइटसविले नामक स्थान पर १८५९के अगस्त महीनेकी २८वी तारीखको कर्नल एडविन एल० ड्रेकको एक कुएँकी खुदाई करते समय ६९ फुटकी गहराई पर तेल मिला था। इसीलिए यह तारीख अमरीकामें पेट्रोलियम उद्योगकी जन्मतिथि मानी जाती है। ड्रेककी खोजके बाद अमरीकामें कई स्थानो पर विशाल तेलक्षेत्र खोज निकाले गए और उनका ताँता ही

कर्नल एडविन एल० ड्रेकका कुआँ (१८५९)
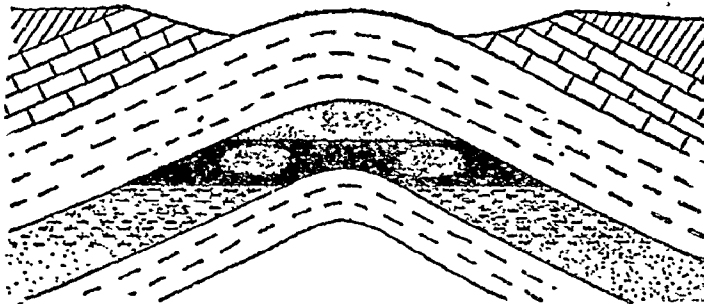
अभेद्य शैल
अपनत (anticline)—तेलका भंडार

[काली पट्टी तेलकी सूचक है। उसके ऊपरके बिन्दुवाले भागमें खनिज गैसें और नीचेके बिन्दु वाले भागमे पानी है। इनके ऊपर और नीचे अभेद्य शैल है।]

बँध गया। अब तो विश्वमें यह उद्योग दिन-दूनी और रात-चौगुनी तरक्की करता जा रहा है। आरम्भमे तेलका स्थान अनुमानके आधार पर निश्चित किया जाता था। इस तरहकी भाग्याधीन परिस्थितिके कारण इस कामको 'वाइल्ड कैटिंग' (जंगली बिलावको पकड़ना) कहा जाता था। परन्तु धीरे-धीरे वैज्ञानिक प्रणालियोंका सहारा लेनेकी आवश्यकताको समझा जाने लगा और पिछले ५० वर्षोंमे विशेषज्ञोंने निश्चित प्रणालियोंका आविष्कार कर उन्हे विकसित किया। अब वैज्ञानिक प्रणालियोंके परिणामस्वरूप पेट्रोलियमकी प्राप्तिकी सम्भावनाएँ काफी बढ गई है और बेकार कुओंकी खुदाईमे लगनेवाले समय, श्रम और पैसेके व्ययमे आंशिक बचत और रोक हुई है। इस कार्यमे भूगर्भवेत्ताओ (वैज्ञानिकों) का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। तेलके कुओं-की खुदाई करते समय तेलके साथ चट्टानों और शैलखण्डोंके टुकडे भी निकलते है। भूगर्भवेत्ता उनका अध्ययन और परीक्षण करके तेल-प्राप्तिकी सम्भावनाएँ बतलाते है। ये शैलखण्ड मुलायम और छिद्रल (सरन्ध्र) होते है; और जिस प्रकार स्पंज अपने छिद्रोंमे पानीको चूस लेता है, उसी प्रकार इन शैलखण्डोंके छिद्रोंमे तेल भरा रहता है। इन छिद्रल शैलोंके ऊपर अभेद्य शैलोंकी परते बिछी रहती है। यह अभेद्य परत छिद्रोंमे कैद पेट्रोलियमके भण्डारके लिए ढक्कनका काम देती है। इससे पेट्रोलियम अथवा उसकी गैस बाहर उडने नही पाते, अन्दर ही बने रहते है। शैलोंकी इस

ट्रिनिदाद (वेस्ट इंडीज) का तारकोल-सरोवर

[एक मजदूर लकडीके टुकड़ेको तारकोलमे डुबोकर ऊँचा उठा रहा है। उसके साथ तारकोलका गाढा द्रव भी ऊपर उठ आया है। प्रतिवर्ष १ लाख ५० हजार टन तारकोल (asphalt) का विदेशोंको निर्यात किया जाता है।]

आच्छादक परतको अंग्रेजीमें कैप रॉक (cap rock) और हिन्दीकी पारिभाषिक शब्दावलीमें छत्रक शैल कहते हैं: 'कैप'का अर्थ है टोपी और 'छत्रक'का छाता। कई बार यह छत्रक शैल चूना पत्थरका होता है और कई बार लवणका भी, जो अत्यधिक दाबके कारण अभेद्य हो जाता है। इस प्रकार पेट्रोलियमका भंडार (संचय) दो अभेद्य शैलोंके बीच ठीक उसी तरह बन्द रहता है जिस प्रकार कचौरीके दो पुटोंके बीच उसका मसाला। अभेद्य शैलोंके सम्पुटमें रहनेके कारण न तो तेल ऊपर जा सकता है और न नीचे ही।

भूगर्भ वेत्ताओंके मतानुसार पृथ्वीके लम्बे इतिहासमें अनेकों बार भूपृष्ठ पर बड़ी-बड़ी हलचलें हुईं और उनके कारण नये पर्वत अस्तित्वमें आये और 'बलुआ पत्थर' एवं 'चूना पत्थर'की परतोंकी सतहें ऊँची-नीची हो गईं तथा उनमें बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गईं। स्थान भ्रष्ट हो जानेके कारण ये परतें एक ओर तो कमानकी तरह ऊपर उठ गईं और दूसरी ओर तश्तरीकी तरह गहरी गड्ढेवाली हो गईं। भूगर्भवेत्ता इन्हें अपनी पारिभाषिक शब्दावलीमें क्रमशः अपनति (anticline) और अभिनति (syncline) कहते हैं। अपनतिकी आकृति उल्टे तसले-जैसी होती है, जबकि अभिनति-की सीधे तसले-जैसी। अपनति और अभिनतिके बीच पेट्रोलियम ऐसा लगता है मानो अभिनतिके दोनों बाजुओंसे उफन कर अपनतिके गुम्बद में कैद हो गया हो। कई बार दाब अधिक हो जाने या वजन बढ़ जानेसे 'छत्रक शैल'में दरार पड़ जाती है और उसके नीचेका पेट्रोलियम उस

चुम्बकत्व-मापी

वायुयानके नीचे लटकाया हुआ चुम्बकत्वमापी

दरार की राह ऊपर आकर वातावरणमें 'उड़' जाता है। कई बार हवा, वर्षा और धूपके कारण 'छत्रक शैल'के छीज या घिस जाने पर भी उसके नीचे का पेट्रोलियम बाहर निकलने या रिसने लगता है और उसमेंके वाष्पी द्रव्य हवामें उड़ जाते हैं और केवल तारकोल बचा रह जाता है। इससे उस जगह तारकोल की झील या

सरोवर निर्मित हो जाता है। वेस्ट इंडीजके ट्रिनिदाद और वेनज़ुएलाके तारकोल सरोवरोंका निर्माण इसी तरह हुआ है।

कई बार शैलों और चट्टानोंका संचलन इतना शक्तिशाली होता है कि कमज़ोर स्थानों पर वे कूबड़की तरह उठकर गुम्बद-जैसा छत्र बना देती हैं, जिसके नीचे तेल चारों ओर फैल जाता है। इस प्रकारकी भूगर्भीय हलचलोंके कारण तेलके गुप्त भंडार भूपृष्ठके नीचे भर जाते हैं। वैज्ञानिक पद्धतिसे ऐसे स्थानोंकी खोज करके सही स्थानों पर कुएँ खोद कर इस तेलको बाहर निकाला जाता है।

पेट्रोलियमकी खोज करनेकी एक प्रणालीके अन्तर्गत पृथ्वीके अन्दरकी शैलोंके चुम्बकत्वको नापा जाता है और अलग-अलग स्थानों पर उनमें पाये जानेवाले सूक्ष्म परिवर्तनोंको अंकित कर शैलोंकी संरचनाको निश्चित किया जाता है। शैलोंकी गहराईमें वृद्धि होनेके साथ-साथ उनके चुम्बकत्वका अनुपात घटता जाता है। जिस यन्त्रसे चुम्बकत्व नापा जाता है उसे 'चुम्बकत्वमापी' (magnetometer) कहते हैं; यह यन्त्र अत्यधिक सुग्राही (sensitive) होता है, अर्थात् चुम्बकत्वके अल्पातिअल्प अन्तरको भी अंकित कर सकता है। चुम्बकत्वमापीको वायुयानके नीचे एक तारसे लटका कर निश्चित ऊँचाई पर उड़ान भरी जाती है, जिससे नीचेकी जमीनके शैलोंकी चुम्बकत्व रेखा इस यन्त्रमें अंकित हो जाती है। समुद्रतलके नीचे पाये जानेवाले पेट्रोलियमकी खोजमें यह प्रणाली बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है।
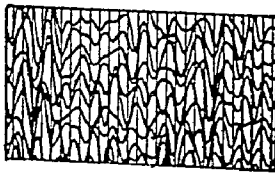
भूकम्प लेखी

एक दूसरी प्रणालीके अन्तर्गत गुरुत्वाकर्षण मापी यंत्र (gravitometer)के द्वारा उस प्रदेशके गुरुत्वाकर्षणको नापा जाता है। भिन्न-भिन्न प्रदेशोंका गुरुत्वाकर्षण भी भिन्न-भिन्न
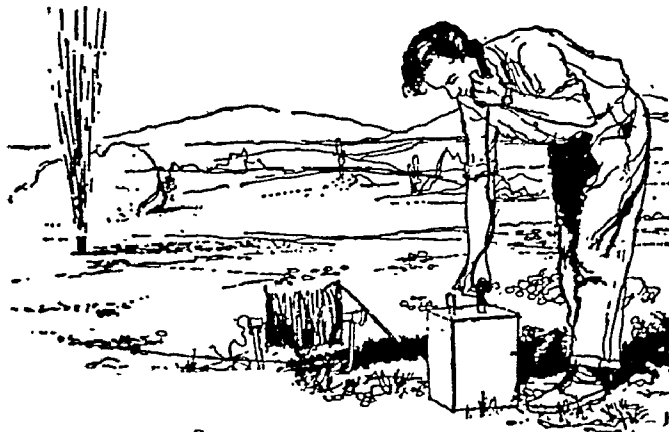
कृत्रिम भूकम्प द्वारा तेलकी खोज

[जमीनके अन्दर गहराईमें विस्फोट द्वारा उत्पन्न भूकम्पकी तरंगोंको जियोफोन द्वारा सुनता और अनुमान लगाता हुआ वैज्ञानिक]

होता है। कड़े शैलोंका गुरुत्वाकर्षण मान नर्म और कोमल भूमिकी अपेक्षा अधिक होता है। गुरुत्वाकर्षणमापी इतना नाजुक और सुग्राही होता है कि गुरुत्वाकर्षणमें पाये जानेवाले दस करोड़वें भागके अन्तरको भी अंकित कर सकता है।

तीसरी प्रणालीके अन्तर्गत जमीनके अन्दर कृत्रिम भूकम्पके धक्के पैदा कर उन्हें नापा जाता है। इन धक्कोंको नापनेवाला यन्त्र भूकम्पलेखी (seismograph) कहलाता है। इसके उपयोगकी विधि इस प्रकार है: जमीनके अन्दर ५०से १०० फुटकी गहराईमें डाइनामाइट पाउडर दबाकर उससे 'जियोफोन' अथवा 'पिक-अप' नामक उपकरणको सम्बद्ध कर दिया जाता है, जो सुरंग द्वारा डाइनामाइटका विस्फोट होने पर जमीनके अन्दर होनेवाले और भिन्न-भिन्न दूरियोंसे परावर्तित होनेवाले कम्पनोंकी प्रतिध्वनियोंको अंकित करता है। ये कम्पन कठोर शैलोंसे शीघ्र परावर्तित होते हैं, जबकि साधारण शैलोंसे परावर्तित होनेमें इन्हें अधिक समय लगता है। भूकम्पलेखी कम्पनोंके इस तरहके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तरोंको भी अंकित कर लेता है। जियोफोनमें इन कम्पनोंको बड़ा करके कैमेरासे उनके चित्र ले लिये जाते हैं ('टाकीज़'में ध्वनि-पथ Sound trackका अंकन करनेकी तरह)। यह यन्त्र एक सेकण्डके हज़ारवें भागका भी अंकन कर सकता है। इस तरहके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तरों और परिवर्तनोंकी सही गणना करके भूगर्भीय शैलोंकी रचनाका नकशा तैयार किया जाता है और उसके आधार पर वेधनका उपयुक्त स्थान निर्धारित होता है।

भूगर्भीय जानकारी और भी सरलतासे प्राप्त करनेके लिए 'इलेक्ट्रिक लॉगिंग' (विद्युत अवरोध लेखन)की सबसे अधुना प्रणाली उपयोगमें लाई जाती है। इस प्रणालीके अन्तर्गत विभिन्न गहराइयों तक पहुँचनेमें विद्युत्-संचारको जितने अवरोधका सामना करना पड़ता है उसको नापकर भूगर्भस्थित शैलोंकी परतोंकी गठनका निश्चय किया जाता है। फिर उन शैलोंकी रेडियधर्मिताको नापकर उसकी मात्रा तय की जाती है। चूना पत्थर, मैग्नेशियमका पत्थर और बलुआ पत्थर गामा किरणोंका अल्प उत्सर्जन करते हैं; इसके विपरीत खनिज तैल-जैसे जैव पदार्थोंवाले शैलोंसे गामा किरणोंका उत्सर्जन अधिक मात्रामें होता है। फिर गामा किरणोंको किसी गैसमें पारित करनेसे वह गैस विद्युत् संवाहक हो जाती है, और तब उसमेंसे विद्युत् पारित की जा सकती है। यह गुण 'आयनीकरण' (ionisation) कहलाता है। गामा किरणोंको जब आयनीकरण कक्षमेंसे पारित किया जाता है तो किरणोंकी मात्राके अनुपातके अनुसार कक्षमें विद्युत्का आवेश होने लगता है। यह कक्ष दस फुट लम्बा और इसका व्यास तीन इंच होता है और इसमें गैस भरी होती है। विभिन्न शैलोंके सम्पर्कमें जब इस कक्षको लाया जाता है तो शैलोंसे उत्सर्जित गामा किरणोंकी मात्राके अनुपातके अनुसार कक्षस्थित गैसमें विद्युत्का आवेश होता है। विद्युत्के आवेशमें होनेवाले इस परिवर्तनको एक यन्त्र द्वारा कागजकी पट्टी पर अंकित कर लिया जाता है।

पेट्रोलियमकी खोजमें आजकल काममें ली जानेवाली तीनों भिन्न-भिन्न प्रणालियोंका महत्त्व और मूल्यांकन अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

अनुक्रम	प्रणाली	सफलताकी सम्भावना
१	अनुमान पर आधारित वेधन	२७ में १
२	केवल भूगर्भीय (भूवैज्ञानिक) परीक्षण	१० में १
३	भूभौतिकीय एवं भूगर्भीय संयुक्त परीक्षण	५ में १

वेधन

पेट्रोलियमके निकालनेका स्थान निश्चित हो जानेके बाद वहाँ वेधन (खुदाईका काम) करनेके लिए नियुक्त कर्मचारी अपना साज-सामान लाकर काम शुरू करते हैं। इसके लिए सबसे पहले तो उस स्थान तक पहुँचनेके लिए कच्चे रास्ते बनाने पड़ते हैं; नदी-नालों पर पुल बाँधने होते हैं और आवश्यकता होने पर जंगलके वृक्षोंको काटकर रास्ता तैयार करना होता है। साथ ही लोगोंके रहनेके लिए काम चलाऊ प्रबन्धके रूपमें तम्बू और छोलदारियोंकी व्यवस्था भी करनी पड़ती है। विद्युत्-उत्पादनके लिए जनित्रों, पम्पों और वेधनके लिए आवश्यक बरमे आदि औजारोंको वहाँ पर पहुँचाना पड़ता है।

कार्यारम्भमें सबसे पहले इस्पातका एक मीनारनुमा मचान बनाया जाता है, जिसे 'डेरिक' कहते हैं। यह १५० फुट ऊँचा होता है और जमीन पर इसके चारों पायोंका फासला एक-दूसरेसे ३०-३० फुट रखा जाता है। इसके सिरेपर तारके मजबूत रस्सेसे बरमेको बाँधनेवाला विशाल 'फन्दा' लटकाया जाता है। इस्पातके लम्बे नलकोंसे जुड़ा हुआ बरमा इसी फन्देके सहारे रहता है। इस्पातके नलके एक-दूसरेसे जुड़े होते हैं और जब बरमा जमीनमें प्रवेश कर कुआँ खोदता हुआ अन्दर उतरता है तो ये नलके भी उसके साथ जमीनमें उतरते जाते हैं। बरमेके रस्सोंको ऊपर-नीचे चलानेवाले यंत्र डेरिकके पायोंके समीप जमीन पर रखे जाते हैं। बरमेको चक्राकार घुमाने वाला यंत्र घूमचक्कर (turn table) कहलाता है, जो डेरिकके पायेके समीप रहता है और जिससे बरमेके साथ जुड़ी हुई नली (इसे 'कैली' कहते हैं)को सम्बद्ध कर दिया जाता है। घूम चक्कर यंत्रको बिजलीकी मोटर और योक्त्रों (दन्तचक्र gears)के सहारे गोल-गोल घुमाया जाता है, बरमा भी गोल-गोल घूमता और छेद करता हुआ जमीनमें उतरने लगता है। इस बरमेके फले कई प्रकारके होते हैं। कुछ फलोंमें कठोर इस्पातके दाँते बने होते हैं तो कुछमें कृत्रिम हीरे लगे होते हैं। कड़ी चट्टानोंमें प्रति घण्टा एक फुटसे अधिक गहराईकी गतिसे वेधन नहीं हो सकता; परन्तु मुलायम परतोंमें प्रति घण्टा १५० फुटकी गहराई तक भी पहुँचा जा सकता है। बरमा जैसे-जैसे नीचे उतरता जाता है उससे जुड़ी हुई इस्पातकी नली (कैली)का सिरा भी कुएँमें प्रवेश करता जाता है। जब यह पूरी नली कुएँमें उतर जाती है तो घूमचक्करको बन्द कर देते हैं और नलीको बाहर निकालकर दूसरी नली (३० फुट लम्बी) उससे जोड़ दी जाती है। फिर जोड़कर बढ़ाई हुई पूरी नलीको कुएँमें अधिक गहरी खुदाईके लिए चालू कर दिया जाता है। कुएँकी गहरी खुदाईके लिए इस क्रियाको कई बार दुहराया जाता है, और कैलीकी लम्बाईको उत्तरोत्तर बढ़ाते जाते हैं। बरमा और उससे जुड़े हुए रस्सोंका वजन ५० टनसे भी अधिक हो जाता है।
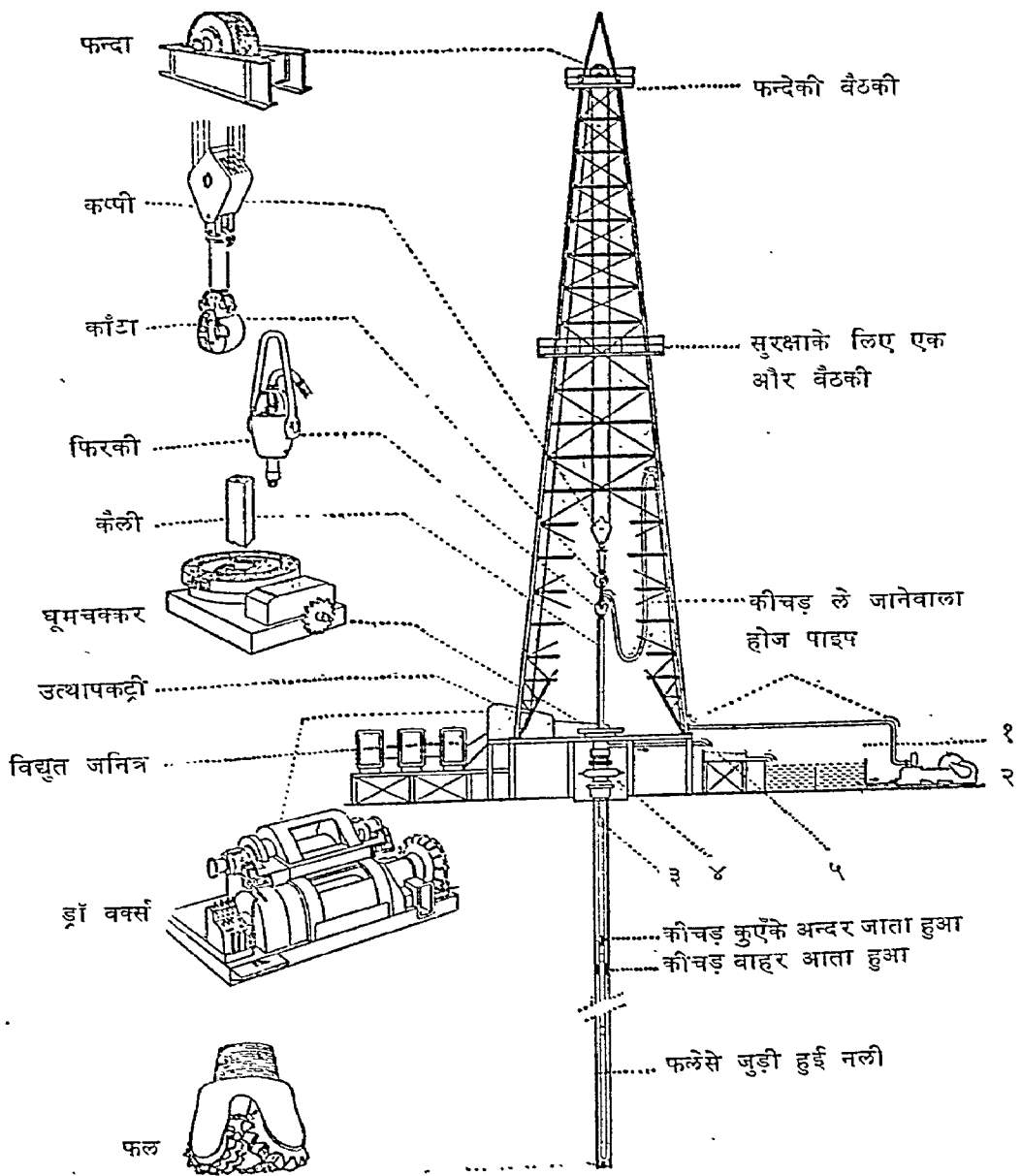
१. कीचड़की टंकी; २. पम्प; ३. कैली और बरमेकी नलीका जोड़; ४. निर्गमन निरोधक (blow-out preventer); ५. कीचड़को एक-जैसी स्थितिमें रखनेवाला हलोर-यंत्र।

इस बोझको थामनेके लिए डेरिक पर 'ड्रॉ वर्क्स' नामक उपकरण लगा रहता है। कुआँ खोदते समय चट्टानोंके वेधनसे पत्थरोंका जो चूरा बनता है उसे और अन्य कूड़ेको छेदमेंसे बाहर निकालते रहना आवश्यक है। यह काम विशेष विधिसे तैयार किये गए कीचड़से लिया जाता है। रबरकी नलीके सहारे इस कीचड़को छेदके अन्दर पहुँचाया जाता है। बरमेसे जुड़ी नलीमें होकर कीचड़ नीचे पहुँचता और बरमेके फलकी बाजूसे होता हुआ जब ऊपर आता है तो अपने साथ वेधित चट्टानके प्रस्तरीय चूरे और कूड़ेको भी बाहर ले आता है। इसके अतिरिक्त इस कीचड़के दो उपयोग और भी हैं: एक तो यह बरमेको गर्म नहीं होने देता, वेधन प्रक्रियामें उसे बराबर ठण्डा बनाये रखता है और दूसरे, कुएँमेंसे वेगके साथ ऊपर आती हुई गैसोंको बाहर निकलनेसे रोकता है। कीचड़के साथ पत्थरके जो टुकड़े बाहर निकलते हैं, भूगर्भ-वेत्ता उनका परीक्षण करते और उनमें तेलकी मात्राका अनुमान लगाते हैं।

खुदाई (वेधन) में कुएँकी चट्टानें खिसक न जाएँ, इसलिए उसके अन्दर लोहेके नल फँसा दिये जाते हैं; इससे पानीका रिसना भी बन्द हो जाता है। खुदाई हो जाने पर बरमेको उसकी नलीके साथ बाहर निकाल लिया जाता है और उसकी जगह लोहेकी मोटी चद्दरोंके तीस-तीस फुट लम्बे लोहेके नल कुएँमें उतार दिये जाते हैं। फिर इन नलों और कुएँकी दीवालके बीचकी जगहमें सीमेण्ट कंक्रीट भर दिया जाता है, जिसके पक जाने पर लोहेके नल ठीकसे जमकर अपनी जगह स्थिर हो जाते हैं। इसके बाद और भी गहरी खुदाईके लिए कम व्यासवाला बरमा कुएँके अन्दर उतारा जाता है। ज्यों-ज्यों कुआँ गहरा होता जाता है उसमें लोहेके नल दूरबीनकी तरह एक-दूसरेमें पिरोकर बिठाते जाते हैं। यहाँ तक कि १५ हजार फुट गहरी खुदाईमें बरमेका व्यास दो फुटसे घटता-घटता सिर्फ आधा फुट ही रह जाता है। जब तक 'बरमा नली' (drill-pipe) छत्रक शैल तक नहीं पहुँच जाती वेधन चालू रखा जाता है। बरमा जब छत्रक शैलसे टकराता है तो तेल पानेकी आशासे उत्तेजना, उत्साह और अधीरता बढ़ जाती है। अन्तमें बरमा छत्रक शैलको वेधता है और तेलका फव्वारा उठता है। पेट्रोलियम निकालनेके आरम्भिक दिनोंमें यह तेल बड़े वेगसे ऊपर आता था, और इसीलिए इसे 'गशर' नाम दिया गया था। इससे पेट्रोलियमका भारी मात्रामें अपव्यय होता था और प्रायः आग भी लग जाया करती थी। अब तो कीचड़ डालकर तेलके इस आवेग (गशर) को नियन्त्रित कर लिया जाता है। इस नियन्त्रणको सतत बनाये रखनेके लिए एक खास किस्मके कपाट (वाल्व) का, जो 'निर्धमन अवरोधक' (blow-out preventer) कहलाता है, उपयोग किया जाता है। ठीक इसी समय बरमा नलीको सावधानीसे ऊपर खींच लिया जाता है।

इसके बाद पेट्रोलियम कूप-शीर्ष (well-head) नामक एक उपकरणको कुएँके ऊपर बिठाया जाता है। इस शीर्षमें कपाट (वाल्व), दाब मंडलक (pressure), गोल हत्थे आदि रहते हैं, जिससे यह देखनेमें वृक्षकी तरह लगता है; इसीलिए विज्ञानकी ठेठ भाषामें इसे 'क्रिसमस ट्री' भी कहते हैं। कूप-शीर्षको कुएँ पर चढ़ानेके बाद कीचड़के दाबको कम करनेके लिए उसमें पानी मिला देते हैं, जिससे वह पतला और हलका होकर पेट्रोलियमकी ऊर्ध्व गतिके

साथ धीरे-धीरे ऊपरकी ओर धकेला जाने लगता है। जव इस विधिसे सारा कीचड़ वाहर निकल आता है तो पेट्रोलियम उसके अन्दरको विलेय गैसके कारण फेनिल रूपमें सतह पर दिखाई देता है। यह सारा फेन निकल जानेके वाद ही पेट्रोलियम वाहर आता है, और उसे नलतंत्र (pipe-line)के द्वारा एक मध्यवर्ती केन्द्रीय संग्रहालयमें ले जाया जाता है।
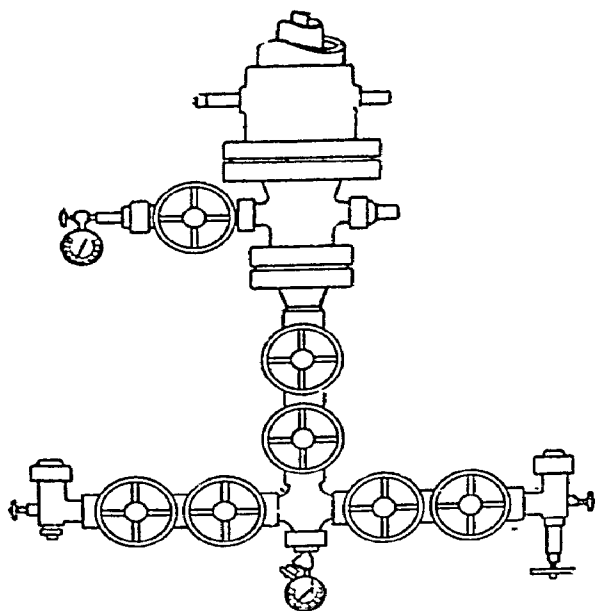
'क्रिसमस ट्री'

कच्चा तेल (crude oil) परिष्करणी (refinery)में

कुएँसे निकलनेवाला पेट्रोलियम क्रूड आयल (कच्चा तेल) कहलाता है। कच्चे तेलका परिष्करण करनेवाले कारखानेको 'रिफाइनरी' अथवा परिष्करणी कहते हैं। परिष्करणीमें लगातार चौवीसों घण्टे काम होता रहता है। यहाँका मुख्य काम क्रूड आयलमें रहनेवाले विभिन्न हाइड्रोकार्वनोंको उपयोगमें लाये जाने योग्य स्वरूपमें प्राप्त करना है। कच्चे तेलमें रहनेवाले इन कार्वन और हाइड्रोजन
समस्त रासायनिक पदार्थोंको सामूहिक रूपसे हाइड्रोकार्वन कहते हैं। पेट्रोलियमके हाइड्रोकार्वनोंमें
नामक मूलतत्त्वोंके परमाणुओंके संयोगसे हाइड्रोकार्वन वनते हैं। एक परमाणुका
सवसे हलका हाइड्रोकार्वन 'मेथेन' है, जिसमें हाइड्रोजनके चार और कार्वनके
रासायनिक संयोग हुआ है।

पेट्रोलियममें एक कार्वन परमाणुसे लेकर ४० कार्वन परमाणु तकके हाइड्रोकार्वन होते हैं। इनके अतिरिक्त चक्रीय पैरैफ़िन (नैफ्थीन) और सुरभित (arom ıtic) हाइड्रोकार्वन और (वेनेज़िन आदि) भी होते हैं। इन हाइड्रोकार्वनोंके अतिरिक्त आक्सीजन, नाइट्रोजन
सल्फर (गन्धक)के परमाणुओंवाले अन्य यौगिक भी रहते हैं।

हाइड्रोकार्वनोंकी श्रेणीमें कार्वन तथा हाइड्रोजनके परमाणुओंकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। मेथेनके वाद दूसरा हाइड्रोकार्वन एथेन है; एथेनके वाद प्रोपेन और उसके वाद व्यूटेन, पेण्टेन, हेक्सेन, ऑक्टेन आदि आते हैं। सामान्य ताप और दाव पर मेथेनसे व्यूटेन तकके हाइड्रोकार्वन गैसीय रूपमें, पेण्टेनसे सेप्टेन तकके द्रव अवस्थामें और हेप्टाडेकेन तथा उसके वादके ठोस रूपमें रहते हैं। परिष्करणीमें जो अनेक पदार्थ सामान्य ढंगसे प्राप्त किये जाते हैं उनकी सूची इस प्रकार है:

हाइड्रोकार्वन	क्वथनांक (°सें०)	संरचना	उपयोग
हल्का पेट्रोल	२०–१००	$C_5H_{12}–C_7H_{16}$	विलायक
वेंज़ाइन	७०–९०	$C_6—C_7$	निर्जल धुलाई (शुष्क धावन)
लिग्रोइन	८०–१२०	$C_6—C_8$	विलायक
पेट्रोल (गेसोलिन)	७०–२००	$C_6—C_{11}$	मोटरका ईंधन
केरोसीन (पैरैफिन तेल)[1]	२००–३००	$C_{12}—C_{16}$	कन्दीलोंमें जलानेके लिए
गैसतेल (डीजेल या भारी तेल)	३००मे अधिक	$C_{13}—C_{18}$	ईंधन
स्नेहक (खनिज तेल)	,, ,,	$C_{16}—C_{20}$	स्नेहक
ग्रीस, वैसलिन, पेट्रोलियम जेली आदि	,, ,,	$C_{18}—C_{22}$	औषधि निर्माणमें
मोम आश्रुत (पैरैफिन वैक्स–सख्त)	,, ,,	$C_{20}—C_{30}$	मोमवत्ती, मोमी कागज कार्वन पेपर आदि वनानेमें
अवशिष्ट तारकोल (अलकतरा या 'पिच')	,, ,,	$C_{30}—C_{40}$	रास्ते वनानेमें

इनके सिवा समुचित रासायनिक क्रियाओंके द्वारा इन पदार्थोंमे दूसरे अनगिनत रसायनक वनाये जाते हैं, जो 'पेट्रो-केमिकल्स' कहलाते हैं। परिष्करणी जितनी ही वड़ी होगी वहाँ परिष्कृत

प्रभाजक स्तम्भ
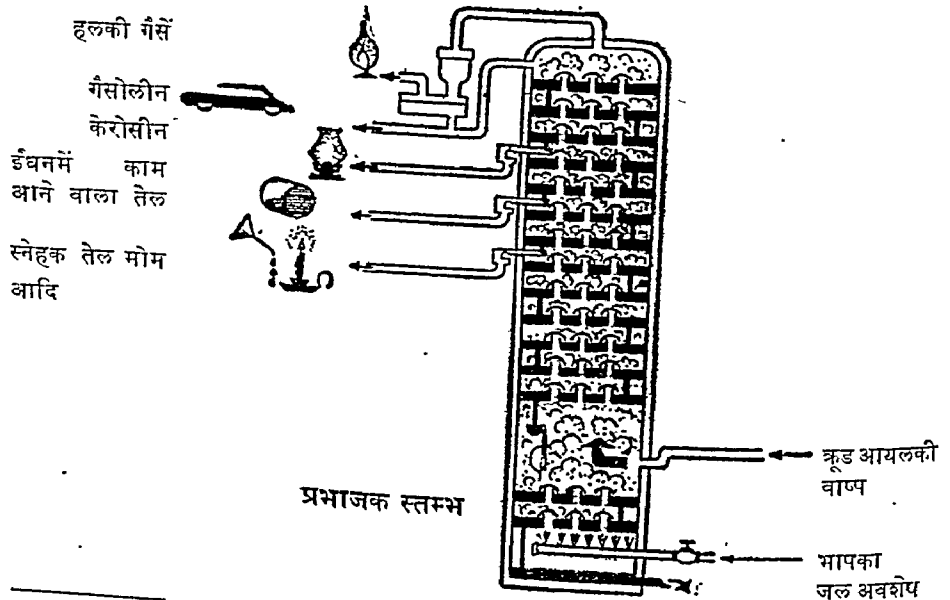
१. इसे दीपन तेल या मिट्टीका तेल भी कहते हैं।

किये जानेवाले पेट्रोलियम पदार्थोकी संख्या भी उतनी हीं अधिक होगी। परिष्करणीकी कार्य-
प्रणालीका सिद्धान्त बहुत हीं सीधा-सादा है। अलग-अलग पदार्थोके क्वथनांक भी अलग-अलग
होते हैं। क्वथनांकके अनुसार हीं पेट्रोलियम पदार्थोका निस्सारण किया जाता है। इस विधिको
प्रभाजी आसवन (fractional distillation) कहते है। इस कार्य विधिके लिए परि-
ष्करणीमें इस्पातके बड़े-बड़े प्रभाजक स्तम्भ (fractionation towers) होते है। इन
स्तम्भोंमें थोड़े-थोड़े अन्तर पर बड़े-बड़े तसलोंकी थप्पियाँ लगी होती हैं। जिन पदार्थोका क्वथनांक
उच्च होता है वे नीचेके तसलोंमें ठण्डे होकर इकट्ठा होते है। निम्न ताप पर उवलनेवाले द्रव
तेल ऊपरके तसलोंमें इकट्ठा होते हैं। इन सब तेलोंका पृथक्करण करनेके लिए इतने बड़े
प्रभाजक स्तम्भकी आवश्यकता होती है जिसमें ४० तसले रखे जा सकें।

परिष्करणीके तीन प्रमुख सिद्धान्त हैः

(१) कच्चे तेलसे प्रभागों (fractions)का बिना किसी पूर्व उपचारके सामान्य आसवन द्वारा पृथक्करण किया जाता है और समान प्रकारके कच्चे तेलसे प्राप्त होनेवाले द्रव्योंकी मात्रा और उनके गुणधर्म भी निश्चित होते है।

(२) कच्चे तेलसे प्राप्त होनेवाले पदार्थोका उपर्युक्त विधिसे पृथक्करण करनेके वाद उनका अधिक परिष्करण करनेके लिए अन्य उपचार करना होता है; यथा रासायनिक पुनर्योजन (chemical reforming पुनरुत्पादन), उत्प्रेरक पुनर्योजन (catalytic reforming), वहुलीकरण (polymerisation) आदि क्रियाएँ।

(३) कम तादादमें खपत होनेवाले द्रव्यके अपव्ययको रोकनेके लिए उससे अन्य उपयोगी पदार्थ वनानेका प्रवन्ध भी किया जाता है।

पेट्रोलियमसे विविध रसायनक (पेट्रो-केमिकल्स) वनानेका उद्योग वर्तमान युगकी एक
महान उपलब्धि है। दूसरे विश्वयुद्धके दौरान (१९३९-४५) परम्परागत पदार्थोसे रसायनक
प्राप्त करनेमें पग-पग पर कठिनाइयाँ उपस्थित होने लगीं तो नये रास्ते खोजनेकी आवश्यकता
महसूस की गई। पेट्रोलियम इसके लिए एक आदर्श और अखूट स्रोत साबित हुआ। इससे दूसरे
महायुद्धके वाद पेट्रो-केमिकलस अथवा पेट्रोलियम जन्य रसायनक बनानेका उद्योग आश्चर्यजनक
रूपसे विकसित हुआ। दूसरे महायुद्धसे पहले दवाइयाँ, कृत्रिम रवर, प्लास्टिक, विस्फोटक पदार्थ
और अन्य रसायनकोंका पितृ पदार्थ (मूलद्रव्य) कोयला था। अव उसकी जगह पेट्रोलियमने
ले ली है। यह चमत्कार 'भंजन' (cracking) नामक रासायनिक क्रियाकी खोजके कारण
सम्भव हो सका। इस क्रियाके द्वारा पेट्रोलियमके उच्च अणुभारवाले हाइड्रोकार्वन टूटकर निम्न-
अणुभारवाले हाइड्रोकार्वन वनते हैं, जो अधिक अभिक्रियाशील (re-active) होते है। गैसोलीन
अथवा पेट्रोलका उत्पादन वढ़ानेकी आवश्यकता अनुभव किये जाने पर इस क्रियाकी खोज की
गई। दूसरी महत्त्वपूर्ण खोज थी वहुलीकरण क्रिया (polymerisation), जिसके द्वारा अधिक
मात्रामें विशुद्ध गैसोलीनकी प्राप्ति सम्भव हुई। भंजन द्वारा उत्पन्न होनेवाली प्रोपेन तथा व्यूटेन
गैसोंसे क्रमशः प्रोपेलीन और व्यूटिलीन नामक महत्त्वपूर्ण रसायनक प्राप्त किये गए। इस प्रकार
यह उद्योग धीरे-धीरे विकसित होता गया। आज तो पेट्रो-केमिकल उद्योग एक स्वतन्त्र और
सर्वथा अलग उद्योग वन गया है।

सामान्यतः पेट्रो-केमिकल उन रसायनकोंको कहते हैं जो पेट्रोलियम अथवा प्राकृतिक गैस (natural gas) मूल वाले रसायनकोंसे या तज्जन्य हाइड्रोकार्वनोंसे वनाये जाते हैं। मूल हाइड्रोकार्वनकी गणना पेट्रोलियम केमिकलके अन्तर्गत की जा सकती है, परन्तु उससे उत्पादित नायलोन, कृत्रिम रवर आदि अन्तिम पदार्थोंका समावेश पेट्रोलियम रसायनकोंके अन्तर्गत नहीं किया जा सकता। इस तरहके वर्गीकरणसे कई वार भ्रान्तियाँ भी पैदा हो जाती हैं, क्योंकि जिस रसायनकका अन्तिम पदार्थके रूपमें वर्गीकरण किया जा रहा है वह मध्यस्थ पदार्थ (intermediate product) भी हो सकता है और सम्भवतः अन्तिम पदार्थ भी; उदाहरणार्थ 'टेरेलिन'का कृत्रिम रेशा वनानेमें काम आनेवाला रसायनक एथेलीन ग्लायकोल 'हिमायन रोधी' (anti-freeze)के रूपमें तो अन्तिम, परन्तु टेरेलिनकी दृष्टिसे केवल मध्यस्थ पदार्थ (रसायनक) है।

सिद्धान्ततः क्रूड आयल अथवा प्राकृतिक गैससे सारे-के-सारे कार्वनिक पदार्थ वनाये जा सकते हैं। अभी हालमें, मनुष्यके खाद्य पदार्थमें नितान्त उपयोगी पोषक तत्त्व प्रोटीन तकको इससे वनानेमें सफलता मिल चुकी है। फ्रान्सके पेट्रोलियम विशेषज्ञ डॉ० गेगेलियरने इस दिशामें फ्रान्सकी सफलताकी घोषणा करते हुए यह राय जाहिर की है कि भारत अपनी प्रोटीन-सम्वन्धी आवश्यकताको इस विधिसे पूरा कर सकेगा। देहरादूनकी इंडस्ट्रियल इन्स्टीट्यूट और जोरहाटकी नेशनल रीजनल रिसर्च लेवोरेटरीमें प्रति दिन ५० कि० ग्रा० प्रोटीन वनानेवाले दो प्रायोगिक संयंत्रों (pilot projects)की स्थापना की जा चुकी है।

जोरहाटकी रीजनल रिसर्च लेवोरेटरीने यह दावा किया है कि तेलके कुएँकी मिट्टीके नमूनोंके मोमी प्रयोगोंको मनुष्यके खाद्यके लिए उपयोगी प्रोटीनमें परिवर्तित किया जा सकता है। इस तेलके किण्वन (fermentation)से उत्पादित पदार्थोंमें ७० प्रतिशत तक प्रोटीन होनेका पता चला है। कई वार कच्चे मालसे अन्तिम पदार्थका उत्पादन करने तक या तो खर्च वहुत वैठता है या उसके व्यापारिक उत्पादनकी विधि वहुत जटिल हो जाती है। इसलिए पेट्रो-केमिकल पदार्थोंका उत्पादन प्रायः पेट्रोलियमके ऐसे ही प्रभागोंसे किया जाता है जो प्रचुर मात्रामें कम मूल्य पर उपलब्ध हो सकें और साथ ही व्यापारिक दृष्टिसे भी उनका उत्पादन किया जा सके।

मूल हाइड्रोकार्वनोंके पितृ पदार्थोंको यदि महत्त्वकी दृष्टिसे क्रमवद्ध किया जाए तो सबसे पहले आती हैं प्राकृतिक गैसें, उसके वाद तरल पेट्रोलियम गैस (liquefied petrolium gas-L. P. G.) और परिष्करणीकी गैसें तथा क्रूड आयलके विविध प्रभाग। मूल हाइड्रोकार्वनोंकी संख्या अधिक नहीं है। उनमेंसे कुछ प्रमुख नाम नीचे दिये जा रहे हैं:

एसिटिलीन ओलेफ़ीन वर्ग	ऐरोमेटिक वर्ग	पैरैफिन वर्ग	नैफ्थीन वर्ग
एसीटिलीन	वेनजिन	मेथेन	साइक्लो हेक्सेन
एथिलीन	टोल्यूइन	एथेन	
प्रोपेलीन	जाइलीन	प्रोपेन	
व्यूटिलीन			
आइसो-व्यूटिलीन			
व्यूटाडाइन			

इनके अतिरिक्त परिष्करणोंकी सामान्य क्रियाओंसे उद्भवित पदार्थ भी 'पेट्रो-केमिकल' कहलाते हैं। इनमें इलेक्ट्रोड (विद्युदग्र) बनानेमें प्रयुक्त कोक, कैल्सियम कार्बाइड, अपघर्षक (abrasives), रंगोंके शुष्ककों (driers) में प्रयुक्त नैफ्थिनिक अम्ल, कपड़ेके जन्तुनाशक अस्तरोंमें प्रयुक्त किये जानेवाले पदार्थ, प्लास्टिक, विलायक, धुलाईमें काम आनेवाले अपमार्जक (प्रक्षालक) पदार्थ आदि गिनाये जा सकते हैं।

पेट्रो-केमिकल उद्योगके विकासमें महत्त्वपूर्ण योगदान करनेवाले ओलेफ़ीन, एरोमेटिक, पैरैफ़िन और नैफ्थीन वर्गके रसायनोंका अब हम क्रमशः अध्ययन करेंगे।

ओलेफ़ीन वर्गके रसायनोंका पेट्रोलियम अथवा प्राकृतिक गैसमें स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। उन्हें बनाना पड़ता है। गैसोलीन पर 'भंजन' क्रिया करनेसे गैसीय स्वरूपवाले ओलेफ़ीन प्राप्त होते हैं। परिष्करणोंमें भंजन-क्रियासे प्रोपेलीन, आइसो-ब्यूटिलीन और नार्मल-ब्यूटिलीन प्रचुर मात्रामें उत्पन्न होते हैं; एथिलीन कम मात्रामें उत्पादित होता है; ब्यूटाडाइन तथा आइसोप्रीन बहुत ही कम मात्रामें बनते हैं, और एसीटिलीन तो बिलकुल ही नहीं बनता। एथिलीनकी बात सर्वथा भिन्न है। जैव-रसायनकोंके उत्पादनमें एथिलीन प्रमुख और मूल हाइड्रोकार्बन है। पेट्रो-केमिकल उद्योगमें लगभग ८० प्रतिशत एथिलीन उच्च ताप पर की जानेवाली भंजन-क्रियाके द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसके आदि पदार्थ एथेन और प्रोपेन हैं, परन्तु इस क्रियामें तरल पेट्रो-लियम गैस—प्रोपेन तथा ब्यूटेन, नैफ्था और गैसके तेलोंका भी उपयोग किया जाता है।

यदि केवल एथिलीन ही बनाना हो तो एथेन और उससे अल्प मात्रामें प्रोपेनका मूल पदार्थोंके रूपमें उपयोग किया जाता है। ब्यूटाडाइन, आइसोप्रीन, गैसोलीनके प्रभाग, एरोमैटिक पदार्थ, ओलेफ़ीनके जटिल पदार्थ (complexes) और अलकतरा (कोलतार) बनानेके लिए भी अधिक भारी द्रव्योंसे आरम्भ करना चाहिए। गैसीय पदार्थोंके उत्पादनके लिए द्रव पदार्थोंको बार-बार भंजक भट्ठीमें उपचारित करना पड़ता है। भट्ठीसे भंजित होकर बाहर निकलनेवाले पदार्थोंमें मेथेनसे लेकर ब्यूटाडाइन तक सभी प्रकारके हाइड्रोकार्बनोंका मिश्रण होता है और तारकोल जैसे भारी बहुलक (polymer) पदार्थ उसमेंसे पृथक् हो जाते हैं। गैसोंको संपीडित (compress) करके उन्हें शून्य अंश फे० तक ठण्डा किया जाता है और उसके बाद अवशोपित्र (absorber tower) में पम्पके द्वारा पहुँचा दिया जाता है। इस ताप पर भी गैसीय रूपमें रहनेवाले मेथेन और हाइड्रोजनको अवशोपित्रके ऊपरले भागमेंसे बाहर निकाल लिया जाता है; एथिलीन और भारी गैसें अवशोपित्रके निचले भागमें प्रवहमान द्रव-तेलोंमें अवशोपित्र रहती हैं, उन्हें उनमेंसे पृथक् कर लिया जाता है।

एथेन और प्रोपेनको संयुक्त करके अलग भट्ठीमें भंजन करनेसे 'एथिलीन' बनाया जा सकता है।

एथिलीनसे बननेवाले कुछ उपयोगी रसायनकोंका वंशवृक्ष देखने योग्य है, जो इस अध्यायके अन्तमें दिया गया है।

बहुलक (पोलिमर) गैसोलीन बनानेके लिए बहुत समयसे प्रोपेलीन काममें लाया जा रहा है। आइसो-प्रोपेल ऐलकोहल, एसीटोन, अपमार्जक (detergents) पदार्थोंके लिए आवश्यक पोलिमर (बहुलक) डो-डेसिल बेनजिन और अन्य पेट्रो-केमिकल बनानेमें भी इसका उपयोग किया गया है।

व्यूटिलीन चार प्रकारका होता है : व्यूटिलीन-१, व्यूटिलीन सिस-२, और ट्रान्स-२ तथा आइसो व्यूटिलीन। पहले तीन समानधर्मी हैं। आइसो व्यूटिलीनके गुण बिल्कुल भिन्न हैं और वह अधिक क्रियाशील भी है। आइसो व्यूटिलीनका आइसोप्रीन (डाइ-ओलेफीन)के साथ सह-बहुलीकरण (co-polymerisation) करके पोली व्यूटिलीन बनाया जा सकता है। इससे कृत्रिम रवर बनता है। अन्य मध्यस्थ रासायनिक पदार्थोंके लिए भी आइसोव्यूटिलीन महत्त्वपूर्ण मूल पदार्थ है। प्रोपेलीनसे प्राप्त होनेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण पदार्थ आइसोप्रोपेल ऐलकोहल है, जो विलेयनों, हिमायनरोधियों, आदिका उत्पादन करनेके लिए बहुत ही उपयोगी है। उसके जलीय अंगको पृथक् करके एसीटोन नामक पदार्थ बनाते हैं। यह एसीटोन एसीटेट रेयन और प्लास्टिक बनानेमें बड़ा उपयोगी है। प्रोपेलीन ट्राइमर (नोनेन) और प्रोपेलीन ट्रेट्रामर (डो-डेसेन) प्रोपेलीनके अल्प अणुभारवाले बहुलक पदार्थ हैं। इन दोनोंसे अपमार्जक (प्रक्षालक) पदार्थ बनते हैं। प्रोपेलीन आक्साइड पर 'क्लोरोहाइड्रोनेशन' नामक क्रिया करनेसे प्रोपेलीन ग्लायकोल और ड्राइप्रोपेलीन ग्लायकोल नामक पदार्थ बनते हैं, 'जिनसे अन्तमें 'पोलीयुरेथेन फोम' वाला प्लास्टिक बनाया जाता है। प्रोपेलीन पर क्लोरिनकी क्रिया करनेसे एलिल क्लोराइड नामक रसायनक बनता है, जिससे एलिल ऐलकोहल और एपिक्लोर हाइड्रिन नामके रसायनक बनाये जा सकते हैं; इनसे ग्लीसरीन और इपोकिस प्रकारके प्लास्टिक बनते हैं। प्रोपेलीन पर आक्सीजनकी सीधी क्रिया करनेसे 'ऐकिलन' बनता है, जो एकिलिक वर्गके वस्त्र-रेशे और प्लास्टिक बनानेमें काम आनेवाला मूल पदार्थ है। प्रोपेलीनसे अभी हालमें एक और महत्त्वपूर्ण पेट्रो-केमिकल बनाया गया है, जो पोलीप्रोपेलीनके नामसे विख्यात है। इससे सर्वथा नये ही ढंगके वस्त्र-रेशोंका निर्माण किया जाता है।

व्यूटाडाइनका व्यापक उपयोग कृत्रिम रवर, प्लास्टिक और नायलोन बनानेमें किया जाता है। एथिल ऐलकोहल पर भाष्प-भंजन-क्रिया (steam cracking) करनेसे व्यूटाडाइन उत्पन्न होता है। व्यूटेनसे व्यूटिलीन बनाकर संपरिवर्तन प्रक्रिया (conversion process) द्वारा उसे व्यूटाइनमें रूपान्तरित किया जा सकता है।

एथिलीनकी तरह एसीटिलीन भी कई रसायनकोंका जनक है। उससे वाइनिल क्लोराइड (प्लास्टिक), नियोप्रीन (कृत्रिम रवर), ट्राइक्लोरो एथेलीन (विलेयन), एकिलोनाइट्रिल (प्लास्टिक ओरलोन, डाइनेल, एकिलान) आदि बनाये जा सकते हैं। परन्तु सामान्य परिष्करणीमें इनका उत्पादन बहुत कम होता है, इसलिए इन पदार्थोंको बनानेके लिए खास तरहका प्रबन्ध करना पड़ता है। पेट्रोलियमसे एसीटिलीन बनानेके लिए गैसीय पैरैफिन हाइड्रोकार्बनका क्षण-भरके लिए अत्यन्त उच्च ताप दिया जाता है।

इनके अतिरिक्त ऊपरकी सूचीमें पेण्टेन, साइक्लोहेक्सेन, हेप्टेन आदि कई पेट्रोलियम रसायनकोंका नाम जोड़ा जा सकता है। प्रतिदिन नये-नये रसायनकोंका नाम जुड़नेसे यह सूची विस्तृत होती जाती है। एक भी ऐसा जैव-रसायनक नहीं है जो पेट्रोलियमसे बनाया न जा सके। पेट्रोलियम-का महत्त्व एक इसी बातसे प्रतिपादित हो जाता है। यह निर्विवाद है कि पेट्रोलियम और उसके रसायनक भविष्यमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे। विश्वमें खनिज तेलका उपभोग प्रतिवर्ष साढ़े पाँच प्रतिशतके हिसाबसे बढ़ता जाता है, इसलिए दुनियामें अधिकाधिक खनिज तेल प्राप्त करनेके प्रयत्न भी निरन्तर होते रहेंगे, और वह प्रत्येक राष्ट्रके स्वावलम्बनका मूलमंत्र बन जाएगा।

एथिलीनका वंश-वृक्ष

(एथिलीनसे बननेवाले कुछ उपयोगी रसायनक)

एथिलीन

- इथेनाल
  - एसीटाल्डिहाइड
    - ऐसेटिक अम्ल
      - ऐसेटिक एन्हाइड्राइड
    - क्लोरल
      - डी० डी० टी० (जन्तु नाशक)
- एथिलीन आक्साइड
  - एथिलीन ग्लायकोल
    - हिमायनरोधी द्रवपदार्थ
    - टेरेलिन वस्त्र-रेशे
- पोलीएथिलीन
  - फिल्म और भिन्न-भिन्न प्रकारके प्लास्टिक पदार्थ
- इथाइल बेनेज़िन
  - स्टाइरिन
    - पोली-स्टाइरिन
      - रंग और अस्तरके इमल्शन (पायस)
      - प्लास्टिक पदार्थ
- इथाइल क्लोराइड
  - T. E. L. टेट्राइथाइल लेड-एंटिनोक पदार्थ
  - इथाइल सेल्युलोज (फिल्म, लेंकर आदि)
- एथिलीन डाईक्लोराइड
  - वाइनिल क्लोराइड
    - पोली वाइनिल क्लोराइड
      - पी० वी० सी० प्रकारके प्लास्टिक
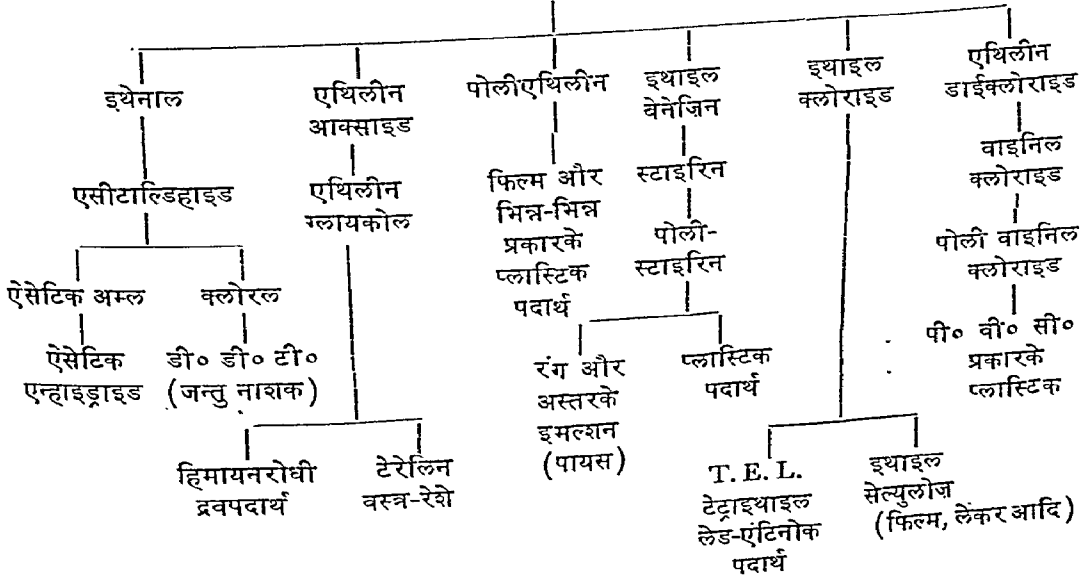
प्रोपेलीनका वंश-वृक्ष

(प्रोपेलीनसे बननेवाले कुछ उपयोगी रसायनक)
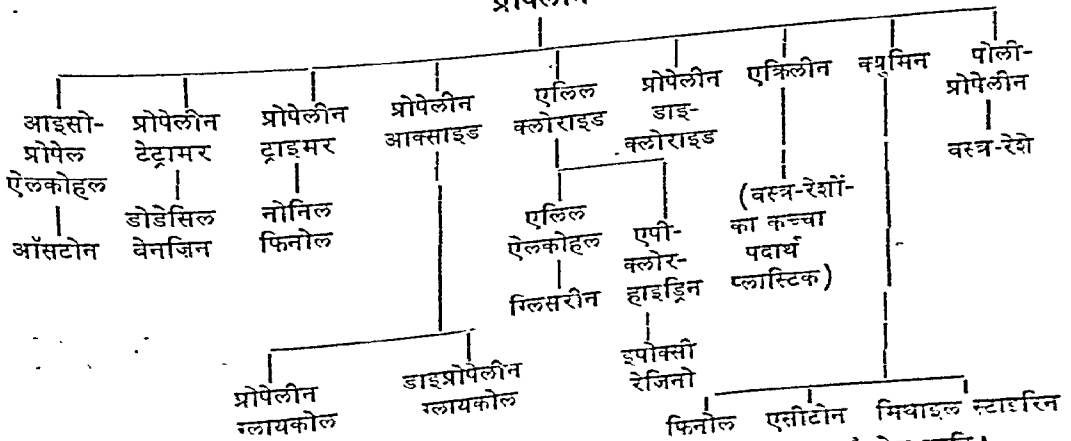
इनके अतिरिक्त दूसरे और भी पेट्रोलियम रसायनक, जैसे कि पेन्टेन, साइकलहैक्सेन आदि।

एरोमेटिक द्रव्योंका वंश-वृक्ष

पैरैफ़िन द्रव्योंका वंश-वृक्ष

मेथेनसे उद्‌भूत रसायन
- एमोनिया
  - नाइट्रिक अम्ल
  - एमोनियम नाइट्रेट
  - एमोनियम सल्फेट
    (ऊपर के तीन — उर्वरक एवं विस्फोटक)
  - युरिया
  - कार्वन डाइआक्साइड
- मिथाइल ऐलकोहल → फार्मालिडहाइड → रंग, प्लास्टिक विस्फोटक
- आइसो व्यूटिल ऐलकोहल
- एसीटिलीन
  - वाइनिल एसीटेट
  - वाइनिल क्लोराइड
  - एकिलोनाइट्राइल
  - नियोप्रीन रवर
  - एसीटाल्डीहाइड
  - एसीटिक अम्ल
  - परक्लोराइथिलीन
- कार्वन ब्लेक
- हाइड्रोजन साइनाइड
  - एडियोलोनाइट्राइल—रेशे (एडिलिक) और प्लास्टिक
  - एडियोनाइट्राइल—रेशे (नायलोन) और प्लास्टिक
- कार्वन वाइ-सल्फाइड
- क्लोरिनीकरण क्रिया
  - कार्वन टेट्राक्लोराइड
  - क्लोरोफार्म
  - मिथाइल क्लोराइड
  - मेथेलीन क्लोराइड
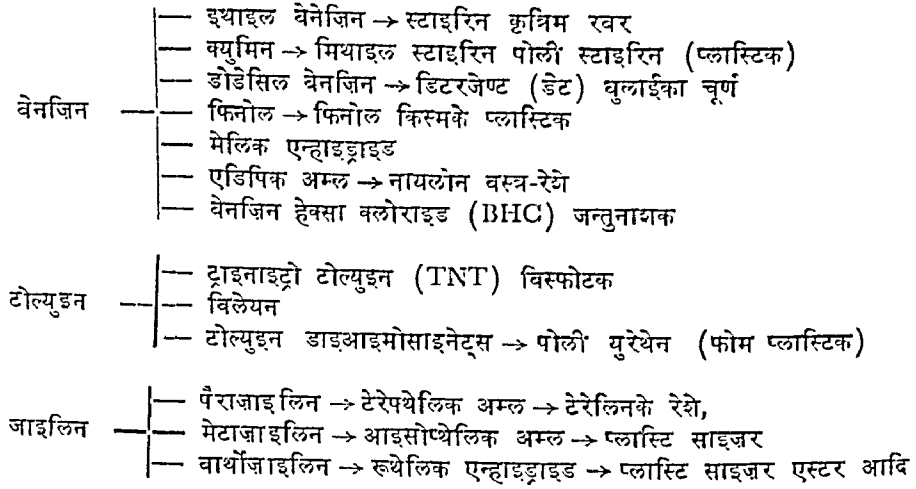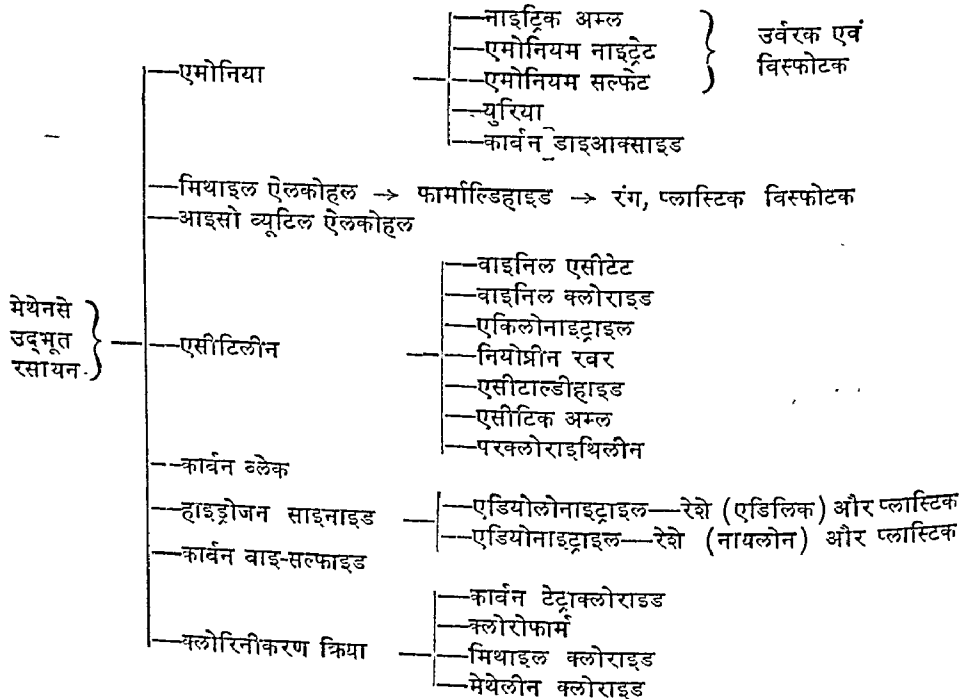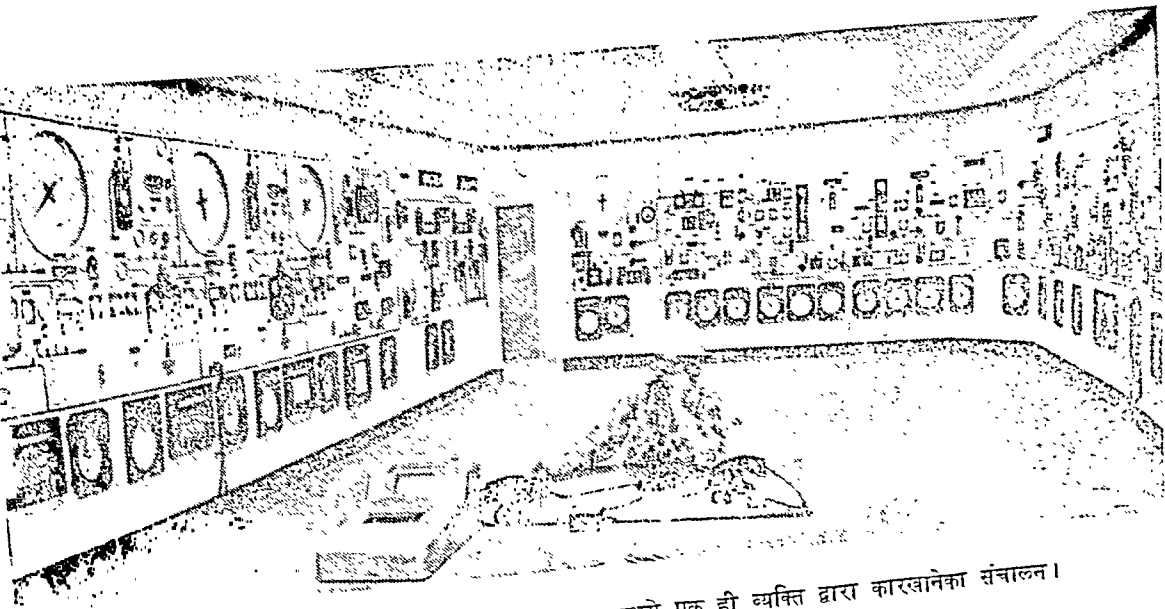
ई० आई० डुपोण्ट केमिकल कारपोरेशनके नियन्त्रण-कक्षसे एक ही व्यक्ति द्वारा कारखानेका संचालन।

खंड : ४

प्रतिदिन १,५०,००० जूतोंका उत्पादन

: रबर

पृथ्वी पर मनुष्यने भिन्न-भिन्न जिन साधनोंका उपयोग किया आधार पर इतिहासकारोंने मानव ह युग निर्धारित किये हैं। उन पाषाण-युग, लौह-युग, कांस्ययुग हैं। लेकिन पिछले डेढ़ सौ वर्षोंमे ा उपयोग बहुत महत्त्वपूर्ण हो है।

सोलहवीं शताब्दीमें जब स्पेनी ह मध्य और दक्षिण अमरीका पहुँचे वहाँ उन्होंने रबरके पेड़ोंकी खोज प्राकृतिक रबरके सम्बन्धमें सबसे ा उल्लेख सेविलमें प्रकाशित "Valdes historia Natural Y general de las Indias" नामक पुस्तकमें मिलता है। इस पुस्तकमें की गेंदसे खेले जानेवाले एक खेल 'बेटि'का उल्लेख किया गया है, जो आधुनिक टेनिससे ता-जुलता है। इस खेलका वर्णन करते हुए कहा गया है कि रबरकी गेंद गुब्बारेसे भी ' उड़ सकती है। अब इस बातको निश्चित रूपसे स्वीकार कर लिया गया है कि दक्षिण अमरीका-से हुए स्पेनवासियोंने कपड़े और जूते तथा पहननेकी अन्य चीजें बनानेमें रबरका अच्छा उपयोग ा था। परन्तु यूरोपवालोंको ठेठ अठारहवीं शताब्दी तक रबर प्राप्त नहीं हुआ था और न ं इसके बारेमें कोई खास जानकारी ही थी। १७३६में फ्रान्सकी विज्ञान-अकादेमीने अपने कुछ स्योंको विषुववृत्त पर मध्याह्न समयका अंकन और सूर्यवेध निश्चित करनेके लिए दक्षिण अम-ाके पेरू नामक देश भेजा था। इन लोगोंने दक्षिण अमरीकाका व्यापक दौरा किया और रबर-बारेमें काफी जानकारी प्राप्त की थी। रबरके वृक्षसे निकलनेवाला दूधके रंगका गाढ़ा द्रव तो ोप भेजा नहीं जा सकता था, परन्तु उससे बनी हुई कुछ चीजें भेजनेमें उन्हें जरूर सफलता मिली । आगे चलकर जब टर्पेण्टाइनके बारेमें यह खोज हुई कि उसमें रबरके विलायकके गुण है तो रबर-ा उसमें घुलाकर कपड़े पर चढ़ा दिया जाता था और विलायकके उड़ जाने पर रबरका लेप कपड़े पर कसे चिपका रह जाता था। इस तरह रबरका कपड़ा बनना आरम्भ हुआ और वह देश-विदेश

भेजा जाने लगा। १८१९में ग्लासगो (इंग्लैण्ड)में चार्ल्स मैकिण्टॉशने जलसह (वाटरप्रूफ) कपड़ा बनाया और उसे एकस्व (पेटेंट) करवाकर १८२३में मैंचेस्टरमें कारखाना खोला। उसी समय टॉमस हेनकॉक नामक व्यक्तिने मैकिण्टॉशसे अनुज्ञापत्र (लाइसेन्स) लेकर रबरके पट्टे, बटुए, मोजे आदि बनाने और बेचनेका उद्योग आरम्भ किया। इन चीज़ोंको बनाते समय जो टुकड़े और कतरनें बची रह जाती थीं उनका उपयोग करनेके लिए उसने संचर्वण (गुँथाई) करनेवाला एक यंत्र बनाकर नरम प्लास्टिक-जैसा पदार्थ तैयार किया और उससे नये आकार-प्रकारकी चीज़ें बनाई। गुँथाई-की क्रियाको वैज्ञानिक भाषामें मेस्टिकेशन (mastication) या संचर्वण कहते हैं। संचर्वणकी इस क्रियाके ही द्वारा आधुनिक रबर उद्योगकी नींव डाली गई। इस विधिसे उत्पादित पदार्थ (रबर)को मनचाहा आकार प्रदान किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि संचर्वणसे रबरका अणुभार अत्यधिक कम हो जाता है।

उसके बाद १८३९में, अमरीकामें, चार्ल्स गुडइयरने यह खोज की कि यदि रबरको गन्धकके साथ गरम किया जाए तो वह काफी ऊँचे ताप पर भी स्थिति स्थापकता (लचीलेपन)के अपने गुणको बनाये रख सकता है और विलायकोंके प्रति उसकी प्रतिरोध क्षमता भी ज्यादा बढ़ जाती है। फिर टॉमस हेनकॉक़ने रबरको गन्धकके साथ तापित करनेकी विधि खोज निकाली और उसके एक मित्र विलियम ब्रोकेण्डोने उस विधिका नामकरण किया—'वल्केनाइज़ेशन' (गुण वृहण या वल्कनीकरण)। वल्कन रोमनोंके अग्निदेवका नाम है।

वल्कनीकरणकी क्रियामें गन्धककी मात्रा ५० प्रतिशत बढ़ाने पर गुडइयर और हेनकॉक-को एक कड़ा पदार्थ प्राप्त हुआ जो आजकल एबोनाइट, वल्केनाइट अथवा हार्ड रबरके नामसे जाना जाता है। एबोनाइटकी खोजको रबर उद्योगके इतिहासमें एक सीमाचिह्न माना जाता है; क्योंकि जो सबसे पहला उष्ण कठोर प्लास्टिक उत्पन्न किया गया वह एबोनाइट ही था।

रबरका 'रबर' नाम इसलिए पड़ा कि जोसेफ प्रिस्टले नामक अंग्रेजी वैज्ञानिकने अपनी एक पुस्तकमें पेन्सिलकी लिखावट मिटानेके लिए इसका उल्लेख रबर (rub=मिटाना; rubber=मिटाने-वाला) शब्दके रूपमें किया था। फ्रांसीसी भाषामें इसका नाम 'के ओत्युक' है, जिसका अर्थ होता है 'रोनेवाला पेड़'। आजका विज्ञान रबरको 'इलेस्टोमर' कहता है।

रबरके वृक्षका मूलस्थान दक्षिण अमरीका है। इसका शास्त्रीय (लैटिन) नाम 'हेविआ ब्राज़िलिएन्सिस' है। इसकी छाल पर चीरे लगानेसे दूध-जैसा गाढ़ा द्रव निकलता है। पेड़ पर थोड़े-थोड़े फासले पर प्याले बाँधकर अथवा चीरे लगाकर इस द्रवको इकट्ठा किया जाता है। ब्राज़िल की अमेज़ान नदीकी घाटीमें सबसे पहले इन वृक्षोंका पता चला था। उसके बाद तो इनके बीजों-को सुदूर-पूर्वमें ले जाकर वहाँ भी उगाया गया। अब तो जावा, सिंगापुर, बर्मा, श्रीलंका आदिमें इन वृक्षोंके बगीचे लगाये गए हैं।

१९वीं शताब्दीमें कुछ दूरदर्शी व्यक्तियोंने (जिनमें हेनकॉक भी था) अन्य स्थानोंमें रबरके वृक्षोंकी खेती करनेके लिए अमेज़ानकी घाटीसे इनके बीजोंको बाहर भेजना शुरू किया। १८७५में लन्दनके रायल बोटेनिकल उद्यानकी ओरसे हेनरी विक्हामने इस वृक्षके ७० हजार बीजोंकी तस्करी की थी। (इस कारगुजारीके लिए ब्रिटिश सरकारने उसे 'सर'की उपाधिसे विभूषित किया था!) क्यू उद्यानमें इसके पौधे तैयार कर मलाया, असम, बर्मा, श्रीलंका और सुदूरपूर्वके अन्य देशोंमें रबरके

बगीचे लगाये गए। इसके परिणामस्वरूप आज दक्षिण-पूर्वी एशियामें विश्वका ९० प्रतिशत रबर पैदा किया जाता है। १९४२में दूसरे विश्वयुद्धके दौरान जब जापानने सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया पर अधिकार कर लिया तो मानो अंग्रेज़ोंको उनकी तस्करीकी सजा मिल गई!

१९०० ईसवीसे रबरके वृक्ष लगानेका अभियान आरम्भ हुआ था और आज प्राकृतिक रबरका विश्व-उत्पादन २० लाख टनसे भी अधिक हो गया है।

१८९५में मोटर गाड़ियोंमें रबरके हवा भरे (न्युमेटिक) टायरोंका उपयोग आरम्भ हुआ, तबसे रबरकी खपत लगातार बढ़ती चली गई। कालान्तरमें ये दोनों उद्योग एक-दूसरेके पूरक हो गए: मोटर कारके उत्पादनके साथ रबरका उत्पादन बढ़ा और रबर उद्योगके विकासके साथ-साथ टायरोंकी संख्या भी बढ़ने लगी। विश्वमें रबरका जितना उत्पादन होता है उसका आधा मोटर-उद्योगमें काम आ जाता है।

अब रबरके रसायन-शास्त्रको भी देख लिया जाए। रबर क्या है, उसकी गठन किस प्रकारकी है, उसके गुणों और परमाणु संरचनामें पारस्परिक क्या सम्बन्ध है, आदि प्रश्न सबसे पहले गुडइयर और हेनकॉकके रबर-सम्बन्धी प्रयोगों एवं परीक्षणोंके समय उपस्थित हुए थे।

१८६०में ग्रेविल विलियम्स नामक वैज्ञानिकने रबरके विज्ञान पर पहले-पहल प्रकाश डाला। उसने रबर आक्षीर (लेटेक्स—रस)का आसवन करके 'आइसोप्रीन' नामका हाइड्रोकार्बन प्राप्त किया। इस आइसोप्रीनमें कार्बनके पाँच और हाइड्रोजनके आठ परमाणु होते हैं। हाइड्रोजनका परमाणु एक संयोजकतावाला होनेके कारण वह एक बारमें केवल एक संयोजकतावाले परमाणुसे संयोग कर सकता है जबकि कार्बनकी संयोजकता चार होनेके कारण वह एक संयोजकतावाले एक, दो, तीन और चार परमाणुओंसे संयोजन कर सकता है। C_5H_8 सूत्रवाले रासायनिक यौगिकमें कार्बनके पाँच परमाणुओंके साथ हाइड्रोजनके आठ परमाणुओंके संयोजनकी अनेक सम्भावनाएँ हो सकती हैं और उनमें एक संरचना प्राकृतिक रबरके अणुओंकी भी है, जबकि दूसरे सभी रासायनिक पदार्थ भिन्न प्रकारके हैं। C_5H_8 सूत्र आइसोप्रीनके साथ-साथ प्राकृतिक रबरका सूत्र भी है। परन्तु रबर और आइसोप्रीन एक ही प्रकारके पदार्थ नहीं हैं; क्योंकि आइसोप्रीन जहाँ रंगहीन द्रव है, प्रत्यास्थ (स्थिति स्थापक) ठोस पदार्थ है। रबरका आसवन करनेसे आइसोप्रीन प्राप्त होता है, इससे रसायन-शास्त्रियोंको लगा कि रबरके अणुओंकी शृंखलामें आइसोप्रीनके अणु जुड़े हुए होंगे। रबर और आइसोप्रीनकी रासायनिक संरचना इस प्रकार है:

प्राकृतिक रबर

$$\left[-\overset{H}{\underset{H}{C}} - \overset{H-\overset{H}{C}-H}{C} = \underset{H}{C} - \overset{H}{\underset{H}{C}} - \overset{H}{\underset{H}{C}} - \overset{H-\overset{H}{C}-H}{C} = \underset{H}{C} - \overset{H}{\underset{H}{C}} - \right] \times n$$

अथवा

$$\left[-CH_2-\overset{CH_3}{C}=CH-CH_2-CH_2-\overset{CH_3}{C}=CH-CH_2- \right] \times n$$

भेजा जाने लगा। १८१९में ग्लासगो (इंग्लैण्ड)में चार्ल्स मैकिण्टॉशने जलसह (वाटरप्रूफ) कपड़ा बनाया और उसे एकस्व (पेटेंट) करवाकर १८२३में मैंचेस्टरमें कारखाना खोला। उसी समय टॉमस हेनकॉक नामक व्यक्तिने मैकिण्टॉशसे अनुज्ञापत्र (लाइसेन्स) लेकर रबरके पट्टे, बटुए, मोज़े आदि बनाने और बेचनेका उद्योग आरम्भ किया। इन चीज़ोंको बनाते समय जो टुकड़े और कतरनें बची रह जाती थीं उनका उपयोग करनेके लिए उसने संचर्वण (गुंधाई) करनेवाला एक यंत्र बनाकर नरम प्लास्टिक-जैसा पदार्थ तैयार किया और उससे नये आकार-प्रकारकी चीज़ें बनाई। गुंधाई-की क्रियाको वैज्ञानिक भाषामें मेस्टिकेशन (mastication) या संचर्वण कहते हैं। संचर्वणकी इस क्रियाके ही द्वारा आधुनिक रबर उद्योगकी नींव डाली गई। इस विधिसे उत्पादित पदार्थ (रबर)को मनचाहा आकार प्रदान किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि संचर्वणसे रबरका अणुभार अत्यधिक कम हो जाता है।

उसके बाद १८३९में, अमरीकामें, चार्ल्स गुडइयरने यह खोज की कि यदि रबरको गन्धकके साथ गरम किया जाए तो वह काफी ऊँचे ताप पर भी स्थिति स्थापकता (लचीलेपन)के अपने गुणको बनाये रख सकता है और विलायकोंके प्रति उसकी प्रतिरोध क्षमता भी ज्यादा बढ़ जाती है। फिर टॉमस हेनकॉकने रबरको गन्धकके साथ तापित करनेकी विधि खोज निकाली और उसके एक मित्र विलियम ब्रोकेण्डोने उस विधिका नामकरण किया—'वल्केनाइज़ेशन' (गुण वृहण या वल्कनीकरण)। वल्कन रोमनोंके अग्निदेवका नाम है।

वल्कनीकरणकी क्रियामें गन्धककी मात्रा ५० प्रतिशत बढ़ाने पर गुडइयर और हेनकॉक-को एक कड़ा पदार्थ प्राप्त हुआ जो आजकल एबोनाइट, वल्केनाइट अथवा हार्ड रबरके नामसे जाना जाता है। एबोनाइटकी खोजको रबर उद्योगके इतिहासमें एक सीमाचिह्न माना जाता है; क्योंकि जो सबसे पहला उष्ण कठोर प्लास्टिक उत्पन्न किया गया वह एबोनाइट ही था।

रबरका 'रबर' नाम इसलिए पड़ा कि जोसेफ प्रिस्टले नामक अंग्रेजी वैज्ञानिकने अपनी एक पुस्तकमें पेन्सिलकी लिखावट मिटानेके लिए इसका उल्लेख रबर (rub=मिटाना; rubber=मिटाने-वाला) शब्दके रूपमें किया था। फ्रांसीसी भाषामें इसका नाम 'के ओत्युक' है, जिसका अर्थ होता है 'रोनेवाला पेड़'। आजका विज्ञान रबरको 'इलेस्टोमर' कहता है।

रबरके वृक्षका मूलस्थान दक्षिण अमरीका है। इसका शास्त्रीय (लैटिन) नाम 'हेविआ ब्राज़िलिएन्सिस' है। इसकी छाल पर चीरे लगानेसे दूध-जैसा गाढ़ा द्रव निकलता है। पेड़ पर थोड़े-थोड़े फासले पर प्याले बाँधकर अथवा चीरे लगाकर इस द्रवको इकट्ठा किया जाता है। ब्राज़िल की अमेज़ान नदीकी घाटीमें सबसे पहले इन वृक्षोंका पता चला था। उसके बाद तो इनके बीजों-को सुदूर-पूर्वमें ले जाकर वहाँ भी उगाया गया। अब तो जावा, सिंगापुर, बर्मा, श्रीलंका आदिमें इन वृक्षोंके बगीचे लगाये गए हैं।

१९वीं शताब्दीमें कुछ दूरदर्शी व्यक्तियोंने (जिनमें हेनकॉक भी था) अन्य स्थानोंमें रबरके वृक्षोंकी खेती करनेके लिए अमेजानकी घाटीसे इनके बीजोंको बाहर भेजना शुरू किया। १८७५में लन्दनके रायल बोटेनिकल उद्यानकी ओरसे हेनरी विक्हामने इस वृक्षके ७० हजार बीजोंकी तस्करी की थी। (इस कारगुज़ारीके लिए ब्रिटिश सरकारने उसे 'सर'की उपाधिसे विभूषित किया था!) क्यू उद्यानमें इसके पौधे तैयार कर मलाया, असम, बर्मा, श्रीलंका और सुदूरपूर्वके अन्य देशोंमें रबरके

वगीचे लगाये गए। इसके परिणामस्वरूप आज दक्षिण-पूर्वी एशियामें विश्वका ९० प्रतिशत रवर पैदा किया जाता है। १९४२में दूसरे विश्वयुद्धके दौरान जव जापानने सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया पर अधिकार कर लिया तो मानो अंग्रेज़ोंको उनकी तस्करीकी सजा मिल गई!

१९०० ईसवीसे रवरके वृक्ष लगानेका अभियान आरम्भ हुआ था और आज प्राकृतिक रवरका विश्व-उत्पादन २० लाख टनसे भी अधिक हो गया है।

१८९५में मोटर गाड़ियोंमें रवरके हवा भरे (न्युमेटिक) टायरोंका उपयोग आरम्भ हुआ, तवसे रवरकी खपत लगातार वढ़ती चली गई। कालान्तरमें ये दोनों उद्योग एक-दूसरेके पूरक हो गए: मोटर कारके उत्पादनके साथ रवरका उत्पादन वढ़ा और रवर उद्योगके विकासके साथ-साथ टायरोंकी संख्या भी वढ़ने लगी। विश्वमें रवरका जितना उत्पादन होता है उसका आधा मोटर-उद्योगमें काम आ जाता है।

अव रवरके रसायन-शास्त्रको भी देख लिया जाए। रवर क्या है, उसकी गठन किस प्रकारकी है, उसके गुणों और परमाणु संरचनामें पारस्परिक क्या सम्वन्ध है, आदि प्रश्न सवसे पहले गुडइयर और हेनकॉकके रवर-सम्वन्धी प्रयोगों एवं परीक्षणोंके समय उपस्थित हुए थे।

१८६०में ग्रेविल विलियम्स नामक वैज्ञानिकने रवरके विज्ञान पर पहले-पहल प्रकाश डाला। उसने रवर आक्षीर (लेटेक्स——रस) का आसवन करके 'आइसोप्रीन' नामका हाइड्रोकार्वन प्राप्त किया। इस आइसोप्रीनमें कार्वनके पाँच और हाइड्रोजनके आठ परमाणु होते हैं। हाइड्रोजनका परमाणु एक संयोजकतावाला होनेके कारण वह एक वारमें केवल एक संयोजकतावाले परमाणुसे संयोग कर सकता है जवकि कार्वनकी संयोजकता चार होनेके कारण वह एक संयोजकतावाले एक, दो, तीन और चार परमाणुओंसे संयोजन कर सकता है। C_5H_8 सूत्रवाले रासायनिक यौगिकमें कार्वनके पाँच परमाणुओंके साथ हाइड्रोजनके आठ परमाणुओंके संयोजनकी अनेक सम्भावनाएँ हो सकती हैं और उनमें एक संरचना प्राकृतिक रवरके अणुओंकी भी है, जवकि दूसरे सभी रासायनिक पदार्थ भिन्न प्रकारके हैं। C_5H_8 सूत्र आइसोप्रीनके साथ-साथ प्राकृतिक रवरका सूत्र भी है। परन्तु रवर और आइसोप्रीन एक ही प्रकारके पदार्थ नहीं हैं; क्योंकि आइसोप्रीन जहाँ रंगहीन द्रव है, प्रत्यास्थ (स्थिति स्थापक) ठोस पदार्थ है। रवरका आसवन करनेसे आइसोप्रीन प्राप्त होता है, इससे रसायन-शास्त्रियोंको लगा कि रवरके अणुओंकी शृंखलामें आइसोप्रीनके अणु जुड़े हुए होंगे। रवर और आइसोप्रीनकी रासायनिक संरचना इस प्रकार है:

प्राकृतिक रवर

$$\left[\begin{array}{cccccccccccccc} & & H & & & & & & & H & & & & \\ H & & H-C-H & & & & H & H & & H-C-H & & & H & \\ -C & - & C & = & C & - & C & - & C & - & C & = & C & -C- \\ H & & & & H & & H & & H & & & & H & H \end{array}\right] \times n$$

अथवा

$$\left[-CH_2-\overset{CH_3}{\overset{|}{C}}=CH-CH_2-CH_2-\overset{CH_3}{\overset{|}{C}}=CH-CH_2-\right] \times n$$

$CH_3CONH-C_6H_4-CH=N-NH-C(=S)-NH_2$

---------अ---------

टिवियोन   पेराएमिनो सेलिसिलिक अम्ल

$(CH_2)_2COOH$ (cyclopentenyl)

n=10 हिड्नोकार्पिक अम्ल
n=12 शालमुगरिक अम्ल

$H_2N-C_6H_4-N=N-C_6H_4-SO_2NH_2$

प्रोन्टोसिल

वाले अन्तरकी तरह् वाईं वाजू दाहिनी ओर दिखाई देती है। वामवर्ती पदार्थ शरीरके अन्दरके कुछ जीवाणुओंका नाश कर सकते हैं, परन्तु दक्षिणवर्ती उनपर कोई भी प्रभाव नहीं डालते। वामवर्ती एड्रिनलिन और दक्षिणवर्ती एड्रिनलिन दोनों रासायनिक दृष्टिसे एक ही पदार्थ हैं; परन्तु संरचना वाईं और दाहिनी होनेके कारण उन्हें भिन्न समझा जाता है। वामवर्ती एड्रिनलिन मानव-शरीरमें औपधीय दृष्टिसे उल्लेखनीय कार्य करता है, जो दक्षिणवर्ती एड्रिनलिन नहीं कर पाता।

रसायनी चिकित्साके विकासक्रमका दूसरा उल्लेखनीय सीमाचिह्न गेहार्ड डोमाग्कने १९३४ ई०में स्थापित किया। प्रोन्टोसिल नामक एक ऐज़ो रंग स्ट्रेप्टोकोकाईसे उत्पन्न होनेवाले रोगों पर प्रभावी सिद्ध हुआ। परीक्षणोंके वाद पता चला कि प्रोन्टोसिल शरीरमें जानेके वाद विखण्डित होता और पेराएमिनो वेनज़िन सल्फोनेमाइड वन जाता है। इस जानकारीके वाद उसपर अनेक समूह्-परिवर्तनकर हज़ारों सल्फोनेमाइड पदार्थोंका संश्लेपण किया गया। उनमेंसे कुछ निश्चित संरचनावाले पदार्थ ही औपधिके रूपमें प्रभावी सावित हो सके। इन औपधियोंकी विशेपता यह् है कि वे भिन्न-भिन्न जातिके कोकाई जन्य रोगोंके इलाजमें कारगर पाई गई। सल्फा-ग्वायनेडिन वेसिलसजन्य पेचिशमें फायदेमन्द सावित हुई। सल्फा-औपधियोंकी खोजसे पहले न्युमोनिया, मेनिनजाइटिस, और सूजाक (gonorrhoea) जैसे रोगोंका सामना करना वड़ा ही विकट काम था। परन्तु विभिन्न प्रकारकी सल्फा-दवाइयोंके आविप्कारके वाद इन रोगोंकी सफल चिकित्सा सम्भव हुई और ये रोग न तो भयंकर और न असाध्य ही रह गए।

इसी सन्दर्भमें लगे हाथों यह् भी देख लिया जाए कि औपध-मारण या औषध-विरोध (drug-antagonism) क्या है? पैरा-एमिनो वेनजोइक अम्लकी थोड़ी-सी मात्रा भी यदि सल्फा-औपधियोंमें मिला दी जाए तो उससे औषधिकी प्रति-जीवाणु सक्षमतामें वाधा पहुँचती है। इससे पैरा-एमिनो वेनजाइक अम्लको सल्फा-औपधियोंका मारक या विरोधी (antagonist) कहा जाता है। औपध-विरोधकी प्रक्रियाको समझ पाना वहुत मुश्किल है, क्योंकि वह भिन्न-

भिन्न कारणोंसे होती है। उसमें मुख्यतः औषधि और उसके विरोधी (मारक) की संरचनामें आंशिक साम्य होता है।

क्षय और कुष्ठ रोगके जीवाणुओंमें साम्य है। दोनों ही शरीरके किसी भी भागमें घर कर लेते हैं। परन्तु वे सामान्य रक्त-संचारके प्रमुख मार्गसे दूर ही रहते हैं। इसलिए उनका विनाश करनेवाली औषधिको उस भाग तक पहुँचना चाहिए। लेकिन यह कठिन होनेसे एक जमानेमें इन रोगोंको अच्छा कर पाना मुश्किल ही था। स्ट्रेप्टोमाइसिन और अन्य दवाइयोंकी खोजके बाद क्षयरोग असाध्य नहीं रह गया, अब उसे आसानीसे अच्छा किया जा सकता है। क्षयरोगरोधी दवाइयोंमें दो वर्गकी औषधियोंका व्यवस्थित विकास हुआ है; जिनके नाम हैं: थायोसेमिकार्बेज़ोन और हाइड्रेजाइड। वेनिश और उसके सहकर्मी क्षयरोगके जीवाणु पर सल्फा-औषधियोंके प्रभावका अध्ययन कर रहे थे। उन्हें सल्फाथायाडायाजोल कुछ अंशोंमें जीवाणु-स्तम्भक प्रतीत हुआ। उसकी संरचनाके खंडित रेखावाले भागसे थायोसेमिकार्बेज़ोन वर्गकी प्रेरणा मिली। इस वर्गमें टिवियोन सबसे क्रियाशील साबित हुआ।

इस संरचनामें बेनज़िन वलयके स्थान-४ पर विशेष रूपसे और अन्य स्थानोंपर समूह-परिवर्तनके द्वारा अधिक क्रियाशील पदार्थ प्राप्त करनेकी दिशामें प्रयत्न किये गए। बेनज़िन वलयके बदले पिरिडिन वलय लेकर स्थान-२, स्थान-३ और स्थान-४ पर पार्श्वश्रृंखला (अ) लगाकर कई तरहके पदार्थ प्राप्त किये गए।

१९५२ ई०में फॉक्सने आइसो निकोटिन आल्डिहाइड थायोसेमिकार्बेज़ोन अप्रत्यक्ष रीतिसे बनाया। इसमें पिरिडिन वलयके साथ-ही-साथ उसके स्थान-४ पर पार्श्व श्रृंखला अ होती है। इसको बनानेके दौरान आइसोनिकोटिनिक अम्ल हाइड्रेज़ाइड द्वितीयक पदार्थके रूपमें प्राप्त होता था। फॉक्सने
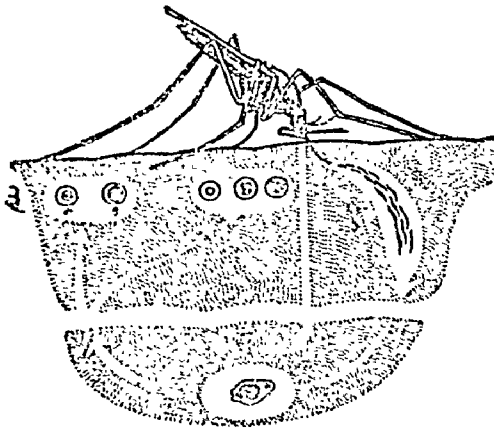
१. मच्छरकी लारमेंसे प्लैज़मोडियमका मानव-शरीरमें प्रवेश।
२. रक्तकणमें प्लैज़मोडियमका प्रवेश।
३. मानवरक्तमें गेमेटोसाइट।
४. मलेरियाके जीवाणुका नये रक्तकणमें प्रवेश।
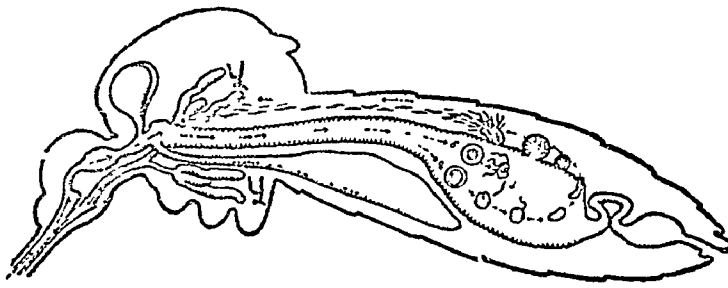
५. मच्छरके पेटमें मलेरियाके जीवाणुओंका पालन-पोषण – लाला-ग्रन्थिमें जीवाणु जमा होते हैं।
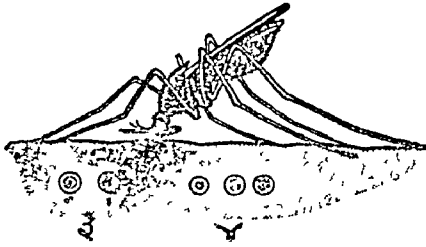
मानवरुधिरमेंसे मलेरियाके जीवाणु मच्छरके शरीरमें।

आइसोनायेजाइड (INH)की क्षयके रोगाणुओंके प्रति क्रियाशीलताकी पड़तालकी तो पाया कि उसमें यह गुण बहुत अधिक मात्रामें है। इस खोजने क्षयकी चिकित्साके क्षेत्रमें नई आशाका संचार किया। आज तो स्ट्रेप्टोमाइसिन और पैराएमिनो सेलिसिलिक (PAS) के साथ INH भी क्षयकी एक औषधिके रूपमें खूब प्रचलित है। INH की संरचनामें, खासतौर पर $-NHNH_2$ समूहमें बहुतसे सुधार करके बनाये जानेवाले नये-नये पदार्थोंका काफी कठोरतासे परीक्षण किया गया, परन्तु उनमेसे कोई भी पदार्थ INH से श्रेष्ठ साबित नही हुआ।

कुष्ठरोगरोधी औषधियोमे पहले हिड्नोकार्पस और टारक्टोजीनस वर्गकी वनस्पतियोंके बीजोंका तेल बाह्योपचारके लिए काममें लाया जाता था। इसमें दो मुख्य अम्ल होते हैं: शालमोगराके तेलमें पाया जानेवाला शॉलमुगरिक अम्ल और हिड्नोकार्पिक अम्ल—इन दोनोंकी संरचनामें बड़ा साम्य है। आधुनिक कुष्ठ-चिकित्सामे सल्फोन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, प्युरोमाइसिन आदिका उपयोग किया जाता है। सल्फोन औषधियाँ संश्लिष्ट औषधियाँ है। क्षयोपचारके एक चरणमें सल्फोनोंका भी प्रयोग किया गया था और वहींसे कुष्ठरोगमे इसका उपयोग करनेकी प्रेरणा मिली और सफलता भी प्राप्त हुई। सल्फोनकी सामान्य संरचनामें जब R के स्थान पर हाइड्रोजनका परमाणु होता है तो डाइऐमिनो डाइफिनाइल सल्फोन प्राप्त होता है। R के बदले अन्य समूह रखकर तरह-तरहके क्रियाशील सल्फोन प्राप्त किये जा सकते है।

मलेरिया-निवारक औषधियोका विकास तो निस्सन्देह रसायनविदोंकी अद्भुत क्षमताका परिचायक है। मलेरियाके जीवाणु अपने जीवन-क्रमके दौरान विभिन्न स्वरूप धारण करते है। उनके जीवनका अधिकांश विकास मानवके शरीरमे, परन्तु कुछ थोड़ा-सा एनोफिलिस जातिके मच्छरके उदरमे भी होता है। पृष्ठ २१९-२२० पर दिये गए चित्रोसे मच्छरके जीवनके विकास-क्रमकी अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मलेरियाके फैलावको रोकनेके लिए मच्छरको नष्ट करना जरूरी है। डी० डी० टी० उसका अकसीर उपाय है। परन्तु मनुष्यको एक बार मलेरिया हो जाने पर उसे मिटानेके लिए रोगकी पहली, दूसरी और तीसरी, एवं चौथी—तीनों ही अवस्थाओंके अनुरूप त्रिपक्षीय प्रयत्न करने होते हैं। रसायनविदोंने ऐसी दवाइयाँ खोज निकाली हैं कि मलेरियाके जीवाणु किसी भी अवस्थामें क्यों न हों, उन्हें नष्ट किया जा सकता है। पहले मलेरियाके उपचारमें कुनैन प्रचलित था। उसकी संरचनामें क्विनोलिन वलय होता है। प्रथम विश्वयुद्धके समय और उसके बाद जर्मनीमें कुनैन मिलना मुश्किल हो गया। तब रसायनविदोंने क्विनोलिन वलयमें आठवें स्थान पर $-NH(CH_2)_3N(C_2H_5)$ समूह रखकर और उस शृंखलामें परिवर्तन करके पेण्टाक्विन-जैसी अनेक दवाइयाँ बनाईं। उसके बाद कुछ वर्षोंके उपरान्त मेपाक्रिन बनाया गया। द्वितीय विश्वयुद्धके समय जर्मन सैनिक जिन दवाइयोंका उपयोग करते थे वे मित्र-राष्ट्रके सैनिकोंके हाथ लगीं और तब पता चला कि उन दवाइयोंमें पार्श्वसमूह क्विनोलिनके चौथे स्थानपर है। इस जानकारीसे इस दिशामें संश्लेषणके कार्यको वेग मिला और क्लोरोक्विन और केमोक्विन जैसी औषधियाँ अस्तित्वमें आईं।

१९४२ ई०में इंग्लैण्डमें कर्ड, डेवी और रोजने विकासका एक नया क्षेत्र खोज निकाला। उन्होंने जैसा क्विनोलिन और मेपाक्रिनमें होता है उस तरहके एक्रिडिनके बदले पिरिमिडिन वलयको चुना और नये-नये औषधीय पदार्थोंका संश्लेषण आरम्भ कर दिया।

$NH-CH(CH_3)-(CH_2)_3N(C_2H_5)_2$

क्लोरोक्विन

$Cl-C_6H_4-CH(CCl_3)-C_6H_4-Cl$

डी० डी० टी०

$H_3C-CH-(CH_2)_3N(C_2H_5)_2 \rightarrow R$

पेमाक्विन

बेनजिन-पिरिमिडिन वलयकी सन्धि

$$Cl-C_6H_4-NH-\underset{\|}{\overset{NH}{C}}-NH-C_4N_2H(CH_3)_2$$

बाइग्वानिडिन

$$Cl-C_6H_4-NH-\overset{NH}{\overset{\|}{C}}-NH-\overset{NH}{\overset{\|}{C}}-NHCH(CH_3)_2$$

पेलुड्रिन

पहले प्रयासके रूपमें उन्होंने ऐसे पदार्थ बनाये जो बेनजिन वलय (अ) और पिरिमिडिन वलय (ब) को सीधे-सीधे जोड़नेवाले हों। उनमें R, x और y समूह थे। परन्तु उन पदार्थोंमें औषधीय गुण नहीं पाया गया। तब अ और ब के बीच –NH– समूह वाले पदार्थ बनाये गए। और भी समूह-परिवर्तन करके देखा गया, परन्तु इच्छित परिणाम नहीं निकला। तब –NH– के बदले वलय समूह –NH-C-NH– रखा गया। इस तरह निरन्तर प्रयोग करते हुए उनकी समग्र संरचनामें खंडित

$$\underset{NH}{\overset{\|}{}}$$

रेखाओंसे अंकित नया समूह दृष्टिगोचर हुआ। इस समूहको बाइग्वायनिडिन कहते हैं। फलस्वरूप इस समूहके साथका पेलुड्रिन प्राप्त हुआ। इस तरह पिरिमिडिनपर किये जानेवाले प्रयोगोंके दौरान अकस्मात यह औषधि हाथ लग गई। लेकिन इन अन्वेषकोंके भाग्यमें पिरिमिडिन वलय वाली मलेरिया-निवारक औषधि खोजनेका यश बदा नहीं था; क्योंकि १९५१ ई०में फाल्को आदिने पिरिमिडिन वलयवाली 'डिरा-प्रिम' नामक शक्तिशाली औषधि खोज निकाली।

मलेरिया-निवारकोंके साथ-साथ कृमिहरों या कृमिघ्नों (anthelmintics) के अन्तर्गत प्रति-फाइलेरियकोंकी चर्चा भी कर ली जाए। मच्छर और मक्खी इस रोगके सूक्ष्म कीटाणुओंके धाहक हैं। प्रति-फाइलेरियक औषधियोंमें आरसेनिक और एण्टिमनीयुक्त औषधियों-का उपयोग होता था, परन्तु हेट्राजनके संश्लेषणके बाद इस क्षेत्रमें नये युगका उदय हुआ। इस हेट्राजनकी संरचनामें परिवर्तनके अनेक प्रयत्न किये गए और उनके फलस्वरूप यह जानकारी प्राप्त हुई कि अणु-रचनाकी विशेष प्रकारकी दिग्रचनाका उसकी क्रियाशीलतासे महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रहता है।

किसी भी प्रकारकी कोशिकाकी असाधारण वृद्धि जिस रोगमें होती है उसे हम कैन्सर या कर्कट कहते है। कैन्सर कई तरहके होते हैं। उसके इलाजके लिए कुछ संश्लिष्ट औषधियाँ तैयार की गई हैं। उन सबमें 'नाइट्रोजन मस्टार्ड' विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इसकी संरचनामें परिवर्तन करनेसे कुछेक

उपयोगी औपधियाँ प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त कैन्सरके उपचारके लिए एण्टिमेटावोलाइट, हारमोन, एण्टिवायोटिक, कोल्चिसीन आदि सममूत्रणरोधी (antimiotic) औपधियाँ भी खोज निकाली गई हैं। फिर आल्फा, बीटा, गामा विकिरणों द्वारा भी इस रोगके खिलाफ संघर्ष किया जा रहा है।

'स्वास्थ्य दर्शन'में वताया गया है कि कुछ हाइड्रोकार्वन ऐसे हैं जिनके कारण ही कैन्सर होता है। इस सम्वन्धमें रसायनज्ञोंने कुछ सामान्य सैद्धान्तिक नियम निरूपित किये हैं। उन नियमोंके अनुसार हाइड्रोकार्वनकी संरचनामें कुछ प्रदेश निर्धारित किये गए हैं और जिस प्रदेशमें १.२९२ मिली इलेक्ट्रान व ल्ट्ससे अधिक विद्युत् भार होता है वह हाइड्रोकार्वन त्वचा और त्वचाके नीचे वाली कोशिकाओंमें निश्चित रूपसे कैन्सरजनक क्रियाशीलता दिखलाता है। इस तरहके सैद्धान्तिक निरूपण नई औपधियोंके अनुसन्धानका मार्ग प्रशस्त करेंगे और एक दिन मानव अपने ज्ञानके सहारे कैन्सर जैसे असाध्य रोग पर भी कावू पा लेगा।

भैपज रसायनके विकासका तीसरा चरण प्रतिजैविकी अथवा प्रतिजीवाणु पदार्थोंकी खोजसे आरम्भ हुआ। प्रतिजैविकी (antibiotics)के क्षेत्रमें रसायनज्ञोंकी खास रुचि उनकी जटिल संरचनाओंकी स्थापना करने और संश्लेपणके द्वारा उन्हें प्राप्त करनेमें रही है। आज भी बड़े पैमानेपर प्राप्त होनेवाले प्रतिजीवाणु पदार्थ (एण्टिवायोटिक) जैव रासायनिक विधिसे ही वनाये जाते हैं। यद्यपि प्रयोगशालामें कुछ संश्लेषण सफल हुए हैं और इस वातकी सम्भावना हो चली है कि एण्टिवायोटिकोंका बड़े पैमानेपर भी संश्लेपण किया जाने लगेगा। हम प्रतिजीवाणु पदार्थोंको तीन वर्गोंमें विभाजित कर सकते हैं: (१) पेनिसिलीन वर्ग; (२) माइसिन वर्ग और (३) पोलिपेप्टाइड वर्ग।
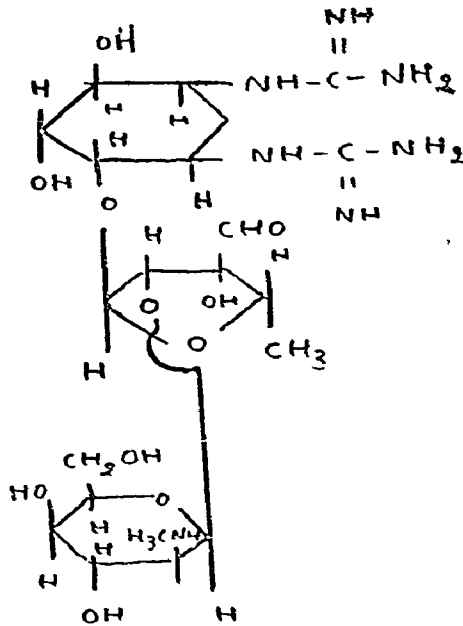
स्ट्रेप्टोमाइसिन
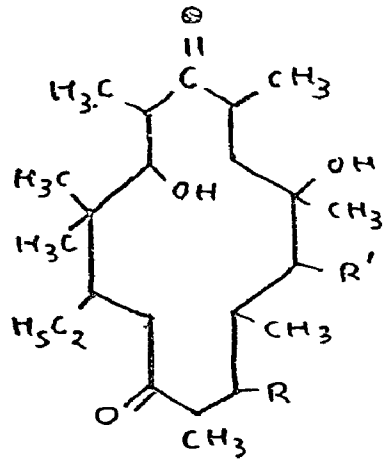
इरिथ्रोमाइसिन
R=शर्करा का अणु
R'=शर्कराका अणु

वास्तवमें जीवाणु जन्य रोगों और उनके प्रतिकारकी गतिविधियोंने रसायनी चिकित्साको गौरवान्वित किया है।

हारमोन, विटामिन और फुटकर इलाज

प्राणी शरीरमें नलिकारहित अर्थात् अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ होती हैं, यह हम जानते हैं। इन ग्रन्थियोंमें हारमोन पैदा होते हैं। हारमोनोंकी संरचना पृष्ठ २२८ पर दिखाई गई साइक्लोपेण्टिल वलय प्रणालीपर आधारित है। अलग-अलग स्थानोंको जिन अंकोंसे दिखाया गया है उनपर भिन्न समूहों तथा किन्हीं दो स्थानोंके मध्य द्विबन्ध होनेसे भिन्न हारमोन प्राप्त होते हैं। यहाँ इस्ट्रोजनपर विस्तृत विचार किया जाएगा। स्त्रीका मासिक धर्म प्रोगेस्टेरोन और इस्ट्राडायोल नामक दो मुख्य हारमोनों पर निर्भर है। उनकी संरचनाओंको ध्यानमें रखकर कतिपय स्टेरोइड पदार्थोंकी इस्ट्रोजेनिक सक्रियताकी छान-बीन की गई। उसके बाद इस्ट्रोजन हारमोनों-जैसी सक्रियतावाले सादे संश्लिष्ट पदार्थोंकी खोज की गई। उदाहरणके लिए स्टिल्वेस्ट्रोल; इसकी दिग्मिति (दिग्रचना) स्टेरोइडसे मिलती-जुलती है।

कॉर्टिज़ोन भी स्टेरॉइडके वर्गका हारमोन है; और उसकी संरचना प्राकृतिक इस्ट्रेजोनसे मिलती-जुलती है। स्पष्ट अन्तर केवल वलयमें स्थित कार्बोनिल (—CO) समूह हैं। कॉर्टिज़ोन और उनके उत्पादोंका रूमेटॉइड आरथ्राइटिसमें उपयोग किया जाता है। उसमें शोथ-निवारणका अद्भुत गुण है।

अ-स्टेरॉइड हारमोनोंमें एड्रिनलीन, थाइरॉक्सिन और इन्सुलिन मुख्य हैं। थाइरॉयड ग्रन्थिसे स्रवित-थाइरॉक्सिनकी यह विशेषता है कि उसकी संरचनामें आयोडिनके परमाणु होते हैं। थाइरॉयड पदार्थोंके अभावसे होनेवाली व्याधियोंमें प्राकृतिक अथवा संश्लिष्ट थाइरॉक्सिन दिया जा सकता है। परन्तु थाइरॉयड पदार्थोंकी मात्रा बढ़नेसे जो रोग होते हैं उनमें मेथिमेज़ोल-जैसी प्रति-थाइरॉयड औषधियोंका उपयोग किया जाता है।

पैंक्रियास (अग्न्याशय) में पैदा होनेवाला इन्सुलिन नामक हारमोन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इन्सुलिनमें —CONH— बन्धसे निर्मित एक पोलिपेप्टाइड अणु होता है। उसमें स्थित एमिनो अम्लोंकी क्रमबद्धता १९५४ ई०में सेंगरने निर्धारित की, जिसके लिए उसे १९५८ ई०में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। संरचना जटिल होते हुए भी उसका संश्लेषण सम्भव हो सका है।

इन्सुलिनके इंजेक्शन मधुमेह (डायाबिटीज़) का उपयुक्त प्रतिकारात्मक उपाय है। लेकिन अब तो कुछ सल्फा-औषधियोंकी गोलियाँ भी ली जा सकती हैं। इस प्रकार प्राकृतिक इन्सुलिनसे प्रतियोगिता करनेके लिए संश्लिष्ट पदार्थ तैयार कर लिये गए हैं।

हारमोनकी मात्रा बहुत कम होती है, फिर भी उनकी सक्रियता उल्लेखनीय है, अर्थात् अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। हारमोनकी तरह विटामिन (खाद्योज) भी कम मात्रामें होते हुए जैव-रासायनिक प्रक्रियाओंका नियन्त्रण करते हैं। हारमोन सामान्य प्राणियोंकी अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु विटामिन तो दैनिक भोजनमेंसे ही प्राप्त करने होते हैं। विटामिन ए, बी, सी, डी, ई आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। भोजनमें इन विटामिनोंके अभावसे कई तरहके रोग हो जाते हैं। विटामिन बी के कई

मेथिमेजोल

साइक्लोपेण्टिल फिनेन्थ्रिन

थाइरोक्सिन

स्टिलबेस्ट्रॉल
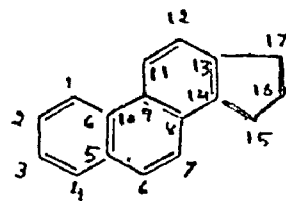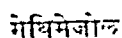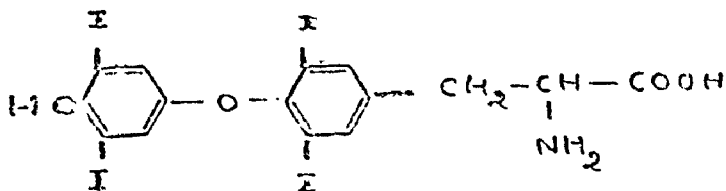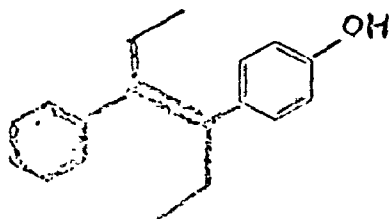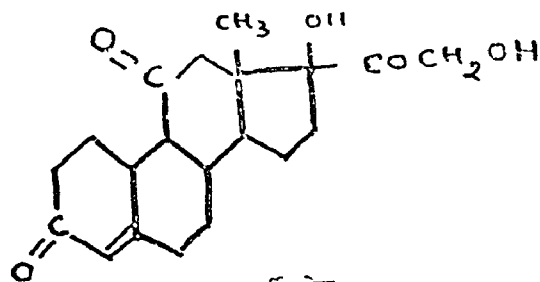
कार्टिज़ोन
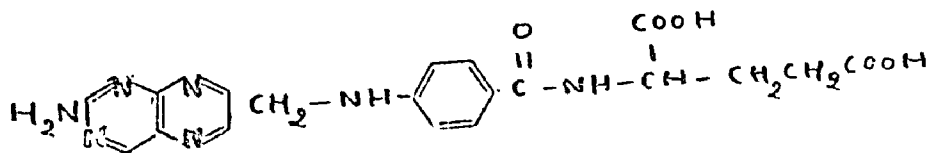
फ़ालिक अम्ल

उपवर्ग हैं, जिनमेंसे कुछ थायामिन, रिवोफ्लापिन, निकोटिनिक अम्ल, बायोटिन, फॉलिक अम्ल, पैरा एमिनोबेनज़ोइड अम्ल, साइनो कोबाल्टेमाइन (विटामिन बी$_{12}$) आदि नामोंसे जाने जाते हैं।

$$R-N(CH_2CH_2Cl)-CH_2CH_2Cl \longrightarrow R-\overset{+}{N}(CH_2CH_2Cl)<(CH_2-CH_2) \quad \bar{Cl}$$

नाइट्रोजन मस्टार्ड

$$(CH_3)_2C - CHCOOH \;\; | \;\; S \;\; N \;\; CH \;\; CO \;\; CH \;\; NHCOR$$

पेनिसिलीन

$$H_2N - ▨ - COOH$$

एमिनो अम्लका समीकरण

$$H_2N - ▨ - \boxed{CO-NH} - ▨ - \boxed{CO-NH} - ▨ - COOH$$
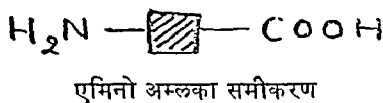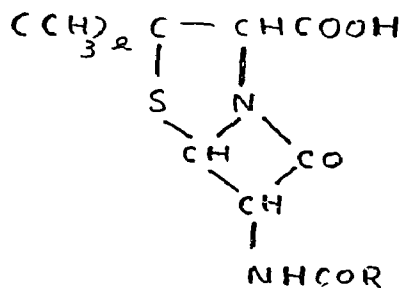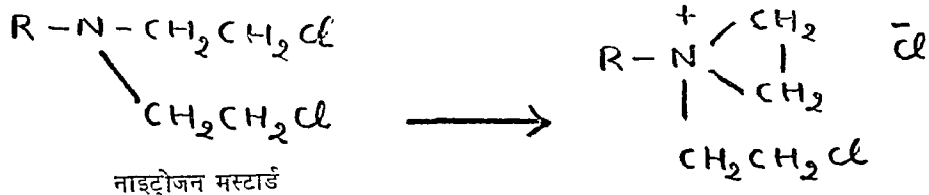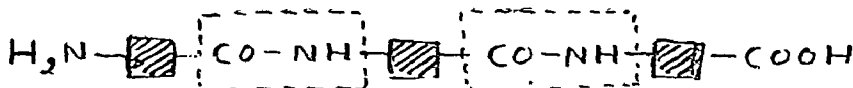
पोलिपेप्टाइडका नमूना

पेनिसिलीनकी साधारण संरचना पृ० २२३-२२४ पर दिखाई गई है। उसमें R के वदले जुदे-जुदे समूह होते हैं। R के वदले वेनज़िन $-CH_2C_6H_5$ होता है तो उसे पेनिसिलीन-जी कहते हैं।

माइसिन वर्गके वहुतसे प्रतिजीवाणु पदार्थ हैं—स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेट्रासाइक्लिनो, इरिथ्रोमाइसिन आदि। इन सवकी संरचना पेनिसिलीनसे अधिक जटिल है; फिर भी रसायनविदोंने आधुनिक उपकरणोंकी सहायतासे इस तरहकी जटिल संरचनाकी जानकारी भी प्राप्त कर ली है। प्रतिजीवाणु पदार्थ वनानेवाले जीवाणु वहुत सूक्ष्म होते हैं, परन्तु उनकी वनाई हुई कृतियाँ वास्तवमें भव्य और आश्चर्यजनक हैं।

यह तो हम जानते हैं कि प्रोटीनके अणु एमिनो अम्लसे वनते हैं। एमिनो अम्लमें ऐमिनो ($-NH_2$) समूह और कार्वोक्सिल ($-COOH$) समूह होते हैं। प्रोटीनके अणुओंमें इन दोनों समूहोंके वीचका संयोजन वड़ी श्रृंखला अथवा वड़ा वलय वनाता है। इस संयोजनमें कुछ समूहोंका पुनरावर्तन होता है और उसमें एमिनो अम्लोंकी संख्या दोसे लेकर चाहे जितनी हो सकती है। इस जानकारीके आधारपर वेसिट्रोसिन नामक दवाई वनाई गई। इस प्रतिजीवाणु पदार्थकी कहानी वड़ी ही रोचक और विस्मयजनक भी है। मार्गरेट ट्रेसीके पाँवकी हड्डी टूट गई थी; घावमें धूल भर जानेसे वह पूतिदूषित (septic) हो गया। आरम्भमें पूतिदूषिताका तीव्र प्रभाव दिखाई दिया, परन्तु वादमें ये लक्षण सहसा अदृश्य हो गए। जॉन्सन, एड्ग्र र और मलेने इसके कारणोंका पता लगानेका प्रयत्न शुरू किया। १९४७ ई० में उन्होंने ट्रेसीके घावमेंसे 'वेसिलस सवटिलिस' (नामक जीवाणु)की एक

किस्म प्राप्तकी और उनकी सहायतासे नया प्रतिजीवाणु पदार्थ बनाया। ट्रेसीकी स्मृतिमे उस प्रति-जीवाणु पदार्थका नाम बेसिट्रेसिन रखा गया।

पोलिपेप्टाइड वर्गमे इसी तरीकेसे एक अद्भुत औषधि प्राप्त हुई। इन्सुलिन भी पोलिपेप्टाइड वर्गका एक विराट प्रोटीन अणु है। इनके अतिरिक्त प्रोटीन वर्गमें प्रकिण्व (एन्जाइम) और विषाणु (virus—वाइरस) की भूमिकाएं भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। हमारे शरीरमें सैकड़ों प्रकिण्वोकी उपस्थितिके कारण जीवनके महत्त्वपूर्ण रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। उनके बिना जीवन असम्भव ही होता। पेप्सिन ऐसा ही प्रकिण्व है। सूक्ष्म मात्रामे केवल शारीरिक ताप पर वह अपना काम करता रहता है। बछड़ेके आमाशय (जठर)मे प्राप्त होनेवाला रेनिन नामक प्रकिण्व वजनमे केवल ३० ग्राम होता है, परन्तु ३४ लाख ५७ हजार लिटर दूधको जमा सकता है।

विषाणु रोग उत्पन्न करनेवाले कारक (एजेण्ट) हैं। वे न तो जीवाणु (बैक्टीरिया) है और न सूक्ष्म जीव ही। विषाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि सर्वाधिक वृद्धिकरण करनेवाले सूक्ष्मदर्शीसे भी नही देखे जा सकते, उन्हे इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शीसे देखा जा सकता है। १९३५ ई०मे वेण्डेल एम० स्टैनलीने तम्बाकूके पौधेके एक रोग चितेरी (mosaic)मेसे सबसे पहले विषाणुको अलग किया था। तम्बाकूकी कोशिकाके बाहर तम्बाकूकी चितेरीका विषाणु निर्जीव अणुकी तरह आचरण करता है; परन्तु सजीव कोशिकामे वह प्रजननमे सक्षम होता और वंशवृद्धि कर सकता है। इस दृष्टिसे विचार करने पर उसे सजीव कहा जा सकता है।

इन्फ्लुएन्जा, साधारण सर्दी-जुकाम, विषाणुजन्य न्युमोनिया, चेचक, पोलियो, कनपेडे और खसरा आदि बीमारियाँ विषाणुसे होती है। इस प्रकारकी बीमारियोके विषाणुका प्रतिरोध करनेके लिए दवाइयाँ खोज ली गई है।

अन्तमे अब हम 'फंगस' (फफूद, कवक)से पैदा होनेवाली बीमारियोका संक्षिप्त विवेचन करेंगे। मनुष्य को होनेवाले जीवाणुजन्य रोगोमे फंगस वर्गकी सूक्ष्म वनस्पतिसे होनेवाले रोगोका निवारण करना थोड़ा मुश्किल काम है। रोगोत्पादक फफूंद अधिकतर जमीनमे, बासी भोजन या सड़े हुए फलो पर और खासतौर पर धरण (humus)मे अथवा बोयी हुई चीजोपर रहता है। जब यह फफूंद मानव शरीरमे परजीवी (parasite)की तरह रहने लगता है तो अपनी वृद्धि और प्रजननकी पद्धतिको बदल देता है। फफूंदसे दो प्रकारकी बीमारियाँ होती है : एक तो त्वचाके रोग, जैसे कि दाद, खाज और हाथ-पाँवकी छाजन आदि। फफूंदजन्य दूसरी प्रकारके रोग शरीरके विभिन्न तन्त्रोको प्रभावित करते हैं; उदाहरणके लिए एक्टिनोमायसिस बोविस, जो पशुओके द्वारा मनुष्यमे प्रवेश करते है, उनसे जबड़ो और जिह्वाके अर्बुद (ट्यूमर) पैदा होते है। एस्पर्जिलस वर्गका फफूंद दुर्बल फेफडोको रोगाक्रान्त करता है। घास, अनाज और आटेके बीच सतत काम करने वाले को यह रोग होनेकी अधिक सम्भावना रहती है। इनके अतिरिक्त शरीरके विभिन्न तन्त्रोको आक्रान्त करनेवाले फफूंद-जन्य रोग और भी बहुतसे है। पहले इस प्रकारके रोगोंकी औषधियोका अभाव था, परन्तु अब कई फफूंदरोधी और फफूंदनिवारक एवं फफूंदविनाशक औषधियाँ खोज ली गई है। फफूंद रोगोके उपचारमे शुद्ध रासायनिक पदार्थोसे लेकर प्रतिजीवाणु पदार्थो तकका उपयोग किया जाता है। इस प्रकार जो रोग पहले हठीले और कठिन समझे जाते थे अब उनका उपचार साध्य ही नही सुसाध्य हो गया है।

अब हम यह देखेंगे कि फॉलिक अम्ल और विटामिन बी$_{12}$ क्या हैं। फॉलिक अम्लके अभावसे एक प्रकारका रक्तक्षीणता रोग हो जाता है। १९३१ में विल्सने इस आशयका उल्लेख किया है कि बम्बईमें एक हिन्दू स्त्रीको प्रसूतिके दौरान रक्तक्षीणता हो गई थी और उसे यीस्ट-युक्त एक दवाई देनेसे वह अच्छी हो गई। तब इस बातका पता लगानेके प्रयत्न आरम्भ हुए कि यीस्टमें रक्तक्षीणताको मिटानेवाला कौन-सा औषधीय तत्त्व है। अनुभवमें पता चला कि यीस्ट (खमीर) और यकृत् (लीवर) के सत्त्वसे रक्तक्षीणता (एनिमिया) दूर होती है। लेकिन उसमें रहने वाले औषधीय सत्त्व टेरोइड ग्लुटेनिक अम्ल (folic acid) का अविकृत रूपसे पता १९४८ में ही लगाया जा सका और रसायनविदोंने उसके संश्लेषणकी विधि भी खोज निकाली। विटामिन बी$_{12}$ रक्तक्षीणताके उपचारमें अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इसकी संरचनामें कोबाल्ट धातुका अणु अनेक समूहोंके बीच बँधा होता है। ये विटामिन केवल वानस्पतिक ही नहीं हैं, प्राणियोंकी उपापचय (metabolic) क्रियाके दौरान भी बनते हैं। मोटी आँतमें सूक्ष्म जीवाणु इन्हें बनाते हैं। विटामिन बी$_{12}$ और फालिक अम्ल बहुत ही अल्प मात्रामें न्युक्लिक अम्लकी बनावटमें एनज़ाइमकी तरह आचरण करते हैं।

१९२९ में डेमको इस बातका पता चला कि चूज़ोंके चारेमें एक पोषक तत्त्व कम हो जानेसे रक्त-स्रवण होकर वे मर जाते हैं। कम होनेवाले उस पदार्थका नाम विटामिन 'के' रखा गया। जिस व्यक्तिके खूनमें विटामिन 'के' का अभाव होता है उसके मामूली-सी चोट लगने पर भी खून बहने लगता है और खून जमकर घावको बन्द नहीं कर सकता। खूनके जमनेकी प्रक्रिया बड़ी ही आश्चर्यजनक है। उसकी संरचनाका विन्यास नेफ्थाक्विनोन वलय पर होनेका पता चला है। इसलिए उस वलय पर विन्यस्त अन्य संश्लिष्ट औषधियोंका उपयोग भी किया गया है। उनमेंसे एक मेनाडायोन है। उसकी संरचना सरल है। विटामिन 'के$_1$' की संरचनामेंसे $C_{20}H_{39}$ निकाल लेने पर उसका समीकरण मिल जाता है।

O, CH_3, $C_{20}H_{39}$, O
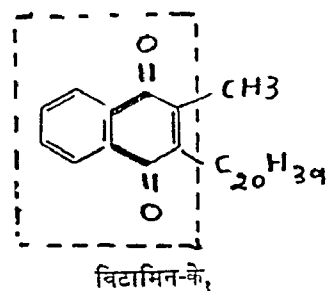
विटामिन-के$_1$

जिस प्रकार विटामिन 'के'में खूनको जमानेका गुण है उसी प्रकार कुछ दूसरे पदार्थोंमें खूनको जमनेसे रोकनेका गुण होता है। खासतौर पर शल्य क्रियाके दौरान इस बातकी सावधानी बरतनी होती है कि खून कहीं रक्तवाहिनीमें जम न जाए। हेपेरिन और बिसहाइड्रोक्सि-कौमारिन ऐसे ही पदार्थ हैं। हेपेरिन तो प्राणियोंकी एक खास पेशीमें पैदा होता है। फेफड़ोंमें यह अधिक मात्रामें पाया जाता है। 'स्वीट क्लोवर' नामक घासमें भी बिसहाइड्रोक्सि कौमारिन होता है। १९२१-२२में यह खोज हुई कि स्वीट क्लोवर घास खानेवाले पशु चोट लगने, खस्सी किये जाने या सींग निकलते समय जमा हुआ कड़ा खून निकलने के कारण मर जाते हैं। इसके बाद 'स्वीट क्लोवर'में रहनेवाले क्रियाशील सत्त्वकी खोज-बीन शुरू हुई। १९४१ ई०में कैम्पबेल और लिंकने बिसहाईड्रोक्सी-कौमारिन स्फटिक रूपमें प्राप्त किया और उसकी संरचना स्थिर की। उसके बाद इस पदार्थके बदले उपयोगमें लाये जा सकें, ऐसे पदार्थोंका संश्लेपण किया।

रक्तका शरीरके सभी भागोंमें संचरण होता रहे, इसलिए उसकी एक खास मात्राका बना

रहना आवश्यक है। जब शरीरमेंसे काफी तादादमें खून बहकर निकल जाता है तो उसकी आवश्यक मात्राको बनाये रखनेके लिए किसी उपयुक्त व्यक्तिका खून रोगीको देना सबसे उत्तम उपाय है; लेकिन
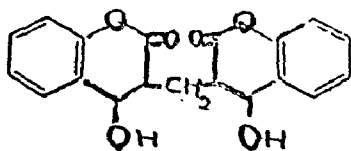
बिसहाइड्रोक्सी-कौमारिन
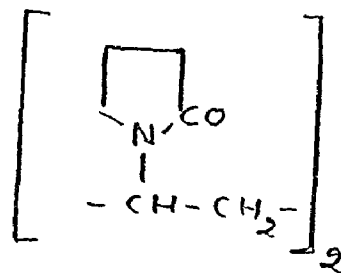
पोलीविनाइल पायरोलिडोन

यदि यह न हो सके तो उस परिस्थितिमें ग्लुकोज़-सहित अथवा ग्लुकोज़-रहित सेलाइन देना पड़ता है। साथ ही उसमें कुछ दूसरे पदार्थ मिलाना भी ज़रूरी हो जाता है। डेक्स्ट्रान, जिलेटिन और पोली विनाइल पायरोलिडोन इसी काममें आते हैं। डेक्स्ट्रान और जिलेटिन प्राकृतिक स्रोतसे प्राप्त किये जाते हैं। साधारण चीनी पर एक प्रकारके जीवाणुके विकाससे डेक्स्ट्रान मिलता है। चमड़ा, हड्डी, सन्धान पेशियों आदि पर रासायनिक क्रिया करके जिलेटिन प्राप्त किया जाता है।

दूसरे महायुद्धके समय जर्मनीमें पोलीविनाइल पायरोलिडोन नामक पदार्थ संश्लेषणके द्वारा प्राप्त किया गया था। वायुमंडलके सामान्य दाबसे सौगुने दाब और ९० अंश सेंटिग्रेड ताप पर एसिटिलिन और फार्मोल्डिहाइडकी पारस्परिक क्रियाके परिणामस्वरूप गामा-ब्यूटिरोलेक्टम यानी पायरोलिडोन बनता है। परिष्करणी-गैस (refinery gas) नेप्था और उच्चतर हाइड्रोकार्बनोंके भंजनके दौरान अन्य गैसके रूपमें प्राप्त होनेवाले इस उत्पादके साथ एसिटिलिन, मेथेन आदि भी प्राप्त होते हैं। मेथेनसे मेथेनाल और उससे फार्मोल्डिहाइड बनता है। इस प्रकार पायरोलिडोन बनानेके लिए आवश्यक पदार्थ पेट्रो-केमिकल रसायनकोंके रूपमें प्राप्त होते हैं। एक बार पायरोलिडोन बन चुकनेके बाद उस-पर एसिटिलिनकी क्रियासे विनाइल पायरोलिडोन बनता है। इसके बहुतसे अणु संयोजित होकर पोलीविनाइल पायरोलिडोनके विराट अणुका निर्माण करते हैं, जिसका अणुभार २५,००० होता है और जो प्रोटीनकी तरह पानीमें विलेय है। यह खोज रसायनविदोंकी एक महान उपलब्धि है। डेक्स्ट्रान, जिलेटिन और पोलीविनाइल पायरोलिडोन आदि पदार्थ रुधिर-रस (सीरम)की तादाद बढ़ानेके काम आते हैं।

कई बार रेडियधर्मी किरणोंका शरीरकी विभिन्न कोशिकाओं पर विपरीत असर होता है। रेडियधर्मी पदार्थोंके साथ काम करनेवालोंकी इन किरणोंसे रक्षा करनेके लिए कुछ पदार्थोंका संश्लेषण करनेकी दिशामें प्रयोग किये जा रहे हैं। पता चला है कि मनुष्यके बालोंसे प्राप्त होनेवाला सिस्टिन-एमाइन विकिरण-रक्षकके रूपमें काम आ सकता है।

आज भेषज-रसायनका क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है और उसका विस्तार दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। मनुष्य द्वारा नई-नई रोग-निवारक औषधियोंकी खोजके साथ-साथ औषधियोंके प्रति सूक्ष्म जीवाणुओंकी सहिष्णुतामें भी वृद्धि होती जाती है; उनकी यह वंश परम्परागत सहिष्णुता इतनी

अधिक हो जाती है कि रूढ़ औषधियोंका उनपर कोई भी प्रभाव नहीं हो पाता। इसलिए मनुष्य और जीवाणुओंमें सतत प्रतिस्पर्धाका बना रहना अवश्यम्भावी है। और इसीलिए नये-नये संश्लेषणोंकी महान सम्भावनाएँ भी बनी रहेंगी। जीवाणुजन्य रोगोंके लिए नई औषधियोंकी आवश्यकताके साथ शरीर तन्त्रपर अधिक असर करनेवाले पदार्थोंकी खोज निरन्तर चलती ही रहती है, जो रसायनविदोंके लिए साधना है।

आधुनिक औषधियों के उपसर्ग

तन्त्रान्वयी (सिस्टेमेटिक) :

- पीड़ापहारी (पीड़ाहारक) (एनाल्जेसिक)
- शामक (सिडेटिव)
- निद्रापक (निद्रादायी) (हिप्नोटिक)
- निश्चेतक (एनेस्थेटिक)
- प्रशामक (ट्रैंक्विलाइज़र)
- अपस्माररोधी (एंटिएपिलेप्टिक)
- संजीवक (उत्तेजक) (एनालेप्टिक)
- एड्रिनलिन धर्मी (एड्रिनर्जिक)
- कोलिनधर्मी (कोलिनर्जिक)
- एड्रिनलिन क्रियारोधी (एंटिएड्रिनर्जिक)
- कोलिन क्रियारोधी (एंटिकोलिनर्जिक)
- हिस्टामिनरोधी (एंटिहिस्टामिनिक)
- रुधिराभिसरण तन्त्रलक्षी (कार्डियो-वेस्क्युलर)
- कासरोधी (कफरोधी) (एंटिट्यूसिव)
- कफोत्सारक (एक्स्पेक्टोरेण्ट)
- क्षुधोद्दीपक (एपेटाइट स्टिमुलेण्ट)
- क्षुधापहारी (एंटिएपेटाइट, एनोरेक्सिस)
- रेचक (केथोरेटिक)
- वमनकारी (एमिटिक)
- वमनरोधी (एंटिएमिटिक)
- मूत्रवर्धक (डाइयुरेटिक)
- गर्भाशय संकोचक (आक्सिटॉसिक)

रसायनी चिकित्सान्वयी

- उपदंशरोधी (एंटिसिफिलिटिक)
- ट्राइपनोसोमायासिसरोधी
- यक्ष्मारोधी (एंटिट्युबर्क्युलर)
- कुष्ठरोधी (एंटिलेप्रोइटिक)
- काकाईजन्य रोगरोधी (सल्फा-ड्रग्स)
- प्रतिमलेरियक (एंटिमलेरियल)
- कृमिघ्न (एन्थेलमिटिक)
- कैन्सररोधी (एंटिकैन्सर)
- अमीबारोधी (एंटिएमीबिक)
- जीवाणुरोधी (एंटिबायोटिक)
- फफूंदरोधी (एंटिफंगस)
- विषाणुरोधी (एंटिवायरस)
- विटामिन
- हारमोन
- थाइरॉयड हारमोन-प्रतिथाइरॉयड औषधि
- स्टेरॉइड हारमोन
- पोलीपेण्टाइड और प्रोटीन हारमोन

विविध

- प्रतिदोषरोधी (एंटिसेप्टिक)
- निदान सहायक (डाइग्नोस्टिक एजेण्ट)
- किरणीयन व्याधिनिवारक
- प्लाज्मा आयतन प्रवर्धक (प्लाज्मा एक्स-टेंडर)
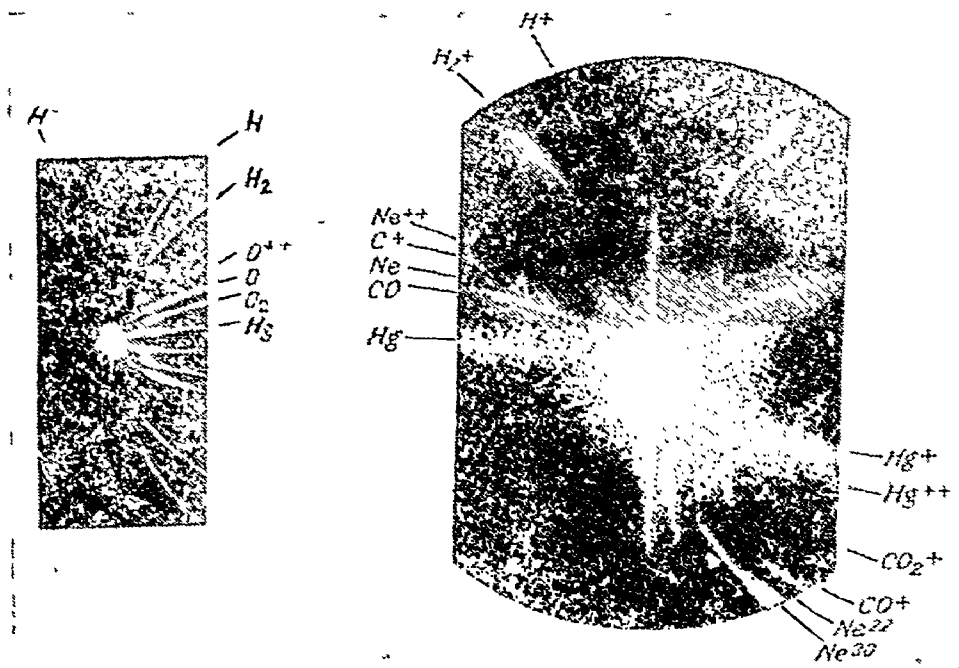
भिन्न-भिन्न मूलतत्त्वोंका द्रव्यमान वर्ण-क्रम

खंड : ६
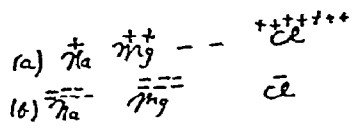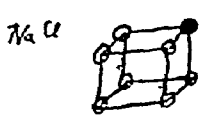
परमाणु संरचनामें इलेक्ट्रानके बन्धन लुइसकी कल्पनाके अनुसार

१६ : अधात्विक मूलतत्त्व

धातुओंकी चर्चा हम चौथे अध्यायमें कर आए हैं। यहाँ कुछ अधात्विक मूलतत्त्वोंकी चर्चा की जाएगी। आरम्भ हम हेलोजनवर्गीय मूल तत्त्वोंसे करते हैं।

हेलोजन

फ्लोरिन, क्लोरिन, ब्रोमिन और आयोडिन—ये चार मूल तत्त्व हेलोजनके नामसे जाने जाते हैं। इनमें सबसे हलका मूल तत्त्व फ्लोरिन है। यह हलके पीले रंगकी गैस है। इसकी संज्ञा F परमाणु भार १९.०० और परमाणु संख्या ९ है। रासायनिक दृष्टिसे अत्यन्त क्रियाशील होनेके कारण फ्लोरिन कभी मुक्त अवस्थामें नहीं मिलता। प्रकृतिमें उसके यौगिक ही प्राप्त होते हैं। अनगिनत खनिजों और जलीय तथा आग्नेय शैलोंके खनिजोंमें मिलता है। इसका मुख्य खनिज फ्लोरस्पार अर्थात् कैलसियमका फ्लोराइड है।

हाइड्रोजनसे संयोग कर यह हाइड्रोजन फ्लोराइड अर्थात् हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल बनाता है। यह अम्ल काँचका भी संक्षारण कर देता है। ताँबे-जैसी धातुके पात्रमें रखनेसे उसकी सतह पर फ्लोराइडकी परत बनाता है। यह परत अम्लसे ताँबेकी रक्षा करती है; इसलिए इस अम्लको ताँबे या उससे मिलती-जुलती धातुके पात्रमें रखा जा सकता है।

पारे-जैसे उत्प्रेरकोंकी सहायतासे कार्बन और फ्लोरिन संयोजित होकर (CF_4, C_2F_6) की तरहके फ्लोरोकार्बन बनाते हैं। पानी अथवा तेल उनका स्पर्श नहीं कर पाते। उनमेंसे कई बहुत अच्छे स्नेहक होते हैं। फ्लोरोकार्बनके आक्सीजन, नाइट्रोजन और गन्धकसहित उत्पाद, अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा अधिक तापसह होनेके कारण राल, प्लास्टिक, तेल, मोम, रेशे आदि बनानेके अधिक उपयुक्त होते हैं।

युद्ध-कालमें युरेनियम–२३५ को मुक्त करनेके लिए युरेनियम हेक्साफ्लोराइडका उपयोग किया गया था। पानीको सोडियम फ्लोरोसिलिकेटकी अल्प मात्रासे क्लोरिनयुक्त करके वह पानी कई शहरोंको दिया जाता है। दाँतकी सड़न (दन्तक्षय) इससे रुक जाती है। फ्लोरोसिलिकेटका उपयोग जन्तुनाशककी तरह और लकड़ीको दीमक तथा कीटाणुओंसे बचानेके लिए किया जाता है। टेट्राफ्लोरोइथिलिनके अणु आपसमें संयोजित होकर बहुलक (पोलीमर) बनाते हैं। क्रायोलाइट Na_3AlF_6 का उपयोग एल्युमीनियम धातुके उत्पादनमें किया जाता है।

क्लोरिन—क्लोरिनकी संज्ञा Cl, ब्रोमिनकी Br और आयोडिनकी I है। इनका परमाणु-भार और परमाणु-संख्या क्रमशः ३५.४५७-१७, ७९.९१६-३५ और १२६.९२-५३ हैं।

क्लोरिन प्रदाहक (उत्तेजक) गन्ध, और पीताभ-हरित रंगवाली आक्सीकरण गुणयुक्त गैस है। विरंजन चूर्ण (ब्लीचिंग पाउडर), कार्वनिक रंग, दवाइयाँ वनाने और शहरोंमें दिये जानेवाले पानीको कीटाणुओंसे शुद्ध करनेमें इसका उपयोग किया जाता है। प्रथम महायुद्धमें शत्रु सैनिकोंको परेशान करनेके लिए जर्मनीने क्लोरिनका उपयोग विपैली गैसके रूपमें किया था। अनेक मूलतत्त्वोंसे संयोजित होकर यह उनके क्लोराइड वनाता है। भोजनमें काम आनेवाला नमक सोडियमका क्लोराइड है। अधिकांश क्लोराइड (चाँदी, पारा और सीसेके अतिरिक्त) पानीमें विलेय हैं; और क्लोराइडका विद्युत् विश्लेषण कर क्लोरिन गैस पैदा की जाती है। लवणके पानीका विद्युत् विश्लेषण करनेसे कास्टिक सोडा, हाइड्रोजन और क्लोरिन प्राप्त होते हैं। कास्टिक सोडेका सावुन वनानेमें और क्लोरिनका विरंजन चूर्ण वनानेमें उपयोग किया जाता है। क्लोरिनका एक सुपरिचित यौगिक क्लोरोफार्म है, जिसका उपयोग शल्य क्रियामें निश्चेतकके रूपमें किया जाता है।

ब्रोमिन—ब्रोमिन साधारण ताप पर कालिमा लिये हुए रक्तिम द्रव है। इसकी भाप जहरीली होती है। विभिन्न धातुओंमें ब्रोमाइडके रूपमें यह प्रकृतिमें मिलता है। स्टेसफर्ट और मिचिगनमें इस तरहके ब्रोमाइड प्रचुर मात्रामें मिलते हैं। समुद्री पानीसे नमक वना लेनेके वाद शेप वचे 'विटर्न' नामक मातृ द्राव (mother liquor) से इसका उत्पादन सस्ता पड़ता है। ब्रोमिनका उपयोग रासायनिक रीतिसे कार्वनिक पदार्थोंके उत्पादनमें विशेष रूपसे किया जाता है। धातुओंसे संयोजित होकर यह ब्रोमाइड वनाता है। चाँदीका ब्रोमाइड फोटोग्राफी में काम आता है। पोटेसियम ब्रोमाईड और अन्य ब्रोमाइड दवाइयोंके रूपमें इस्तेमाल किये जाते हैं।

आयोडिन—आयोडिन वैंगनी रंगके स्फटिकोंके रूपमें मिलता है। समुद्री वनस्पतिसे यह निकाला जाता है। प्राणी शरीरकी थाइरॉयड ग्रन्थिके स्राव थाइरोक्सिन में भी यह रहता है। टिंचर आयोडिन, आयडोफार्म, आयोडेक्स आदि पदार्थ दवाईके रूपमें प्रयुक्त होते हैं। आयोडिनका उपयोग जन्तुनाशककी तरह भी किया जाता है। वानस्पतिक अथवा प्राणिज तेलोंसे इसके संयोजित होनेके आधार पर उस तेलका आयोडिन-मान (iodine value) निश्चित किया जाता है। तेलके हाइ-ड्रोजनीकरणकी मात्रा तय करनेके लिए उसका आयोडिन-मान निकालना आवश्यक होता है। आयोडिन-मानसे तेलोंमें रहनेवाले वसाम्लोंके असन्तृप्त होनेकी मात्राका भी पता चल जाता है।

आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन

आक्सीजनका संकेत O, नाइट्रोजनका N और हाइड्रोजनका H है। इनके परमाणु भार और परमाणु संख्या क्रमशः १६-८, १४.००८-७ और १.८-१ है। ये तीनों गैसें रंग और गन्धहीन होती हैं।

आक्सीजन अनेक धातुओं और अधातुओंसे संयोग करके आक्साइड वनाता है। कई आक्साइड तो प्राचीनकालमें भी ज्ञात थे। पीनेका पानी हाइड्रोजनका आक्साइड है। चूना कैलसियमका आक्साइड है। संखिया आरसेनिकका आक्साइड है। अंजनमें काम आनेवाला सुरमा एंटिमनीका आक्साइड और शिंगरफ या इंगूर नामक पदार्थ पारे (mercury) का आक्साइड है। पारेके आक्साइडका उल्लेख अरव कीमियागर जवीरने 'मर्क्युरस कैल्सिनेटस पर से' नामसे किया है।

आक्सीजनकी खोजका इतिहास बड़ा रोचक है। माओ खाओ नामक एक चीनी लेखकने अट्ठारहवीं शताब्दीमें लिखी एक पुस्तकमें बताया है कि हवामें दो गैसें हैं—एक पूर्ण और दूसरी अपूर्ण। पूर्ण गैसको उसने 'यान' (नाइट्रोजन) और अपूर्ण गैसको 'यन' (आक्सीजन) नाम दिये। उसने और भी बताया कि कार्बन, गन्धक आदि गैसोंका दहन करनेसे अपूर्ण हवा चली जाती है और शेष बची हवा पूर्ण होती है। दहनशील पदार्थका दहन होता है तो वह पदार्थ 'यन'से संयोजित होता है। यह 'यन' हवामें तो होती ही है, साथ ही शोरा-जैसे कुछ पदार्थोंमें भी होती है। ऐसे पदार्थोंको गर्म करनेसे 'यन' निकल आती है।

हवा मूल तत्त्व नहीं है, यह लियोनार्दो द विन्सीने बताया था। ओल बोर्च नामक एक प्रयोगकर्त्ताने शोरेको गर्म कर इस गैसको मुक्त किया, परन्तु इसे एकत्रित करनेका ज्ञान उसे नहीं था। स्टिफन हेल्सने इसे बोर्चके ही ढंगसे मुक्त कर पानी पर इकट्ठा किया, परन्तु वह इसके गुणकी छान-बीन करना भूल गया। जोसेफ प्रिस्टले और शीलेने इस गैसको मुक्त कर इसके गुणोंकी छान-बीनकी। लवाशियेने इसका नाम आक्सीजन रखा; और आज भी यह आक्सीजन नामसे ही पुकारी जाती है।

इस गैसको औद्योगिक पैमाने पर बनानेके लिए द्रव हवाका उपयोग किया जाता है। हवाको काफी दाब पर ठण्डा कर उसे तरल किया जाता है; उसमेंके आक्सीजनका क्वथनांक १८३° सें० और नाइट्रोजनका क्वथनांक १९६ सें० होता है। इसलिए उस तरल हवामेंसे नाइट्रोजन भापके रूपमें पहले मुक्त होता है और आक्सीजन उसके बाद। अत्यन्त शुद्ध अवस्थामें आक्सीजन प्राप्त करना हो तो कास्टिक सोडाके विलयनका विद्युत् विश्लेषण करना चाहिए। इससे आक्सीजनके अतिरिक्त हाइड्रोजन भी शुद्ध रूपमें प्राप्त होगी।

धातुओंके सन्धान (वेल्डिंग)में काम आनेवाली आक्सी-ऐसिटिलिन ज्वाला (flame) में आक्सीजन और ऐसिटिलिन गैसोंका उपयोग किया जाता है। आक्सीजनका दूसरा उपयोग ऊँचे प्रकारका इस्पात बनानेमें किया जाता है। बीमारको साँस लेनेमें तकलीफ हो तो उसे आक्सीजन दी जाती है। आक्सीजनके बिना न तो जीवन सम्भव है और न दहन ही।

ओज़ोन—आक्सीजनका संघनित रूप ओज़ोन गैस है। आक्सीजनके अणुमें उसके दो परमाणु परन्तु ओज़ोनमें आक्सीजनके तीन परमाणु होते हैं। ओज़ोन प्रबल आक्सीकारक पदार्थ है। हवामें विद्युत् चिनगारियाँ पारित करनेसे यह गैस पैदा होती है। बरसाती तूफानमें जब बिजलियाँ चमकती हों या कभी-कभी समुद्र किनारे हवामें साँस लेने पर जो आह्लादकारी अनुभव होता है उसका कारण उस हवामें रहनेवाली ओजोन गैस है। पानीको कीटाणु-रहित करनेमें भी ओज़ोन गैसका उपयोग किया जाता है। द्विबन्धवाले कुछ हाइड्रोकार्बनोंमें ओज़ोनके अणु प्रतिस्थापित करनेसे ओज़ोनाइड्ज नामक पदार्थ बनता है।

हाइड्रोजन—पानी अथवा कास्टिक सोडेका विद्युत् विच्छेदन करके हाइड्रोजनको प्राप्त किया जा सकता है। खनिज तेलकी परिष्करणी और पेट्रो-केमिकल्सके कारखानेमें उपोत्पादके रूपमें हाइड्रोजन और एमोनिया प्राप्त होते हैं। हाइड्रोजन सबसे हलकी गैस है। पहले वह गुब्बारों और वायुयानोंमें भरी जाती थी, परन्तु अत्यधिक ज्वलनशील होनेके कारण जल उठती थी और अकसर दुर्घटनाएँ हो जाया करती थीं। इस खतरेसे बचनेके लिए अब इसके स्थान पर हीलियम गैसका उपयोग किया जाता है।

हाइड्रोजनका सबसे महत्त्वपूर्ण उपयोग द्रव तेलोंके हाइड्रोजनीकरण (जमानेमें) किया जाता है। इस क्रिया द्वारा द्रव तेलको घीकी तरह जमाया जा सकता है। मक्खनकी जगह काममें लिया जानेवाला मार्गेरिन और घीके बदले इस्तेमाल किया जानेवाला वनस्पति (मूंगफलीका जमाया हुआ तेल) हाइड्रोजनीकरण विधिका ही प्रताप है। कुछ प्रकारके पेट्रो-केमिकल उद्योगोंमें भी हाइड्रोजनीकरणकी विधि काममें लाई जाती है। गर्म कोयले पर हवा और भाप पारित करनेसे हाइड्रोजन और कार्बन मोनोक्साइडका मिश्रण बनता है, जिसका नाम 'मोण्ट' गैस है और जो इंजनोंमें ईंधनकी जगह इस्तेमाल की जाती है। नाइट्रोजनसे हाइड्रोजनका संयोजन कर एमोनिया बनानेकी हेबरकी पद्धतिमें भी हाइड्रोजनका उपयोग होता है।

नाइट्रोजन—नाइट्रोजन महत्त्वपूर्ण गैस है। पृथ्वीके वायुमंडलमें इसकी बहुतायत है। वायुमण्डलकी हवामें इसका अनुपात लगभग ८० प्रतिशत है। रासायनिक दृष्टिसे यह एक क्रियाशील गैस है। तरल हवासे इसका उत्पादन किया जाता है, यह तो हम ऊपर पढ़ ही आए हैं।

वनस्पतिको उर्वरकके रूपमें नाइट्रोजनके यौगिक देना जरूरी है। ऐसे यौगिक पशु-प्राणियोंके मल-मूत्रमें रहनेके कारण उनका प्राकृतिक उर्वरकोंके रूपमें उपयोग किया जाता है। मल-मूत्रसे आनेवाली एमोनिया गैसकी गन्धसे सभी परिचित हैं। प्रकृतिमें नाइट्रेटके रूपमें प्राप्त होनेवाले खनिजोंका भी उर्वरककी तरह उपयोग किया जा सकता है। लेकिन बड़े पैमाने पर विश्वकी उर्वरक-सम्बन्धी आवश्यकताको और युद्धके समय विस्फोटकोंकी माँगको पूरा करनेके लिए हवाके नाइट्रोजनसे उसके यौगिक बनाना जरूरी हो जाता है। इस तरह नाइट्रोजनके यौगिक बनानेकी विधि भी पहले विश्व-युद्धके ही समय आविष्कृत हुई थी।
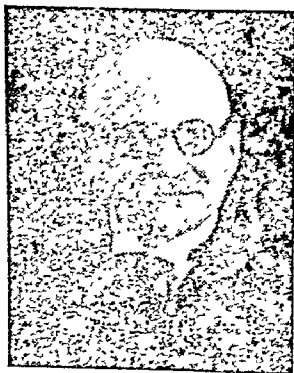
फिट्ज हेबर
(१८६८–१९३४)

उच्च दाब पर हाइड्रोजन और नाइट्रोजनका संयोजन कर एमोनिया गैस बनानेकी विधि हेबर विधिके नामसे प्रख्यात है। इस विधिमें लोहके आक्साइड अथवा पोटेसियमके आक्साइडका उत्प्रेरकके रूपमें उपयोग किया जाता है। नाइट्रोजनको संयोजित करनेकी एक और विधि साइनेमाइड विधि, कहलाती है। उसमें कैलसियम कारबाइडको १०००° सें० ताप पर रखकर उसपर नाइट्रोजन गैस पारितकी जाती है। इस क्रियासे प्राप्त कैलसियम साइनेमाइडपर पानीके प्रभावसे, जो एमोनियायुक्त होता है उसके आक्सीकरणसे नाइट्रिक अम्ल बनाया जा सकता है।

लोहा गलानेकी वमन भट्ठीके लिए आवश्यक कोक भट्ठी गैसका उपयोग एमोनिया बनानेमें किया जाता है। राऊरकेला इस्पात संयंत्रमें यह पद्धति चालू की गई है।

एमोनिया गैस (NH_3) नाइट्रोजन और हाइड्रोजनका यौगिक है। पानीका बर्फ बनाने और प्रशीतकोंमें प्रशीतकारी पदार्थके रूपमें इसका उपयोग होता है।

ड्युलॉग नामक वैज्ञानिकने १८११ ई० में नाइट्रोजन ट्राइक्लोराइड वनाया था; लेकिन उससे जवर्दस्त विस्फोट हुआ, जिसमें ड्युलॉगकी एक आँख और तीन अँगुलियाँ जाती रही। नाइट्रोजनके कई यौगिक विस्फोटक होते है। वनस्पतिको नाइट्रोजन देनेके लिए एमोनिया मिले पानीसे उसे सींचते है।

[सोयावीनके पौवेकी जड पर नाइट्रोजनको स्थायी वनानेवाले जीवाणुओकी गाँठें। इस तरह स्थायी हुआ नाइट्रोजन भूमिको उपजाऊ वनाता है।]

नाइट्रोजनको संयोजित करनेका करतव कुछ जीवाणु भी करते है। वनस्पतिकी और खास तौर पर कुछ दलहनों (द्विदलों)की जड़ोंसे चिपककर ये जीवाणु हवामें रहनेवाले नाइट्रोजनको स्थायी करनेका काम किया करते है ओर इस तरह भूमिको उपजाऊ वनाते है।

प्रकृतिमे नाइट्रोजनके रूपान्तरणका चक्र निरन्तर चलता ही रहता है। हवामेसे जीवाणुओंके द्वारा और प्राणियोके मल-मूत्रमेसे खादके द्वारा वनस्पतियाँ नाइट्रोजन प्राप्त करती है। प्राणी वानस्पतिक खाद्योंका उपयोगकर अपने मल-मूत्रमें नाइट्रोजनके यौगिक वाहर निकालते है, जो पुनः वनस्पतियोंके काम आते है। इस तरह यह चक्र सतत चलता रहता है।

विरल गैसें

आर्गन, क्रिप्टान, जेनान, रेडॉन और हीलियम (तथा निऑन) गैसोंको 'विरल' (rare) 'अक्रिय' (inert) अथवा 'उत्तम' (noble) गैसें भी कहा जाता है। मेण्डेलीफकी आवर्त सारणीमें इन गैसोको शून्य समूहमे रखा गया है। इसका कारण यह है कि ये गैसें एकाकी और निःसंग है, किसीसे भी संयोजित होकर यौगिक नही वनाती। उनके यौगिक वनानेमें ठेठ १९६२ मे जाकर सफलता मिली और वह भी वहुत ही सीमित।

केवेण्डिशने यह जानकारी दी कि हवामेंसे आक्सीजन और नाइट्रोजन निकाल लेनेके वाद एक-आध वुलवुला रह जाता है; लेकिन उसने इस सम्वन्धमे अधिक छान-वीन नही की। १८९४ में रैले और राम्जेने यह खोज की कि नाइट्रोजनमें उसीके सहारे लगभग १ प्रतिशत कोई अन्य गैस भी रहती है। आर्गन ही वह गैस है। उसके वाद राम्जे और ट्रावर्सने मिलकर वायुमण्डलमें ऐसी और भी कुछ निष्क्रिय गैसोंका पता लगाया। उनके नाम है, क्रिप्टान, ज़ेनान, निऑन और हीलियम।

आर्गनका रासायनिक संकेत A है। उसका परमाणुभार ३९.९४४ और परमाणु संख्या १८ है। विजलीके लट्टूमे भरे जानेके अतिरिक्त उसका अभी तक और कोई उपयोग ज्ञात नही हुआ है।

क्रिप्टॉनका संकेत Kr है। उसका परमाणु भार ८३·७ और परमाणु संख्या ३६ है। वायुमण्डलके प्रति एक करोड़ भागमें उसका एक-आध भाग रहता है। इसका उपयोग प्रकाश-स्तम्भमे काम आनेवाले बिजलीके गोले भरनेमें किया जाता है।

सर विलियम राम्जे
(१८५२–१९१६)

जेनॉनका संकेत Xe है। वायु मण्डलमें इसका अनुपात क्रिप्टॉनसे भी कम है। इसका परमाणु भार १३१.३ और परमाणु संख्या ५४ है।

१९६२ में कोलम्बिया विश्वविद्यालयमें बार्टलेटने जेनॉन और प्लैटिनम हेक्साफलोराइडकी पारस्परिक क्रियाके द्वारा एक पीला पदार्थ उत्पन्न किया। उसके बाद जेनॉन और फ्लोरिन गैसोंका गर्म मिश्रण करके अन्य रसायनज्ञोंने जेनॉन टेट्राफलोराइड बनाया। अब तो प्लैटिनमके अतिरिक्त टैण्टेलम, ऐण्टिमनी, आरसेनिक, बोरोन आदि धातुओंको जेनॉनसे संयोजितकर बनाये जा सकते है। इस सफलताके बाद वैज्ञानिकोंने क्रिप्टॉनको भी नियन्त्रित करनेका प्रयत्न किया है। जेनॉनके यौगिकोंका आक्सीकारक पदार्थोकी तरह उपयोग किया जा सकता है। इनके उपयोगका एक बड़ा लाभ यह है कि इनसे उत्पन्न होनेवाले सभी
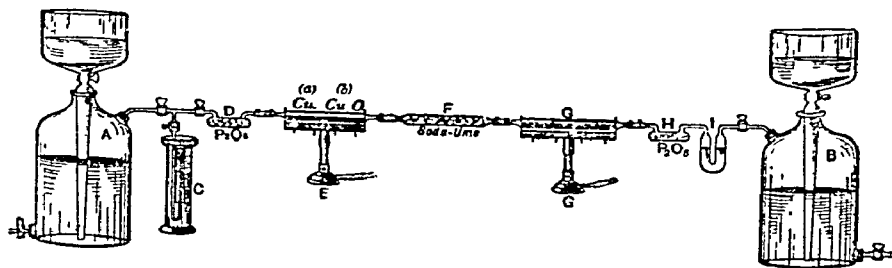
[हवामेंसे आक्सीजन और हाइड्रोजन निकालनेका राम्जेका उपकरण। शेष बचे गैसके बुलबुलेके आधारपर आर्गनकी घोषणा।]

पदार्थ गैसीय होनेके कारण क्रियाके दौरान मैल या कूड़ा जमा नही होता। इसलिए राकेटोमें प्रणोदक पदार्थ (propellant)के रूपमें उपयोग किये जानेके लिए इनके यौगिक बनाये जाते है।

सूर्यके वायुमण्डलमें उसके वर्णक्रमके आधारपर लोकियरने १८६८ ई०में हीलियमकी खोजकी थी। १८९४में राम्जेने पृथ्वीके वायुमण्डलमे हीलियमका पता लगाया। क्रिप्टॉन और निऑनको १८९८ मे मुक्त किया जा सका। पीअर क्यूरी और मदाम क्यूरीने रेडियमके विकिरण-के दौरान उत्पन्न होनेवाली गैस रेडोनकी खोज की।

निऑन गैससे तो प्रायः सभी नागरिक परिचित होते हैं। ऊँचे मकानोंपर विज्ञापनोंकी रंगविरंगी विद्युत् ट्यूबें (डंडा विजलियाँ) रातमें जगमगा उठती हैं। उन सवमें निऑन गैस भरी होती है। इसीलिए उन ट्यूबोंको 'निऑन साइन लाइट' कहते हैं। निऑनका संकेत Ne, परमाणुभार २०.१८३ और परमाणु संख्या १० है।

रेडोनका संकेत Rn परमाणुभार २२२ और परमाणु संख्या ८६ है। यह रेडियधर्मी पदार्थ है और कैन्सरकी चिकित्सामें काम आता है।

हीलियमका संकेत He_2 या He_3, परमाणुभार ४.००२ और परमाणु संख्या २ है। द्रव हीलियमके दो स्वरूप हैं— He_1 और He_2। He_2 ऊष्मा संवाहक है और इसकी ऊष्मा संवाहन-क्षमता तांवेसे एक हज़ार गुना अधिक है। ठोस हीलियमको खूब दबाया जा सकता है। यदि इसे किसी खुले प्यालेमें भरा जाए तो प्यालेके किनारे-किनारे ऊपर चढ़कर और वाहरकी ओर भी प्यालेकी दीवालके सहारे नीचे उतरकर, दीवाल फांदकर जेलसे भागने वाले कैदीकी तरह, अलोप हो जाता है। हीलियमका उपयोग वायुयानोंमें भरनेके लिए किया जाता है। रेडियधर्मी पदार्थोंके विकिरण तथा कुछ प्रकारके गर्म पानीके झरनोंसे हीलियम गैस निकलती है।

इन सभी विरल गैसोंसे नाम-मात्रके यौगिक वनाये जा सके हैं। इनकी संयोजकता ८ है, इसलिए कुछ लोगोंका कहना है कि इनके समूहको शून्य कहनेके वदले आठ कहना चाहिए।

गन्धक, फॉस्फोरस, सिलिकोन

गन्धक—गन्धकमें अपने नामके अनुरूप गन्धका विशिष्ट गुण होता है। शुद्ध गन्धक और उसके यौगिक गन्धसे पहचान लिये जाते हैं। यूनानी कवि होमरने, जो ईसासे ९०० वर्ष पूर्व हुआ, गन्धकका उल्लेख किया है। सभी कीमियागरोंने किसी-न-किसी रूपमें गन्धकका उपयोग किया है। गन्धक एक मूल तत्त्व है, यह तो सबसे पहले फ्रान्सीसी रसायनवेत्ता लवाशियेने प्रतिपादित किया था।

बुँगलिया गन्धक, आँवलासार गन्धक, और फूल गन्धकका दूध–जैसा सफेद चूर्ण—ये सव गन्धकके ही रूप हैं।[1] गन्धकके निक्षेप भारतवर्षमें नहींके बराबर हैं, इसलिए हमें गन्धक विदेशोंसे ही मँगाना पड़ता है।[2] रवरके वल्कनीकरणमें गन्धककी जरूरत पड़ती है। दवाइयोंमें भी

---

१. भारतीय प्राचीन आयुर्वेदमें चार प्रकारके गन्धकका उल्लेख मिलता है—पीत, रक्त, श्वेत और कृष्ण; इनमें काला गन्धक दुर्लभ कहा गया है।

२. प्राकृतिक गन्धकका कोई भी निक्षेप भारतमें नहीं है। लेकिन गन्धकके यौगिकों, माक्षिकों पाइराइट) और कैल्को माक्षिकों (चाल्को पाइराइट)के निक्षेप अवश्य हैं। लोह, तांवा तथा गन्धकके यौगिक कैल्को माक्षिकोंके उत्तम निक्षेप सिंहभूम (विहार)में मोसावानीके समीप स्थित हैं। माक्षिकोंके निक्षेपोंका विहार, वंबई और पंजावके अनेक भागोंमें पता चला है। एक निक्षेप तारदेव स्टेशन (शिमला)के समीप हिमाचल घाटीमें और दूसरा अमजोर (शाहाबाद, विहार)में मिला है। माक्षिकोंके इन निक्षेपोंमें ४०% गन्धक होनेकी बात कही जाती है। मैसूरके चिताल द्रुग और मदरासके नीलगिरि जिलोंमें भी निक्षेप मिले हैं। १९५० में ३,०२, ८२,००० रुपए विदेशी मुद्राका १, ०६, २८१ टन गन्धक आयात किया गया था।

गन्धकका उपयोग होता है। फसलको हानि पहुँचानेवाले कीट-पतंगों और फफूंदका नाश करनेके लिए जो विषैली दवाइयां छिड़की जाती हैं उनमें भी गन्धकका उपयोग किया जाता है।

गन्धकको जलानेसे उसका डाइआक्साइड बनता है, जिसे उसकी उग्र गन्धसे पहचाना जा सकता है। गर्म कपड़ोंपर लगे दागोंको मिटाने—विरंजन करनेमें गन्धकके डाइआक्साइडका उपयोग किया जाता है। पानीसे रासायनिक संयोगकर वह सल्फ्युरस अम्ल बनाता है। लेकिन यह अम्ल तनु (weak) होता है। गन्धकका अम्ल बनानेके लिए सल्फरका ट्राइआक्साइड आवश्यक है। हवामें उसका आक्सीकरण होने पर गन्धकका अम्ल बनता है।

गन्धकका सबसे अधिक उपयोग गन्धकका तेजाब (गन्धकाम्ल) बनानेमें किया जाता है। गन्धकके अम्लको 'उद्योगोंका राजा' कहते हैं। उसके अभावमें बहुतसे रासायनिक उद्योग हमेशाके लिए बन्द हो जाएँगे। किसी भी देशकी औद्योगिक प्रगतिका मापदण्ड उस देश द्वारा उपयोगमें लाये जानेवाले गन्धकाम्लकी मात्रा है। सल्फर ट्राइआक्साइडकी पानीसे क्रिया करनेपर गन्धक (सल्फ्यूरिक) अम्ल बनता है। उसका रासायनिक सूत्र H_2SO_4 है। कासीस (हीरा कसीस) अर्थात् लौहके सल्फेटका उपयोग प्राचीनकालसे रंग और स्याहियाँ बनानेमें होता आया है। कीमियागर इस कासीसका आसवन कर गन्धकका अम्ल बनाते थे। कासीसको अंग्रेजीमें विट्रियल कहते हैं; इसलिये यूरोपमें गन्धकके अम्लका पुराना नाम 'विट्रियलका तेल' प्रचलित था।

आज गन्धकाम्ल बनानेमें दो प्रमुख विधियाँ काममें लाई जाती हैं। एक विधिको सीसकक्ष (lead chamber) विधि और दूसरीको सम्पर्क विधि (contact process) कहते हैं। इन दोनों विधियोंमें सल्फर डाइआक्साइडसे सल्फर ट्राइआक्साइड बनानेके लिए उत्प्रेरकोंका उपयोग किया जाता है। सीसकक्ष विधिमें नाइट्रोजनके आक्साइड उत्प्रेरकका काम करते हैं; सम्पर्क विधिमें इसके लिए प्लेटिनमके चूर्णका उपयोग किया जाता है।

सीसकक्ष विधि संक्षेपमें इस प्रकार है: गन्धक या गन्धकयुक्त खनिजको जलाकर उत्पन्न होनेवाली सल्फर डाइआक्साइड गैस और हवाके मिश्रणको नाइट्रोजन आक्साइडके साथ सीसेसे मढ़े हुए एक बड़े कक्षमें ले जाते हैं, जहाँ पानीका महीन फव्वारा निरन्तर चलता रहता है। उस कक्षमें पानीकी क्रियासे डाइआक्साइडसे ट्राइआक्साइड बनता है। नाइट्रोजन आक्साइड अपना आक्सीजन सल्फर डाइआक्साइडको प्रदान करता है इसलिए ट्राइआक्साइड बननेपर उससे पानीके साथ सल्फ्यूरिक एसिड अर्थात् गन्धकाम्ल बन जाता है। इस क्रियाके बाद मुक्त होनेवाले नाइट्रोजन आक्साइडको पुनः काममें ले लिया जाता है। इस विधिसे बनाया हुआ अम्ल तनु (पतला) होता है; उसमें ३० प्रतिशत पानी रहता है। उसे सान्द्र करना पड़ता है।

$$2SO_2+O_2 \longrightarrow 2SO_3$$

$$2SO_2+(NO_2+NO)+O_2+H_2O=2SO_2(OH).O.NO+H_2O=$$
$$2H_2SO_4+NO_2+NO$$
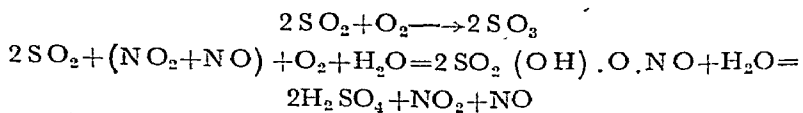
सम्पर्क विधि आविष्कृत तो हुई थी १८३१में, परन्तु १९०१ तक उसका उपयोग नहीं किया गया। जर्मनीमें कृत्रिम (संश्लिष्ट) नीलके लिए अनुसन्धान किये जा रहे थे। इस कार्यमें बहुत ही उग्र (सान्द्र) अम्ल प्रचुर मात्रामें चाहिए। कक्ष विधिसे बना अम्ल तनु होनेके कारण इस कार्यके

उपयुक्त सिद्ध न हुआ। इसलिए सम्पर्क विधि खोज निकाली गई, जिसकी सफलताने उद्योगोंके इतिहासमें नये अध्यायका आरम्भ किया।

इस विधिमें विशुद्ध सल्फर डाइआक्साइड आवश्यक है; नहीं तो सम्पर्क करनेवाला पदार्थ प्लेटिनम निष्क्रिय हो जाता है। कोट्रेलने इस शुद्धिकरणके लिए विद्युत् अवक्षेपणको अपनाकर सम्पर्क-विधिको हर तरहसे पूर्णतापर पहुँचा दिया। यह विधि अधिक कार्यक्षम है; इससे अधिक सान्द्र (उग्र) अम्ल बनता है, जो अधिक विशुद्ध भी होता है और इसीलिए सीसकक्ष विधि अब प्रायः बेकार ही हो गई है।

गन्धकाम्ल किसी भी विधिसे क्यों न बनाया जाए उसके लिए सल्फर ट्राइआक्साइड और सल्फर ट्राइआक्साइड बनानेके लिए गन्धक अथवा गन्धकके यौगिकोंकी जरूरत तो होती ही है। गन्धकयुक्त धातुओंके खनिजको पाइराइट अथवा 'माक्षिक' कहते हैं। उसमेंसे धातुशोधनके समय निकलनेवाली गैसोंको सल्फर डाइआक्साइड कहते हैं। उन गैसोंका वहीं और उसी समय उपयोग करके गन्धकाम्ल बना लिया जाता है। अभी हालमें कैल्सियम सल्फेट—सेलखड़ी पत्थर-से गन्धकाम्ल बनानेकी एक विधि खोजी गई है। भारतमें सेलखड़ी पत्थर प्रचुर मात्रामें मिलता है, इसलिए उससे गन्धकाम्ल बनाना हमारे देशके लिए काफी सुविधाजनक रहेगा।

गन्धकका एक सुपरिचित यौगिक हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) है। गन्दे कुएँकी सफाई, गटरके रुक जाने या बन्द पानीके सड़नेपर जो दुर्गन्ध उड़ती है वह हाइड्रोजन सल्फाइडकी ही होती है। सड़ाव या सड़े अण्डोंसे भी यह गैस निकलती है। प्रयोगशालामें एक रासायनिक क्रियाके रूपमें हाइड्रोजन सल्फाइडका इस्तेमाल विज्ञानके सभी विद्यार्थियोंको ज्ञात है।

गर्म पानीके कुछ सोतोंसे जो गन्ध आती है वह मुख्यतः गन्धकके सल्फाइडकी ही होती है।

सिलिकोन—सिलिकाका अर्थ है बालू। उससे प्राप्त होनेवाले मूल तत्त्वका नाम सिलिकोन है। सिलिकोनका रासायनिक सूत्र Si परमाणुभार २८.०६ और परमाणु संख्या १४ है। उसकी
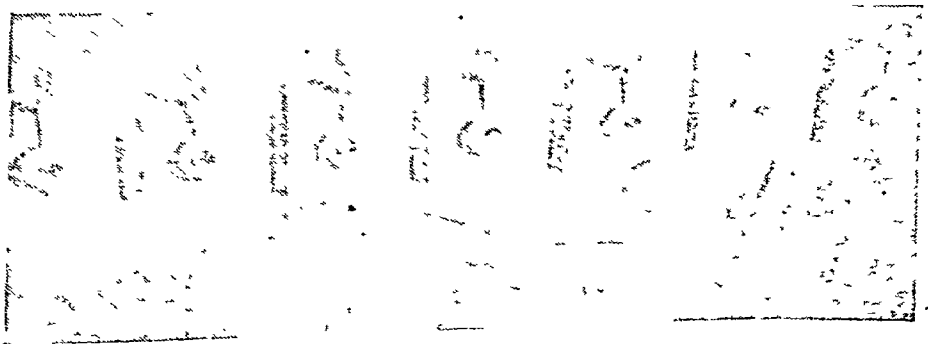
जर्मेनियमके सात ट्रांजिस्टरके बराबर ध्वनि प्रवर्धन करनेवाला सिलिकोनका ट्रांजिस्टर

संयोजकता ४ यानी कार्बनके बराबर है। उसके यौगिक दुनियामें सर्वत्र व्याप्त हैं। नदीकी बालूसे लेकर कई मूल्यवान रत्नों तक सिलिकोनके यौगिक हैं। शुद्ध सिलिकोन भंगुर होता है और वह

धातु एवं अधातुकी मध्यस्थितिवाली उपधातु (metalloid) है। विद्युत् भट्ठीमें बालू और कार्बनको तपानेसे सिलिकोन उपधातु बालूमेंसे मुक्त होती है।

एल्यूमीनियम, ताँबा, मैग्नेशियम आदि धातुओंमें सिलिकोन मिलाकर मिश्र धातुएँ बनाई जाती हैं। बालूका उपयोग काँच बनानेमें किया जाता है। बालू और कार्बनको गर्मकर सिलिकोन कार्बाइड बनाते है। सिलिकोन स्फटिक रेडियोके ओसिलेटर रैक्टिफायर (दोलक एकदिशकारी) और ट्रांजिस्टर बनानेके काम आते हैं। साधारण ट्रांजिस्टर जर्मेनियम धातुके बनते हैं। परन्तु उच्च तापपर वे ठीकसे काम नहीं कर पाते, जबकि सिलिकोनके द्वयग्र (dicds) उच्च ताप-पर भी बराबर काम देते हैं।
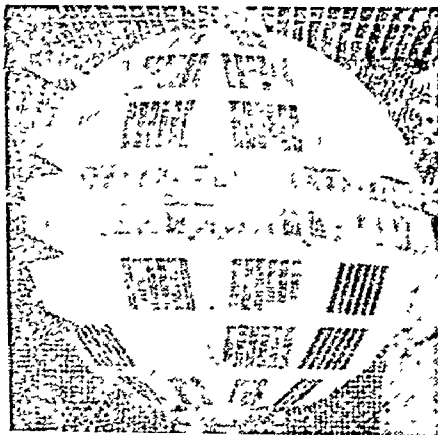
उपग्रह में सूर्य ऊर्जासे चलनेवाली सिलिकोन सेलकी बैटरीकी माला, जिससे प्रति वर्गगज़ ९० वाट् विद्युत् पैदा होती है।

कार्बनिक पदार्थोंसे संयोग करके सिलिकोन आर्गेनोक्लोरोसिलेन-जैसे कुछ यौगिक बनाता है। ऐसे पदार्थोंको पानी स्पर्श नही कर पाता, इसलिए कपड़ा उद्योग और चमड़ा उद्योगमें उनका उपयोग जल प्रतिकर्षक (water repellent) की तरह किया जाता है। आर्गेनो-सिलिकोनका बहुलक बनाया जा सकता है। सर्जास (resinous) द्रव होता है और विद्युत्-विसंवाहमें (insulator) की तरह, धातुओंकी ढलाईके सांचे बनानेमें, जलावरोधी लेप (water repellent coating), पालिश, स्नेहक (lubricants), अंगराग और सौन्दर्य प्रसाधन बनानेके काम आता है। सिलिकोन एस्टरका उपयोग रंग-रोगन बनाने और तरल ऊष्मा-अन्तरण (heat transfer fluid) की तरह किया जाता है।

अब सिलिकोन रसायन कार्बन रसायनका प्रतिस्पर्धी होता जा रहा है। सिलिकोन कार्बन के जैसे ही आयन और सहसंयोजक बन्ध (co-vallent bonds) धारण कर सकता है। आक्सीजनसे इसकी बन्धता (affinity) अधिक होनेके कारण यह मूल तत्त्व प्रकृतिमें अपनी यौगिक अवस्थामें प्राप्त होता है।

सिलिकोनके स्फटिक सामान्यतः तनु अम्लमें अविलेय, परन्तु शोरेके सान्द्र अम्ल और लवणके अम्लके मिश्रण (Aqua regia) में धीमी गतिसे विलेय है, और सिलिकोन टेट्राक्लोराइड बनाते हैं।

मिथाइल सिलिकोन तेल स्नेहक एवं विद्युदपारक (dielectric) द्रवोंके रूपमें उच्च ताप-पर भी काम दे सकते हैं। विनाइल-सिलिकोन ट्राइक्लोराइड ग्लास फाइबर—रेशोंके दृढ़ीकरणमें उपयोग किया जाता है। सिलिकोन द्रवोंका पृष्ठ तनाव कम होता है इसलिए वे फेन विरोधी पदार्थके रूपमें अच्छा काम देते हैं। सिलिकोन रबर कम तापपर भी सुनम्य (flexible) रह सकता है और उच्च तापपर अपने गुणोंको बनाये रखता है।

इस प्रकार सिलिकोनका महत्त्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है और उसके यौगिकोंके नये-नये उपयोग खोजे जा रहे हैं।

बालूका सामान्य उपयोग सीमेंट या चूनेकी चिनाईमें किया जाता है। बालू सिलिकोनका आक्साइड है। चकमक पत्थर, बिल्लौरी संग जराहत, अभ्रक आदि अनेक पदार्थोंमें सिलिकोन होता है। चाक और संगमरमरको छोड़कर एक भी पत्थर ऐसा नहीं होता जिसमें सिलिकोन न हो।

सीमेंट केलसियम सिलिकेटों और एल्यूमिनेटोंका महीन चूर्ण है। साधारण सीमेंट पोर्टलैण्ड सीमेंट है। पानीके साथ मिलानेसे उसके सिलिकेट और एल्युमिनेट बड़ी दृढ़तासे पानीके साथ संयोजित होकर चिपक जाते हैं।

फॉस्फोरस—हेनिंग ब्राण्ड नामक एक चिकित्सक-कीमियागरको १६६९ ई०में चाँदीसे सोना बनानेकी धुन सवार हुई। उसने चाँदीसे सोना बनानेके लिए मूत्रका उपयोग किया। अपने इस प्रयोगसे उसे सोना तो नहीं मिला, परन्तु मोम-जैसा एक मुलायम पदार्थ अवश्य मिला। वह पदार्थ अँधेरेमें जगमगाता था। उसके बाद जॉन कुंकल (१६३०-१७०२) ने भी मूत्रको गरम कर कई क्रियाओंके बाद उससे फॉस्फोरस बनाया था। राबर्ट ब्रॉइलको भी फॉस्फोरस बनानेमें सफलता मिली थी। उसके एक साथी ए० जी० हेंकविनने तो तीन पौण्ड और एक औंस फॉस्फोरस बेचनेका विज्ञापन भी छपवाया था।

१७६९ ई०में स्वीडनके वैज्ञानिकद्वय शील और गाह्ने यह घोषणा की कि हड्डियोंमें फॉस्फोरस होता है और उन्होंने हड्डियोंमेंसे फॉस्फोरसको मुक्त भी किया।

फॉस्फोरसके बिना जीवन संभव नहीं। क्या वनस्पति और क्या प्राणी-शरीर सबकी कोशिकाओंके न्यूक्लिओप्रोटीनमें फॉस्फोरस रहता है। नाइट्रोजनकी ही तरह फॉस्फोरसका परि-भ्रमण चक्र भी सतत चलता रहता है। जमीनमें रहनेवाले फॉस्फेट क्षारोंसे वनस्पतिमें, वनस्पतिसे जीवधारियोंके शरीरमें और जीवधारियोंके मर कर दफ़न हो जानेपर पुनः जमीनमें जा मिलता है। जीवित प्राणीके मल-मूत्रमें भी फॉस्फेटके क्षार रहते हैं। जमीनको उपजाऊ बनानेके लिए फॉस्फेटके क्षारोंकी जरूरत पड़ती है।

फॉस्फोरस दो तरहका होता है। एक तो पीला, मोम-जैसा मुलायम, विषैला और जल्दीसे जल उठनेवाला। सामान्य तापपर, यहाँ तक कि मानव शरीरकी गरमीसे भी वह जल उठता है, इसलिए उसे पानीके अन्दर रखा जाता है। पहले उसका उपयोग दियासलाइयाँ बनानेमें किया जाता था, परन्तु जहरीला होनेके कारण दियासलाईके कारखानोंमें काम करनेवालोंको हड्डियोंका रोग हो जाता था, इसलिए पीले फॉस्फोरसका उपयोग करनेकी मनाही कर दी गई।

लाल फॉस्फोरस जहरीला नहीं होता। जलानेके लिए जिस पट्टीपर दियासलाईको घिसा जाता है, उस पट्टीपर यह फॉस्फोरस लगा होता है। इस तरहकी दियासलाइयाँ सेफ्टी मैचेज—सुरक्षित दियासलाइयोंके नामसे पुकारी जाती हैं क्योंकि जहाँ-तहाँ घिसनेसे वे जलती नहीं हैं।

प्रकृतिमें प्राप्त होनेवाले कैल्सियम फॉस्फेटका उर्वरककी तरह उपयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह पानीमें अविलेय है। कैल्सियम फॉस्फेटको पीसकर आटे-जैसा महीन चूर्ण बना उसपर गन्धकाम्लकी क्रिया करनेसे सुपर फ़ॉस्फेट बनता है। इस सुपर फॉस्फेटका उपयोग वनस्पतिके उर्वरकके रूपमें किया जाता है।

फॉस्फोरसके कुछ यौगिक भारी पानी (hard water)को हल्का बनानेके काम आते हैं।

फॉस्फोरसका एक यौगिक फॉस्फिन (PH_3) है। उससे खूब गन्ध आती है। हवामें वह अपने-आप जल उठता है। श्मशान भूमिकी नम जगहोंसे निकलनेवाली गैसोंमें पंक (मार्श) गैस और फॉस्फिन खास तौरपर होती हैं और मरघटमें भूत-लीलाकी लपटोंका असली कारण यही है।

परमाणुभारकी सारणी

(अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु-भार, १९६१; कार्बन–१२ पर आधारित)

मूलतत्त्व	संकेत	परमाणु संख्या	परमाणु भार
एक्टिनियम	Ac	८९	२२७
एल्यूमीनियम	Al	१३	२६.९८१५
अमेरिशियम	Am	९५	२४३*
एंटिमनी	Sb	५१	१२१.७५
आर्गन	Ar	१८	३९.९४८
आर्सेनिक	As	३३	७४.९२१६
एस्टेटाइन	At	८५	२१०*
बेरियम	Ba	५६	१३७.३४
बर्केलियम	Bk	९७	२४९
बेरिलियम	Be	४	९.०१२२
बिस्मथ	Bi	८३	२०८.९८०
बोरोन	B	५	१०.८११
ब्रोमिन	Br	३५	७९.९०९
केडमियम	Cd	४८	११२.२०
कैल्सियम	Ca	२०	४०.०८
कैलिफोर्नियम	Cf	९८	२४९*
कार्बन	C	६	१२.०१११५
सेरियम	Ce	५८	१४०.१२
सीज़ियम	Cs	५५	१३२.९०५
क्लोरिन	Cl	१७	३५.४५३
क्रोमियम	Cr	२४	५१.९९६
कोबाल्ट	Co	२७	५८.९३३२
कॉपर (ताँबा)	Cu	२९	६३.५४

१. सर्वाधिक स्थायी समस्थानिकका परमाणु-भार।

मूल तत्त्व	संकेत	परमाणु संख्या	परमाणु भार
क्युरियम	Cm	९६	२४३*
डिस्प्रोसियम	Dy	६६	१६२.५०
आइन्स्टीनियम	Es	९९	२५३
एर्बियम	Er	६८	१६७.२६
युरोपियम	Eu	६३	१५१.९६
फर्मियम	Fm	१००	२५६
फ्लोरिन	F	९	१८.९९८४
फ्रांसियम	Fr	८७	२२३*
गेडोलिनियम	Gd	६४	१५७.२५
गैलियम	Ga	३१	६९.७२
जर्मेनियम	Gc	३२	७२.५९
गोल्ड (स्वर्ण)	Au	७९	१९६.९६७
हाफनियम	Hf	७२	१७८.४९
हेलियम	He	२	४.००२६
होल्मियम	Ho	६७	१६४.९३०
हाइड्रोजन	H	१	१.००७९७
इण्डियम	In	४९	११४.८२
आयोडिन	I	५३	१२६.९०४४
इरीडियम	Ir	७७	१९२.२
आयर्न (लौह)	Fe	२६	५५.८४७
क्रिप्टॉन	Kr	३६	८३.८०
लेन्थेनम	La	५७	१३८.९१
लेड (सीस)	Pb	८२	२०७.१९
लिथियम	Li	३	६.९३९
लॉरेन्शियम	Lw	१०३	२५७
ल्युटेटियम	Lu	७१	१७४.९७
मैग्नेशियम	Mg	१२	२४.३१२
मेंगेनीज़	Mn	२५	५४.९३८०
मेंडेलेवियम	Md	१०१	२५६*
मरक्युरी (पारा)	Hg	८०	२००.५९
मॉलिब्डेनम	Mo	४२	९५.९४
नियोडिमियम	Nd	६०	१४४.२४
निऑन	Nc	१०	२०.१८३
नेप्चूनियम	Np	९३	२३७

अधात्विक मूलतत्त्व :: २४३

मूल तत्त्व	संकेत	परमाणु संख्या	परमाणु भार
निकल	Ni	२८	५८.७१
नियोबियम	Nl	४१	९२.९०६
नाइट्रोजन	N	७	१४.००६७
नोबेलियम	No	१०२	२५३
ऑस्मियम	Os	७६	१९०.२
ऑक्सीजन	O	८	१५.९९९४
पेलेडियम	Pd	४६	१०६.४
फॉस्फोरस	P	१५	३०.९७३८
प्लेटिनम	Pt	७८	१९५.०९
प्लुटोनियम	Pu	९४	२४२*
पोलोनियम	Pd	८४	२१०
पोटेसियम	K	१९	३९.१०२
प्रेस्पोडियम	Pr	५९	१४०.९०७
प्रोमिथियम	Pm	६१	१४६
प्रोटेक्टिनियम	Pa	९१	२३१
रेडियम	Ra	८८	२२६.०५
रेडोन	Rn	८६	२२२
रिनियम	Re	७५	१८६.२
रोडियम	Rh	४५	१०२.९०५
रुबिडियम	Rb	३७	८५४७
रुथेनियम	Ru	४४	१०१.०७
सेमेरियम	Sm	६२	१५०.३५
स्कैण्डियम	Se	२१	४४.९५६
सेलेनियम	Se	३४	७८.९६
सिलिकोन	Si	१४	२८.०८६
सिल्वर (रौप्य)	Ag	४७	१०७.८७०
सोडियम	Na	११	२२.९८९८
स्ट्रान्शियम	Sr	३८	८७.६२
सल्फर (गन्धक)	S	१६	३२.०६४
टेण्टेलम	Ta	७३	१८०.९४८
टेक्नेटियम	Te	४३	९९*
टेल्युरियम	Te	५२	१२७.६०
टर्बियम	Tb	६५	१५८.९२४
थेलियम	Te	८१	२०४.३७

थोरियम	Th	९०	२३२.०३८
थुलियम	Tm	६९	१६८.९३४
टिन (राँगा)	Sn	५०	११८.६९
टिटेनियम	Ti	२२	४७.९०
टंग्स्टन	W	७४	१८३.८५
युरेनियम	U	९२	२३८.०३
वेनेडियम	V	२३	५०.९४२
ज़ेनोन	Xc	५४	१३१.३०
यिटर्बियम	Yb	७०	१७३.०४
यिट्रियम	Y	३९	८८.९०५
ज़िंक (जस्त)	Zn	३०	६५.३७
ज़िरकोनियम	Zr	४०	९१.२२
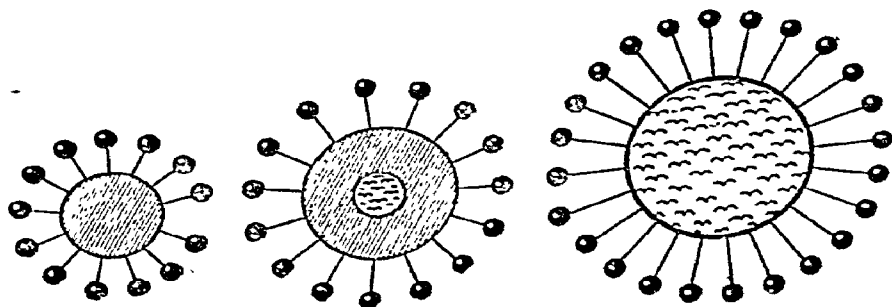
बहुलीकरण

यह अम्ल बनता है। (२) गरम कोयले पर क्लोरिन और वाष्प पारित करनेसे भी यह अम्ल बनता है; इसमें उत्प्रेरणके लिए लौहके क्षारोंका उपयोग किया जाता है। (३) लवणसे सोडा बनानेके उद्योगमें यह अम्ल उपोत्पादके रूपमें प्राप्त होता है।

सल्फ्यूरिक, नाइट्रिक और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल सान्द्र अथवा तीव्र अवस्थामें बहुत हानिकारक होते है। इसलिए इन अम्लोंका उपयोग करते समय खूब सावधानी बरतनी होती है। खासकरके सल्फ्यूरिक अम्लके मामलेमें तो सबसे अधिक सतर्क रहना आवश्यक है; क्योंकि उसकी एक नन्हीं-सी बूंद भी कपड़े पर गिरी तो उस जगह कपड़ा जल जाता है। खुले शरीरपर गिरनेसे चमड़ी जलकर घाव हो जाता है। उसमें पानी डालते समय भी बहुत सावधानी रखनी पड़ती है।

एक खास ध्यानमें रखने-जैसी अद्भुत बात यह है कि सल्फ्यूरिक अम्ल ऊनी कपड़ोंको नहीं जला पाता।

हवा और पानीके बाद दैनिक उपयोगकी चीजोंमें लवण जैसा पदार्थ शायद ही कोई होगा। हमारे भोजनका वह अत्यन्त उपयोगी अंश है। पशुओंकी खूराकमें भी लवणका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके सिवा उद्योगोंमें भी लवणका स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जो स्थान अम्लोंमें सल्फ्यूरिक अम्लका है वही क्षारोंमें लवणका समझना चाहिए। लवणसे सोडा बनानेका उद्योग 'एलकेली उद्योग' कहलाता है। रसायनक बनानेके उद्योगमें एलकेली बनानेका उद्योग सबसे पहले नम्बरपर आता है। उसमें लवणका कच्चे मालके रूपमें उपयोग किया जाता है।

लवणके बाद हमारे जीवनमें महत्त्वकी दृष्टिसे दूसरे नम्बरका रसायन, सोडा—विज्ञानकी परिभाषामें, 'सोडियम कार्बोनेट' है। हमारे स्वास्थ्यकी रक्षामें सोडेका योगदान सर्वाधिक है। हमारे शरीरकी सफाई और कपड़े आदिकी धुलाईमें काम आनेवाले साबुन और उस प्रकारके अन्य बहुतसे पदार्थ सोडेके बिना बनाये ही नहीं जा सकते। पुराने जमानेमें समुद्र तटपर उगनेवाली वनस्पतिकी राखसे अशुद्ध सोडा निकाला जाता था। सज्जीखार, पापड़खार, गन्ना आदिसे भी सोडा प्राप्त होता है। आधुनिक सभ्यताके विकास और प्रसारके साथ-साथ सोडेका उपयोग भी खूब बढ़ा है। काँच बनानेमें सोडेका प्रचुर उपयोग होता है। सोडियमके विभिन्न क्षार बनानेमें सोडा ही मूल पदार्थ है।

लवणसे सोडा बनानेकी दो विधियाँ प्रचलित हैं: (१) M ब्लाङ्ककी विधि और (२) सोल्वेकी विधि या 'ऐमोनिया-सोडा-पद्धति'।

ब्लाङ्ककी विधिमें पहले लवणको सल्फ्यूरिक अम्लके साथ गरम किया जाता है। इससे सोडियम सल्फेट (साल्ट केक) बनता है और हाइड्रोक्लोरिक अम्लका खूब धुआँ उठता है, जिसका पानीमें परिष्करण करके हाइड्रोक्लोरिक अम्ल बनाया जाता है। इसका उपयोग क्लोरिन बनानेमें किया जाता है। उसके बाद सोडियम सल्फेट (लवण पिंड) को कोयले और चूना पत्थरके साथ मिलाकर गोल-गोल घूमनेवाली भट्ठियोंमें गरम किया जाता है। कोयला लवण पिंडोंका अवकरण करता है; इस क्रियासे सोडियम सल्फाइड बनता है और वह चूना पत्थरसे संयोग कर सोडियम-कार्बोनेट (सोडा) बन जाता है। यह 'काली राख' के नामसे जाना जाता है। फिर उसे पानीमें मिला देते हैं और तब उसमेंसे सोडा निकाला जाता है। इस विलयनमें २५ प्रतिशत सोडेके रूपमें और २० प्रतिशत कास्टिक सोडेके रूपमें एलकेली रहता है। यदि सोडा बनाना अभीष्ट हो तो

लवणके उपयोग और उससे बननेवाली चीजें

[खानेका सोडा वाईकार्व; लवण पिड; सोडियम सल्फेट; सोडियम सायनाइड; सोडियम हाइड्रोक्साइड]

सोडियम ऐसीटेट, सोडियम वेंजोमेट, सोडियम वाइसल्फाइट, कास्टिक सोडा, सोडियम फास्फेट, सोडियम थायोसल्फेट, (हाइपो), सोडियम वायोक्रोमेट
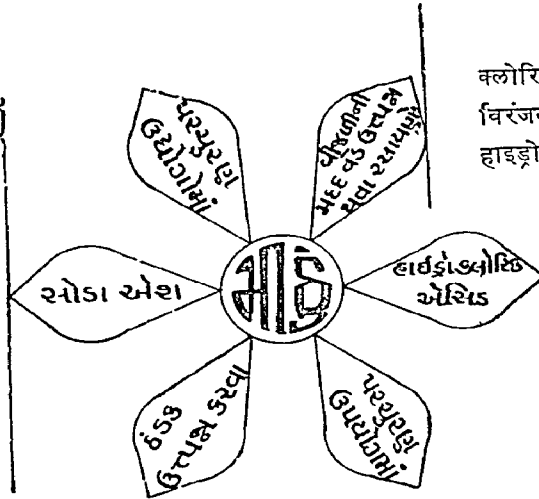
क्लोरिन, कास्टिक सोडा, विरंजनचूर्ण, सोडियम क्लोरेट, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल,

जिंक क्लोराइड, एल्यूमीनियम क्लोराइड, आयर्न क्लोराइड, मैग्नेशियम क्लोराइड, रांगेका क्लोराइड, वेरियम क्लोराइड आदि

[मनुष्य तथा पशुओंके भोजनमे; खनिजोमेसे चाँदी ओर ताँवेका निष्कर्षण करनेमे; खाद्य पदार्थोंको सुरक्षित रखनेमें; मिट्टीके वरतनों पर पालिश चढ़ानेमे; साबुन तथा कपडा वनानेमें; चमड़ा पकानेमें; उर्वरकोंमें; वेकार पौधोंको निकालनेमे, आदि]

इस विलयनमे कार्वन डाइआक्साइड पारित की जाती है। उसके अपद्रव्योंको गरमीसे जला दिया जाता है। यही तैयार सोडा बाजारमें 'सोडा ऐश'के नामसे विकता है। सोडा निकाल लिये जानेके बाद जो अविलेय पदार्थ वचा रह जाता है वह एलकेली-वेस्ट यानी एलकेलीका अपशिष्ट (कूड़ा) कहलाता है। इस अपशिष्टसे गन्धक, हाइपो आदि उपयोगी रसायनक बनाये जाते है। इस ब्लाङ्क पद्धतिकी एक खामी तो यह है कि इसमे लवणका ही उपयोग होता है, उसका पानी काम नही देता। दूसरे, कीमती सलफ्यूरिक अम्लका भी उपयोग करना पड़ता है। लेकिन फिर भी यह विधि मुकावलेमें इसलिए टिकी हुई है कि इसके कारखानेवालोको सोडेके अतिरिक्त हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, गन्धक आदि कीमती रसायनक लगभग मुफ्त मिल जाते हे।

ऐमोनिया-सोडा-पद्धति अथवा इसके अन्वेषक सोल्वेके नामसे प्रसिद्ध सोल्वे-विधिमें लवणके अतिरिक्त कार्वन

अर्नेस्ट साल्वे (१८३८–१९२२)

रसायन-उत्पादक उद्योग :: २४९

१७ : रसायन-उत्पादक उद्योग

किसी भी देशकी अर्थव्यवस्थामें रसायन-उत्पादक उद्योगका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि अन्य उद्योगोंका विकास इसीपर निर्भर करता है। देशमें रसायन-उत्पादनका जितना ही विकास होगा वहाँके अन्य उद्योग उतनी ही उन्नति करेंगे; उस देशके अछूते सावन-स्रोतोंका उपयोग कर सकनेवाले उद्योगोंके विकासका आरम्भ किया जा सकेगा, और देशके औद्योगीकरणमें प्रगति हो सकेगी। इसीलिए रसायन-उत्पादक उद्योगको सही अर्थोंमें अन्य उद्योगोंकी 'चाभी' या 'जननी' कहा जाता है।

देशको इस उद्योगकी आवश्यकता चार कारणोंसे है:

(१) आधुनिक युद्धोंमें देशकी सुरक्षाके हेतु उपयोगी सामग्री बनानेके लिए;

(२) शान्तिकालमें कृषि उपयोगी उर्वरक बनानेके लिए;

(३) कपड़ा, रंगरोगन, काँच, प्लास्टिक, साबुन, तेल आदि दैनिक उपयोगकी वस्तुएँ बनाने वाले अन्य उद्योगोंके लिए आवश्यक रसायनकोंके उत्पादनके लिए; और

(४) सार्वजनिक स्वास्थ्यके लिए आवश्यक दवाइयाँ आदि बनानेके लिए।

किसी जमानेमें युद्ध-संचालनमें शारीरिक बलको महत्त्व दिया जाता था। बारूदके आविष्कार-से इस स्थितिमें परिवर्तन हुआ और तोप-बन्दूक आदि हथियारोंका महत्त्व बढ़ गया। आधुनिक कालमें नये-नये आविष्कारोंके परिणामस्वरूप नये-नये शस्त्र अस्तित्वमें आये; और आजके युद्ध-संचालनमें रसायनकोंकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गई। अब सैनिकोंकी संख्यासे कहीं अधिक महत्त्व रसायनकोंका है। संक्षेपमें यह कि वर्तमानकालमें आधुनिक रसायन-उद्योग युद्धके लिए गोला-बारूद और अन्य सामरिक वस्तुएँ बनानेके लिए नितान्त आवश्यक हो जाता है। सुव्यवस्थित और सुसंचालित रसायन-उत्पादनको युद्ध-सामग्रियोंकी चाभी कहा जा सकता है।

आधुनिक युद्धका निर्णयात्मक हथियार परमाणु बम है: आजका युद्ध केवल सैनिकों अथवा शस्त्रास्त्रोंके बलपर नहीं लड़ा जा सकता, वह लड़ा जाता है शस्त्रों और सामरिक साधनोंकी आधुनिकताके बल पर। इसलिए जिस देशमें औद्योगीकरणका स्तर उन्नत होगा वही आधुनिक संहार-साधनोंका उत्पादन कर सकेगा। इन सब चीजोंकी पूर्तिके लिए सुस्थापित और सुविकसित रसायन-उत्पादक उद्योग आवश्यक हो जाता है। इसलिए देशके औद्योगीकरणकी योजनाओं और प्रचलित उद्योगोंकी व्यवस्था एवं विकासमें देशकी सुरक्षात्मक आवश्यकताओंको प्राथमिक स्थान देना स्वाभाविक ही है। एक बार मान भी लिया जाए कि संयुक्त राष्ट्र संघ युद्धोंको समाप्त करनेके अपने अभियानमें सफल हो जाता है, फिर भी प्रत्येक राष्ट्रको इस संस्थाके कार्यमें अपना योगदान

तो करना ही होगा। इसलिए यह स्पष्ट है कि रसायन-उत्पादनके सुव्यवस्थित औद्योगीकरणके विना किसी भी राष्ट्रका काम चल नहीं सकता।

हमारा देश कृषि-प्रधान है। आवादीका अधिकतर भाग खेतीपर निर्भर करता है। फिर भी हमारे यहाँ खेती वहुत पुराने ढंगसे की जाती है। फसलोंकी पैदावार और अन्य कृषि कार्योंमें हमारा देश वहुत पिछड़ा हुआ है। इन सव कमियों और पिछड़ेपनको दूर किया जा सकता है। जमीनको आवश्यक उर्वरक नहीं मिल पाते। पैदावार वढ़ानेके लिए उर्वरक आवश्यक हैं। यदि देशका रसायन-उत्पादन उद्योग अच्छी तरह विकसित और उन्नत हो तो सस्ते मूल्य पर उर्वरकोंकी माँगको पूराकर पैदावार वढ़ाई जा सकती है। कपड़ा, चीनी, तेल, दवा, रंग आदि दैनिक उपयोगकी चीजें वनानेमें और हमारे जीवनकी प्राथमिक आवश्यकता, अन्नका उत्पादन करनेके लिए खेतीमें जिन महत्त्वपूर्ण रसायनकोंकी आवश्यकता होती है उनके निर्माणमें भारी रसायनकोंका उद्योग (heavy chemicals industry) वहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जो देश भारी रसायनक प्रचुर मात्रामें पैदा करता है उसका आधुनिक सांस्कृतिक स्तर उतना ही उन्नत माना जाता है। ऐसी है भारी रसायन-उत्पादक उद्योगकी महिमा।

इन भारी रसायनकोंमें गन्धकका तेजाव—सल्फ्यूरिक अम्ल सवसे पहले नम्वर पर आता है। उसे रसायनकोंका राजा कहा जाता है। विज्ञानकी दुनियामें यह कहावत प्रसिद्ध है कि गन्धकका तेजाव उद्योगोंकी माता है। यह तेजाव (अम्ल) जितना सस्ता वनाया जा सकेगा उतने ही अनुपातमें औद्योगिक प्रगति हो सकेगी।

हमारे देशमें इस अम्लको वनानेमें सवसे वड़ी कठिनाई—गन्धक है। हमें आयातित गन्धक-पर निर्भर करना पड़ता है। हमारे देशका सल्फ्युरिक अम्लका उत्पादन एक लाख टनसे ऊपर पहुँच गया है। लगभग ५० कारखाने इस अम्लको वनाते हैं। कच्चे मालके लिए दूसरों पर निर्भर करना किसी भी उद्योगके लिए अच्छी वात नहीं। देश में सरलतासे उपलव्ध अन्य गन्धकित पदार्थोंसे यह अम्ल वनानेकी दिशामें किये जानेवाले शोध-खोजके प्रयत्नोंको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इस तरहके पदार्थोंमें विहारके सिंहभूम जिलेमें प्राप्त होनेवाले कैल्कोमाक्षिकों (chalcopyrites) राजस्थान, मद्रास और उत्तर प्रदेशमें मिलनेवाले सैलखड़ी और असमके कोयलेका नाम निर्देश किया जा सकता है। असमसे निकलनेवाले कोयलेमें ४ प्रतिशत गन्धक है। इस गन्धकका उपयोग कर लिया जाए तो उद्योगको वहुत राहत मिल जाएगी।

अन्य भारी रसायनकोंमें ऐमोनिया, नाइट्रिक अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और उनके क्षार, मैग्नेशियमके क्षार, कासीस, नीलाथूथा आदिका समावेश होता है। इनके अतिरिक्त कास्टिक सोडा, पोटाश, धोने और खानेका सोडा, वाइक्रोमेट और दूसरे उपयोगी भारी रसायन भी औद्योगिक विकासके लिए आवश्यक समझे जाते हैं।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (लवणका तेजाव) हमारे दैनिक उपयोगके नमकसे वनाया जाता है। लवणको गन्धकके अम्लसे संयोजित करने पर यह अम्ल वनता है। वह गैसीय अवस्थामें रहता है। ठण्डा करनेसे वह द्रव नहीं होता। पानीमें पारित करनेसे हाइड्रोक्लोरिक अम्लका विलयन तैयार होता है। वाजारमें वेचे जानेवाले अम्लमें ३२-३३ प्रतिशत अम्ल रहता है। अव नई विधियाँ सामने आती जा रही हैं। (१) हाइड्रोजनके साथ क्लोरिनको वैद्युत विधिसे जलानेपर

डाइ-आक्साइड और ऐमोनिया-जैसे बहुत ही सस्ते कच्चे मालकी जरूरत पड़ती है। इस विधिमें ऐमोनियासे संतृप्त लवणके विलयनमें कार्बन डाइ-आक्साइड गैस पारित करनेसे सोडियम बाइकार्बोनेट (सोडा बाई कार्ब) और ऐमोनियम क्लोराइड बनता है।

$$NaCl + NH_3 + CO_2 + H_2O \longrightarrow NaHCO_3 + NH_4Cl$$ और

नमक ऐमोनिया कार्बन डाइ-आक्साइड पानी सोडा बाई कार्ब नौसादर

$$2NaHCO_3 \longrightarrow Na_2CO_3 + H_3O + CO_2$$

सोडा बाई कार्ब धोनेका सोडा
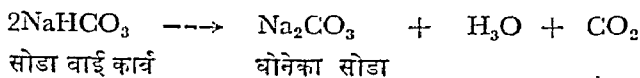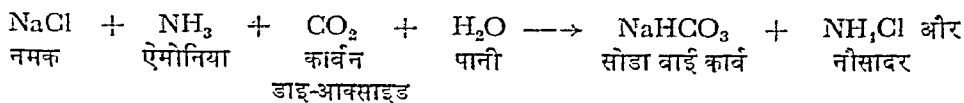
विलेयता कम होनेके कारण वह पहलूदार पदार्थके रूपमेंमुक्त होता है। गरम करनेपर उसमेंसे कार्बन डाइ-आक्साइड गैस निकल जाती है और सोडा बनता है।

इस विधिमें 'सॉल्वे टावर' (बुर्ज अथवा स्तम्भ)का उपयोग किया जाता है। यह टावर बहुतसे खानोंवाले एक विशाल टिफिन बाक्स (नाश्तेदान—कटोरदान) जैसा होता है। सोडा बनाते समय प्राप्त होनेवाले कार्बन डाइ-आक्साइडका पुनः उपयोग कर लिया जाता है और नौसादरसे चूनेकी क्रिया द्वारा प्राप्त ऐमोनियाका भी फिरसे उपयोग कर लिया जाता है। इस प्रकार इस विधिमें इसके उपोत्पाद पुनः काममें आ जाते हैं।
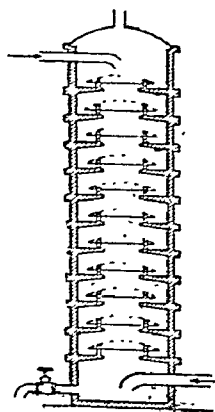
सोल्वे टावर

सोल्वेकी विधिमें कुछ खामियाँ भी हैं: लगभग ३० प्रतिशत लवण बेकार चला जाता है। चीनी रसायनविद डॉ० टी० पी० होउ (T. P. Hou)ने इस विधिमें कुछ सुधार किये हैं: (१) लवण-का सोडेमें ९६ प्रतिशत रूपान्तर; (२) लवणके क्लोरिनका ऐमोनियम क्लोराइड बनानेमें उपयोग और (३) लागत कम इसलिए कीमत (बिक्री मूल्य)में भी कमी।

सोडेके विलयनसे कास्टिक सोडा बनानेकी विधिमें उसे चूनेके साथ मिलाकर कास्टिक सोडा बनाया जाता है।

$$Na_2\ CO_3 + Ca\ (OH)_2 \rightleftharpoons Ca\ Co_3 + 2\ NaOH$$
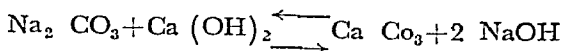
इस क्रियामें समानुपात बना रहनेपर ही क्रिया दाहिनी ओर फिरसे चलती है, परन्तु कास्टिक सोडा बनानेकी इस विधिको अब काममें नहीं लाया जाता। इसका कारण यह है कि बिजली सस्ती होनेसे लवणके विलयनका विद्युत् विश्लेपण कर कास्टिक सोडा बनाते हैं, जो बहुत सस्ता पड़ता है।

रासायनिक वर्गीकरणमें सोडियम ,और पोटेसियम, दोनों ही 'एलकेली धातुएँ' कहलाती हैं। दोनोंके गुण भी लगभग समान हैं। लेकिन सोडियमकी तुलनामें पोटेसियम प्रकृतिमें कम दिखाई देता है। पोटेसियमके क्षार सोडियमके क्षारों-जैसा ही काम करते हैं। पोटेसियमके क्षार बनानेकी विधि सोडियमके क्षार बनानेकी विधिसे मिलती-जुलती है। पोटेसियम डाइक्रोमेट और परमैंगनेट अत्यन्त उपयोगी हैं।

परावर्तन भट्ठीमें क्रोमाइट खनिज, सोडे और चूनेका मिश्रण १०५०-११०० सें० गरम किया जाता है और इस क्रियाके दौरान भट्ठीमें हवा पहुँचाई जाती है। चूना आँचमें पिघलते प्रभारको छिद्रमय बनाये रखता है, ताकि क्रिया बराबर होती रहे। क्रोमेटको मुक्त करनेके लिए गरम प्रभारको पानीमें मिलाकर उसका निस्यंदन करनेसे अविलेय अपद्रव्य छँट जाते हैं। क्रोमेटको डाइक्रोमेटमें परिवर्तित करनेके लिए उसमें सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाकर संघनित करनेपर पहले सोडियम डाइक्रोमेट तैयार होता है। उससे पोटेसियम डाइक्रोमेट बनानेके लिए पोटेसियम क्लोराइडके विलयनमें उसे मिलानेपर पोटेसियम डाइक्रोमेटके चमकीले लाल स्फटिक तैयार हो जाते हैं।

पोटेसियम परमैंगनेट बनानेके लिए पाइरोल्युसाइटको कास्टिक सोडा या पोटासके साथ मिलाकर इस तरह गरम किया जाता है कि हवा मिलती रहे। इस क्रियाको शीघ्रतासे सम्पन्न करने के लिए २-४ भाग कास्टिक सोडा और १ भाग पाइरोल्युसाइटका मिश्रण पोटेसियम क्लोरेटमें मिला दिया जाता है।

पोटेसियमके क्षार यों तो पृथ्वीमें सर्वत्र व्याप्त हैं, परन्तु काममें लाने योग्य निक्षेप केवल जर्मनीके स्ट्रास्फूर्टमें ही मिले हैं। १८३९में इन निक्षेपोंका पता चला और तबसे ये दुनियाकी पोटेसियम क्षारोंकी आवश्यकताकी पूर्ति करते आ रहे हैं। इन निक्षेपोंमें विभिन्न क्षारोंके स्तर एक दूसरेपर छाये हुए (परस्पर व्यापी) मिले हैं। इन स्तरोंमें ५०-१३० फुट मोटी दुहरे क्षारकी एक बड़ी पट्टी भी है। इस दुहरे या दोपर्ते क्षारको कार्नेलाइट कहते है। इसमें पोटेसियम और मैंग्नेशियमके क्लोराइड हैं। इसमेसे पोटेसियम क्लोराइडको मुक्तकर उसका उपयोग पोटेसियमके अन्य क्षार बनानेमें किया जाता है। अब तो ऐल्सेसके निक्षेप भी पोटेसियमके क्षारोंकी विश्व माँगका अधिकांश पूरा करने लगे हैं। रूस, अमरीका और कैनेडामें भी इसके निक्षेप मिले हैं; परन्तु स्ट्रास्फूर्टके निक्षेपोंका महत्त्व आज भी वैसा ही है।

पोटेसियम कार्बोनेट मोतीकी राख (pearl ash)के नामसे विख्यात है। पोटेसियम क्लोराइडसे- कार्बोनेट बनानेका ढंग लवणसे सोडा बनानेकी रीतिसे मिलता-जुलता है। कठोर काँच बनानेके लिए सोडेके बदले पोटेसियम कार्बोनेटका उपयोग किया जाता है। पोटेसियम नाइट्रेट अथवा साल्टपीटर (कलमी शोरा) हमारे देशमें खूब बनाया जाता था। यह पदार्थ उपयोगी उर्वरक और युद्धकालमें बारूद बनानेके काम आता है।

कास्टिक पोटासके विलयनमें क्लोरिन गैस पारित करनेसे पोटेसियम क्लोरेट बनता है। दियासलाई उद्योगमें, पटाखे बनानेमें, फोटोग्राफीमें फ्लश पाउडर तथा विस्फोटक पदार्थ बनानेमें और भी अनेकविध उत्पादनोंमें इसका उपयोग किया जाता है।

बोरेक्स (सुहागा) बोरिक अम्लका सोडियम क्षार है। तिब्बतके आसपास और अमेरिका आदि देशोंमें यह प्राकृतिक रूपमें मिलता है। इसमें शुद्ध बोरेक्सका केवल बहुत थोड़ा अंश रहता है। अन्य खनिज भी होते हैं, जिनसे बोरेक्स बनाया जाता है। इस्त्री करते समय कपड़ेको चमकीला करने, कांचिकाकारक (glaze) बनाने, टाँका या झलाई (सोल्डर)में गालक (flux)की तरह, काँच बनानेमें और औषधियोंमें जंतुविनाशक के रूपमें बोरेक्सका खूब उपयोग होता है। बोरेक्सका वैद्युत आक्सीकरण करनेसे प्राप्त होनेवाले सोडियमपर बोरेटका विलयन विरंजनमें काम आता है और कपड़े धोनेमें उसका उपयोग किया जाता है। वह सशक्त जन्तु विनाशक है। भारी पानीको हल्का बनानेके उपयोगमें आनेवाला त्रिप्सा ट्राइसोडियम फॉस्फेट है।

रंग, दवाइयाँ, सुगन्धित पदार्थ और तेल एवं अन्य कार्बनिक रसायन—ये सब 'परिष्कृत' रसायन (fine chemicals) कहलाते हैं। इन 'परिष्कृत' रसायनकोंको बनानेके लिए उत्पादन-के प्रथम चरणमें भारी रसायनोंकी आवश्यकता होती है। 'परिष्कृत' रसायनोंके उद्योगके लिए मुख्य पदार्थ कोयलेसे निकाला जानेवाला तारकोल है। उससे बेनज़िन और टोल्युइन, फिनोल और क्रेसोलो, नेफ्थेलीन, एन्थ्रेसिन आदि उपयोगी रसायन प्राप्त किये जाते हैं। अब पेट्रोलियमसे ये पदार्थ पेट्रो-केमिकल्सके रूपमें प्राप्त किये जा सकते हैं। 'परिष्कृत' रसायन-उद्योगकी नींव वास्तव-में कोयले और पेट्रोलियम पर रखी हुई है। कोयलेसे तो पेट्रोल भी बनाया जाता है।

रसायन-उत्पादन उद्योगकी यह हुई संक्षिप्त जानकारी। इसके विकासके लिए हमारे देशमें आवश्यक पदार्थोंकी कोई कमी नहीं।
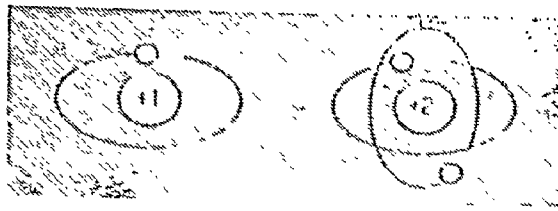
मूल तत्त्व
वाह्य इलेक्ट्रानोकी सख्या
हाइड्रोजन १
हीलियम १
हाइड्रोजन
हीलियम
लिथियम १
वेरिलियम २
लिथियम
वेरिलियम
वोरोन ३
कार्वन ४
वोरोन
कार्वन
नाइट्रोजन ५
आक्सीजन ६
नाइट्रोजन
आक्सीजन
3p 3n
3p 4n
लिथियम ३
इन दोनो लिथियमके परमाणुभार अलग-अलग है। ये एक-दूसरेके सम-स्थानिक (isotope) माने जाते है।
लिथियम–६
लिथियम–७
खंड : ७
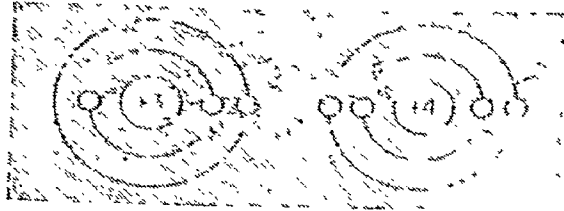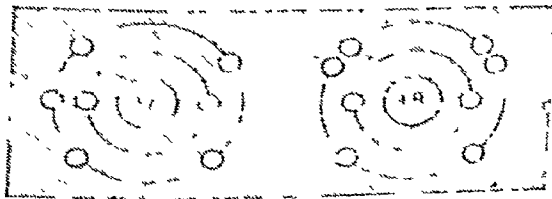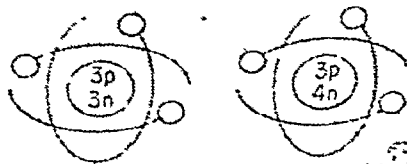
१८ : अधुनातन प्रगति और नये क्षितिज

वीसवीं शताब्दीमें रसायनके क्षेत्रमें बहुत तेजीसे प्रगति हुई है। कार्बनिक, अकार्बनिक और भौतिक रसायनमें भी अनेक नये सिद्धान्त, नई मान्यताएँ, नये विधि-विधान, नये निरीक्षण-परीक्षण और नये-नये संश्लेपण हुए हैं। इतना ही नहीं, अपितु कई नई शाखाओंका उदय भी हुआ है। उदाहरणके लिए वायोकेमिस्ट्री अथवा जीव-रसायन, न्युक्लियर केमिस्ट्री अर्थात् नाभिकीय (परमाणु संरचनासे सम्बन्धित) रसायन, एग्रिकल्चरल केमिस्ट्री यानी खेती-बाड़ीका रसायन आदि। इनमेंसे कुछ क्षेत्रोंमें जो प्रगति हुई है उस पर यहाँ एक उड़ती नजर डाली जाएगी।

कार्वनिक रसायनके क्षेत्रमें १९वीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें कतिपय महान वैज्ञानिकोंने अनेक जटिल अणुवाले पदार्थोंका अध्ययन कर अनेक पदार्थोंकी अणुसंरचना खोज निकाली और उनके संश्लेपण भी किये। इनमेंसे एमिल फिशर, एडोल्फ फॉन वायर, ग्रीनयार्ड, एर्हलिक आदिके नाम विशेप रूपसे उल्लेखनीय हैं। एमिल फिशरने कार्वोहाइड्रेड वर्गके अनेक पदार्थों, जैसे कि ग्लुकोज़, फ्रुक्टोज़, गेलेक्टोज, मेनोज़ आदिकी अणुसंरचनाकी छान-बीनकर उनमें पाये जानेवाले अन्तरोंका पता लगाया। उसने यह भी बताया कि प्युरिन वर्गके यूरिक अम्ल, थियोफिलिन, थियोब्रोमिन, ज़ेन्थीन, कैफीन आदि समस्त प्राणिज और वानस्पतिक पदार्थ एक ही मूल पदार्थ प्युरिनके अभिजात हैं। उसने प्रोटीन-जैसे जटिल पदार्थोंका अध्ययन भी किया था और उनके बारेमें यह मत प्रतिपादित किया कि वे सब भिन्न-भिन्न एमिनों अम्लोंके संयोजनसे बने हैं। वायरने नीलपर अनुसन्धान किये और उसके संश्लेपणकी विधि खोज निकाली। विलियम पर्किनने संश्लिष्ट रंगोंके उद्योगकी नींव रखी। ग्रीनयार्डने एक महत्त्वपूर्ण रासायनिक क्रियाका, जो उसीके नामसे जानी जाती है, आविष्कार किया था। इस क्रियाके द्वारा मैग्नेशियम धातुके कार्वनिक पदार्थोंसे विभिन्न कार्वनिक पदार्थ वनाये जा सकते हैं। फ्रीडल और क्राफ्ट्स नामक दो रसायनज्ञोंने, अपने नामसे अभिहित, जिस क्रियाकी खोजकी वह कार्वनिक संश्लेपणके क्षेत्रमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। पाल एर्हलिकने संश्लिष्ट औपधियोंके क्षेत्रमें जो उत्कृष्ट कार्य किया उसका उल्लेख हम एक पिछले अध्यायमें कर आए हैं। इन समस्त कार्योंको इस सदीमें और भी वेग मिला है। अनगिनत वानस्पतिक और प्राणिज कार्वनिक पदार्थोंकी अणुसंरचनाकी खोज की गई और उनका संश्लेपण भी किया गया। इनमें कुनैन, मॉर्फिन, स्ट्रिकनिन, रेसर्पिन आदि ऐल्का-लायड वर्गके पदार्थोंका, पत्तियोंके हरे रंग क्लोरोफिल और खूनके लाल रंग हेमिन तथा वनस्पति जगतके पीले, नारंगी, लाल, बैंगनी, भूरे (फ्लेवोन्स, एन्थोसायेनिन्स और केरोटीनायड) आदि अन्य-रंगोंका, प्राणी और वनस्पति जगत्में समान रूपसे प्राप्त होनेवाले स्टेरायड वर्गके पदार्थोंका जैसे कि कोलेस्टेरोल, विटामिन-डी और एण्ड्रोस्टेरोन, टेस्टोस्टेरोन, एस्टोन, प्रोजेस्टेरोन-जैसे लैंगिक

रेडियमके आविष्कारने परमाणु संरचनापर नया प्रकाश डाला। परमाणु संरचनाकी गुत्थी सुलझानेमें भौतिकी वैज्ञानिकोंने प्रमुख कार्य किया। आगे इसी सम्बन्धमें विस्तारसे चर्चा की जा रही है।

परमाणु संरचना और परमाणु ऊर्जा

१९वीं शताब्दीके आरम्भमें डॉल्टनने जिस परमाणुवादको प्रतिपादित किया, रसायन-विदोंने उसे अपना लिया था और यह मानने लगे कि परमाणु वास्तवमें अविभाज्य है। इस क्षेत्रमें और भी कुछ करना है या जानना है, परमाणुकी संरचना जटिल है और इसमें सीमातीत ऊर्जाका संचय है—इस तरहकी बात भी कोई नहीं सोचता था। इसलिए बीसवीं सदीका सबसे महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक कार्य परमाणुकी संरचनाका पता लगाना और परमाणुमें निहित असीम ऊर्जाको मुक्त और नियंत्रित कर उसे दैनिक उपयोगमें लेना है। इस कार्यका श्रीगणेश उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें हुआ था।

१८५३में मेसन नामके एक वैज्ञानिकने एक कांचकी नली लेकर उसके दोनों सिरोंपर विद्युत् पारित करनेके लिए तार जोड़कर नलीमेंसे प्रायः सारी हवा निकाल दी और उसके दोनों ओरके मुँह अच्छी तरहसे मूँद दिये। दोनों सिरों पर निकले हुए तारोंको उसने १०से १५ हजार वोल्ट विद्युत् आवेगवाले विद्युत्-यन्त्रसे जोड़ दिया। नलीमें प्रकाश हुआ। गिज़लर नामके एक वैज्ञानिकने ऐसी ही नलियोंमें थोड़ी मात्रामें अलग-अलग तरहकी गैसें भरीं तो भिन्न-भिन्न रंगका प्रकाश देखनेको मिला। इस तरहकी नलियाँ आज भी 'गिज़लर ट्यूब' कहलाती हैं। प्रकाशकी इन किरणोंकी विलियम क्रुक्स और जे० जे० टामसनने गहन छीन-बीनकी तो पता चला कि वे ऋण विद्युत्से आविष्ट कणोंसे बनी थीं। इन कणोंको इलेक्ट्रॉन नाम दिया गया। यह भी पता चला कि पदार्थके परमाणुओंमेंसे वे इलेक्ट्रॉन मुक्त हुए थे।

परमाणु तो ऋण अथवा धन किसी भी विद्युत्से आविष्ट नहीं होता, इसलिए उस ऋण आवेशको उदासीन (neutralise) करनेवाले धन विद्युत्से आविष्ट कण भी अवश्य होने चाहिए। लम्बे प्रयोगोंके बाद धन विद्युत्से आविष्ट कण भी खोज निकाले गए और उनका नाम प्रोटोन रखा गया। टॉमसनने प्रयोगोंके द्वारा यह प्रमाणित किया कि परमाणुका वजन (भार) प्रोटॉनके कारण है; प्रोटॉनसे इलेक्ट्रॉन वजनमें बहुत हलके होते हैं। प्रोटॉनका वजन एक मानें तो इलेट्रॉन का वजन $\frac{१}{१८४०}$ होगा।

रेडियमसे तीन प्रकारकी किरणें उत्सर्जित होती हैं—ऐल्फा किरणें, जो हीलियम गैसके अणुओंके केन्द्रों (नाभिकों) की बनी होती हैं; बीटा किरणें, जो इलेक्ट्रॉनकी बनी होती हैं और गामा किरणों, जो क्ष-किरणोंकी तरह अनेक वस्तुओंके आरपार निकल जाती हैं। इससे यह पता चला कि यूरेनियम और रेडियम-जैसे भारी वजनवाले परमाणु अस्थिर (अस्थायी) होते हैं और उनका अन्य पदार्थोंमें परिवर्तन होता रहता है और उस परिवर्तनके दौरान ये किरणें उत्सर्जित होती हैं। यूरेनियम धातु धीरे-धीरे रेडियममें और रेडियम सीसेमें परिवर्तित होती है। लेकिन परिवर्तनकी इस प्रक्रियामें हजारों वर्ष लग जाते हैं।

इस सदीके पूर्वार्धमें परमाणुकी संरचनाके रहस्यका उद्घाटन करनेमें अनेक महान वैज्ञानिकोंने योगदान किया। इनमें रदरफोर्डका नाम सर्वोपरि है। परमाणु संरचनाकी छान-बीनमें इस प्रखर
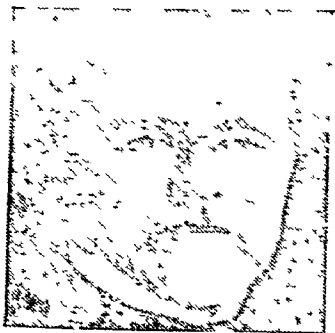
इरा रेमसेन
(१८४६–१९२७)
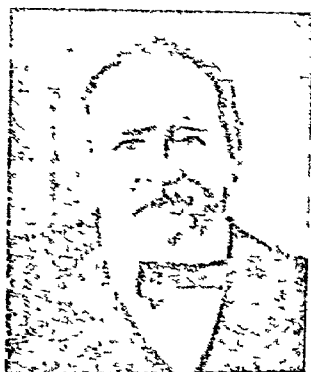
स्वान्ते आर्हेनियस
(१८५९–१९२७)
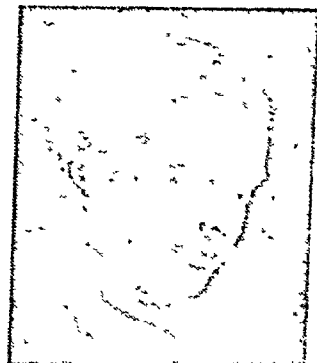
थियोडोर विलियम रिचार्ड्स
(१८६८–१९२८)
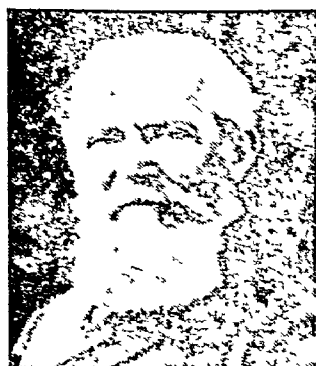
ऑटो वालाश
(१८४७–१९३१)

विल्हेम ओस्टवाल्ड
(१८५३–१९३२)
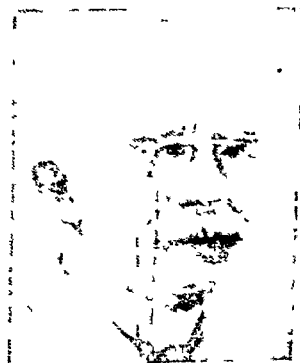
हेनरी ल शातेलियर
(१८५०–१९३६)
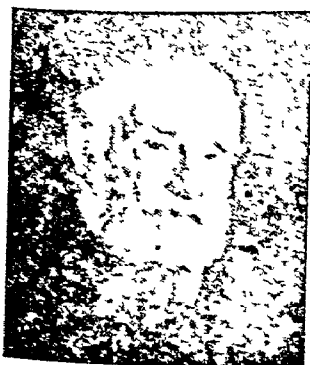
हेनरी एडवर्ड आर्मस्ट्रांग
(१८४८–१९३७)

१९-२०वीं सदीके
ख्यातनामा वैज्ञानिक

हारमोनोंका, अनेक वनस्पतियोंमें प्राप्त टर्पिन वर्गके सुगन्धित पदार्थोंका और टेरामाइसिन तथा ऑरियामाइसिन-जैसे प्रतिजीवाणु (एंटिबायोटिक) पदार्थोंका नामोल्लेख किया जा सकता है।

हान्स फिशर (१८८१–१९४५)
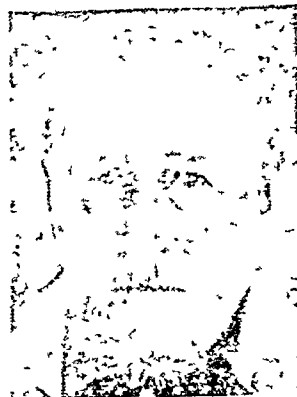
रिचार्ड विलस्टेटर (१८७९–१९४२)

सभी पदार्थोंका या उन क्षेत्रोंमें काम करनेवाले समस्त वैज्ञानिकोंका नाम दे पाना तो सम्भव नहीं है; लेकिन यहाँ कुछ नामोंका उल्लेख करना असंगत न होगा। विलस्टेटर, राबर्ट राबिन्सन, पाल कारेर, रुज़िका, लार्ड टोड, राइक्स्टाइन, हान्स फिशर, दवीनीओ, सेंगर आदि; इनमें से कुछ तो नोबेल-पुरस्कार विजेता भी हैं। यह सारा कार्य नई पद्धतियों और नये उपकरणोंके कारण जिनका उल्लेख आगे किया जायगा, सम्भव हुआ है। कार्बनिक पदार्थके दो कार्बनमें किस प्रकारका, जोड़ (सन्धि, सन्धान) होता है इस पर 'मोलेक्युलर आर्बिटल थियरी' (अणु-कक्षक सिद्धान्त) ने प्रकाश डाला; यह बीसवीं सदीके रसायनशास्त्रका एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है। लेकिन हम यहाँ इसकी गहराईमें नहीं जाएँगे।

फ्लोरिन गैसको शुद्ध रूपमें पहले पहल मॉयसाँने १८८६में पृथक् किया। उससे पहले इस दिशामें कई असफल प्रयत्न हो चुके थे। यह गैस बहुत ही तीव्र अत्यन्त क्रियाशील और शरीरको हानि पहुँचानेवाली तथा सभी वस्तुओंपर क्रिया करनेवाली है। मॉयसाँने प्लेटिनम धातुके पात्रमें प्लेटिनम-इरिडियम मिश्र धातुके विद्युदग्रोंका उपयोग कर पूरे उपकरणको -२३ से० तक ठण्डा और उसमें पोटेसियम हाइड्रोजन फ्लोराइडका निर्जल हाइड्रोक्लोरिक अम्लमें विलयन इस्तेमाल कर उसका विद्युत्विश्लेपण करके इस गैसको प्राप्त किया था। फ्लोरिन-रसायन पिछले पच्चीस वर्षोंमें खूब विकसित हुआ है। फ्लोरिनके कार्बनिक योगिकोंका औद्योगिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्व है। उदाहरणके लिए फ्रिओन नामक कुछ फ्लोरोफ्लोरो हाइड्रो-कार्बन ठण्डक पैदा करनेके लिए प्रशीतकारियोंकी तरह इस्तेमाल किये जाते हैं। घर्षण कम करनेवाले तेलोंमें यदि फ्लोरिन मिला दिया जाए तो उन तेलोंका रेडियधर्मी पदार्थोंमें उत्सर्जित होनेवाली किरणोंसे विघटन नहीं होता, इसलिए रेडियधर्मी पदार्थोंके सान्निध्यमें आने वाले यन्त्रोंमें इस तरहके तेलका उपयोग किया जाता है। टेफ्लॉन नामक एक प्लास्टिक टेट्राफ्लोरोएथिलिनसे बनाया जाता है, यह प्लास्टिक अत्यन्त निष्क्रिय और दृढ़ होता है।

मॉयसाँने एक विद्युत् भट्ठी बनाकर उसमें अतिशय उच्च ताप पर द्रवित होनेवाले आक्साइड, कार्बाइड, बोराइड, सिलिसाइड आदि पदार्थोंका अध्ययन किया। धातुओंके आक्साइड और कार्बनको विद्युत् भट्ठियोंमें गरमकर क्रोमियम, मैंगनीज, मॉलिब्डेनम, टंग्स्टन, वेनेडियम, युरेनियम, जिर्कोनियम और टिटेनियम धातुएँ उसने बनाई थी।

अकार्बनिक रसायनके क्षेत्रमें एक और दिलचस्प खोज विरल मृद् (rare earths) सम्बन्धी है।

यह कार्य प्रारम्भ तो १८वी सदीमें किया गया था, परन्तु उसमें सक्रियता आई १९वी सदीके अन्त और इस सदीके आरम्भके वर्षोंमें। चूने आदिसे मिलती-जुलती कुछ मृत्तिकाओं (मृद्–मिट्टियों)-की ओर १८वीं सदीमें कतिपय लोगोंका ध्यान गया था और उन्हें शुद्धकर उनमें के मूलतत्त्वोंको पृथक् करनेका काम अन्वेषकगण कर रहे थे। लेकिन उन धातुओंके क्षारोंको शुद्ध अवस्थामें प्राप्त करना, उनके गुण लगभग एक-जैसे होनेके कारण, बहुत ही उलझन भरा था। मेरिगनेक, वायस-बाउड्रन, वेल्सबाक, अरबेन आदि अन्वेषकोंने इस समूहके प्रायः सभी तत्त्वोंको शुद्ध अवस्थामे प्राप्तकर उनके गुणोंका विस्तृत अध्ययन किया। वेल्सबाकने यह बताया कि सीरिया और थोरिया (सीरियम और थोरियमके आक्साइड)को गर्म करनेसे वे सफेद प्रकाश देते हैं और उसने इनके मेण्टल बनाकर प्रकाशके लिए इस्तेमाल करना शुरू किया।

विरल मृद्के मूलतत्त्वोंके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं:

La–लेन्थेनम	५७	HO–होल्मियम	६७
Ce–सेरियम	५८	Er–एर्बियम	६८
Pr–प्रेसियोडिमियम	५९	Tm–थुलियम	६९
Nd–नियोडिमियम	६०	Yb–यिटर्बियम	७०
Pm–प्रोमिथियम	६१	Lu–ल्युटेटियम	७१
Sm–सेमिरियम	६२	Np–नेप्च्यूनियम	९३
Eu–यूरोपियम	६३	Pu–प्लुटोनियम	९४
Gd–गैडोलिनियम	६४	Am–एमेरिशियम	९५
Tb–टर्बियम	६५	Cm–क्युरियम	९६
Dy–डिस्प्रोसियम	६६		

एक ओर जब नये मूलतत्त्वोंकी खोज जोर-शोरसे की जा रही थी, एल्फ्रेड वर्नर तब अकार्बनिक पदार्थोंकी संरचनाके सम्बन्धमें कार्य कर रहा था। सादे अकार्बनिक पदार्थोंकी संरचनाको तो संयोजकताके सिद्धान्तके द्वारा समझाया जा सकता है, पर जटिल अकार्बनिक पदार्थों, जैसे कि कोबाल्टके क्षारोंके ऐमोनियाके साथके यौगिकोंकी संरचनाको इस सिद्धान्तसे समझाना मुश्किल था। वर्नरने इसके लिए सवर्गीकरणवाद (co-ordination theory) प्रतिपादित किया, जो आज भी वर्नरके सवर्गीकरणवादके नामसे प्रख्यात है।

एल्फ्रेड वर्नर (१८६६–१९१९)

अकार्बनिक रसायनके क्षेत्रमें और भी कुछ मूल-तत्त्व खोजे गए। इनमें पोलोनियम और रेडियम भी है।

वैज्ञानिकने ऐल्फ़ा किरणोंका उपयोग किया था। स्वर्ण और प्लेटिनम धातुके पतले पतरोंमेंसे ऐल्फ़ा किरणोंको पारित कर वे दूसरी ओर कितना मुड़ती हैं, यह देखनेका उसने प्रयोग किया। पतरेके पीछेकी ओर उसने जिंक सल्फाइडका लेप कर दिया था। उसपर ऐल्फा किरणोंके टकरानेमें प्रकाश कौंधता है। रदरफोर्ड को पता चला कि ऐल्फा किरणें तो केवल कण हैं और बहुतसे ऐल्फा कण धातुके पतरोंमेंसे सीधी रेखामें पारित होते हैं, केवल कुछ थोड़ेसे ही कण मुड़ते हैं। कई सूक्ष्म परीक्षणों और गणनाओंके पश्चात् रदरफोर्ड इस अनुमान पर पहुँचा कि परमाणुका भार उसके केन्द्रक (नाभिक) के कारण है। इलेक्ट्रान इस केन्द्रककी परिक्रमा करता रहता है। केन्द्रक बहुत कम स्थान घेरता है; बाकी स्थान खाली (शून्य) रहता है। परमाणुके आयतन आदिको ठीकसे समझनेके लिए एक उदाहरण लिया जाए। पानीके एक बिन्दुको यदि पृथ्वीके गोलेके बराबर मान लिया जाए तो उसमें हाइड्रोजनका एक परमाणु केवल एक नारंगी जितना बड़ा होगा। परमाणुका केन्द्रक तो उससे भी छोटा होता है। यदि एक परमाणुके केन्द्रकको एक नारंगीके बराबर मान लें तो इलेक्ट्रॉनोंको उसके चारों ओर १/३ मील व्यासके अन्तरपर परिक्रमा करते हुए माना जा सकता है। इससे पता चल जाएगा कि परमाणुमें कितनी अधिक खाली जगह होती है; और अगर उसपर कणोंकी बौछार की जाए तो उनके केन्द्रकसे टकरानेकी सम्भावना दस लाखमें सिर्फ एक होती है।

लार्ड रदरफोर्ड
(१८७१-१९३७)

१९३२ में चेडविकने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण खोज की। वह बेरिलियम धातुके परमाणुओं-पर ऐल्फा कणोंकी बौछार कर उनके केन्द्र-परिवर्तनके परिणामोंकी जाँच कर रहा था। उसे कार्बनका एक परमाणु और एक सर्वथा नया ही कण प्राप्त हुआ। इस कणका वजन प्रोटॉनके बराबर था, लेकिन उसमें ऋण या धन, किसी भी प्रकारका विद्युत् आवेश नहीं था, इसलिए उसे न्यूट्रॉन नाम दिया गया। इस कणकी खोजने परमाणुकी संरचनापर नया प्रकाश ही नहीं डाला, वरन् परमाणु केन्द्रकका भेदन या विखंडन करनेका एक नया हथियार भी दिया। न्यूट्रॉन अनाविष्ट होनेके कारण सीधा केन्द्रककी ओर जाकर उससे टकरा सकता है। प्रोटॉन और ऐल्फ़ा कण धन विद्युत्से आविष्ट होनेके कारण धन विद्युत्से आविष्ट केन्द्रकके पास जाते ही प्रत्याकर्षणके परिणामस्वरूप दूर फेंक दिये जाते हैं।

अब हम यह देखेंगे कि परमाणुकी संरचना किस तरहकी होती है।

हाइड्रोजन गैसका परमाणु सबसे सादा परमाणु है; उसका परमाणु वजन (भार) एक है। उसकी परमाणु संख्या या क्रमांक भी एक है। इसका कारण यह है कि उसका केन्द्रक केवल एक प्रोटॉनका बना है। उसमें एक इलेक्ट्रॉन केन्द्रककी परिक्रमा करता है। हीलियम गैसके परमाणु-का केन्द्रक दो प्रोटॉन और दो न्यूट्रॉनका बना होता है और उसका परमाणुभार ४ है। दो इले-क्ट्रॉन इसके केन्द्रककी परिक्रमा करते हैं; और इसकी परमाणु-संख्या २ है। यूरेनियमका परमाणु

सबसे भारी होता है। इसका केन्द्रक ९२ प्रोटॉन और १४६ न्यूट्रॉनका बना होता है; और ९२ इलेक्ट्रान केन्द्रककी परिक्रमा करते हैं। परमाणुके केन्द्रककी परिक्रमा करनेवाले इलेक्ट्रॉन विभिन्न कक्षाओंमें घूमते हैं। पहलेमें २, दूसरेमें ८, तीसरेमें १८, चौथेमें ३२ आदि। बहुतसे मूलतत्त्वोंके एक-से अधिक वजनवाले परमाणु होते हैं। एक ही परमाणु संख्यावाले पदार्थके भिन्न-भिन्न वजनके परमाणुओंको समस्थानिक (आइसोटोप्स) कहते हैं। उदाहरणके लिए हाइड्रोजनके तीन समस्थानिक हैं—एक सादे हाइड्रोजनका केन्द्रक एक प्रोटॉनका होता है; दूसरा, ड्यूटेरियम जिसका केन्द्रक एक प्रोटॉन और एक न्यूट्रॉनका होता है; तीसरा, ट्रीटियम, जिसका केन्द्रक एक प्रोटॉन और दो न्यूट्रॉनका बना होता है। यूरेनियमके २३५ और २३८ वजनवाले दो समस्थानिक हैं। एकके केन्द्रकमें ९२ प्रोटॉन और १४३ न्यूट्रॉन तथा दूसरेमें ९२ प्रोटॉन और १४६ न्यूट्रॉन है। एक ही मूलतत्त्वके समस्थानिकोंके गुण एक-जैसे होते हैं, क्योंकि गुणका परमाणुके वजनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका आधार परमाणु-संख्या (क्रमांक) होती है, जो परमाणुके केन्द्रकके विद्युत भारका सूचक है।

रासायनिक क्रियामें केवल परमाणुकी बाहरी कक्षामें परिक्रमा करनेवाले इलेक्ट्रॉन ही भाग लेते हैं। उसके केन्द्रकमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता। केन्द्रकमें परिवर्तन करने और प्रोटॉनकी संख्या कम-अधिक करनेसे मूलतत्त्व ही बदलकर नया बन जाता है। यह कीमियागरी सबसे पहले रदरफोर्डने की थी। १९१९ में उसने नाइट्रोजनके परमाणुपर रेडियमसे उत्सर्जित ऐल्फ़ा कणोंकी बौछारकर आक्सीजनका १७ वजन (परमाणु-भार) का समस्थानिक प्राप्त किया था।

$^{१४}_{७}$ नाइट्रोजन + $^{४}_{२}$ हीलियम केन्द्र = $^{१७}_{८}$ आक्सीजन + $^{१}_{१}$ प्रोटॉन (हाइड्रोजन केन्द्र)

(ऊपरके अंक परमाणुभार और नीचेके अंक परमाणु संख्या बताते हैं) बेरिलियमपर ऐल्फ़ा कणोंकी बौछारसे चेडविकको सबसे पहला न्यूट्रॉन प्राप्त हुआ था।

$^{९}_{४}$ बेरिलियम + $^{४}_{२}$ हीलियम केन्द्र = $^{१२}_{६}$ कार्बन + $^{१}_{०}$ न्यूट्रॉन।

वजनमें हल्के और भारी परमाणुओंपर न्यूट्रॉनकी बौछारसे कई महत्त्वपूर्ण परिणाम निकले हैं। न्यूट्रॉनको पानी अथवा मोममेंसे पारित करनेसे उनका वेग धीमा हो जाता है और कुछ परमाणुओंका भेदन करनेके लिए धीमी गतिवाले न्यूट्रॉन अधिक प्रभावी सिद्ध हुए हैं। जब एक वस्तु किसी दूसरी वस्तुसे टकराती है तो उससे दूसरी वस्तुपर होनेवाला प्रभाव टकराने (टक्कर मारने) वाली वस्तुके वजन और गति पर निर्भर करता है। उदाहरणके लिए बन्दूककी गोलीको हाथसे फेंका जाए और वह किसीको लगे तो बहुत मामूली-सी चोट आती है, परन्तु उसी गोलीको बन्दूकमें रखकर दागा जाए तो वेग इतना बढ़ जाता है कि वह इस्पातके भी पार निकल जाती है। इसलिए परमाणु-केन्द्रभेदी कणोंकी गति बढ़ानेके लिए यन्त्रोंकी खोज की गई। इनमें साइक्लोट्रोन सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण है। इस यन्त्रमें केन्द्रकका भेदन करनेके काममें लाये जानेवाले न्यूट्रॉन आदि कणोंको विशाल लौह चुम्बकीय क्षेत्रमें ले जाकर अत्यन्त गतिमान कर दिया जाता है।

महान वैज्ञानिक आइन्स्टाइनने १९५० में यह मत प्रतिपादित किया था कि पदार्थका ऊर्जामें परिवर्तन किया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने एक समीकरण भी दिया था, जो इस प्रकार है:

$$E = mc^2$$

[E=energy=ऊर्जा; m=mass=वजन; C=velocity of light=प्रकाशकी गति, जो प्रति सेकण्ड २.९९७×१०^{१०} से० मी० है।) इस समीकरणके अनुसार यदि केवल एक ग्राम पदार्थका ऊर्जामें परिवर्तन किया जाए तो उससे ४००० अश्वशक्तिवाला इंजन लगातार एक वर्ष तक चलता रह सकता है। जर्मन वैज्ञानिक ऑटोहानके अनुसन्धानने इस सपनेको सच कर दिखाया।

१९३९ में ऑटोहानने यूरेनियमके नाभिक (केन्द्र) पर न्यूट्रॉनकी बौछारकी तो उसे एक आश्चर्यजनक परिणाम देखनेको मिला। यूरेनियमके परमाणुओंपर न्यूट्रॉनकी बौछारसे बेरियम और क्रिप्टॉन अथवा स्ट्रॉन्शियम और ज़ेनोन-जैसे लगभग दो समान भागवाले परमाणु प्राप्त होते हैं। नाभिकके विभाजनकी इस क्रियाको नाभिकीय विखण्डन या 'न्यूक्लीयर फिशन' कहते हैं। इस विखण्डनके दौरान कुछ पदार्थ ऊर्जामें परिवर्तित हो जाते हैं। २३५ वजनवाले यूरेनियम परमाणुके नाभिकीय विखण्डनके दौरान प्रचुर मात्रामें ऊर्जा ही प्राप्त नहीं होती प्रत्येक परमाणुसे विखण्डनके दौरान ३ न्यूट्रॉन भी मुक्त होते हैं, जो यूरेनियमके अन्य परमाणुओंका भेदन (विखण्डन) कर अधिक ऊर्जा और अधिक न्यूट्रॉनोंको मुक्त करते हैं। इसे 'शृंखला अभिक्रिया' (chain reaction) कहते हैं। शृंखला अभिक्रियासे मुक्त होनेवाली परमाणु ऊर्जाका सबसे पहला उपयोग, दुर्भाग्यसे विनाशकारी कार्योंमें (हिरोशिमा और नागासाकीपर परमाणु बम बरसाकर) किया गया था; परन्तु अब तो परमाणु ऊर्जाको शान्तिकालीन दैनिक उपयोगोंमें लेनेका कार्य आरम्भ हो चुका है। नाभिक-विखंडनके दौरान ऊर्जाकी प्रचुर मात्रा हमें गर्मीके रूपमें प्राप्त होती है, जिससे पानीको भापमें परिवर्तित कर उससे बिजली पैदा की जा सकती है और अन्य यन्त्रोंको चलाया जा सकता है। इंग्लैण्ड, रूस और अमरीकामें परमाण्विक बिजलीघर (Atomic Power Station) आज काफी बड़े पैमानेपर विद्युत् उत्पादन कर रहे हैं। भारतमें भी तारापुरमें परमाणु ऊर्जा द्वारा विद्युत् उत्पादनके लिए परमाण्विक बिजलीघर बनाया जा रहा है और ऐसे अन्य बिजलीघरोंकी योजना विचाराधीन है इसके लिए परमाणु भट्ठियाँ अथवा 'एटमिक पाइल्स' या 'रिएक्टर' बनाने होते हैं।

भट्ठीको बहुत मोटी सीमेंट कंक्रीटकी दीवारोंसे घेर दिया जाता है, जिससे विखंडनके समय उत्सर्जित होनेवाला रेडियधर्मी विकिरण कर्मचारियोंको हानि न पहुँचा सके। इस दीवारको परिरक्षक (shield) कहते हैं। तापका नियन्त्रण करनेके लिए भट्ठीमें जल, प्रायः भारी जल प्रवाहित होता रहता है; इसे शीतक (coolant) कहते हैं। भट्ठीमें जिस पदार्थसे ऊर्जा उत्पन्न की जाती है उसे ईंधन (fuel) कहते हैं। यह प्रायः शुद्ध यूरेनियम २३५ की पतली छड़ें होती हैं, जिन्हें घटा-बढ़ाकर आवश्यक मात्रामें ऊर्जा उत्पन्नकी जा सकती है। भट्ठीमें मन्दक पदार्थ (moderator) और नियंत्रक छड़ें (control rods) भी होती हैं। मन्दकोंका काम न्यूट्रानोंके वेगको कम करना है। इसके लिए ग्रैफाइट, पानी या भारी पानी इस्तेमाल किया जाता है। नियंत्रकोंका उपयोग न्यूट्रॉनोंके अवशोषणके लिए किया जाता है, ताकि उनकी संख्या घटाकर उन्हें विखण्डन कार्यके उपयुक्त रखा जा सके। नियंत्रक कैडमियम या बोरन मिले हुए इस्पातकी छड़ें होती हैं, जिनकी संख्याको घटा-बढ़ाकर ऊर्जाकी मात्राका नियन्त्रण किया जाता है। वास्तवमें यूरेनियमकी छड़ें और नियंत्रक छड़ें पानीमें ही डूबी रहती हैं।

परमाणुओंके नाभिकपर न्यूट्रॉन आदि कणोंकी क्रियाके दौरान और भी कई महत्त्वपूर्ण परिणाम सामने आये हैं। उनके आधार पर यूरेनियमके बादवाले बहुतसे मूलतत्त्व जो प्रकृतिमें नहीं मिलते प्रयोगशालामें बनाये गए हैं। उनकी परमाणु संख्या और नाम नीचे दिये जा रहे हैं:

ट्रान्स-यूरेनियन मूलतत्त्व

परमाणु संख्या	नाम	परमाणु संख्या	नाम
९३	नेप्चूनियम	९९	आइन्स्टीनियम
९४	प्लूटोनियम	१००	फर्मियम
९५	अमेरीशियम	१०१	मैंडलेवियम
९६	क्यूरियम	१०२	नोबेलियम
९७	बर्केलियम	१०३	लॉरेंसियम
९८	कैलिफोर्नियम		

हम यह देख आए हैं कि किसी एक मूलतत्त्वके अलग-अलग समस्थानिक हो सकते हैं। नये समस्थानिक नाभिकीय परिवर्तन द्वारा बनाये जाते हैं। इस तरह बनाये हुए कुछ समस्थानिक अस्थिर (अस्थायी) होते हैं और वे दूसरे मूलतत्त्वोंमें परिवर्तित हो जाते हैं। इस तरहके समस्थानिकोंको रेडियधर्मी समस्थानिक कहते हैं। मादाम क्यूरीकी पुत्री आइरीन और उसके पति जूलियोने कृत्रिम रेडियधर्मी द्रव्योंके क्षेत्रमें बड़ा ही महत्त्वपूर्ण काम किया है। रेडियधर्मी समस्थानिकोंका पता लगाने और नापनेके लिए एक उपकरण काममें लाया जाता है, जिसे गाइगरका काउण्टर कहते हैं। विभिन्न रेडियधर्मी पदार्थोंके जीवनकालमें बड़ा अन्तर पाया जाता है। उनका अर्ध जीवनकाल (half life-period) अर्थात् जितने समयमें उनकी शक्ति या ऊर्जा आधी हो जाती है, उसे प्रयोगोंके द्वारा खोज निकाला गया है। कोबाल्ट ६० अर्थात् ६० वजनवाले कोबाल्ट समस्थानिकका अर्ध-जीवन ५ ˙ ३ वर्ष है, कार्बन-१४ का ५६०० वर्ष और फॉस्फोरस -३२ का १४ ˙ ३ दिन। किसी भी मूलतत्त्वके समस्थानिकोंके गुण उस मूलतत्त्वके स्थायी परमाणुओं-जैसे ही होते हैं और प्राणी शरीर तथा वनस्पतिमें वह समस्थानिक मूलतत्त्वके स्थायी परमाणुओंकी ही तरह आचरण करता है। आजकल भांति-भांतिके रेडियो समस्थानिक बड़े पैमानेपर बनाये जाने लगे हैं और चिकित्सा तथा खेती-बाड़ी और रासायनिक प्रक्रियाओंमें अनुसन्धानके लिए उनका उपयोग किया जाने लगा है। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

शारीरिक क्रियाओंको समझनेमें रेडियो समस्थानिकोंसे बड़ी सहायता मिली है। शरीरमें कैल्सियमका उपयोग किस तरह होता है, कितना हड्डियोंमें जाता है, कितना अन्य भागोंमें जाता है और कितना बिना काम आये शरीरसे बाहर निकल जाता है—यह सब जानकारी कैल्सियम -४५ के उपयोगके द्वारा जिसका अर्द्धजीवन १८० दिनका है, मालूम की गई है। हमारे गलेमें थाइरॉयड ग्रन्थि है। उसमें थाइरॉक्सिन नामक पदार्थ बनता है। थाइरॉक्सिनके अणुमें आयोडिनके चार परमाणु रहते हैं। आयोडिन -१३१ (अर्द्धजीवन ८ दिन) देकर आदमीकी थाइरॉयड ग्रन्थिके बारेमें यह पता चलाया जाता है कि वह आयोडिन किस तरह ग्रहण करती है—साधारण गतिसे, तेज-

गतिसे या मन्दगति से; और इस तरह उस ग्रन्थिके स्वस्थ या अस्वस्थ होनेका निदान किया जाता है। किसीका हाथ या पाँव कुचल जाए और वहाँ रक्तका संचरण बन्द हो जाए तो उसे काटना पड़ता है, जिससे उस व्यक्तिकी जान बच सके। आजकल इस तरहके प्रसंगमें रोगीके खूनमें रेडियो-सोडियमके क्षारका इंजेक्शन देकर गाइगर काउण्टर द्वारा पहले यह देखा जाता है कि कुचले हुए भागमें खूनका संचरण होता है या नहीं और तब उस अवयवको काटने या न काटनेका फैसला करते हैं। यदि काउण्टरमें 'टिक-टिक' की आवाज़ हो तो समझा जाता है कि खूनका संचरण उस भागमें होता है और उसे बचाया जा सकता है। खेती-बाड़ीके क्षेत्र में विभिन्न प्रकारके पौधे किस तरहका उर्वरक अपनी वृद्धिके दौरान कब उपयोगमें लाते हैं, इसकी जानकारी उन उर्वरकोंमें रेडियवर्मी पदार्थ मिलाकर प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणके लिए सुपर फॉस्फेट उर्वरककी उपयोगिताके बारेमें जानना हो तो उसमें थोड़ा-सा रेडियो फॉस्फोरसवाला सुपरफॉस्फ़ेट मिलानेसे अभीष्ट जानकारी प्राप्त हो सकती है।

रेडियवर्मी समस्थानिकोंके द्वारा मशीनमेंसे निकलते कागज़, रबर आदिकी सही मोटाईके बारेमें और जमीनके अन्दर दबे पानीके नल किस जगह फट गए हैं और बहते हैं, यह जमीनको खोदे बिना ही मालूम किया जा सकता है। पेट्रोल कम्पनियाँ एक ही पाइपके द्वारा पेट्रोल, डीज़ल, केरोसीन आदि अलग-अलग प्रकारके तेल एक जगहसे दूसरी जगह भेजती हैं। एक तेलके बाद जब दूसरा तेल भेजना शुरू किया जाता है तो पहले तेलमें घुलनशील रेडियो आयोडीन थोड़ी मात्रामें मिला दिया जाता है। जब यह तेल दूसरे छोर पर पहुँचता है तो वहाँ रखे हुए गाइगर काउण्टरमें आवाज़ होती है, जिससे पता चल जाता है कि अब दूसरे प्रकारका तेल आनेवाला है।

रेडियवर्मी समस्थानिक का एक अद्भुत उपयोग यहाँ उल्लेखनीय है। पुरातात्त्विक अवशेषों-की प्राचीनताका पता लगानेके लिए कार्बन-१४ का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक सजीव पदार्थमें कार्बन होता है, जिसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे वह हवामेंसे प्राप्त करता रहता है। हवामें कार्बन-१४ वाला कार्बन डाइआक्साइड बहुत कम मात्रामें रहता है, क्योंकि यह वातावरण (वायु-मण्डल) के ऊपरी स्तरोंमें बनता है। किसी भी सजीव वस्तु में यह रेडियधर्मी कार्बन एक निश्चित मात्रामें रहता ही है। जब कोई सजीव वस्तु निर्जीव हो जाती है तो कार्बन-१४ का आदान-प्रदान नहीं होता और वह चीज़ धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है। किसी भी पुरातात्त्विक अवशेपमें यदि कार्बन-१४ की मात्रा दी जाए तो उससे उसकी प्राचीनताका पता चल जाता है और यह निश्चित किया जा सकता है कि वह कितने वर्ष पुरानी है। यदि दो ग्राम कार्बन-१४ मिल सके तो उससे ४० हजार वर्ष पुराने अवशेपोंकी तिथि निश्चितकी जा सकती है।

रासायनिक पदार्थों (रसायनकों) और उनकी क्रियाओंके सैद्धान्तिक पहलुओंका अध्ययन तो १८वीं सदीके आरम्भसे ही किया जा रहा था, परन्तु भौतिक रसायन (physical chemistry) विज्ञानकी एक स्वतन्त्र शाखाके रूपमें १९वीं सदीके उत्तरार्धमें ही अस्तित्वमें आया। भौतिकीके क्षेत्रमें जो तरह-तरहके अनुसन्धान-अन्वेषण हुए उन सबकी गहरी छाप भौतिक रसायन पर पड़ी और ऊष्मा गतिकी (thermo-dynamics) तथा गत्यात्मक सिद्धान्त (kinetic theory) को अपनाकर भौतिकी रसायनविदोंने रसायनशास्त्रके विकासमें मूल्यवान योगदान किया।

वाल्थर नर्न्स्ट
(१८६४–१९४१)
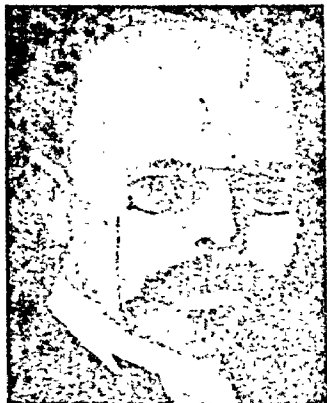
विक्टर मॉरिस गोल्डस्मिट
(१८८८–१९४७)
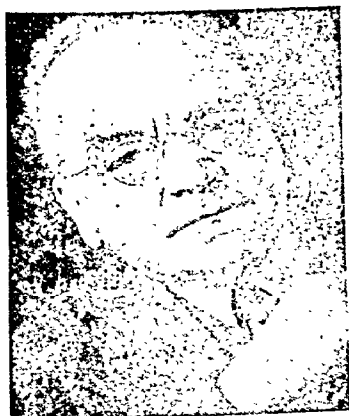
हेनरिक वाइलैण्ड
(१८७७–१९५७)

इरविंग लेंगमूर
(१८८१–१९५७)

२०वीं सदीके धुरन्धर

नील्स जेनिकसेन ब्जेरम
(१८७९–१९५८)
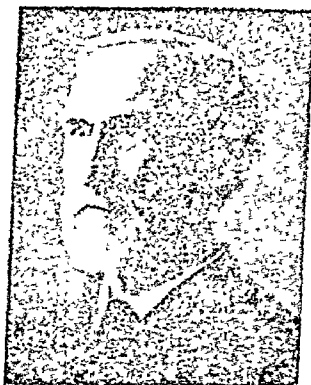
जोशिया विलार्ड गिब्स
(१८३९–१९०३)

उनके कार्यके फलस्वरूप रासायनिक क्रियाओंको ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सका और औद्योगिक रसायनक काफी अधिक मात्रामें प्राप्त किये जा सके। विगत शताब्दीमें इस क्षेत्रमें विलार्ड गिब्स, वाण्डेरवाल और वांटहॉफने काफी महत्त्वपूर्ण कार्य किये।

१८८४ ई० में अर्हेनियसने आयनीकरण का अपना सिद्धांत सबसे पहले अपने शोध प्रबन्धमें प्रस्तुत किया था। इसमें उसने यह बताया था कि अकार्बनिक पदार्थोंके विलयनमें क्षारके मूलक (radicals) आयनोंके रूपमें रहते हैं। उदाहरणके लिए लवण, जिसे रासायनिक भाषामें सोडियम क्लोराइड कहते हैं, विलयनमें धनाविष्ट सोडियम आयनों और ऋणाविष्ट क्लोराइड आयनोंके रूपमें रहता है। इस सिद्धान्तको उस समय बहुत थोड़े वैज्ञानिकोंसे मान्यता प्राप्त हो सकी थी, परन्तु कालान्तरमें वही एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ और विद्युत्-रसायनकी एक नई शाखा ही आरम्भ हो गई। अकार्बनिक पदार्थोंकी क्रियाओंको समझने और उनके विश्लेषण (विच्छेदन)के विकासमें इस सिद्धान्तका बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। कोलायड (कलिल) रसायन का विकास, प्रावस्था नियम (phase rule) और उसकी उपयोगिता, मात्रानुपाती अभिक्रिया (mass action) और उसका नियम—ये सब खोजे हैं तो उन्नीसवीं सदीके उत्तरार्धकी, परन्तु काममें आईं इस शताब्दीमें। उदाहरण के लिए समुद्रीजलमें पाये जानेवाले कई क्षारोंको मुक्त करने और मिश्रधातुएँ बनानेमें प्रावस्था नियम बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। उसी तरह मात्रानुपाती अभिक्रियाका नियम हवामेंके नाइट्रोजन और हाइड्रोजनको उत्प्रेरकोंके सान्निध्यमें संयोजित कर ऐमोनिया बनानेकी होबरकी विधि और दूसरे अनेक उद्योगोंमें तथा रासायनिक विश्लेषणमें उपयोगी साबित हुआ। पिछले २५-३० वर्षोंमें विद्युत् रसायन, कलिल (कोलाइड्स); वर्णक्रम (spectrum), क्वांटम यांत्रिकी (quantum mechanics स्फटिकोंकी संरचना आदि भौतिक रसायनके क्षेत्रमें बहुत काम हुए हैं। नन्हें-नन्हें अणुओंसे प्लास्टिक, वस्त्ररेशे, रबर आदि विराट् अणु बनानेकी विधियोंके बारेमें तो हम पिछले अध्यायोंमें पढ़ ही चुके हैं।

रसायनके विकासमें साधनों-उपकरणों का स्थान

बीसवीं सदीमें रसायनके क्षेत्रमें जो कल्पनातीत विकास हुआ वह बहुत-कुछ नई विधियों और नये ढंगके साधनों-उपकरणोंके कारण सम्भव हो सका। इन साधनों-उपकरणोंके द्वारा कुछ ऐसे प्रश्नोंका, जो बरसोंसे अनुत्तरित पड़े थे, समाधान खोजा जा सका और रासायनिक अनुसन्धानों-को वेग प्रदान किया जा सका। १९वीं सदीमें कपूर, नील, कुनैन आदि वानस्पतिक द्रव्योंकी अणुसंरचनाको अन्तिम रूपसे निर्धारित करनेमें अनेक वर्ष लगे थे। परन्तु आधुनिक साधनों-उपकरणोंके अन्वेषणसे यह काम बहुत सरल हो गया है। इसमें वर्णलेखन (chromatography) अनुज्ञापक विधि (tracer technique), परावैंगनी वर्णक्रम (ultra-violet spectrum)

अवरक्त वर्णक्रम (infra-red spectrum), रामन वर्णक्रम (Raman spectrum), द्रव्यमान वर्णक्रम-मिति (mass spectrometry), नाभिकीय चुम्बकीय अनुनाद (nuclear magnetic resonance), प्रकाशीय घूर्णन व्यासारण (optical rotatory dispersion), ज्वाल-प्रकाशमिति (flame photometry), ध्रुवण-लेखन (polarography) आदि नाम आते हैं। इन सबकी विस्तृत चर्चा तो यहां सम्भव नहीं, केवल कुछ विधियों का संक्षिप्त विवेचन किया जा सकता है।

इस शताब्दीके प्रारम्भमें स्वेट नामक एक वनस्पतिज्ञने वनस्पतिके रंगोंके पृथक्करणकी एक विधिका आविष्कार किया। उसने रंगके विलयनको ऐल्यूमिनासे भरी हुई एक नलीमेंसे पारित किया। ऐल्यूमिनाके इस दण्ड (कालम)में अलग-अलग ऊँचाइयोंपर अलग-अलग रंग अवशोपित हुए। नलीमेंसे इस दण्डको बाहर निकालकर जहाँ-जहाँ रंगोंका अवशोपण हुआ था उनके टुकड़े करके रंगों को शुद्ध अवस्थामें प्राप्त किया गया। इस विधिका नाम उसने 'वर्णलेखन' (क्रोमेटोग्राफी) रखा। जेकमाइस्टर, मार्टिन और सीज-जैसे वैज्ञानिकोंने इस विधिको और भी विकसित किया और आज तो यह विधि दैनिक उपयोगकी विधि बन गई है। दण्ड (कालम) वर्णलेखनके अतिरिक्त वृत्तीयपत्र (circular paper) वर्णलेखन, 'आरोही-अवरोही' (ascending-descending), 'तनु परत' (thin layer) और 'वाष्प कला' (vapour phase) वर्णलेखनके द्वारा केवल रंगीन ही नहीं अपितु रंगविहीन मिश्रणोंका भी पृथक्करण किया जा सकता है। राइकस्टाइन कोर्स्टेरॉइड-सम्बन्धी कार्यमें सेंगरको इन्सुलिनकी अणु-संरचना-सम्बन्धी कार्यमें और केल्वीनको प्रकाश-संश्लेपण (photo-synthesis) सम्बन्धी कार्यमें वर्ण लेखनके बिना कदापि सफलता न मिल पाती।

कागजी (पेपर) वर्ण लेखन

दाहिनी ओर : प्रयोगका उपकरण, जिसमें (६) कागजकी पट्टी और (३) विलयनसे भरी हुई पेट्रीडिश।

बाईं ओर : एमिनो अम्लका विश्लेपण। कागज (६) पर अलग-अलग जगह भिन्न-भिन्न एमिनो अम्लोंका अवशोपण हुआ है। विलायक : (phenol) NH_3 3%
समय : ४३ घण्टे।
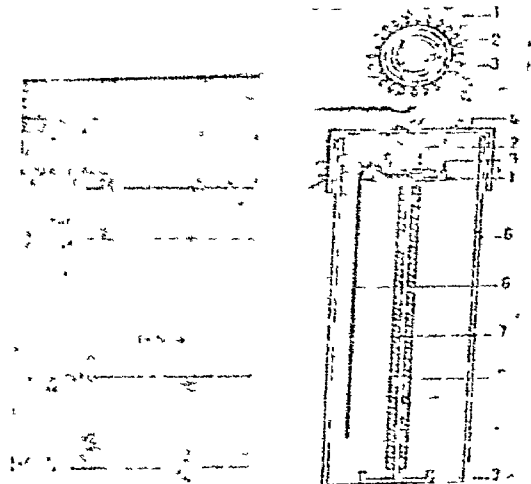
रासायनिक अनुसन्धानके क्षेत्रमें पिछले ३०-३५ वर्षोंमें पराबैंगनी, अवरक्त और रामन वर्णक्रमोंने अणुसंरचनाको निश्चित करनेमें बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। जब किसी पदार्थके अणुपर प्रकाशकिरणें पड़ती हैं और यदि वह अणु एक ही प्रकारके परमाणुओंका बना है तो अवशोषित ऊर्जा पदार्थके परमाणु में रहनेवाले इलेक्ट्रॉनको उत्तेजित करती और उसे उच्च कक्षापर ले जाती है। लेकिन यदि किसी अणुमें तरह-तरहके परमाणु हुए तो इलेक्ट्रॉनकी घूर्णनीय (rotational) और कम्पन (vibrational) शक्तिमें भी परिवर्तन होता है।

इलेक्टॉनिक संक्रमणके कारण दृश्य और पराबैंगनी वर्णक्रमोंमें अवशोषण अथवा उत्सर्जन होता है तब घूर्णनीय और कम्पनीय परिवर्तनोंके अध्ययनसे अणुकी संरचनाके सम्बन्धमें अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

अज्ञात पदार्थके वर्णक्रमकी यदि ज्ञात अणु संरचनावाले पदार्थोंके वर्णक्रमोंसे तुलना की जाए तो कई बार अज्ञात पदार्थकी अणुसंरचनाके बारेमें कुछ जानकारी मिल जाती है। जिस प्रकार किन्हीं भी दो आदमियोंके हाथकी छापें एक-जैसी नहीं होतीं उसी प्रकार दो भिन्न पदार्थोंके अवरक्त वर्णक्रम भी एक जैसे नहीं होते यदि किन्हीं दो पदार्थोंके अवरक्त वर्णक्रम एक-जैसे हुए तो वे दोनों पदार्थ भी एक-से ही होने चाहिए।

एक दूसरा उपकरण है 'द्रव्यमान वर्णक्रमीय ज्योतिमापी', जिसकी उपादेयता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। भौतिकविदोंने इस शताब्दीके आरम्भमें सबसे पहला द्रव्यमान वर्णक्रमीय ज्योतिमापी (मास स्पेक्ट्रो फोटोमीटर) बनाया था, लेकिन कार्बनिक रसायनके क्षेत्रमें उसकी उपादेयताका पता दूसरे विश्वयुद्धके बाद ही चला।

विभिन्न पदार्थोंके मिश्रणसे यदि इलेक्ट्रानोंको टकराया जाए तो विद्युत आवेशवाले कण पैदा होते हैं और यदि उन कणोंको चुम्बकीय क्षेत्रमेंसे पारित किया जाए तो वे वजन और विद्युत् आवेशके अनुपातके अनुसार मुक्त होते हैं; और यदि इन्हें एक फोटोग्राफिक प्लेट पर गिरने दिया जाए तो वे भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्लेटको प्रभावित करते हैं। इसपरसे गणना करके मिश्रणके पदार्थोंका अणुभार निश्चित किया जा सकता है।

क्ष-किरणोंकी खोज तो पिछली शताब्दीमें हुई, परन्तु कार्बनिक पदार्थोंकी अणुसंरचनाका पता लगानेमें उनका उपयोग पिछले तीन दशकों से किया जाने लगा है। अज्ञात पदार्थके एक बड़े स्फटिक पर अथवा छोटे स्फटिकोंके चूर्ण पर क्ष-किरणें डाली जाएँ तो स्फटिक उन किरणोंका विवर्तन (diffraction) करते हैं। इस विवर्तनको एक फोटोग्राफिक प्लेट पर अंकित किया जा सकता है। पदार्थोंसे क्ष-किरणोंका जो विवर्तन होता है वह पदार्थोंकी अणु-संरचना और उनके आयतन पर अवलम्बित है, इसलिए क्ष-किरणोंके विवर्तन के ढंगसे विभिन्न पदार्थोंकी अणु-संरचना और आयतनका अनुमान किया जा सकता है। क्ष-किरणोंके द्वारा रबर, सेल्यूलोज़, विटामिन-बी१२ आदि बड़े और जटिल विन्यास वाले अणुओंकी संरचना पर काफी प्रकाश पड़ा है।

एक और विधि 'नाभिकीय चुम्बकीय अनुनाद' भी उल्लेखनीय है। परमाणुके इलेक्ट्रॉनोंके कारण चुम्बकीय घूर्ण (magnetic moments) अस्तित्वमें आता है। परमाणु के नाभिकमें स्थित प्रोटॉन और न्यूट्रॉन भी अपनी-अपनी धुरियों पर घूमते रहते हैं और इससे भी चुम्बकीय घूर्ण पैदा होता है। अधिकांश नाभिकोंमें ये दोनों घूर्ण एक-दूसरेको रद्द नहीं करते, इसलिए परमाणुमें

नाभिकीय चुम्बकीय घूर्ण बना रहता है। ऐसे परमाणुओंको चुम्बकीय क्षेत्रोंमें रखनेसे इस नाभि-
कीय चम्बकीय घूर्णमें परिवर्तन होता है। रेडियो आवृत्ति (frequency) जैसी निम्न-आवृत्तिका
उपयोग करनेसे नाभिकीय केन्द्रीय अनुनाद उत्पन्न होता है। इसे नापा जा सकता है और इससे अणुकी
संरचनाके बारेमें पता चलता है।

अणुकी संरचनाको निर्धारित करनेवाले अन्य साधन प्रकाशीय घूर्णन व्यासारण और ध्रुवण-
लेखन हैं। इन सब साधनोंकी विधिवत शिक्षा देनेके लिए पाठ्यक्रम तैयार किये गए हैं, जो
इन्स्ट्रुमेंटेशन कोर्सेस' कहलाते हैं।

आज दुनियाकी बढ़ती हुई जनसंख्याके लिए भोजन जुटानेका प्रश्न कई देशोंके सामने जटिल
समस्या बना खड़ा है। परन्तु इस क्षेत्रमें जो कार्य हो रहा है उससे पता चलता है कि कलके
नागरिकोंके भोजनका प्रबन्ध खेतोंमें नहीं, कारखानोंमें होगा। आज पेट्रोलियमसे उच्चकोटिके
प्रोटीन बनानेके प्रयोगोंको सफलता मिल चुकी है। कृषि, मत्स्योद्योग और पशुपालनकी दिशामें
कितने ही साधन प्रयत्न क्यों न किये जाएँ कलके आदमीकी खाद्य-सम्बन्धी आवश्यकताओंको इनसे
कदापि पूरा नहीं किया जा सकता। लगता तो यही है कि लकड़ी और पेट्रोलियम जैसे अखाद्य
पदार्थोंसे खाद्य पदार्थ बनाकर दुनियाकी इस आवश्यकताको पूरा किया जाएगा। प्लास्टिक-उद्योग
बहुत तेजीसे विकसित हो रहा है और आज अनेक गुणसम्पन्न प्लास्टिक सुलभ हैं। भविष्यके निर्माण-
कार्यमें लकड़ीकी जगह प्लास्टिकका उपयोग होगा। लोहे-जैसे मजबूत प्लास्टिक आज बनने लगे हैं
और यदि उनकी कीलें बनाई जाएँ तो उनका लोहेकी कीलोंकी तरह इस्तेमाल हो सकता है।
इससे यह सम्भावना प्रतीत होती है कि प्लास्टिकका उपयोग लोहे और इस्पातकी जगह भी
किया जा सकेगा।

दिमाग पर असर कर भय और भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाले रसायनक आज खोज लिये गए हैं। सम्भव है कि कल मन-मस्तिष्कको प्रफुल्लित और आह्लादित कर मानसपर पटल अंकित समस्त अशुभ और दुःखद स्मृतियोंको पोंछनेवाले रसायनक भी खोज लिये जाएँ। बुढ़ापालाने वाली शारीरिक क्रियाओंको यदि हमने समझ लिया तो उनपर काबू पानेका, चिर युवा रहनेका उपाय भी निस्सन्देह कर लिया जाएगा।

एक तरफ ये सम्भावनाएँ हैं, दूसरी ओर मानवकी निरन्तर बढ़ती हुई विनाशकारी शक्ति है। परमाणु शक्ति और विषैले रसायनकोंका मनुष्यके संहारके लिए उपयोग किया जाता है। सभ्यता-और संस्कृतिके हामी सम्पन्न राष्ट्रोंने गरीब, असुरक्षित राष्ट्रोंके खिलाफ नापाम बमोंका और खड़ी फसलें नष्ट करनेवाले रसायनकोंका इस्तेमाल किया है। भविष्यमें वे और भी विनाशक रसायनकों और संहारक शस्त्रोंका इस्तेमाल नहीं करेंगे, इसकी कोई गारंटी नहीं है। सम्भव है कि आती कल आलडस हक्सलेने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में जो भविष्यवाणी की वह सच ही हो जाए! हो सकता है कि बड़े-बड़े देश अपने कारखानोंमें विभिन्न रसायनकोंका उपयोग कर भिन्न-भिन्न विशेषताओंवाले आदमियोंका—मजदूरों, सैनिकों, कारकूनों आदिका 'टेस्टट्यूब' में थोकबन्द उत्पादन करने लगें। चन्द्रमाकी धरतीपर अपने चरण-चिन्ह अंकित करने-वाला मनुष्य, कोटि योजन दूर ग्रहों-नक्षत्रों पर पहुँचनेके लिए प्रस्तुत मनुष्य, नन्हेंसे परमाणुमेंसे सीमातीत शक्ति प्राप्त करनेवाला मनुष्य अभी तो बहुत कुछ करेगा। लेकिन साथ ही उसके नैतिक

मूल्योंका नाश न हो और उसका आध्यात्मिक उन्नयन भी इतनी ही तेज़ीसे होता रहे, यह आशा तो हमें करनी ही चाहिए। विज्ञान और आध्यात्मिक उन्नति हाथमें हाथ मिलाकर आगे बढ़ें, इसीमें मनुष्यकी भलाई है। निरा विज्ञान और उसकी भौतिकवादी प्रगति मनुष्य जातिको सर्वनाश-के रास्ते पर खीच न ले जाए, यह देखना और इस सम्बन्धमें सतर्क रहना विचारकोंका काम है। क्या वे सजग और सतर्क रहेंगे?

पारिभाषिक शब्दावली

अणुकक्षक सिद्धान्त—molecular orbital theory
अणुसूत्र—molecular formula
अनुहरण—mimicry
अनुज्ञापक विधि—tracer technique
अन्तःक्षेपण—injenction
अपकेन्द्रित्र—centrifuge
अपघर्षक—abrasive
अपचायक (अवकारक)—reducing agent
अपनति—anticline
अपमार्जक (प्रक्षालक)—ditergent
अभिनति—syncline
अर्धजीवनकाल—half life period
अवक्षेपण—precipitation
अष्टक नियम—law of octavoes
असम—unsymmetrical
आक्सीकरण—oxidation
आयन—ion
आवर्त-सारणी—periodic table of elements
आर्द्रता अवशोषी—hygroscopic
आसंजक—adhesive
आसुत—distilled
उत्प्रेरक—catalyser
उत्स्फोटन—blasting
उभयधर्मी—amphotiric
ऊष्मागतिकी—thermo-dynamics
एकलक—monomer
एकदिशाकारी—rectifier
ऐलकाली—alkali
औषधीय सत्व—active principle
कच्चा रंग—fugitive colour
कर्तनोपकरण—cutlery goods
कान्तिसार (गजवल्ली)—steel
काँचिका—glaze
किण्वन—fermentation
केन्द्रक (नाभिक)—nucleus
खटवास—rancidity
खनिज सभार—ore-dusting
खुलीचुल्ली भट्ठी—open hearth
गत्यात्मक सिद्धान्त—kinetic theory
गालक—flux
चिकित्सान्वयी—chemotherapeutic
छत्रकशैल—cap rock
ढलवाँ लोहा—wrought iron
तन्तुवाय—spinneret
तन्त्रान्वयी—systematic
तन्य—ductile
तन्यता—tenacity
तरल ऊष्मा अन्तरण—heat transfer fluid
तापसुनम्य—thirmoplastic
तापस्थापित—thermosetting
तुल्यभार—equivalent weight
तेल उत्प्लावन विधि—oil floatation method
तैलीयद्रव्य—limpids
त्र्यग्र—triode
दिक्स्थिति—orientation
धमनवात भट्ठी—blast furnace

वातवर्ध्य–malleable
धातुमल–stag
निद्रालु रोग–sleeping sickness
निपिण्ड–block
निस्तापन–calcination
निस्सारण–extration
निक्षेप–deposits
नोदक धुरीदण्ड–propeller shaft
परतबन्दी–lamination
परावर्तनभट्ठी–reverberatory furnace
परमाणुवाद–atomic theory
परिष्करणी–refinery
पानी चढ़ाना–tempering
पिटवाँ लोहा–wrought iron
पुनर्गठन (पुनरुत्पादन)–reformation
पृथक्करण–separation
पृष्ठ तनाव–surface tension
प्रकिण्व–enzyme
प्रकृत–normal
प्रक्षोभक–agitator
प्रतिवर्ती–reversible
प्रभाजन–fractionation
प्रसारगुणांक–coefficient of expansion
प्रशीतक–referigerator
प्रावस्था नियम–phase rule
फ्लोजिस्टनवाद–flogiston theory
फेनिल रबर–foam rubber
बन्ध–valancy bond
बन्धुता–affinity
बहिर्वेधन–extrusion
बहुलक–polymer
बहुलीकरण–polymerisation
भंजन–cracking
भर्जन–roasting
भापविसंक्रामक–autoclave
मात्रानुपाती अभिक्रिया–mass action
माध्यमिक–intermediaries
मूलक–radical
मूलतत्त्व–element
मूलानुपातीसूत्र–empirical formula
वर्णक्रम–spectrum
वर्णजन–chromogen
वर्णवर्धक–osochrome
वर्णलेखन–chromatography
वर्णसूचक–chromophore
विकिरणधर्मिता–radio activity
विद्युद्दर्शी–elctroscope
विद्युद्विश्लेषण–electrolysis
विद्युद्पारक–dielectric
विलायक–solvent
विवर्तन–diffraction
शृंखला अभिक्रिया–chain reaction
शुष्कक–drier
संकुल–complex
संकेन्द्रण (सान्द्रण)–concentsration
संघनन–condensation
संचककरण–moulding
संचर्वण–mastication
संयोजकता–valency
सजात श्रेणी–homologous series
सम–iso
सममिति–symmetry
समस्थानिक–isotope
समचक्रीय–homocycle
सहसंयोजकता–covalency
समावयव–isomer
समूह–group
सवर्गीकरणवाद–coordination theory
सीसकक्ष–leadchamber
सुरभित–aromatic
हाइड्रोजनीकरण–hydrogenation